कहानी-दर्शन

[एक विवेचनात्मक अध्ययन]

लेखक :

श्री भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर'

साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, साहित्यमहोदधि, बी० ए०

भूमिका :

डॉ० गुलाबराय एम० ए०, डी० लिट्०

पुस्तक का नाम	*	कहानी-दर्शन
लेखक	*	भालचन्द्र गोस्वामी
मूल्य	*	दस रुपये
प्रकाशक	*	साहित्य-रत्न-भण्डार,
मुद्रक	*	साहित्य-प्रेस, आगरा।

शरत् के
'पाथेर-दावी' की 'भारती'
तथा
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा विज्ञापित
बाणभट्ट की आत्मकथा की 'निउनिआ' को
जो स्वयं
मानव-जीवन की
अनिर्वचनीय कहानी बनकर
रह गई हैं।

दो शब्द

कहानी का इतिहास साहित्य के प्रागैतिहासिक काल से आधुनिकतम काल तक फैला हुआ है। वह अपने छोटे मुँह बड़ी बात कहने का साहस करती है। बहुत सा मूल्यवान धर्मोपदेश इसी के सहारे चला है। यह अविकसित और विकसित दोनों प्रकार के मस्तिष्कों के लिये ज्ञान-प्रसार का साधन रही है। यह धर्म की सहयोगिनी बनी रही है और उसके द्वारा मानव-ज्ञान के अत्यन्त मूल्यवान भाग की अभिव्यक्ति हुई है। कहानी जैसी सीधी-सादी साहित्यिक विधा है, वैसी ही उसकी कला विशद और बहुशाखामय है। श्री भालचन्द्रजी गोस्वामी ने अपनी 'कहानी-दर्शन' नाम की पुस्तक प्रकाशित होने से पूर्व दिखाने की कृपा की है। नामानुकूल पुस्तक में कहानी का सर्वतोमुखी दर्शन दार्शनिक दृष्टिकोण से किया गया है। लेखक महोदय ने कहानी की विभिन्न परिभाषायें देकर उसके विभिन्न तत्वों और प्रकारों पर प्रकाश डाला है। और इस कार्य में उन्होंने पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियो की पुस्तको का ही सहारा नही लिया है वरन् दण्डी और भामह से लगाकर पण्डितराज जगन्नाथ तक के ग्रन्थों का आश्रय लिया है। कहानी की कहानी में भारत के मूल्यवान योगदान का बड़ा विशद वर्णन हुआ है। इसको पढ़कर हृदय गर्व से भर जाता है। उसी के साथ संसार भर के प्रमुख सभ्य देशो के कहानी-साहित्य का सर्वेक्षण हुआ है जो हमारे ज्ञान की संकुचित सीमाओं को एक सुखद और आवश्यक विस्तार देता है। यद्यपि कहानी की कहानी की इस विस्तृत भूमिका में हिन्दी कहानी का और भी विशद और तारतम्यमय वर्णन अपेक्षित था, फिर भी जो दिया गया है वह दिशा-निर्देश के लिये पर्याप्त है। कहानी के शिल्प-विधान और शैलियों का एक नये ढङ्ग से विवेचन हुआ है जो मस्तिष्क को भाराक्रान्त नही करता है और वह कलाकार और आलोचक दोनों के लिये उपयोगी है। कहानी की आलोचना के सूत्र जो इस पुस्तक में उद्धृत किये गये हैं, वे अत्यन्त मूल्यवान और व्यावहारिक है। कहानी के दर्शन के पढ़ने से कहानी के सम्बन्ध में एक विस्तृत दृष्टिकोण बनता है और उसके सभी पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। इसके लिये गोस्वामीजी बधाई के पात्र हैं। आशा है कि यह पुस्तक कहानी के आलोचना-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगी।

ई १८९/४ बानगङ्गा कॉलोनी,
भूपाल
१५-९-५९

—गुलाबराय

कहानी मानव-जीवन की कहानी से भिन्न कुछ भी नहीं है और उसी कारण उतनी ही अवच। शब्दों का कवच पहनाने की प्रवृत्ति में उसे अवाञ्छनीय तत्वों से बचाने की भावना ही विद्यमान है। फिर उसी कारण वह उतनी ही अनगढ़ है जितनी सनातन। शास्त्र ने उसे रूप ही दिया है, स्वरूप नहीं। मर्यादा—निरपेक्ष, उसे शास्त्र का बन्धन कभी शस्त्र नहीं रहा, बन्धन तो कदापि नहीं। शास्त्र का गरल पीकर वह वैसी ही अमर हो रही जैसी मीरा—और उसी की भाँति वह अपने उस अव्यक्त गोपाल की खोज में है जिसकी खोज ही उसका लक्ष्य है, और जिस दिन वह उसे पा लेगी उस दिन वह अपना अस्तित्व खोदेगी, और जिस दिन वह मरेगी उस दिन मानव-जीवन भी मर जायगा—क्योंकि वह मानव-जीवन की अभिन्नतम सहचरी है।

—प्रखर

विषय-सूची

समाहार—पृष्ठ १ से ५

प्रथम उच्छ्वास

कहानी क्या है ?—पृष्ठ १—५०

आनन्द तत्त्व और कहानी, संस्कृत समालोचना साहित्य में कहानी का स्वरूप, कहानी-परिवार, अग्निपुराण का रचना-काल, अमर कोष, काव्यादर्श, भामह और दण्डी, काव्यादर्श की कहानी, दशकुमार चरितम्, काव्यालङ्कार (भामह), अग्निपुराण की आख्यायिका, कथा-आख्यायिका की व्याख्या, कथा का स्वरूप, खण्ड-कथा और परिकथा, कथानिका : एक महत्त्वपूर्ण काव्य विधा, काव्यालङ्कार (रुद्रट), अभिनवगुप्त : ध्वन्यालोक लोचन, ध्वन्यालोक-खण्डकथा, सकल कथा, आनन्द वर्धनकृत ध्वन्यालोक, शब्द संघटना, काव्य प्रकाश (मम्मट), काव्यानुशासन (हेमचन्द्र), हेमचन्द्र की आख्यायिका, कथा व अन्यभेद, व्याख्या, साहित्य-मीमांसा, काव्यानुशासन (वाग्भट्ट द्वितीय), साहित्य-दर्पण, उपसंहार, संस्कृत साहित्य में कहानी का सामान्य स्वरूप, स्वरूप परिवर्तन क्यों नहीं ?, पाश्चात्य आलोचकों के विशिष्ट मत, मैथ्यूस, फास्टर, वैल्स, वैट्स, सॉमरसैट मान, ओ' ब्रायन, एलब्राइट, बुलैट, स्ट्राग, पो, ह्यू वाकर, पोकाक, पाश्चात्य मतों की परीक्षा, हिन्दी साहित्य में कहानियों का श्रीगणेश, पश्चिम का अनुकरण, भारतीय आलोचकों के कहानी विषयक मत, इन मतों की समष्टिगत परीक्षा, तीन विशेषतायें, कहानी की परिभाषा, एक संवेदना की व्याख्या, कहानी का क्षेत्र, सत्यं शिवं सुन्दरम्, आदर्श और यथार्थ, यथार्थवाद के दो पक्ष, स्थूल से सूक्ष्म की ओर ।

द्वितीय उच्छ्वास

कहानी का साहित्य के अन्य अङ्गों से सम्बन्ध—पृष्ठ ५१—८०

साहित्य का विस्तार, सम्बन्ध, विवेचन की आवश्यकता, तुलना का आधार, अन्तर का आधार, साहित्य का नया वर्गीकरण, उपन्यास और कहानी, वृत्ति पात्र संख्या, मञ्च परिवर्तन, लम्बाई, पराकाष्ठा, आदर्श, कुतूहल, नाटक और कहानी, एकांकी नाटक, नाटक : वृत्ति, घटना, सकलन-त्रय, उद्देश्य, मूलमनो-वृत्तियाँ, नाटक के तत्त्व, अभिनय, मुद्रा, संवाद, व्यक्तित्व, कहानी और एकांकी, नाटक, विधान, विषय, शैली, आत्मकथा और कहानी, नायक, वृत्ति, वस्तु, उद्देश्य तत्त्व-विधान, संस्मरण, स्कैच और कहानी, कविता और कहानी, महा-काव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, अन्तर्मुखी काव्य : गीतिकाव्य, कहानी और निबन्ध, कहानी और गद्य काव्य, कहानी और चुटकुले, कहानी और मुहाविरे, कहानी और कहावतें ।

तृतीय उच्छ्‌वास

कहानी कितने प्रकार की होती है ? पृ० ८१—१४६

वर्गीकरण के सिद्धान्त, वर्गीकरण की कुछ आधार-शिलायें, वातावरण और वस्तुगत भेद, सामाजिक, ऐतिहासिक, उपैतिहासिक, प्रागैतिहासिक, राजनैतिक, जासूसी, वैज्ञानिक, धार्मिक, जीवट की कहानियाँ, आर्थिक, यौन सम्बन्धी कहानियाँ, प्रकृति चित्रण की कहानियाँ, पशुपक्षियों सम्बन्धी, भूत-प्रेतो की कहानियाँ, चरित्र प्रधान कहानियाँ, कथानक प्रधान कहानियाँ, वार्तालाप प्रधान कहानियाँ, वातावरण प्रधान कहानियाँ, संघर्ष प्रधान कहानियाँ, तत्त्वों की प्रमुखता का निर्धारण, लेखक की रुचि और क्षमता, युग साहित्य की माँग, कहानी विशेष की वस्तु, शैलीगत भेद, ऐतिहासिक, ऐतिहासिक शैली की विशेषताएँ, भाषा, कथानक, चरित्र, वातावरण, लेखक का अपना दृष्टिकोण, डायरी शैली, पात्र और चरित्र, कथानक, वार्तालाप, वातावरण, उद्देश्य, डायरी शैली की सीमायें और विशेषतायें, पत्र शैली, आत्मकथा शैली, मिश्र शैली, आभ्यन्तरिक वर्ग, रूपक शैली, रसगत भेद, परिणाम या निवृत्ति गत भेद, काल की इकाई गत भेद, विचारधारागत भेद, यथार्थवाद और आदर्शवाद, उद्देश्य ।

चतुर्थ उच्छ्‌वास

कहानी की शैली या टेकनीक—पृ० १४७—२०४

शैली क्या है ?, शैली का उद्देश्य, कहानी की उत्पत्ति, शैली के भेद, कृत्रिम और स्वाभाविक, घटनात्मक अंश की कृत्रिमता, कथोपकथन की कृत्रिमता, चरित्र-चित्रण में कृत्रिमता, शीर्षक की कृत्रिमता, स्वाभाविक शैली; शीर्षक का महत्व, शीर्षक की योग्यताएँ, मन्तव्य को प्रकट करने की शक्ति, नई कहानियों के शीर्षक, शीर्षक असफल कब हो जाता है, असफलताओं का निराकरण, प्राचीन शीर्षक, नाम शीर्षक, अत्यन्त सरल शीर्षक, पूर्वसिद्ध शीर्षक, असिद्ध शीर्षक, शीर्षकों का वर्गीकरण, अन्य साहित्य के शीर्षक, कहानी का प्रारम्भिक स्थल, प्रारम्भिक अंश की सीमाएँ, विशेष दशाएँ, अच्छे प्रारम्भ की विशेषताएँ, रोचकता कैसे ?, प्राचीन और नवीन प्रारम्भ प्रणालियों का वैधानिक अन्तर, प्रासंगिकता और उद्देश्य, श्रीगणेश की प्रणालियों का वर्गीकरण, गतिशीलता की मात्रा, वस्तुव्यापार, कालक्रम, कहानी का प्रारम्भ और शीर्षक, प्रारम्भ और अन्त, कहानी का मूल भाग (विकास), विकास के बाद की अवस्था पर विचार, चरम की ओर, विकास का रूप, विश्रान्ति स्थल, चरमावस्था या पराकाष्ठा, चरित्र चित्रण में नई दिशा, चरमावस्था की अनिवार्यता पर विचार, अन्तः अन्त की वैधानिक स्थिति, रहस्यमय अन्त भावात्मक अन्त ।

पंचम उच्छ्वास

कहानी के तत्त्व—पृष्ठ २०५—३२४

तत्त्व से अभिप्राय—तत्त्वों का परस्पर सम्बन्ध, तत्त्व गणना का प्रयोजन, भाषा शैली, मुहाविरेदार भाषा, अलङ्कारिक भाषा, काव्यमय या भावप्रधान भाषा, चित्रमय भाषा, भाषाशैली और अन्य तत्त्व, कथानक, क्या कथानक अनिवार्य है ?, कथानक की योग्यताएँ, कथानक और शेष तत्त्व, अस्वाभाविक कथानक, कथानक और उद्देश्य, कथानक की अवस्थाएँ, कथानक का प्रारम्भ, विकास और अन्त, कथानक के भेद, कथानक के शास्त्रीय भेद, कथानक के स्रोत, कथानक की अभिव्यक्ति की विधियाँ, कुतूहल, कुतूहल का द्विमुखी व्यक्तित्व : पूर्व सत्र विषयक कुतूहल, परवर्ती कुतूहल, कहानी की अवस्थाएं और कुतूहल, चरित्र-चित्रण, पात्र कौन, कथावस्तु और पात्र, चरित्र चित्रण क्या है ?, पात्र परिचय का स्वरूप, कहानी का प्रभाव और पात्र, पात्रगत विशेषताएँ, चरित्र चित्रण की सूक्ष्मता, चरित्र चित्रण की अनिवार्यता, चरित्र चित्रण का अन्य तत्वों से सम्बन्ध, चरित्र चित्रण के साधन, इतिवृत्त, वार्तालाप, कथावस्तु, पात्रों का उपचेतन या अचेतन व्यक्तित्व, चित्राकन की इतिवृत्तात्मक प्रणाली की विशेषताएँ, कथोपकथन प्रणाली, कथावस्तु के द्वारा चरित्राङ्कन, सकेतात्मक प्रणाली, चरित्र चित्रण के भेद, स्थान भेद की दृष्टि से अन्य भेद, चरित्र चित्रण की सीमाएँ और उपबन्ध, चरित्राकन की योग्यता, स्वाभाविकता, असाधारणता, आदर्श या यथार्थ पात्र ?, पात्रों की संख्या, पात्रो का नामकरण, पात्रो के भेद, उत्पाथ प्रख्यात, श्रेणीगत भेद, सामान्य और लोकोत्तर, लोकोत्तर पात्रों का विकास, सामान्य पात्रो का उदय और विकास, सामान्य पात्रो का क्षेत्र : साधारण और विशिष्ट, पात्रो के चरित्र का परिवर्तन या परावर्तन, नायक, नायिका, कथोपकथन, क्या कथोपकथन कहानी का एक तत्व है ?, कथोपकथन की आवश्यकता, कथोपकथन की योग्यताएँ, लाघव, व्यावहारिकता, चमत्कारपूर्णता, स्थानीय वातावरण, स्वाभाविकता, सरलता की सीमा, शिष्टता का प्रश्न, अन्य गुण, कथोपकथन कब और कहाँ ?, कथोपकथन के भेद, कथोपकथन की विशेष अवस्थाएँ, वातावरण, वातावरण क्या है ?, कुछ परिभाषाएँ, वातावरण के उपकरण, वातावरण का स्वरूप, वातावरण की परिभाषा, वातावरण और अन्य तत्त्व, देश और काल प्रकृति चित्रण, उद्देश्य और प्रभाव, कहानी में उद्देश्य, उद्देश्य, लेखक का मन्तव्य, उद्देश्य और प्रभाव एवं सिद्धान्त, कहानी का उपेक्षित किन्तु महत्वपूर्ण तत्त्व संघर्ष, संघर्ष का मौलिक स्वरूप, अन्य तत्त्वों मे संघर्ष की उपस्थिति, स्थिति, संघर्ष या प्रतिस्थिति का प्रवेश, संस्थिति ।

षष्ठ उच्छ्वास

आधुनिक कहानी—पृष्ठ ३२५—३४४

आधुनिक कहानी के स्वरूप में विषय और विरोधी मत, कहानी के १६ गुण, आधुनिक कहानी की अविश्वसनीय विश्वसनीयता, कुछ स्थितियाँ, कुछ विचार प्रेरक विचार, लोक कथा, लोक कथा का स्वरूप, लोक कथा का उदय, लोक और लोकेतर साहित्य का क्रम, लोक कथा की विशेषताएँ, लोककथा की ओर ध्यान, समस्या कहानी, समस्या और निदान, समस्या कहानी स्वयं समस्या, कहानी का महत्त्व।

सप्तम उच्छ्वास

कहानी की कहानी पृष्ठ ३४५—३६५

कहानी का उद्गम, वैदिक कथा वांगमय, एक विवाद, वैदिक कथा साहित्य की विशेषतायें, ब्राह्मण और उपनिषद्, पुराण साहित्य, पुराण जातक और पंचतन्त्र, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत, जातक, पंचतन्त्र, संस्कृत के अन्य कथाग्रन्थ, बृहत्कथा, कथासरितसागर व अन्य ग्रन्थ, हितोपदेश, बैतालपंचविंशतिका, शुक सप्तति, सिंहासनद्वात्रिंशतिका, दशकुमार चरितम्, वासवदत्ता, हर्षचरित कादम्बरी, सामान्य दिशासूचन, योरोप का कथा साहित्य, इटली, ओल्ड व न्यू टेस्टामेण्ट, मिश्र, फ्रान्स, अँग्रेजी कहानी का विकास, विभिन्न कहानी लेखक और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय, आधुनिक अँग्रेजी कहानी, स्पेन, जर्मनी, रूस अमेरिका में कहानी का विकास, एशिया, हिन्दी में कहानी का विकास, बँगला भाषा में कहानी, मराठो कहानी, गुजराती कहानी, तामिल कहानी, तेलगु कहानी, कन्नड़ कहानी, उर्दू कहानी, पंजाबी कहानी, कहानी साहित्य का सिंहावलोकन, भारतीय कहानी और उसका भविष्य।

परिशिष्ट १—पृष्ठ ३६६–३६७—संस्कृत गद्यकाव्यों, कथाओं तथा आख्यायिकाओं की तालिका।

परिशिष्ट २—पृष्ठ ३६८–४०२—कहानी की परिभाषा, लेखक का एक स्वतन्त्र लेख।

परिशिष्ट ३—पृष्ठ ४०३–४०४—बच्चों की कहानियाँ, मानस और शिल्प।

परिशिष्ट ४—पृष्ठ ४०५–४०८—अध्ययन सामग्री।

मुकुर (इन्डैक्स) पृष्ठ (१) से (१५)।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१	an illu—	an illuminated and illu—
१६	६	ध्वन्यालोचन	ध्वन्यालोकलोचन
२०	अन्तिम	स्वपतया	स्वरूपतया
२१	१६वीं पंक्ति	नहीं पढ़ी जाय ।	
२३	१८	नही	यही
२५	४	अर्थभेद	अन्य भेद
२६	१४	आवश्यक	अनावश्यक
७२	अन्तिम	वह सभी	वह, न कि सभी
१४७	२	love	bone
२२५	४	आकाश	अकाल
२३५	१६	भाव	अभाव
२४८	५	कहानी	कहानी-संग्रह
२४८	अन्तिम	क्रम	इसी क्रम
२५३	७	मतल्लिका	मणिकुल्या
२६६	२४	प्रतिलीन	प्रतिलोम
२६७	१३	कहन्न	कदन्न
२७७	६	अर्थभेद	अन्य भेद
२८०	२४	परिजाति	परिणति
२८७	१५–१६	कहानीकार	कहानी भर
२६१	४, ५	महानिषेध	मद्यनिषेध
२६८	६	विवस्य	विवस्त्र
३००	५	मानना चाहिए	मानना
३१०	३	अतिरिक्त	आन्तरिक

३१७	२०	उद्देश्य हों	उद्देश्य अनेक हों
३५०	१६	प्रतीत होते हैं	प्रतीत होते है, कुछ न कह कर
३५६	२१	अभिजात वर्ग (संस्कृतवादी) की	अभिजात वर्ग की (संस्कृतमयी)
३५७	नीचे से तीसरी	अधिक से अधिक	अधिक से अधिक ढाई
३५८	४	सिंहल	सिंहल अट्ठकथाओं को सिंहल
३५९	९	सट्टी चम्पय	सही चम्पय
३६१	६	vailings	railings
३६७	१३	विवरण	उक्त विवरण
३७३	५	इनका	इनकी कहानियों का संग्रह है । इनका

समाहार

'कहानी-दर्शन' केवल कहानी का दर्शन या उसकी व्याख्या नहीं, अपितु कहानी का 'दर्शन' या उसकी फिलासफी है, उसी प्रकार जैसे ब्रैण्डर मैथ्यूस के अनुसार "A true Short story is something other and something more than a mere story which is short. It is an idea in itself, and to denote it fully a hyphen should be placed between these two words, with a capital 'S' in the beginning." मुझे इस आलोचक की उक्ति में कहानी का एक सम्पूर्ण दर्शन झांकता हुआ दिखाई पड़ता है। इसी से मैंने इस प्रबन्ध का नाम 'कहानी-दर्शन' रखना उपयुक्त समझा है।

किन्तु मेरे तईं ब्रैण्डर मैथ्यूस केवल अभिविन्यास (window-dressing) का काम करते हैं। इस पुस्तक की आत्मा में तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल या श्यामसुन्दरदास की वर्चस्व तर्जनी का संकेत रहा है जिनकी परोक्ष प्रेरणा ने इस पुस्तक का सूत्रपात और जिनकी रचना-पद्धति ने इसका दिशा-निर्माण किया है। पाश्चात्य शास्त्रकारों के अनुकरण पर हमारे यहाँ भी आज-कल विभिन्न शास्त्रों को विज्ञान कहने के लोभ की परिपाटी चल पड़ी है और चाहे वह दर्शन हो या मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र हो या राजनीति शास्त्र, प्रत्येक शास्त्र विज्ञान है यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें कोई शक नहीं कि यद्यपि कहानी साहित्य है फिर भी उसका अपना एक शास्त्र है और प्रचलित मान्यताओं के आधार पर उसे भी विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु मूल प्रश्न यह है कि कहानी, जो एक कला है, दर्शन अथवा विज्ञान की अपेक्षा रखती भी है कि नहीं। कोई भी सच्चा कलाकार अपनी कला को विज्ञान या दर्शन की अनुवर्त्तिनी बनाना स्वीकार नहीं करेगा। कला स्वयं एक महती जीवनी शक्ति है, एक ऐसा साध्य जिसे इतरजातीय साधन गौरव नहीं दे सकते। फिर भी यदि कोई विषय, चाहे वह कला के आधार पर ही टिका हुआ क्यों न हो, अपनी विशद वरिष्ठता के फलस्वरूप अपने लिए किसी स्वतन्त्र दर्शन का निर्माण करले तो यह उसके लिये परोपजीविता नहीं है। प्रस्तुत प्रबन्ध की रचना करते समय मेरा यही दृष्टिकोण रहा है।

जैसा सब कहते हैं, कहानी एक कला है। मैं इस मत को सौ बार दुह-राऊँगा। किन्तु उस कला का स्वरूप क्या है ? कहानी पर मैं इतना सारा लिख गया हूँ, किन्तु मुझे यह मानना पड़ेगा कि मैं उसके स्वरूप को, उसकी कला के मर्म को इदमित्थं कर पाया हूँ, यह मृषावाक्य कहने का मुझमें साहस नहीं है। मैं स्वयं कहानियाँ लिखता हूँ, किन्तु मुझे स्वयं अपनी रचनाओं से सन्तोष नहीं है, औरों की तो क्या कहूँ। मेरी अच्छी कहानी अभी तक लिखी जाने को है। और वह कहानी ऐसी होगी जिसमें डूबने के बाद मैं तो मैं, कोई भी पाठक ऊपर नहीं आ सकेगा। उस कहानी की प्रतीक्षा में मेरी लेखनी आजीवन साधना करती जायगी और आखिरकार, जैसे मृत्युदण्ड देने वाला न्यायाधीश फैसला सुनाने के बाद अपनी कलम तोड़ देता है, वैसे ही मेरी लेखनी कहानी की आखिरी सतर लिखकर अपनी आखिरी साँस तोड़ देगी। कहानी फिर भी रहेगी, अमर रहेगी।

उसी अमर कहानी की दर्शन साधना में मैंने अपने आपको लगा दिया है। (कदाचित् यही कारण है कि इस पुस्तक की पहली और एकमात्र पाण्डुलिपि खो जाने पर भी डेन्मार्क के प्रसिद्ध उपन्यास 'गुलाम' के लेखक हैन्स कर्क की भाँति मुझ में इसे पुनः लिख डालने की प्रेरणा जीवन्त रही।) इस रचना को मेरी कहानी साधना का अनुपूरक ग्रन्थ ही मानना चाहिये।

किन्तु 'बहिःसाक्ष्य' के अंशों को छोड़कर इसमें जो कुछ है उसकी नींव में मेरे प्रभाव ही हैं। मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं कि इन प्रभावों का आधार सर्वथा वैयक्तिक है और इस सीमा तक इन्हें अन्तिम कहने की मैं धृष्टता नहीं करूँगा यद्यपि इसके मूल में मेरा यत्किंचित् अध्ययन अनुशीलन अवश्य है। यह केवल संयोग की बात होगी कि मेरे ये प्रभाव शेष आलोचकों के प्रभावों से मिलते हों।

जो हो, इसमें कहानी सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य विषयों पर मुक्त भाव से प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है और इस प्रबन्ध को अपना स्वरूप आप बनाने में स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है। इसी से कहीं-कहीं यह स्वाभाविक है कि पाठक इसको पढ़ते समय धीरज छोड़ बैठें। किन्तु विषय विवेचन की सम्पूर्णता के लिए ऐसा करना आवश्यक था। फिर भी हो सकता है कि कतिपय विषयों का सही-सही या पूरा-पूरा विवेचन न हो पाया हो या कुछ विषय सर्वथा छूट गये हों। जहाँ मैंने वैसा जान-बूझकर नहीं किया हो वहाँ उसका कारण मेरी अल्पज्ञता ही है, और कुछ नहीं। संस्कृत भाषा का मेरा ज्ञान बहुत थोड़ा किञ्च नगण्य है। अतः संस्कृत सम्बन्धी सामग्री के, जो मुख्यतः प्रथम और अन्तिम उच्छ्वासों में

और सामान्यतया पुस्तक के शेष अंशों में यत्र-तत्र बिखरी हुई है, विवेचन में त्रुटियाँ रह जाना काफी सम्भव है। फिर भी इसके प्रति मेरी विशेष रुचि होने के कारण मैं इसके विवेचन का लोभ संवरण नहीं कर पाया हूँ। कालक्षेपन के साथ-साथ इस सामग्री के कलेवर में भी क्रमशः विस्तार होता गया है। हाँ, ऐसा करते समय कहीं भी मैंने अन्धश्रद्धा से काम नहीं लिया है, और अपने दृष्टिकोण को सर्वथा निर्वैयक्तिक रखने की चेष्टा की है।

मेरी इच्छा थी कि संस्कृत भाषा में उपलब्ध आख्यायिकाओं आदि की विस्तृत समीक्षा उस भाषा के रीति-ग्रन्थों में प्राप्य लक्षण सामग्री के आधार पर की जाय, किन्तु अनेक कारणों से ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका है। यही बात पाश्चात्य कथा-साहित्य के विषय में कही जा सकती है। आशा है, कोई उत्साही सज्जन इसका स्वतन्त्र रूप से विवेचन करने का सत्प्रयत्न करेंगे। मेरी समझ में यह विषय अभी तक अछूता है और इसे किसी थीसिस का आधार बनाया जा सकता है। हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास के विषय में मैंने जान-बूझकर संकोच से काम लिया है क्योंकि इसका विशाल विवेचन अनेक लेखकों ने कर दिया है। वैसे भी, जैसा कि इसकी विषय-सूची के अवलोकन से प्रकट होगा, कहानी (चाहे वह किसी भी भाषा की हो) के इतिहास की चर्चा मैंने इसमें केवल आनुषंगिक रूप से की है क्योंकि मेरा उद्देश्य मुख्यतः कहानी के तन्त्र की व्याख्या करना रहा है।

जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण कहानी में निरन्तर विकास होता है। वेद, उपनिषद, पुराण, जातक, पञ्चतन्त्र, कादम्बरी, इलियड और बाइबिल से लेकर इर्विङ्ग, पो, चेखव, मोपासां, प्रेमचन्द, अज्ञेय, कृशनचन्दर, मण्टो और मार्कण्डेय तक की कहानी में एक विराट तात्त्विक और रूपगत अन्तर आया है जिसकी चर्चा इस पुस्तक के अन्तिम प्रकरण में की गई है। प्रश्न हो सकता है कि मैंने अपने इस ग्रन्थ के लिए किस कहानीकार की कहानी अथवा किस आलोचक के विधान को आधार माना है। मै मानता हूँ कि में इस प्रश्न का सीधा-सा और सही-सही उत्तर नहीं दे पाऊँगा, यद्यपि ऐसा उत्तर मेरे दृष्टिकोण को समझने में काफी सहायक होगा। किन्तु यदि बहुत अधिक आग्रह किया जाय तो मै यही कहूँगा कि मेरे मन में मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यान्तर का अमरीकी विधान ही, जो एडगर एलैन पो के नाम से सम्बद्ध है, कहानी की कसौटी रहा है। यह बात और है कि मैंने पो की परिभाषा को अवैज्ञानिक होने के कारण यथावत् स्वीकार नहीं किया है। सच तो यह है कि मैंने कहानी के उपकरणों को लेकर विषय में प्रचलित अनेक मतमतान्तरों की

परीक्षा करके और जहाँ ऐसे मत मतान्तरों का अभाव है (जो बहुत-सी बातों में है) वहाँ अपने स्वतन्त्र तर्कयुक्त मत देकर एक व्यवस्थित शास्त्रीय दृष्टिकोण बनाने का प्रयत्न किया है, जिसके हित में हर्षचरित से लेकर "द मैन विदाउट कन्ट्री" तक की कहानियो मे दिखाई पड़ने वाला अन्तर (जिसे इस प्रसङ्ग में 'विकास' कहना चाहिए) बाधक नहीं हो पाया है। यह पाठकों के देखने की बात है कि मै इसमें कहाँ तक सफल हो सका हूँ।

इसके अतिरिक्त कहानी में सङ्घर्ष तत्त्व की अनिवार्यता, कथोपकथन को तत्त्व मानने की कठिनाई कहानी का वैज्ञानिक वर्गीकरण आदि अनेकों प्रसङ्ग ऐसे हैं जिनकी ओर पाश्चात्य और पौर्वात्य समीक्षक का ध्यान नही गया है। इस प्रकार के कुछ मौलिक प्रसङ्गों का विवेचन भी इस पुस्तक में मिलेगा।

मै इस बात को भी नही भूला हूँ कि "कहानी कोई निरपेक्ष (absolute) साहित्य नही है जिसकी एक विशेष कसौटी पर प्रत्येक युग, देश अथवा जाति की कहानी को आँका जा सके। इसके विपरीत जिस देशकाल में अमुक कहानी की रचना हुई है, उस देशकाल को निर्माण करने वाले परमाणुओ को ध्यान में रख कर ही (अन्य किन्ही उपकरणो को नही) उस कहानी की जाँच की जा सकती है, या की जानी चाहिए। किन्तु यह प्रपत्ति केवल अमुक-अमुक वर्ग या देशकाल की अथवा, अमुक-अमुक कहानियों की चर्चा करते समय ही लागू होती है। जहाँ हम 'कहानी' मात्र के सामान्य रूप की चर्चा करते है वहा हमारी वह कहानी आधुनिक कहानी ही है जिसका जन्म अमरीका में १६ वी सदी में वाशिङ्गटन इरविङ्ग के स्कैचों से हुआ।"

पुस्तक केवल विद्यार्थियो के हित साधन को ही ध्यान में रखकर नहीं लिखी गई है, क्योकि ऐसा करने में मुझे कुछ ऐसे बन्धनों में रहना पड़ता जो मुझे प्रिय नही हैं। किन्तु विद्यार्थी इससे निस्सन्देह लाभ उठा सकते हैं।

मैंने मूल पुस्तक को सन् १६४७ में लिखना प्रारम्भ किया और तब से अब तक करीब आठ-दस साल की अवधि में एकाध को छोड़कर मुझे कोई ऐसी पुस्तक देखने में नही आई जिसमे कहानी के तंत्र पर डटकर विचार किया गया हो। जो तीन चार अच्छी पुस्तके निकली हैं, उनके लेखको का ध्यान कहानी के क्रमिक विकास की ओर विशेषतः केन्द्रित रहा है, उसके शिल्प की विवेचना पर उतना नही। अतः मैं अब भी अपने श्रम को पुनरुक्ति दोष के कारण अथवा अन्यथा निरर्थक नहीं मानता, और यदि पुनरुक्ति हुई हो तो भी अफसोस करने की आवश्यकता नही, क्योकि कहानी एक विकास शील कला है और समय समय पर इसके शिल्प-दर्शन को अधुनातन रखने की बड़ी

आवश्यकता है। इसके साथ यदि सहृदय इसे 'पुनरुक्ति' न मानकर 'पुनरुक्ति-वदाभास' मान लें तब तो उनकी कृपा है हो। सस्कृति के आख्यायिका ग्रन्थो के अनुकरण पर मैन इस प्रबन्ध के परिच्छेदो को 'उच्छवासो' की सज्ञा दी है यद्यपि यह कोई आख्यायिका (लक्ष्य) ग्रन्थ नही है। पाठक चाहे तो इसे मेरा अनुचित मोह कह सकते है।

राजकीय कार्यो में व्यस्त रहने तथा अन्य अनेक कारणो से इस पुस्तक के लिखने का क्रम प्रायः बहुत टूटा हुआ रहा है। मेरी सजगता के बावजूद भी इस कारण इसमे दीख पड़ने वाली असगतियो अथवा पुनरावृत्तियो के लिए मे पाठको का क्षमा प्रार्थी हूँ।

जिन विद्वान् लेखको की रचनाओ से मैन सहायता ली है अथवा जिन की रचनाओ ने मुझे लक्ष्य अथवा अलक्ष्य रूप मे प्रभावित किया है, उनके प्रति मैं अपना अतर्कित आभार प्रकट करता हूँ तथा ऐसी सहायता अथवा प्रभाव से उत्पन्न होने वाले प्रमाद का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता हूँ। ऐसी तथा अन्य अध्ययन सामग्री की सूची परिशिष्ट ४ मे दी जा रही है। जिन रचनाओ का इस प्रबन्ध मे प्रकट अथवा परोक्ष रूप से चर्चा की गई है, परि-शिष्ट में उनके आगे तारक-चिह्न * लगा दिया गया है।

सी० ६ गाधीनगर, जयपुर]

भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर'

प्रथम उच्छ्वास

कहानी क्या है ?

भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः
अद्भुतान्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ।—अग्निपुराण ।

"The short story exists for the sake of an illuminated and illuminating moment of beauty or of terror, of wonder or of sheer surprise," —Bullet.

कहानी वह स्वतःपूर्ण रचना है जिसमें जीवन के किसी एक तत्व, मर्म अथवा लक्ष्य की एक ही घटनात्मक स्थिति में अभिव्यक्ति हो ।

प्रथम उच्छ्वास

कहानी क्या है ?

आनन्द तत्त्व और कहानी—

"आनन्दात् हि खलु इमानि भूतानि जायन्ते;
आनन्देन जातानि जीवन्ति;
आनन्दमेवाभिविशन्ति ।"

उपनिषद् के ऋषि ने जब यह कहा था तब उसने सृष्टि के सचराचर व्यापार को अनायास ही एक सूत्र में उडेल दिया था । कहानी उसी व्यापार का एक अङ्ग है । जिस आनन्द के योगक्षेम, अर्थात् उसकी उपलब्धि, रक्षा और संवृद्धि के लिए प्रत्येक प्राणी सतत रूप से क्रियाशील रहता है उसी की सिद्धि के लिए कहानी कही और सुनी जाती है ।

यह कहानी हमारी इतनी चिरपरिचिता और निकटवर्तिनी है कि उसका परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है । इसका जन्म उस काल में हुआ था जब मनुष्य ने तुतलाकर बोलना प्रारम्भ किया था । साहित्य की श्रीवृद्धि इसने भले ही कभी बाद में चलकर की हो, सदा से ही यह वाणी का शृङ्गार और मनुष्यमात्र की सहचरी रही है ।

साहित्य में आकर इसने अनेक रूप बदले हैं और संस्कृत काल की भारी भरकम आख्यायिका से लेकर अधुनातन काल में खलील जिब्रान की तीन-चार पंक्तियों में समाहित होने का अनुभव इसे है । स्वाभाविक है कि रूप परिवर्तन की इस लम्बी अवधि में इसके रूपालेखन मे भी देशकाल-भेद से अन्तर आता रहा है । इस प्रकरण में इसी परिचय की एक रूपरेखा देने की चेष्टा की जायगी।

संस्कृत समालोचना साहित्य के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में कहानी का स्वरूप— जब हम विश्व साहित्य की विशाल रंगस्थली की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें अनायास ही संस्कृत भाषा का जीवन्त साहित्य मूर्धाभिषिक्त हुआ दीख पड़ता है । यही वह साहित्य है जिसमें विश्व का प्राचीनतम ज्ञान भूरि-भूरि बिखरा पड़ा है । काव्य निश्चय ही इस नियम का अपवाद नहीं है और यह बात केवल संयोगमात्र नहीं कि काव्य के अन्तर्गत उसके सारे अन्य अङ्गों की भाँति कहानी के सम्बन्ध में भी प्राचीनतम आलोचना सामग्री संस्कृत के अलङ्कार ग्रन्थों में प्राप्य है।

संस्कृत भाषा के जिन मौलिक ग्रन्थों में साहित्य की आलोचना विषयक सामग्री मिलती है उनमें से अग्निपुराण अलङ्कारसर्वस्व व साहित्यमीमांसा (रुय्यक) काव्यप्रकाश (मम्मट), काव्यमीमांसा (राजशेखर). काव्यादर्श (दण्डी), काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) काव्यानुशासन व वाग्भटालङ्कार (वाग्भट), काव्यालङ्कार (भामह), काव्यालङ्कार (रुद्रट), काव्यालङ्कार सूत्र (वामन), कुवलयानन्द तथा चित्रमीमांसा (अप्पय दीक्षित), चन्द्रालोक (जयदेव), दशरूप (धनञ्जय), ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन), नाट्यशास्त्र (भरत), प्रताप-रुद्र यशोभूषण (विद्यानाथ), भट्टिकाव्य (भट्टी), रसगंगाधर (जगन्नाथ), रसतरंगिणी व रसमञ्जरी (भानुदत्त) विष्णुधर्मोत्तरपुराण, व्यक्तिविवेक, (महिमभट्ट) शृङ्गारतिलक (रुद्रभट) और साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) मुख्य हैं। इनमें से अधिकांश ग्रन्थों की टीकाएँ हो चुकी हैं जैसे अभिनव गुप्त कृत अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र पर) तथा ध्वन्यालोकलोचन (ध्वन्यालोक पर), आदि जिनमें से कुछ टीकाओं का आदर उनमें विवेचित सामग्री की श्रेष्ठता के आधार पर मौलिक ग्रन्थों के समान ही होता है। इनमें से कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमे केवल एक विषय की (उदाहरणार्थ अलङ्कार) सामग्री उपलब्ध है और कुछ ऐसे है जिनमें साहित्य के अन्तर्गत आने वाले अनेक विषयो का निरूपण किया गया है। कहानी विषयक सामग्री दूसरे प्रकार के ग्रन्थों में पाई जाती है।

जिन ग्रन्थों में कहानी विषयक सामग्री मिलती है वे ये है—

१—अग्निपुराण (रचनाकाल अनिश्चित)
२—काव्यादर्श (७वीं सदी)
३—काव्यालङ्कार (भामह) (८वी सदी)
४—काव्यालङ्कार (रुद्रट) (९वी सदी)
५—ध्वन्यालोकलोचन (११वीं सदी)
६—काव्यप्रकाश (११वी सदी)
७—काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) (१२वी सदी)
८—साहित्यमीमांसा (१२वी सदी)
९—काव्यानुशासन (वाग्भट द्वितीय) (१४वी सदी)
१०—साहित्यदर्पण (१४वी सदी)

इनमें से कुछ के टीकाकारों ने कही-कहीं लेखक के मत का विस्तार करते हुए अपनी टीकाएँ प्रस्तुत की हैं और कहीं-कहीं उन्होने मूल लेखक से स्वतन्त्र मत दिए हैं जो प्रायः अन्य आलोचकों के मतों का अनुसरण करते हैं। इन टीकाकारों में से संस्कृत साहित्य में व्याप्त तत्कालीन मतों और लक्षणो को

मौलिक रूप में समझने के लिए उन्ही टीकाकारो को लेना चाहिए जो १७वी सदी के पहले के हैं। यह सीमा रेखा उस समय की है जब कि सस्कृत लक्षण-शास्त्र का आखिरी प्रौढतम ग्रन्थ रसगङ्गाधर लिखा गया।

कहानी परिवार—इस प्रसङ्ग में कालक्रम से उक्त दस मौलिक ग्रन्थो एव उनकी अपेक्षाकृत प्राचीन टीकाओ में प्राप्त कहानी या आख्यायिका विषयक सामग्री की आलोचनात्मक दृष्टि से जॉच की जायगी। लेकिन इससे पूर्व विवेच्य विषय के क्षेत्र को समझ लेना चाहिए। जिस साहित्यिक विधा को हम आज कहानी कहते है वह ठीक इसी रूप में संस्कृत काल में थी या नही, यह विवादास्पद है और इस पर बाद मे चर्चा की जायगी, किन्तु यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रकार के कई प्रयोग सस्कृत में दृष्टिगोचर होते हैं जिन्हे या तो कहानी ही कह सकते हैं या कहानी के आसपास की या समशील कोई चीज, जैसे उपन्यास आदि। इन प्रयोगो के लिए सस्कृत मे अनेक नाम हैं जिनमें से (१) आख्यायिका और (२) कथा मुख्य हैं। इसी परिवार की अन्य विधाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) कथानिका (२) खण्ड कथा (३) परिकथा (४) सकलकथा (५) आख्यान अथवा आख्यानक (६) उपाख्यान (७) चित्रकथा और (८) उपकथा। इनमे से दो भेद (आख्यायिका और कथा) ऐसे हैं जिनका उल्लेख सब लक्षणशास्त्रियो ने किया है, और शेष ८ विधाओ का उल्लेख केवल चार प्रमुख आलोचको, अर्थात् अग्निपुराणकार, दण्डी, अभिनवगुप्त और हेमचन्द्र ने मिल कर किया है। हेमचन्द्र ने २, ३, ४, ५, ६ और ८ के अतिरिक्त कथा के भेदो में मणिकुल्या, मतल्लिका, प्रवह्लिका और निदर्शन, इन्हे भी गिनाया है। इन चौदह रूपो के अतिरिक्त और कोई भेद ऐसा नही है जिसका हमारी 'कहानी' से तिर्यगृजु सम्बन्ध हो। यहाँ इन्ही १४ भेदो पर भिन्न-भिन्न ग्रन्थो के अनुसार विचार किया जायगा। और इस बात को जानने का प्रयास किया जायगा कि हमारी आधुनिक कहानी के समीपतम सस्कृत में कौनसी वस्तु विद्यमान है और उसका क्या स्वरूप है तथा शेष रूपो के साथ उसका क्या सम्बन्ध है।

अग्निपुराण का रचनाकाल—सस्कृत में अभी तक यह प्रश्न विवाद का विषय बना हुआ है कि लक्षणशास्त्र के समस्त ग्रन्थो मे कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान किसे देना चाहिए। यहाँ इस प्रसङ्ग की चर्चा इसलिए आवश्यक है कि अपेक्षाकृत अनुनातन अनेक लेखक अग्निपुराण को समालोचना विषयक सामग्री से युक्त सर्वप्रथम ग्रन्थ मानते हैं। इस विषय में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का दावा भी उपस्थित किया जाता है। प्रो० कोण इस सम्बन्ध में

दिए गए तर्कों पर गम्भीरतया विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अग्निपुराण निश्चय ही सस्कृत के लक्षणग्रन्थो में मूर्धन्य नही है वरन् यह ७वी या ८वी सदी की या उसके भी बाद की रचना है। उनके दिए हुए तर्क सक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) अग्निपुराण मे अमरकोश के अनेक उद्धरण हैं जो चौथी सदी से पहले की रचना नही है।

(२) अग्निपुराण में 'भारती' रीति के तथाकथित प्रणेता के रूप में भरत का नाम आया है तथा अनेक पद भरत के नाट्यशास्त्र के हैं।

(३) इसके और दण्डी कृत काव्यादर्श (७वी सदी) के अनेक लक्षण तथा पदाश मिलते है और एकाध स्थलो को छोड़ कर दण्डी ने कही से उद्धरण लिए हों यह प्रमाणित नही हो सका है।

(४) अग्निपुराण के अनेक लक्षण भामह के लक्षणो से मिलते हैं जिसने अपने ही लक्षण और उदाहरण बनाये हैं। भामह ७वी सदी से पहले का लेखक नही है।

(५) इसमें ध्वनिसिद्धान्त का सकेत उस स्थल पर मिलता है जहाँ यह कहा गया है कि 'ध्वनि' का समावेश किसी न किसी अलङ्कार के अन्तर्गत हो जाता है। ध्वन्यालोक ९वी सदी के उत्तरार्द्ध की रचना है। इसके अतिरिक्त दो पद जो निश्चित रूप से ध्वनिकार के हैं अग्निपुराण में करीब-करीब वैसे ही मिलते हैं।

(६) इसमें भोज के शृङ्गार-प्रकाश (११वी सदी) में वर्णित 'आनन्दाहकाराभिमान रस' सिद्धान्त का सूक्ष्म रूप से विरोध उपस्थित किया गया जान पड़ता है।

(७) अग्निपुराण का उल्लेख भरत, भामह, दण्डी और आनन्दवर्धन तक किसी भी लेखक ने नही किया है, जबकि इनमें से सबने अपने पूर्ववर्ती प्रायः समस्त प्रसिद्ध ग्रन्थकारो की चर्चा की है।

इन तर्कों के अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि जिस सश्लिष्ट, व्यवस्थित व विवादमुक्त अर्थात् स्वयसिद्ध रूप में अग्निपुराण में साहित्य विषयक सामग्री दी गई है वह मौलिक नही प्रतीत होती, बल्कि काफी मन्थन के पश्चात् निकाले गए मतों के संग्रह जैसी लगती है। कम से कम यह तो ईमानदारी से स्वीकार कर लेना चाहिए कि इसके साहित्य-विषयक प्रकरण का बहुत सा अंश प्रक्षिप्त है, अर्थात् समय-समय पर जोड़ा हुआ अथवा बहुत बाद का है। यही हाल अग्निपुराण में प्राप्त आख्यायिका विषयक सामग्री का है। इस प्रकार

अग्निपुराण की साहित्य सम्बन्धी सामग्री किसी भी अवस्था में आदि सामग्री के रूप में स्वीकार नही की जा सकती । अतः इसकी व्याख्या बाद मे की जायगी।

काव्यादर्श—पृष्ठ २ पर दो गई सूची में अग्निपुराणकार के पश्चात् सब से पहला नाम महाकवि दण्डी का आता है । इससे यह नही समझना चाहिए कि सस्कृत साहित्य मे इस विषय की चर्चा सबसे पहले दण्डी ने की । सस्कृत के लक्ष्यग्रन्थो में इसकी चर्चा बहुत पहले से होती चली आई है जब कि आख्यायिका और कथा के रूप में विशिष्ट साहित्यिक रचनाओ का प्रणयन हुआ, जिनमें से कुछ बहुत प्रसिद्ध हैं । बाण और सुबन्धु ने (जो इस कोटि के श्रेष्ठतम रचनाकारो में है) इन दोनो विधाओ का स्पष्ट उल्लेख किया है । महाभारत के सभापर्व में भी कथा और आख्यायिका का नाम आया है । प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ महाभाष्य में भी इन दोनो का नाम है और पतञ्जलि ने इनके अन्य रूपो की ओर भी सकेत किया है । इससे पूर्व पाणिनि के सूत्रो मे इसी बात की घोषणा मिलती है ।

अमरकोष—इनके अतिरिक्त अमरकोष नामक ससार प्रसिद्ध ग्रन्थ में भी आख्यायिका और कथा का नाम आया है । इसका रचनाकाल ईसा की चौथी शताब्दी माना जा सकता है । इसमें 'आख्यायिकोपलब्धार्था' (१।६।५) और 'प्रबन्धकल्पना कथा' (१।६।६) ये दो पदाश मिलते है जिनमें से आख्यायिका की परिभाषा अमरकोश की एक टीका में इस प्रकार की गई है "अनुभूत विषय को प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ को आख्यायिका कहते है, जैसे 'कादम्बरी, वासवदत्ता' और कथा की व्याख्या इस प्रकार है—"वाक्यविस्तार की कल्पना वाले ग्रन्थ का नाम कथा है, जैसे रामायण, कथासरित्सागर, बृहत्कथामञ्जरी। अमरकोश की इसी टीका मे जिसमें उक्त व्याख्या मिलती है, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि को 'समाहृति' या 'सग्रह-ग्रन्थ' नामक एक विशिष्ट शास्त्रीय भेद (concept) के अन्तर्गत रक्खा गया है ।

काव्यादर्श—इससे सिद्ध होता है कि इन रूपो का अभिज्ञान संस्कृत काल में बहुत पहले से था । दण्डी कदाचित् पहले काव्यशास्त्री थे जिन्होने इसका उपयोग अपने लक्षण ग्रन्थ काव्यादर्श में किया ।

इनके समय के बारे में तीव्र मतभेद है । किन्तु अधिकाश आलोचक अब इनका रचनाकाल सातवी सदी के उत्तरार्द्ध का मानने को तैयार हो गए हैं । इनका काव्यादर्श निश्चय ही काव्य के लक्षणो के क्षेत्र में अनेक दृष्टियो से आदर्श उपस्थित करता है । इनकी जैसी प्रतिभा, निर्भीकता तथा पंक्ति में से अलग खड़े होने की हिम्मत अन्यत्र दुर्लभ है । साहित्य मतमतान्तरो की परीक्षा

का जहाँ प्रश्न आता है वहाँ दण्डी का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने संस्कृत साहित्य में भावी पीढ़ी के लिए एक प्रकार की स्थायी व्यवस्था लाने की चेष्टा की और उसमें इतर आलोचकों तथा काव्य प्रणेताओं द्वारा भरतो किए कूड़े करकट को निकाल फेंकने का बीड़ा उठाया।

काव्यादर्श गद्य को प्रारम्भ ही में 'अपादः पदसन्तानो' अर्थात् पादहीन या चरणहीन होते हुए भी पदों या शब्दों का समूह माना गया है और इसे केवल दो ही भागों में विभक्त किया गया है : आख्यायिका और कथा। दण्डी कहते हैं—

"अपादः पदसन्तानो गद्यं आख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल॥
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषौ नात्र भूतार्थशंसिनः॥
अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति की दृग्वा भेदलक्षणम्॥
वक्त्रापरवक्त्रं च सोच्छ्‌वासं च भेदकम्।
चिन्हमाख्यायिका कश्चित् प्रसंगेन कथास्वपि॥
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टौ लम्भादिरुच्छ्‌वासो वास्तु किं ततः॥
तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा द्वयांकिता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥
कन्याहरण संग्राम विप्रलम्भोदयादयः।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः॥
कवेर्भावकृतं चिन्हमन्यत्रापि न दुष्यति।
मुखमिष्टार्थ संसिद्धयै किं हि न स्यात्कृतात्मनाम्॥ (२३–१०)

भामह और दण्डी—इस उद्धरण की भाषा को भामह के दिए हुए लक्षणों की भाषा के साथ मिलाने पर दोनों में एक बड़ा साम्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु दण्डी का मत भामह के मत से अधिकांश में प्रतिकूल है। यह व्यापक रूप में कहा गया है कि दण्डी ने भामह के मतों की आलोचना की है। ठीक इसके विपरीत कुछ प्रतिष्ठित समालोचकों की मान्यता है कि भामह दण्डी के उत्तरवर्त्ती है, इस कारण उक्त मत युक्ति सङ्गत जान पड़ता है। मेरी अपनी ऐसी मान्यता है कि दण्डी के दिए हुए लक्षणों से एक प्रकार की आलोचना की ध्वनि स्पष्ट निकलती है और यह संकेत मिलता है वे किसी लक्षणशास्त्री के दिए हुए

लक्षणों का सबलता पूर्वक खण्डन कर रहे हैं, चाहे वह अग्निपुराण हो, चाहे भामह। यहाँ इस बात की विस्तृत जाँच करने का अवकाश नहीं है, अतः केवल दण्डी की परिभाषाओं की व्याख्या कर लेना पर्याप्त होगा।

काव्यादर्श की कहानी—दण्डी के अनुसार आख्यायिका केवल नायक द्वारा कही गई होनी चाहिए। इसके बचाव में दण्डी कहते हैं कि यदि नायक अपने गुणों का उल्लेख भी करे तो वह दोष नहीं है। उसमें भूतकाल की घटनाओं का वर्णन होता है, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द होते हैं और उसका विभाजन 'उच्छ्वासों' अर्थात् परिच्छेदों में होता है।

इसके विपरीत कथा का वाचक नायक या अन्य कोई व्यक्ति हो सकता है। यहाँ दण्डी कहते हैं कि आख्यायिका में यद्यपि नायक के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा कहे जाने पर दोष होता है, किन्तु वाचक नायक है अथवा अन्य कोई प्राणी, इससे दोनों (कथा और आख्यायिका) के रूप में कोई अन्तर नहीं आता। (यहाँ यह जान लेना चाहिए कि प्राचीन आचार्यों के अनुसार वक्ता-भेद एक महत्वपूर्ण भेद माना जाता था।)। वक्त्र और अपरवक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों का तथा उच्छ्वासों का प्रयोग प्रसङ्गानुकूल कथा में भी हो सकता है। जहां आर्या छन्द का प्रयोग होता है वहाँ वक्त्र और अपवक्त्र छन्द न हों इसमें कौनसी संगति है? इसी प्रकार कथा के विभागों की आख्यायिका के विभागों की भाँति उच्छवास न कह कर लम्भ या लम्भक कहने में भला क्या मजा है? इस प्रकार कथा और आख्यायिका दोनों एक ही जाति की दो संज्ञाएँ (नाम) हैं और शेष आख्यान इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं। यहाँ दण्डी ने प्रचलित परम्परा का एक महत्वपूर्ण दिशा में अपसरण किया है।

दण्डी आगे कहते हैं कि कन्याहरण, (उस पर होने वाला) संग्राम, विप्रलम्भ नायक का ऐश्वर्य आदि, ये विषय सर्गबन्ध अर्थात् महाकाव्य जैसे प्रबन्धों के लिए ही अनिवार्य माने जा सकते हैं, कथा और आख्यायिका का भेद बताते हुए इन्हें उल्लिखित नहीं करना चाहिए। (इन विषयों का उल्लेख प्रायः ठीक इसी रूप में अग्निपुराण और भामह के काव्यालङ्कार में हुआ है।

अन्त में दण्डी कहते हैं कि कथा में कवि का अभिप्राय (जो कुछ निश्चित संकेतों, जैसे माघ के काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री' और भारवि के किरातार्जुनीय के सर्गान्त में सर्वत्र 'लक्ष्मी' शब्द के प्रयोग से प्रकट होता है) सूचित हो और आख्यायिका में ऐसा होना आवश्यक नहीं है, यह भी दोनों के भेद का कोई आधार नहीं होना चाहिए। कवि का अभिप्राय दोनों में ही समान रूप से व्यक्त हो सकता है। इसके पक्ष में दण्डी कहते हैं कि विद्वान लोगों के

लिए अपने काव्य मे इष्टसिद्धि के लिए किसी प्रकार के बन्धन नहीं रक्खे जा सकते ।

दण्डी की उक्त निर्भीक आलोचना में तीन बातें आवश्यकता से अधिक स्पष्ट हैं । एक तो यह कि आख्यायिका और कथा में केवल इस बात को छोड़ कर कि आख्यायिका का वाचक केवल नायक होना चाहिए और कथा का वाचक अन्य कोई भी व्यक्ति (पात्र ?) अन्य किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं किया जा सकता । दूसरी यह कि दोनों ही विधाओं पर एक (वाचन सम्बन्धी) बन्धक को छोड़ कर और किसी प्रकार का बन्धन नही होना चाहिए । तीसरी यह कि कथा और आख्यायिका के अतिरिक्त गद्य के और भेद नही किये जा सकते । ये तीनो ही बातें ऐतिहासिक एवं तात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

काव्यादर्श की टीका करते हुए नृसिंहदेव (११वी सदी) ने कहा है दण्डी की व्याख्या अपने पूर्ववर्ती लाक्षणिकों, विशेषतः भामह के मतों की आलोचना है; दूसरे, दण्डी ने जिन 'शेष आख्यानों' का उल्लेख किया है वे अग्नि-पुराण में उल्लिखित खण्डकथा, परिकथा और कथालिका (कथानिका ?) हैं; और तीसरे, आख्यायिका के उदाहरण के रूप में कादम्बरी गद्य में महाश्वेता के प्रसङ्ग में नायक चन्द्रापीड के आत्मवृत्त को समझना चाहिए ।

दशकुमार चरितम्—जिन 'शेष आख्यानो' का ध्यान दण्डी को अपना काव्यादर्श लिखते समय था, कदाचित् उन्ही का नामोल्लेख स्वयं दण्डी ने अपने 'दशकुमारचरितम्' की पूर्वपीठिका के प्रथमोच्छ्वास में किया है । यह बात सन्देहास्पद है कि दशकुमार चरित के प्रणेता दण्डी और काव्यादर्श के प्रणेता दण्डो एक ही हैं । किन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि दोनों एक ही हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि दशकुमारचरितम् को रचना काव्यादर्श जैसी प्रौढ़ रचना से बहुत पूर्व की है । अतः एक तो उसे वैसे ही काव्यादर्श की तुलना में प्रामाणिक नही माना जा सकता, और दूसरे, दशकुमारचरित कोई लक्षणग्रन्थ नहीं है इस दृष्टि से भी इसमें आए हुए आख्यानों की संज्ञाएँ पूर्ण अथवा प्रामाणिक नही कही जा सकती । फिर भी दण्डी की चर्चा करते समय इनका नामोल्लेख आवश्यक जान पड़ता है । अपने प्रस्तुत आख्यान के नायक की प्रशंसा करते हुए दण्डी ने कहा है कि वह किस प्रकार सब भाषाओं, वेदवेदांगों और पुराण-आख्यानों में निष्णात हुआ—

'काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकेतिहासचित्रकथा सहित पुराणगण नैपुण्यं····'

आख्यायिका के अतिरिक्त उक्त उद्धरण में तीन पारिभाषिक शब्द और मिलते है—(१) आख्यानक, (२) इतिहास और (३) चित्रकथा । इन चारों

विधाओं की व्याख्या करते हुये श्री छविनाथ त्रिपाठी लिखते हैं—

"दण्डी के उक्त कथन के आधार पर कथा साहित्य की चार परम्पराओं का स्पष्ट परिचय मिल जाता है—

(१) आख्यानक सम्भवतः बड़ी कथाओं को कहते थे। उपन्यासों के बीज उनमें उपलब्ध हो जायँगे।

(२) आख्यायिका वे छोटी कहानियाँ हैं जो केवल मनोरञ्जन के लिए लिखी गई थी।

(३) ऐतिहासिक कथाओं का आधार इतिहास प्रसिद्ध घटनाएँ थीं। और

(४) चित्रकथा में साहसिक कहानियों की गणना की जाती रही है।"

श्री त्रिपाठीजी आगे लिखते हैं—"कुछ विद्वान कहानी और उपन्यास को एक ही मूल की दो शाखाएँ समझते हैं पर इन दोनों शाखाओं की दिशा संस्कृत काल में ही भिन्न हो गई थी।"

त्रिपाठीजी के इन मतों पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है क्योंकि ये कतिपय महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत करते है।

(१) और (२) : दण्डी ने जिस 'आख्यानक का नाम लिया है उसका स्पष्ट उल्लेख काव्यादर्श या अन्य किसी लक्षणग्रन्थ में नहीं है। राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में अवश्य 'आख्यानकम्' शब्द आया है, किन्तु वह कोई और चीज प्रतीत होती है। इसी प्रकार स्वयं काव्यादर्श में 'आख्यान' शब्द आया है जिससे प्रतीत होता है कि यह अनेक कम महत्त्वपूर्ण काव्यविधाओं का एक सम्मिलित नाम रहा होगा। आश्चर्य नहीं यदि दण्डी के मन में पूर्ववर्ती आलोचकों अथवा काव्यप्रणेताओं द्वारा निर्माण किए गए आख्यायिका के विभिन्न भेद रहे हों और उसने इन्हें ही आख्यान की जातियाँ कह दिया हो, जिन्हे उसने स्पष्ट शब्दों में इन्ही दो भेदो के अन्तर्गत घोषित किया है। इस प्रकार इस शब्द का, विशेषतः इस कारण कि काव्यादर्श की रचना दशकुमारचरित के बाद हुई है, कोई महत्त्व नहीं रह जाता। जो हो, इसे आख्यायिका या कथा की अपेक्षा अधिक महत्त्व कदापि नही दिया जा सकता जैसा कि आगे के विवेचन से और अधिक स्पष्ट हो जायगा। जहाँ तक आख्यायिका का प्रश्न है, यह निश्चय ही एक बड़ी रचना थी जिसे उच्छ्वासों में बांटा जा सके, और इसे केवल मनोरञ्जन के लिए लिखी गई बताना इसके नैतिक महत्त्व को ओझल करना है जो आख्यायिकाओं का प्राणतत्त्व रहा है।

(३) दण्डी द्वारा लिखित 'इतिहास' शब्द की व्याख्या में त्रिपाठीजी

ने 'ऐतिहासिक कथा' का प्रयोग किया है और उसे बहुवचन मे प्रयोग किया है। यदि इसे इतिहास के परम्परागत अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।

(४) 'चित्रकथा' शब्द भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। एक टीकाकार का मत है कि महाभारत आदि पुराणों में जो अनेक कथायें एवं उपकथायें दी हुई है उन्हें चित्रकथा मानना चाहिये। इस मान्यता का कोई आधार नही प्रतीत होता। इसी प्रकार चित्रकथा को साहसिक कहानियां मानना भी मनगढन्त है। ऐसा लगता है कि त्रिपाठीजी का ध्यान स्वयं दशकुमारचरित जैसी संस्कृत साहित्य की उत्तरवर्ती रचनाओं की ओर रहा है जिसमें यात्रा-वर्णन, जादू टोना व साहसिक वृतान्तों का उल्लेख रहा हो। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी रचनायें, जिनमें कथासरित्सागर, वृहत्कथामञ्जरी, हितोपदेश शुकसप्तति आदि उल्लेखनीय हैं, दण्डी के बाद की रचनायें है और दण्डी ने तो कदाचित इन साहसिक कहानियों का सूत्रपात किया था। हाँ यदि इन्हें विचित्र वर्णनों वाली कथा कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। ध्वन्यालोकलोचन के प्रणेता अभिनवगुप्त ने जिस 'परिकथा' नामक काव्यविधा की चर्चा की है वह इसी चित्र-कथा का पर्याय प्रतीत होती है।

काव्यालङ्कार (भामह)—भामह ने आख्यायिका की व्याख्या में निम्न-लिखित लक्षण गिनाए हैं—

(१) 'सोच्छ्वासाख्यायिका मता' अर्थात् वह उच्छ्वासयुक्त होनीचाहिए।

(२) 'वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्' अर्थात् इसका वृत्त नायक स्वयं अपने मुख से कहे।

(३) 'वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च' अर्थात् इसमें वक्त्र और अपरवक्त्र (छन्द) होते हैं और भविष्य की घटनाओं की सूचना होती है।

(४) 'कवेरभिप्रायकृतेः कथा(थ ?)नैः कैश्चिदंकिता।' अर्थात् कहीं-कहीं इसमें कवि का अभिप्राय अंकित होता है।

(५) 'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता।' यह इसकी विषयसूची है।

भामह आगे लिखते हैं—"संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक् तथा' इसका अर्थ शायद यह है कि आख्यायिका संस्कृत में होनी चाहिए जब कि कथा अपभ्रंश में।

ऊपर दण्डी की व्याख्या से प्रकट होगा कि इन लक्षणों में से (१), (२) और (३) के विषय में दण्डी और भामह सहमत है (केवल एक स्थल को छोड़ कर जहाँ भामह ने 'भाव्यर्थशंसि' लिखा है और दण्डी ने 'भूतार्थशंसिनः' लिखा

है) चौथे और पांचवें लक्षण की दण्डी ने स्पष्ट शब्दों में आलोचना की है और उन्हें आख्यायिका के अनिवार्य लक्षण मानने से इन्कार कर दिया है। भाषा के बन्धन भी दण्डी को कदाचित् अप्रिय हैं।

भामह ने कथा के लक्षणों को गिनाते समय आख्यायिका के प्रायः सभी बन्धनों को अस्वीकार कर दिया है। वे कहते हैं—

(१) 'न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्तां' अर्थात् इसमें वक्त्र और अपरवक्त्र नही हों।

(२) 'नोच्छ्वासवत्यपि' उच्छ्वास भी नही हों।

(३) 'अन्यैः स्वरचितं तस्या नायकेन तु नोच्यते।' उसमें नायक अपना वृत्त कथन नही करता बल्कि अन्य (व्यक्तियों) द्वारा (वृत्तकथन) होता है।

इनमे से (१) और (२) के लक्षणों का दण्डी में विरोध है और (३) के विषय में दण्डी सहमत नही होते हुए भी कथा पर यह बन्धक लगाना उचित नही समझते कि उसका वाचक किसी भी हालत में नायक नही होना चाहिए।

भामह और दण्डी के कालक्रम सम्बन्धी ऐतिहासिक विवाद की चर्चा करते हुए प्रो० काणे (जिन्होंने आगे चलकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि भामह दण्डी के उत्तरवर्ती हैं) दण्डी के लक्षणों के अर्थ को ठीक-ठीक नहीं समझ कर यह बताया है कि कथा के सम्बन्ध में उसका वाचक कौन हो इस विषय में भामह और दण्डी में कोई मतभेद नहीं है। ऊपर की व्याख्या से सिद्ध होगा कि इस प्रकार का मत बनाना युक्तिसंगत नही होगा। दण्डी ने भामह के इस लक्षण को भी उतनी हो आलोचना की है जितनी अन्य लक्षणों की।

अग्निपुराण की आख्यायिका—अग्निपुराण में, संस्कृत के अन्य अनेक ग्रन्थों के समान, काव्य को तीन भेदो में बाँटा गया है। गद्य, पद्य, व मिश्र। इनमे से गद्य के तीन रूप है :—चूर्णक, उत्कलिका, और वृत्तगन्धि। ये भेद गद्य मे प्रयोग होने वाले समासो, पदावलो और शैली को लेकर किए गए है। इनके ठोक बाद अग्निपुराण में 'गद्य काव्य' का उल्लेख हैं और उसके पांच भेद नियत किए गए हे :—(१) आख्यायिका (२) कथा (३) खण्डकथा (४) परिकथा और (५) कथानिका। यदि अग्निपुराण पर अन्य ग्रन्थो का (विशेषकर उनका जो आज परवर्ती कहे जाते है) ऋण नही स्वीकार करे (जो एक प्रकार से दुस्साहस का कार्य है) तो यह मानना पड़ेगा कि यहाँ पहलो बार आख्यायिका-वग की सभो सम्पूर्ण या अधिक से अधिक विधाओ का परिचय दिया हुआ मिलता है।

अग्निपुराण की व्याख्या से यह स्पष्ट है कि यहाँ 'गद्य' शब्द का प्रयोग

शैली के सम्बन्ध में, और 'गद्यकाव्य' का प्रयोग रचना विशेष के उपकरणों के सम्बन्ध में किया गया है। इससे यह भी प्रकट है कि आख्यायिका-परिवार की सभी विधाएँ गद्य में ही लिखी जाती है, यद्यपि जैसा कि इनमें से आख्यायिका के लक्षणों से प्रतीत होता है, इसमें वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों के रूप में पद्य का प्रयोग विधेय है; किन्तु यह प्रयोग आनुषंगिक अथवा थोड़ा ही होना चाहिए।

अग्निपुराण में आख्यायिका की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :—

'कर्तृवंश प्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरण संग्राम विप्रलम्भ विपत्तयः
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्त[1] प्रवृतयः॥
उच्छ्वासंश्च परिच्छेदो[2] यत्र या चूर्णकोतरा।
वक्त्रं वापरवक्त्रं वा यत्र सात्यायिका स्मृता। (१३।१४)

इसके बाद कथा का लक्षण इस प्रकार है :—

"श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति।
मुख्यस्यार्थवताराय[3] भवेद्यत्र कथान्तरम्॥
परिच्छेदो[4] न यत्र स्याद्भवेद्वालम्बकैः[5] क्वचित्।
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्।" (१५।१६)

कथा—इन दोनों के लक्षणो से स्पष्ट है कि अग्निपुराणकार के मन में आख्यायिका और कथा का रूप भिन्न-भिन्न था। उक्त मतानुसार आख्यायिका में ये गुण पाए जाते हैं :—

(१) कर्ता के वंश की प्रशंसा विस्तृत रूप से।
(२) कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ आदि विपत्तियों से पूर्ण घटना।
(३) रीति, वृत्ति और प्रवृत्तियों का प्रयोग।
(४) उच्छ्वास नामक परिच्छेदों की व्यवस्था।
(५) उत्तर भाग में चूर्णक गद्य की शैली।
(६) वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग।

ऊपर (३) में कथित रीति, वृत्ति और प्रवृत्ति के लक्षणों के विषय में बड़ा मत जाल है और एक आलोचक का मत दूसरे के मत से नहीं मिलता। उन सब का समझौता काव्यप्रकाशकार मम्मट ने कर दिया है, ऐसा प्रतीत होता है, जब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है—"वेषविन्यासक्रमः. विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः, वचनविन्यासक्रमो रीतिः,।" पाँचवे लक्षण में उल्लिखित 'चूर्णक' की व्याख्या स्वयं अग्निपुराणकार ने करते हुए उसकी दो विशेषताएँ बतलाई

[1] वृत्ति, [2] परिच्छेदा, [3] मुख्यार्थस्या, [4] दा, [5] यत्रस्याद्यस्याद्वा लम्भक।

हैं—(१) अल्प से अल्प विग्रह अर्थात् छोटे से छोटे समास और (२) अति मृदु सन्दर्भ (अर्थात् कोमल-कान्त पदावली) का अभाव। शेष लक्षण स्पष्ट हैं।

आख्यायिका की व्याख्या—इनमें से (१), (४) और (६) को लेकर अग्निपुराणकार का दण्डी से मतसाम्य है, (३) और (५) नए लक्षण हैं जिनका उल्लेख दण्डी में नहीं है, और (२) को दण्डी आख्यायिका का अनिवार्य लक्षण नही मानते। जहाँ तक भामह का प्रश्न है, उसमें और अग्निपुराण में काफी साम्य प्रतीत होता है।

इनमें से पहलो और दूसरी बात का सम्बन्ध कहानी की वस्तु अथवा आत्मा से है, और तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठी का सम्बन्ध उसके शरीर से है। इनमें से कोई भी बात ऐसी नहीं है जिससे हम यह मान सकें कि अग्निपुराण की आख्यायिका आज की आख्यायिका के निकट की वस्तु है, जैसी कि कई प्रामाणिक क्षेत्रो तक में भ्रान्ति है। परिच्छेदों अथवा उच्छ्वासों में बाँटे जाने योग्य विस्तृत कलेवर वाली बात तो उसके ठीक विपरीत पड़ती है। हाँ, उसकी रामाण्टिक विषय सूची को यदि प्रतीक रूप में लें तो हमें अग्निपुराण को (शायद उसके पूर्व भामह को) महत्त्व देना पड़ेगा। इस व्यवस्था की अन्तस्थ भावना, अर्थात् कौतूहल की रक्षा में आज भी कोई अन्तर नहीं आया है, अपितु उस पर आज विशेष बल दिया जाता है। आज से कम से कम १००० वर्ष पूर्व इस बात के महत्व का स्वीकार कर लेना कोई कम दूरदर्शिता एवं महत्व की बात नहीं है। लेकिन इतना तो कह देना पड़ेगा कि दण्डी ने जिस आख्यायिका को दूषित राजकुल के बन्धनों से निकाल कर सर्वसाधारण के स्तर पर लाने का महत्वपूर्ण काम किया था, वही आख्यायिका फिर श्रम की देवियों की पंक्ति से हट कर राजकुल में पहुँच गई, यह अग्निपुराणकार की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति का परिचय देती है। इसके आकार प्रकार में किसी प्रकार की कमी नहीं करने से यह संकेत मिलता है कि संस्कृत के आचार्य इसके वृहद् (हमारे यहाँ के उपन्यास के समशील) रूप की रक्षा करना चाहते थे।

कथा का स्वरूप—कथा पर अग्निपुराण की कृपा प्रतीत होती है। आख्यायिका पर जितनी सारी मर्यादाएँ थी, कथा पर उतनी हीं छूटें दी गई है। इसके लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) कर्ता के वंश की संक्षिप्त प्रशंसा।

(२) मुख्यार्थ की सिद्धि के लिए अवान्तर कथाओं को सहायता।

(३) कभी-कभी आलम्बक (लम्भक) नामक परिच्छेद भले ही हों, पर प्रायः परिच्छेदविहीन हो।

ये तीनों ही लक्षण भामह से मिलते जुलते हैं, किन्तु दण्डी से भिन्न हैं। इनसे तीन बातों पर प्रकाश पड़ता है जो ध्यान देने योग्य हैं। एक तो उसका कलेवर जहाँ तक हो संक्षिप्त हो (१ और ३), दूसरे, उसमें एक मुख्यार्थ एक ही मूल संवेदना (इम्प्रैशन) होती है जिसकी पुष्टि उसीके अन्तर्गत अन्य छोटी-छोटी कथाएँ कर सकती हैं। (यहाँ 'मुख्यार्थ' शब्द को उसके रूढ़ार्थ (अर्थात् 'अभिधार्थ' के अर्थ) में न लेकर अभिधार्थ (अर्थात् मुख्य अर्थ (मूल प्रभाव) के अर्थ) में लेना चाहिए। तीसरे, यह कि इसमें आख्यायिका की भाँति विषयों का कोई बन्धन नहीं है। कहानी कला की दृष्टि से ये तीनों बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और कथा को हमारी आधुनिक कहानी के अत्यन्त निकट ला बैठालती है।

इन दोनों भगिना-विधाओं के वाचन के सम्बन्ध में अग्निपुराणकार स्पष्ट नहीं है। दोनों के लिए हो यह कहा गया है कि उनमें कर्त्ता अथवा कवि के वंश की प्रशंसा होनी चाहिए। यह बात निर्विवाद रूप से नहीं कही जा सकती कि यहाँ कर्त्ता या कवि स्वयं नायक है। कवि या कर्त्ता प्रारम्भ में अपने वंश की प्रशंसा करके मञ्च पर से हट जाय और पात्रों से किसी को, या नायक को ही वाचन का कार्यभार सौंप सकता है, या आगे भी इसका दायित्व अपने ऊपर ही रख सकता है। दण्डी ने, जैसा कि बताया जा चुका है, आख्यायिका और कथा के भेद का आधार ही नायक-वाचन और नायकेतर-वाचन रक्खा है। भामह की दृष्टि में भी वाचन-भेद दोनों विधाओं का एक महत्वपूर्ण भेद है। आज की अधिकांश आख्यायिकाओं की परम्परा के अनुरूप यदि अग्निपुराण की कथा और आख्यायिका का कर्त्ता भी पृष्ठभूमि में रहकर सारी घटना का एक दर्शक या श्रोता की भाँति वर्णन करें, तब तो अग्निपुराण को एक महत्त्वपूर्ण दिशान्तर का श्रेय देना पड़ेगा, किन्तु संस्कृत-काल की परम्परा को देखते हुए ऐसा स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता कि अग्निपुराणकार इतना साहस कर सकता है, विशेष रूप से आख्यायिका के सम्बन्ध में जिसके लिए प्रायः सभी आचार्य एकमत हैं कि उसका वाचन नायक द्वारा ही होना चाहिए, और जिसके लक्ष्य उदाहरण अग्निपुराणकार के समक्ष रहे होंगे। किन्तु यदि निश्चित मत के लिए बाध्य किया जाय तो मैं यही कहूँगा कि अग्निपुराणकार को इस दिशापसरण का श्रेय मिलना चाहिए, जैसा कि उन्होंने अन्यत्र भी एक दो विषयों को लेकर किया है।

खण्डकथा और परिकथा—खण्डकथा और परिकथा के विषय में अग्नि-पुराण में ये भेद हैं—

"भवेत् खण्डकथा यासो यासो परिकथा तयोः।
अमात्यं सार्थकं वाऽपि द्विजं वा नायकं विदुः॥

स्यात् तयोः करुणं विद्धि विप्रलम्भाश्चतुर्विधः ।
समाप्यते तयोर्नाद्या सा कथामनुधावति ।।
कथाख्यायिकयोर्मिश्रभावात् परिकथा स्मृता । (१७।१६)

इससे यह स्पष्ट है कि खण्डकथा और परिकथा के यहाँ प्रायः एक ही लक्षण माने गये हैं। इनका नायक कोई अमात्य, सार्थक (योग्य नायकों का गण) द्विज अथवा विद्वान होता है, तथा पाँच प्रकारों के विप्रलम्भ शृङ्गार में से चार प्रकारों का अभिनिवेश हो सकता है। परिकथा का एक अतिरिक्त लक्षण यह है कि उसमें कथा और आख्यायिका का मिश्रण होता है।

ये लक्षण अपने आप में पूर्ण होने के बजाय पूरक लक्षण प्रतीत होते हैं। यदि दण्डी की भाँति यहाँ भी खण्डकथा आदि को कथा की उपशाखायें माना जाय तब तो इन लक्षणों से इनके स्वरूप निर्धारण में सहायता मिल सकती थी, किन्तु ये कथा से स्वतन्त्र बताये गये हैं। अतः केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनके बारे में अग्निपुराणकार ने वे ही लक्षण दिये हैं जो इनके उपादानों पर आंशिक प्रकाश डालते हैं। इसका कारण कदाचित यह है कि अग्निपुराणकार भी आख्यायिका और कथा के अतिरिक्त गद्य के अन्य भेदों को महत्त्व नहीं देना चाहते। तभी यहाँ खण्डकथा को कथा के अनुकरण में की गई, और परिकथा को कथा और आख्यायिका के मिश्रण से तैयार की गई रचना माना गया है। यह भी प्रकट है कि दोनों में से कोई भी रचना उस पर लगाये बन्धनों को दृष्टिगत रखते हुये हमारी कहानी के समीप नहीं पड़ती।

कथानिका एक महत्पूर्ण काव्य-विधा—कथानिका के सम्बन्ध में अग्नि-पुराणकार ने लिखा है :—

"भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः ।
अद्भुतान्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ।"

मेरी विनम्र दृष्टि में अग्निपुराण का यह पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि इसे जो महत्त्व मिलना चाहिये था वह अनेक कारणों से इसे नहीं मिल पाया। यहाँ तक कि 'कथानिका' नाम की जिस काव्यविधा की परिभाषा इस पद में की गई है उस महत्त्वपूर्ण काव्य-विधा का उल्लेख केवल यहीं पर है और किसी भी अन्य लक्षण ग्रन्थ में नहीं आया है। न केवल 'कहानी' शब्द का, अपितु आज हम जिसे कहानी कहते हैं उस आकार-प्रकार की काव्यविधा या स्रोत क्या है, यह प्रश्न कहानी-दर्शन के जिज्ञासु के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और जब हम इसके मूल की ओर जाने का उपक्रम करते हैं तब हमारा साक्षात्कार इस रहस्य-मयी से होता है। यद्यपि यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी

में प्रचलित कहानी नामक काव्यविधा की व्युत्पत्ति संस्कृतकाल की इसी कथानिका से हुई है, किन्तु कम से कम भाषाविज्ञान की दृष्टि से दोनों शब्द का जन्य-जनक सम्बन्ध काफी स्पष्ट है (कथानिका—कथानिश्रा—कहानिश्रा—कहानी)। ऐसा लगता है कि यही 'कथानिका' प्राकृत और अपभ्रंश के द्वार से आकर हमारे यहाँ 'कहानी' बन गई है।

यह तो हम देख ही चुके हैं और आगे के विवेचन से भी काफी स्पष्ट हो जायगा कि संस्कृत-काल की आख्यायिका का हमारी कहानी पर कोई आरोप नहीं है। कथा के लक्षण अवश्य बहुत कुछ कहानी से मिलते हैं पर सम्पूर्णतया नहीं। तब क्या हमारी कहानी संस्कृत की कथानिका ही है।

आइए, कथानिका के लक्षणों की जाँच करके इस प्रश्न का समाधान करने की चेष्टा करें। दुर्भाग्यवश अग्निपुराणकार द्वारा दिये गये कथानिका के लक्षण काफी स्पष्ट नहीं हैं। सच तो यह कि इस पद के अनेक अर्थ हो सकते हैं। इनमें से एक अर्थ के अनुसार कथानिका की चर्चा करते समय अग्निपुराणकार का ध्यान इसमें निष्पत होने वाले रस की ओर मुख्य रूप से केन्द्रित रहा हुआ प्रतीत होता है। काव्य में भयानक, करुण और अद्भुत, ये तीनों रस माने गये हैं। अतः यदि उक्त पद में प्रयुक्त इन शब्दों को रस के अर्थ में लिया जाय तब स्थिति बड़ी कठिन हो जाती है। यद्यपि यह सही है कि इनमें से कोई भी रस एक दूसरे का विरोधी नहीं है, फिर भी इस कथा-रचना में (जो शायद छोटी हा है) एक साथ तीन-तीन रसों की निष्पत्ति सम्भव नहीं जान पड़ती। (यहाँ रस, रसाभास और भाव, इन तीनों में प्रारम्भ से चला आता हुआ भेद ध्यान में रखना चाहिये।) प्रारम्भ में आया हुआ भयानक बीच में करुण रस में परिवर्तित हो सकता है, किन्तु अन्त में वही अद्भुत रस में बदल जाय, यह न केवल परम्परा की दृष्टि से, बल्कि व्यवहार की दृष्टि से भी विचित्र सी बात लगती है।

अवस्थीजी का अभिमत—इस सम्बन्ध में प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी ने एक रोचक बात का उल्लेख किया है। कहानी और कथा का भेद स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि कथा में अनेक रसों की, जिनमें से कभी-कभी कुछ परस्पर विरोधी रस भी रहते हैं, योजना जानबूझ कर की जाती थी। वे लिखते हैं—

'कथा अनेकार्थी होती है। उसमें अनेक कहानियों के तत्व मिल सकते हैं।.........रसों की अनेकरूपता और वृत्तियों की विभिन्नता कथा-साहित्य का गौरव है। विरोधी रसों और वृत्तियों से इस कला से अनुकूल परिस्थितियों को (के ?) बीच में डालकर पास-पास सजा दिया जाता है जिसमें वैषम्य न खटके

और मन भी उचाट न हो। कथा-विस्तार में रोचकता और रुचिमत्ता को शनैः-शनैः बिखेरा जाता है। औत्सुक्य और कुतूहल को एक मुट्ठी से और आदर्श-लक्ष्य को दूसरी मुट्ठी से इतना धीरे-धीरे खोला जाय कि समस्त ग्रन्थ की रोचकता बनी रहे और लोग जानने के लिए व्यग्र रहें।"

यहाँ अवस्थीजी ने कथा के लिए 'ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग किया है और उक्त लक्षण भी कथा के ही गिनाए हैं कथानिका के नहीं। दूसरे शब्दों में, कथानिका जैसी रचना में तीन तीन विभिन्न रसों की व्यञ्जना को कदाचित् अवस्थीजी भी स्वीकार नहीं करेंगे।

यदि यह मान भी लिया जाय कि उक्त परिभाषा में करुण और अद्भुत के साथ-साथ 'भयानक' शब्द भी रस के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तो इसके साथ 'सुखपरं' शब्द बाधा उपस्थित करता है। यहाँ इस शब्द का विशिष्ट प्रयोग इस प्रचलित सिद्धान्त की आवृत्ति मात्र नही जान पडता कि भयानक रस (करुण और विप्रलम्भ की भाँति ही) दुःखद नही होता, बल्कि (एक अलौकिक अर्थ में) सुखपरक अर्थात् आनन्दप्रद होता है, बरञ्च इस प्रयोग से अग्निपुराणकार हमारा ध्यान किसी दूसरी ओर दिलाना चाहते है।

यदि उक्त पद में प्रयुक्त 'भयानक' और 'अद्भुत' शब्दों को रस के अर्थ में प्रयुक्त नही मानकर उनके अभिधार्थ में लें तो समस्या शायद सुलझ जाती है। इस अर्थ में उक्त पद का निर्वचन इस प्रकार होगा।

"कथानिका वह रचना है जिसकी घटना भयानक (रोमांचकारी) अथवा आनन्ददायक होती है। उसका मूल रस करुण होता है। उसका अन्त अद्भुत अर्थात् अप्रत्याशित रीति से होता है। इसका अर्थ सुक्लृप्त (अर्थात् सुन्दर या सुव्यवस्थित) और उसकी पदावली अनुदात्त अर्थात् सौम्य होती है।"

इस अर्थ मे कथानिका रूपी काव्य-विधा हमारे समक्ष एक चमत्कार (revelation) के रूप में आती है। इसके लक्षणों को देखकर हमें निर्विवाद रूप से इसके प्रति आकृष्ट हो जाना पड़ता है, क्योंकि करीब करीब ये सारे लक्षण हमारी आधुनिक कहानी के है। हाँ, एक हजार वर्ष से अधिक का समय बीत जाने पर लक्षणो की प्रवृत्ति में जो अन्तर आ जाता है उसका प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। फिर भी, देखिए कहानी जगत् के एक प्रामाणिक पाश्चात्य आलोचक डुलेट महोदय की दी हुई कहानी की व्याख्या से इन लक्षणों का कितना गहरा तादात्म्य है। ऐसी शंका होने लगती है कि कहीं इन महाशय ने अग्निपुराण की कथानिका की परिभाषा ही का अनुवाद न किया हो।

"The short story exists for the sake of an illuminating moment of beauty or of terror, of wonder or of sheer surprise,"

"अर्थात् सौन्दर्य अथवा आतंक, आश्चर्य अथवा केवल विस्मय पैदा करने वाले एक क्षरण की सिद्धि करना ही कहानी का लक्ष्य है।"

मैने जब ये दोनों लक्षरण अपने एक मित्र के समक्ष रक्खे और इनके चमत्कारी साम्य का उल्लेख किया तब उन्हे विश्वास नही हुआ कि ये दोनो परस्पर स्वतन्त्र रूप से गढे गए है, एक दूसरे के आधार पर नही, और वे यही कहते रहे कि बुलेट ने अग्निपुराण की व्याख्या का ही अनुवाद किया है।

जो हो, यह आश्चर्य की बात है जैसा कि कहा जा चुका है, इस सुव्यवस्थित लघुकथा की ओर, न केवल हिन्दी के आलोचकों, बल्कि स्वयं संस्कृत के आचार्यों का भी ध्यान नहीं गया है। संस्कृत में कथानिका का नामोल्लेख अग्निपुराण के बाद या पहले और किसी भी आचार्य ने नही किया है (केवल नृसिहदेव को छोड़कर), यद्यपि इसी की भाँति शेष कम प्रचलित भेदो जैसे परिकथा और खण्ड कथा का उल्लेख अग्निपुराण के बाद कम से कम दो बार (ध्वनि सिद्धान्त के व्याख्याता अभिनवपादगुप्ताचार्य और काव्यानुशासन के प्रणेता हेमचन्द्र द्वारा) अवश्य किया गया है। वैसे उत्तर काल में सब मिलाकर कथानिका तो क्या, स्वयं कथा और आख्यायिका तक को उचित महत्त्व नहीं दिया गया। ऐसा क्यो हुआ; इसका संक्षिप्त विवेचन बाद में किया जायगा।

गद्यकाव्य के उक्त पाँचो भेदों (आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा और कथानिका) के विषय में काव्यादर्श के टीकाकार नृसिहदेव का मत है कि वे एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न नाम हैं तथा इनमें कोई 'वास्तविक' भेद नही है। कथा और आख्यायिका को तो स्वयं दण्डी भी एक ही जाति की दो संज्ञाएँ मानते है, आख्यान आदि को भी जिन्हे दण्डी आख्यायिका की अन्तर्जातियाँ मानते हैं, नृसिंहदेव एक ही जाति अर्थात् आख्यायिका की समानार्थक मानते हैं, जैसे घट, कुम्भ, कलश। वस्तुतः गद्यकाव्य मात्र का बोध उनकी दृष्टि में इन्हीं के द्वारा होता है। एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न नाम देने की प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए नृसिहदेव कहते हैं कि इसका कारण 'चातुर्यद्योतन' था। कथा और आख्यायिका में भामह आदि ने जो विशिष्ट भेद माना है उसे नृसिंहदेव ने इसी आधार पर अस्वीकार कर दिया है।

नृसिहदेव के इस निर्भीक मत के विषय मे संक्षेप में यहाँ इतना ही कहा

जा सकता है कि यह उसी परम्परा का सूत्रपात है जिसमें आगे चलकर गद्य-काव्य के उक्त सभी भेदों को कम महत्व दिया गया।

काव्यालङ्कार (रुद्रट)—मुझे इस ग्रन्थ के प्राप्त नहीं होने के कारण इसमें उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण नहीं किया जा सकता। किन्तु अन्यत्र प्राप्त इसकी विषय-तालिका को देखने से प्रकट होता है कि इसमें कथा और आख्यायिका को लेकर उनके इतिवृत्त और अन्य लक्षणों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि रुद्रट के काव्यालङ्कार को संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अभिनवगुप्त : ध्वन्यालोचन—ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के बाद संस्कृत काल में साहित्य में पद्य-गद्य का प्रणयनक्रम क्रमशः विपरीत होता हुआ प्रतीत होता है। लक्षण-साहित्य ने भी इसी का अनुगमन किया है और पद्य के साथ-साथ गद्य पर भी आलोचनात्मक दृष्टि से विचार होना प्रारम्भ हुआ है। वैसे प्रारम्भ ही से नाटक ने जो आतङ्क संस्कृत साहित्यकारों पर जमा लिया था उसका प्रभाव आलोचना-साहित्य पर भी निरन्तर पड़ा है।

ध्वन्यालोक—अभिनवगुप्त ने जिस प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' को अपनी टीका का आलम्बन बनाया है उसमें काव्य के ये भेद किए गए हैं—(१) मुक्तक (जो संस्कृत, अपभ्रंश और प्राकृत में मिलता है), (२) सन्दानितक, (३) विशेषक, (४) कालापक, (५) कुलक, (६) पर्यायबन्ध, (७) परिकथा, (८) सकलकथा, (९) खण्डकथा, (१०) सर्गबन्ध (महाकाव्य), (११) अभिनय (नाटक), (१२) आख्यायिका और (१३) कथा आदि। अभिनवगुप्त ने इन सब प्रभेदों की संक्षिप्त व्याख्या की है। इस व्याख्या के अनुसार (१) से (६) तक के भेदों का सम्बन्ध काव्य की शैली से है और इनमें कथा-तत्व का कोई अस्तित्व नहीं है। (१०) और (११) का भी हमारा आख्यायिका से कोई सम्बन्ध नहीं है। (७), (८), (९), (१२) और (१३) आख्यायिका-परिवार की ही विधाएँ हैं। इनमें से (७), (९), (१२) और (१३) के नाम अग्निपुराण में भी आए हैं और अग्निपुराण की 'कथानिका' का यहाँ उल्लेख न होकर इसके स्थान में सकलकथा (८) का नाम है। आख्यायिका और कथा को छोड़कर इन तीनों भेदों के लक्षण अग्निपुराण के लक्षणों से सर्वथा भिन्न हैं। परिकथा का लक्षण लोचनकार ने इस प्रकार दिया है—

"एकं धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येणानन्तवृत्तान्तवर्णनप्रकारा परिकथा।"

अर्थात् नाना प्रकार की विचित्रताओं से संयुक्त अनेक वृत्तान्तों वाला

ऐसा वर्णन जिसका उद्देश्य अनेक मार्गों द्वारा धर्म आदि (चार पुरुषार्थों में से किसी) पुरुषार्थ की सिद्धि हो, परिकथा कहलाता है। इसमें दो बातें स्पष्ट हैं। एक तो इसमें वर्णन वैचित्र्य होता है जो घटना-कुतूहल का दूसरा नाम है, और दूसरे, इसका उद्देश्य एक ही प्रभाव की सृष्टि करना है। ये दोनो बातें कहानी के आधुनिक रूप के निकट हैं। जैसा संकेत किया जा चुका है, दण्डी ने अपने दशकुमार चरितम् में जिस चित्रकथा का उल्लेख किया है वह कदाचित् इसी परिकथा का दूसरा नाम है।

खण्डकथा—खण्डकथा के लिये अभिनवगुप्त ने केवल इतना लिखा है :— 'एकदेशवर्णना खण्डकथा।' इससे खण्डकथा का रूप बिलकुल स्पष्ट नहीं होता। जो एकपक्षीय चित्रण हमारी आधुनिक कहानी की आत्मा है, यदि खण्डकथा का आधार भी वही हो (कुछ लाक्षणिकों को छोटी परिभाषाएँ विशेष प्रिय हैं और इस आधार पर वे कण्डकथा को कहानी का पर्याय मानने को काफी व्यग्र हो सकते हैं) तब तो एक विचित्र सा संयोग आ उपस्थित होता है। किन्तु अनेक कारणों से इसे ठीक इसी रूप में लेना युक्तिसङ्गत नहीं होगा। हाँ, इतना अवश्य संकेत मिलता है कि संस्कृत के आचार्यों का ध्यान केवल इसी विधा को लेकर नहीं, अन्य अनेक गद्य भेदों को लेकर कहानी की इस मूलभूत आवश्यकता की ओर स्पष्ट रूप से था। अनेक परिस्थितियों के कारण उस पर बल नहीं दिया जा सका, यह और बात है।

सकलकथा—सकलकथा के लिये अभिनवगुप्त ने इन शब्दों का प्रयोग किया है :—

"समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना सकलकथा।"

जिसके अन्त में समस्त फलों (अभीष्ट वस्तुओं) की प्राप्ति हो जाय ऐसी घटना का वर्णन सकलकथा में होता है।

सकलकथा की यह परिभाषा ऊपर दी हुई परिकथा के अधिक समीप है और उसी सीमा तक इसे हमारी कहानी से सम्बन्धित मानना चाहिए। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि परिकथा में अनेक वृत्तान्त होते हैं और उद्देश्य एक होता है, जबकि सकलकथा में वृत्तान्त एक होता है और उद्देश्य अनेक। यह व्याख्या रोचक होते हुये भी हमारे काम के लिये महत्वपूर्ण नहीं है।

आख्यायिका और कथा के लक्षणों को लोचनकार ने इन शब्दों में अभिहित किया है :

"आख्यायिकोच्छ्वासादिना वक्त्रापरवक्त्रादिना च युक्ता। कथा तद्विरहिता। उभयोरपि गद्यबन्ध स्वपतयाद्वन्द्वेन निर्देशः।"

ये लक्षण आंशिक हैं, पर अपने प्रस्तुत रूप में अपने पूर्ववर्ती लक्षणों से प्रभावित है। कथा को आख्यायिका के बन्धनों से मुक्त करने में अभिनवगुप्त ने भामह और अग्निपुराण का अनुकरण किया है।

ध्वनिकार ने इन सब नामों के आगे 'आदि' शब्द का प्रयोग किया है। इसके अन्तर्गत अभिनवगुप्त ने चम्पू या गद्यपद्यमिश्रित साहित्य की गणना की है।

आनन्दवर्धनकृत ध्वन्यालोक—संस्कृत के इस स्वनामधन्य ग्रन्थ में काव्य के समस्त भेदो की सर्वाङ्गीण व्याख्या नही दी गई है, प्रत्युत उनमें से प्रत्येक में किस प्रकार की पदावली प्रयुक्त की जाय इसी पर मुख्य रूप से विचार किया गया है। इसका ध्वनि सिद्धान्त तो प्रसिद्ध है ही। (शास्त्रीय लक्षणों की आनुषङ्गिकता के कारण ही इस ग्रन्थ पर बाद में विचार किया जारहा है। जिन तेरह काव्य विधाओं का ऊपर उल्लेख है उनमें से आख्यायिका वर्ग के विषय में आनन्दवर्धन कहते हैं :

"परिकथायां कामचारः। तत्रेतिवृत्तमात्रोपन्यासेन नात्यन्तं रसबन्धाभि निवेशात्। खण्डकथासकलकथयोः प्राकृतसिद्धयोः कुलकादिनिबन्धनभूयस्त्वाद्दीर्घ समासायमपि न विरोधः। वृत्त्यौचित्यं तु यथारसमनुसर्त्तव्यम्।........आख्यायिका कथयोस्तु गद्यनिबन्धबाहुल्याद् गद्य च छन्दबन्धभिन्नप्रस्थानत्वादिह नियमे हेतुरकृत पूर्वोऽपि मनाक् क्रियते।........आख्यायिकायां तु भूम्ना मध्यमसमसादीर्घसमासे एव सङ्घटने। गद्यस्य विकटनिबन्धाश्रेयणाच्छायावत्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्यमाणत्वात्। कथाया तु विकटनिबन्धाश्रयेण छायावत्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्यमाणत्वात्। कथायां तु विकट बन्धप्राचुर्येऽपि गद्यस्य रसबन्धोक्तमौचित्यमनु सर्त्तव्यम्।...क तथा ह्याख्यायिकाया नात्यन्तमसमासा स्वविषयेऽपि....(३।७।९)

शब्द संघटना—शब्दसङ्घटना अर्थात् दीर्घ या लघु समासों तथा कठोर अथवा कोमल वर्णों के प्रयोग का विषय अत्यन्त जटिल है। एक ओर ध्वनिकार ने उसे रस पर आश्रित कर दिया है और दूसरी ओर वक्ता के सामान्य स्वभाव एवं विषय के स्वरूप और उसकी गति पर। आख्यायिका आदि को लेकर ध्वनिकार ने इस सम्बन्ध में जो निर्णय दिए हैं वे इस प्रकार हैं :

(१) परिकथा में इस विषय मे स्वतन्त्रता है, क्योकि उसमें केवल कथाश का वर्णन मुख्य होने से रसबन्ध (अर्थात् रसनिष्पत्ति) का विशेष आग्रह नही होता।

(२) खण्डकथा और सकलकथा का प्राकृत भाषा में अधिक प्रयोग होने के कारण उस भाषा में कुलकादि (अर्थात् चार से अधिक श्लोको के अन्वय) के बहुल प्रयोग होने से दीर्घ समास हो सकते है। किन्तु रस के अनुसार वृत्तियों

के औचित्य को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

(३) आख्यायिका और कथा में तो गद्य रचना की ही प्रधानता रहने और गद्य में छन्दोबद्ध रचना से भिन्न मार्ग होने से इस विषय में कोई नियामक हेतु इसके पूर्व निमित्त न होने पर भी इतना सा निर्देश कर देना चाहिए कि आख्यायिका में तो अधिकतर मध्यम समासा और दीर्घ समास संघटना होती है, क्योंकि कठिन रचना से गद्य में सौन्दर्य आ जाता है, और उस (विकटबन्ध) में रचना-सौन्दर्य का प्रकर्ष (विशेषता) होने से, कथा मे भी गद्य की कठिन (विकट) रचना का बाहुल्य होने पर भी रसबन्ध सम्बन्धी औचित्य का पालन करना ही चाहिए।····आख्यायिका मे स्वविषय में भी (अर्थात् करुण और विप्रलम्भ शृङ्गार में भी) अत्यन्त समासहीन रचना नही होनी चाहिए।

इससे पूर्व ध्वनिकार ने यह भी कहा है कि गद्य रचना में भी करुण और विप्रलम्भ शृङ्गार में आख्यायिका तक मे भी अत्यन्त दीर्घ समास वाली रचना अच्छी नही लगती। (तथाहि गद्यबन्धेऽपि अतिदीर्घसमासा रचना न विप्रलम्भ शृङ्गार करुणयोराख्यायिकायामपि शोभते।)

ध्वन्यालोक का विषय यद्यपि सर्वथा नवीन तथा मौलिक नहीं था (ध्वनि और संघटना दोनों को लेकर उस पर काव्यालङ्कार सूत्र के प्रणेता वामन की सांकेतिक छाप है) फिर भी उसकी विषय विवेचना की शैली वामन से कहीं अधिक विशद है। वामन ने गद्य को केवल तीन भेदो (चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तगन्धि) में बाँटकर तथा उनके लक्षण बताकर ही सन्तोष कर दिया है जिसका सारांश यह है कि अमुक भेद मे अमुक प्रकार की पदावली और समासों का प्रयोग होना चाहिए। अग्निपुराण में भी यह बात वैसी की वैसी मिलती है। अपने उसी ग्रन्थ मे आगे चलकर वामन ने कथा और आख्यायिका का नामोल्लेख तो किया है, किन्तु उनकी व्याख्या नहीं की है।

काव्यप्रकाश (मम्मट)—यही हाल संस्कृत के अत्यन्त श्रेष्ठ आलोचनाग्रन्थ काव्यप्रकाश के प्रणेता आचार्य मम्मट का है। उन्होने आख्यायिका और कथा को प्रबन्ध के भेदो के अन्तर्गत उल्लिखित तो किया है, किन्तु उसकी कोई व्याख्या नहीं की है। प्रत्युत इतना ही कहा है। 'आख्यायिकायां शृङ्गारेऽपि न मसृणवर्णादयः, कथायां रौद्रेऽपि नात्यन्तमुद्धता ः'' अर्थात् आख्यायिका में शृङ्गार रस के स्थलों पर भी अत्यन्त कोमल वर्णों का प्रयोग नही करना चाहिए। इसी प्रकार कथा में रौद्र प्रसंग में भी अत्यन्त कठोर शब्दों का प्रयोग भावर्जेय है। कहना नही होगा कि मम्मट भी ध्वनिकार से प्रभावित है, यद्यपि ध्वनिकार ने समासों के प्रयोग की चर्चा की है और मम्मट ने वर्णों के प्रयोग की।

वामन, आनन्दवर्धन और मम्मट के इन लक्षणों के सम्बन्ध में यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इस प्रकार के समस्त लक्षण न केवल भाषा विशेष तक ही सीमित रहते है और एतदर्थ उनमें शाश्वता का अभाव होता है, अपितु साहित्य में पदावली के चुनाव को मनोनीत करके रखना उस साहित्य विशेष के स्वाभाविक विकास को निरुद्ध करना है।

काव्यानुशासन (हेमचन्द्र)—इस ग्रन्थ में राजशेखर कृत काव्य मीमांसा मम्मट के काव्यप्रकाश और आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक आदि के अनेक अविकल उद्धरण उपलब्ध हैं। अभिनवगुप्त और भरत के प्रति तो इसके रचयिता हेमचन्द्र ने अपना ऋण भी स्वीकार किया है। इस प्रकार काव्यानुशासन में साधारणतया कोई मौलिकता नहीं है। किन्तु जहाँ तक कहानी का क्षेत्र है, हेमचन्द्र ने हमें कम से कम सात नाम ऐसे दिये है जिनका उल्लेख कदाचित् अन्य किसी भी आचार्य ने नही किया है। ये है—(१) उपाख्यान (२) निदर्शन (३) प्रवह्लिका (४) मतल्लिका (५) मणिकुल्या (६) उपकथा और (७) बृहत्कथा। आख्यान, परिकथा, खण्डकथा और सकलकथा के पूर्वपरिचित नामो के अतिरिक्त उक्त सात भेदों को भी हेमचन्द्र ने कथा के भेदों के अन्तर्गत रक्खा है। इस प्रकार हेमचन्द्र के मतानुसार, स्वयं 'कथा' को छोडकर जिसका इनमें अन्तर्भाव नहीं होता, कथा के ग्यारह भेद हो जाते हैं। कथा का इतना विस्तार पहली बार नहीं हुआ है। यहाँ यह जान लेना रोचक है कि स्वयं कथा के अतिरिक्त आख्यायिका को भी श्रव्यकाव्य के पाँच भेदों में से एक भेद रक्खा है। अतः इन दोनों भेदों = आख्यायिका और कथा = का परस्पर भिन्न रूप हेमचन्द्र के सामने रहा है। स्पष्ट है कि इनका बाह्य रूप अधिकांश में पूर्ववर्ती आचार्यों पर ही आधारित है। ये लिखते हैं :—

''नायकाख्यातस्ववृत्ताभाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः
सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका।''

इस लक्षण की वृत्ति में स्वयं हेमचन्द्र लिखते हैं :—

''धीरप्रशान्तस्य गाम्भीर्यगुणोत्कर्षात्स्वयं स्वगुणोपवर्णनं न सम्भवतीत्यर्थाद्यस्या धीरोद्धतादिना नायकेन स्वकीयवृत्तं सदाचाररूपं चेष्टितं कन्यापहार-संग्रामसमागमाभ्युदयभूषितं मित्रादि वा व्याख्यायते, अनागतार्थशंसीति च वक्त्रा-परवक्त्रार्यादीनि यत्र बध्यते। यत्र चावन्तरप्रकरणसमासाच्छ्वासा बध्यन्ते, सा संस्कृतभाषानिबद्धाऽपादः पदसन्तानो गद्यं तेन युक्ता। युक्तग्रहणादन्तरान्तरा प्रविरलपद्यनिबन्धोऽप्यदुष्टा आख्यायिका। यथा हर्षचरितादि।''

हेमचन्द्र : आख्यायिका—अर्थात् आख्यायिका संस्कृत भाषा की वह गद्य-

इसके अन्त में हेमचन्द्र लिखते है—

"एते च कथाप्रभेदा एवैति न पृथग्लक्षिताः ।"

व्याख्या—काव्यानुशासन के अनुसार कथा का नायक धीरशान्त होता है, उसका वाचन नायक द्वारा नहीं, प्रत्युत अन्य (पात्र) द्वारा या स्वयं कवि द्वारा होता है, वह गद्य अथवा पद्य में तथा किसी भी भाषा में (जैसे, संस्कृत, प्राकृत, मागधी, शौरसेनी, पैशाची अथवा अपभ्रंश में) हो सकती है।

'उपाख्यान' प्रबन्ध का एक भाग है जो दूसरों के प्रबोधन के लिए लिखा जाय, जैसे नलोपाख्यान। 'आख्यान' अभिनय, पठन अथवा गायन के रूप में एक ग्रन्थिक (वाचक ?) द्वारा कहा गया होता है, जैसा गोविन्दाख्यान। अनेक प्रकार की चेष्टाओं द्वारा जहाँ कार्य और अकार्य (उचित और अनुचित मार्ग का निश्चय) किया जाय, वहाँ 'निदर्शन' होता है, जैसे पञ्चतन्त्र। इसमें धूर्त, विट कुट्टिनी, मयूर, मार्जारिका (आदि पशुपक्षी) इत्यादि (पात्र) होते हैं। जहाँ दो विवादों में से एक की प्रधानता दिखाई जाय और जो अर्धप्राकृत में लिखी गई हो वह प्रवह्लिका है, जैसे चेटक। प्रेतमहाराष्ट्र भाषा में लिखित क्षुद्रकथा का नाम 'मतह्लिका' है, जैसे अनङ्गवती। इसमें पुरोहित, अमात्य, तापस आदि व्यक्तियों की चर्चा भी हो सकती है। जिसका पूर्ववृत्त रचना के प्रारम्भ में प्रकाशित न हो कर बाद में हो, वह मणिकुल्या है, जैसे मत्स्यहसित। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक पुरुषार्थ के उद्देश्य को लेकर लिखी गई अनेक वृत्तान्तों वाली वर्णन-प्रधान रचना 'परिकथा' है, जैसे शूद्रक। जिसका मुख्य इतिवृत्त रचना के मध्य में या अन्त के समीप लिखा जाय उसे 'खण्डकथा' कहते हैं, जैसे इन्दुमती। सकलकथा वह इतिवृत्त है जिसके अन्त में समस्त फलों की सिद्धि हो जाय, जैसे समरादित्य। प्रसिद्ध कथा के अन्तर्गत किसी भी एक पात्र के आश्रय से कही गई रचना का नाम 'उपकथा' है। लम्भ नामक परिच्छेदों से युक्त अद्‌भुत अर्थ वाली रचना का नाम 'बृहत्कथा' है, जैसे नरवाहनदत्तचरित।

इन लक्षणों के बाद हेमचन्द्र कहते हैं कि ये कथा के भेद तो हैं परन्तु इनमें कोई (विशेष) पृथकता नहीं है।

जहाँ तक कथा का सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र ने यद्यपि किसी ऐसे लक्षण का प्रकाशन नहीं किया है जिससे कथा के सम्पूर्ण रूप का दिग्दर्शन हो जाय, फिर भी जो कुछ उन्होंने लिखा है वह (जब तक अन्यथा सिद्ध नहीं हो जाता) उनकी अपनी ओर से लिखा गया है तथा इस लक्षण में एक मौलिकता है, यद्यपि ऐसा कहना बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं है।

शेष भेदों में से परिकथा और खण्डकथा नाम सबसे पहले अग्निपुराण

ग्रौर सकलकथा का नाम पहले पहल अभिनवगुप्त की ध्वनि टीकाओं में मिलता है। इनमें से खण्डकथा को छोड़कर शेष दोनों भेदों लक्षण लोचन और काव्यानुशासन में एक ही से है। बाकी रूपों के स्वरूप को उनके मुख्य लक्षणों के दिग्दर्शन द्वारा काफी स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। यहीं पर एक आचार्य की लेखनी का प्रभाव परिलक्षित होता है और संस्कृत रीतिशास्त्र के प्रति अक्सर लगाए गए इस आरोप की कि उसमें एक व्यापक दृष्टिकोण का अभाव है, असत्यता सिद्ध हो जाती है। इनमें से मैं हिन्दी के पण्डितों का ध्यान विशेष रूप से मणिकुल्या और खण्डकथा की ओर दिलाना चाहता हूँ। इनके लक्षणों से प्रतीत होगा कि संस्कृत के कथा लेखकों ने आज से कम से कम ८०० वर्ष पूर्व शैली के क्षेत्रों में कितनी प्रगति करली थी। हिन्दी आज उस शैली का अनुकरण करने के लिए पश्चिम का मुँह जोह रही है।

साहित्य मीमांसा—मम्मट कृत काव्यप्रकाश के एक अधुनातन टीकाकार वामनाचार्य (सन् १६०१ ई०) ने काव्यप्रकाश में आए हुए आख्यायिका और कथा शब्दो की व्याख्या करते हुए 'साहित्यमीमांसा' नामक एक ग्रन्थ का हवाला दिया है और कहा है कि उसमे आख्यायिका के लक्षण इस प्रकार दिये हुए हैं—

"कविसाहित्यसहितं नरपालकथान्वितम्।
विचित्रवर्णना चारु दशोच्छ्वासमनोहरम्॥
उच्छ्वासादौ च पद्यार्थयुक्तमाख्यायिकामिदम्॥"

इसमें साहित्यमीमांसा के लेखक का नाम नहीं दिया हुआ है। 'साहित्यमीमांसा' नाम से एक रचना काश्मीर निवासी राजानक रुय्यक की लिखी हुई है। किन्तु उसके प्राप्त नहीं होने के कारण यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता कि उक्त टीका में जिस 'साहित्यमीमांसा' का उल्लेख है वह वही रचना है जो रुय्यक की लिखी हुई है। रुय्यक की इस रचना का समय १२ वीं सदी का द्वितीय चरण माना जाता है। आश्चर्य नहीं यदि यह वही रचना हो जो रुय्यक की बनाई हुई है, यद्यपि प्रो० कोण द्वारा दी गई रुय्यक की साहित्यमीमांसा की विषयसूची से यह प्रकट नहीं कि उसमें आख्यायिका आदि की चर्चा है।

जो भी हो, वामनाचार्य द्वारा उल्लिखित 'साहित्यमीमांसा' में आख्यायिका की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट है। उसके अनुसार इसमें दस उच्छ्वास होते हैं जिनके आरम्भ में पद्य होता है, कवि का साहित्य (वंशवर्णन ?) होता है, किसी नरपाल से सम्बद्ध घटना होती है।

यह निर्भीकता पूर्वक कहा जा सकता है कि आख्यायिका का इतना स्पष्ट

और सरल स्वरूप संस्कृत के अन्य किसी भी ग्रन्थ में नही मिलता। ऐसा मालूम पड़ता है कि साहित्य मीमासाकार ने अपने समीप पूर्ववर्ती ग्रन्थकारो के ऐसे अभिमतो की अभिव्यक्ति की है जो शायद बराबर उनके मन मे रहे हो, पर वे ग्रन्थकार जिन्हे किसी न किसी कारण अभिव्यक्त नही कर सके हो। आख्ययिका के इस लक्षण मे जहाँ अभी तक की परम्परा का समादर लक्षित होता है, वहाँ उसकी आत्मा की रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है जो उसकी रोचकता में निहित है। हाँ, इसकी घटनावस्तु को नरपाल वंश के साथ जोड़ने में अभी तक की परम्परा के अनुकूल साहित्य मीमांसाकार की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति का ही परिचय मिलता है।

काव्यानुशासन (वाग्भट्ट द्वितीय)—वाग्भट कृत काव्यानुशासन और विश्वनाथ कविराज कृत साहित्य दपरा संस्कृत के रीतिशास्त्र मे उत्तरकाल की रचनाएँ है। पण्डितराज जगन्नाथ कृत रस गगाधर को छोड़कर ये ही दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं जो सस्कृत आलोचना साहित्य की सीमा पर स्थित हैं।

इनमें से वाग्भट कृत काव्यानुशासन मे थोड़ी सी भी मौलिकता नही है। इसमे काव्म प्रकाश, काव्यमीमासा आदि के अतिरिक्त हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन में से अविकल उद्धरण लिए गए हे। ऐसा प्रतीत होता है कि वाग्भट ने काव्य मे हेमचन्द्र का पूर्ण अनुशासन स्वाकार किया है। गद्य को छन्द रहित बताते हुए उन्होने इसे आख्यायिका, कथा और चम्पू मे विभक्त किया है।

आख्यायिका की परिभाषा इस प्रकार है :—

"तत्र नायिकाख्यातस्ववृत्तान्ता भाव्यर्थ शसिनी सोच्छ्वासा कन्यकापहार समागमाभ्युदय भुषिता मित्रादिमुखाख्यातवृत्तान्ता अन्तरान्तरा प्रविरलपद्य बन्धा आख्यायिका।"

इसके बाद आगे चलकर कथा का उल्लेख है : —

"धीर प्रशान्तनायकोपेता गद्येन पद्येन वा सर्व भाषानुबिद्धा कथा।

"आख्यायिकावन्न स्वचरितव्यावर्णकोऽपितु धीरशान्तोनायकः। तस्य तु वृत्तमन्येन कविना यत्र वर्ण्यते सा काचिद्गद्यमया कादम्बरीवत्। काचित्पद्यमयी। लीलावती वत्। सर्वभाषानुविद्धा सस्कृत प्राकृतेन मागध्या सौरसेन्या शाच्या[1] अपभ्रंशेन वा रचिता कथा।

इन दोनों ही विधाओं के लक्षणों की भाषा हेमचन्द्र द्वारा दिए गए लक्षणों की भाषा से शब्द प्रति शब्द मिलती है। केवल आख्यायिका के सम्बन्ध

---

[1] पैशाच्या।

में इसमें 'नायिका' का प्रयोग हुआ है, जबकि हेमचन्द्र तथा अन्य सभी आचार्यों ने 'नायक' शब्द ही का प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि या तो यह छापे की गलती के कारण है, या वाग्भट ने भूल से, 'नायक' के स्थान पर 'नायिका' शब्द का प्रयोग कर दिया है, जो कदाचित् सभी संस्करणो में वैसा ही रहता आया है। यहाँ तक कि हिन्दी में आचार्य श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित 'हिन्दी शब्द सागर' (का० ना० प्र० स०) में 'आख्यायिका' की व्याख्या करते हुए वाग्भट का जो मत हिन्दी में उद्धृत किया गया है उसमें भी 'नायिका' शब्द का प्रयोग है। (यह जरा आश्चर्य की बात है कि उक्त शब्द-सागर के प्रणेता को भी आख्यायिका की व्याख्या के लिए वाग्भट जैसे अनन्य साहित्यतस्कर का मत ही उद्धृत करने को मिला।) जो हो, वाग्भट की स्तेनवृत्ति को देखते हुए उसमे इस प्रकार से परम्परामुक्त होने के साहस का आरोप नही किया जा सकता और 'नायक' के स्थान पर 'नायिका' का प्रयोग किसी न किसी प्रमाद के वश ही हुआ ऐसा मानना चाहिए।

इन लक्षणो पर पुनः विचार करना आवश्यक है।

साहित्य दर्पण—लक्षण ग्रन्थो की परम्परा मे विश्वनाथ कविराज कृत यह प्रसिद्ध ग्रन्थ संस्कृत का अन्तिम ग्रन्थ है जिसमें आख्यायिका विषयक सामग्री उपलब्ध है। इसमे पहले कथा और तदुपरान्त आख्यायिका के लक्षण बताए गए है। आख्यायिका के लक्षण ये हैं—

"आख्यायिका कथावस्यात् कवेर्वंशानुकीर्त्तनम्।
अस्यामन्यकवीनाच वृत्त पद्य क्वचित् क्वचित्॥
कथांशाना व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणा छन्दसा येन केन चित्॥"

इसका उदाहरण हर्षचरित दिया गया है।

इसके अनुसार आख्यायिका का स्वरूप कथा के समान ही बताया गया है। इसमें इसके प्रणेता कवि के वंश का अनुकीर्त्तन (प्रशसा) तो होती ही है, अन्य कवियो के वृत्त भी देखने को मिलते है। कही-कही पद्य का प्रयोग भी हो जाता है। इसके अशो के व्यवच्छेद (विभाग) आश्वास कहलाते है। इसमे कही-कही आर्या और वक्त्र तथा अपवक्त्र (या अपरवक्त्र) पाए जाते है।

कथा की व्याख्या विश्वनाथ कविराज ने इन शब्दो में की है—

"कथाया सरस वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्॥

उदाहरण : कादम्बरी ।

इसके अनुसार कथा एक सरस रचना है जिसका निर्माण गद्य ही से होता है । हाँ, कही-कही आर्या और वक्त्र या अपवक्त्र देखने को मिल जाते है । इसके प्रारम्भ में पद्य द्वारा खल आदि व्यक्तियों के वृत्तों की प्रशंसा कर के उन्हें नमस्कार कर लिया जाता है ।

इनमें से आख्यायिका में अन्य कवियों के वृत्त के उल्लेख के अतिरिक्त शेष लक्षण परम्परागत है । करीब-करीब ये ही लक्षण कथा के गिनाए गए है और इसमें सरसता का विशेष ध्यान रक्खा गया है । यह भी कहा गया है कि इसमें पहले विघ्नकारी व्यक्तियों को नमस्कार कर लेना चाहिए ताकि बाद में बाधा न हो । यह एक प्रकार का शकुन है । दण्डी की भांति विश्वनाथ भी नायक को आख्यायिका के वाचक के रूप में स्वीकार नही करते, प्रत्युत अग्नि-कार की भाँति कर्त्ता को ही वाचक मानते है, जो अपना ही नहीं (अपने समीप-वर्ती तथा पूर्ववर्त्ती) अन्य कवियों का उल्लेख भी करे। साहित्य के इतिहास-निर्माण की दृष्टि से यह एक अनुकरणीय लक्षण है और ऊपर विवेचित ग्रन्थों में सब से पहले यहीं मिलता है ।

यहाँ आकर आख्यायिका परिवार पर संस्कृत के आचार्यों की चर्चा समाप्त हो जाती है ।

उपसंहार—उक्त विवेचन से हम कुछ निश्चित निर्णयों पर पहुँच सकते हैं । अत्यन्त संक्षेप में वे इस प्रकार है :—

संस्कृत साहित्य में कहानी का सामान्य स्वरूप—(१) संस्कृत मे कहानी के सहयोगी जितने रूप है उनका यदि आज की कहानी (शॉर्ट स्टोरी) से तुलना की जाय तो क्रमशः न्यूनतर सामीप्य की दृष्टि से उनका क्रम इस प्रकार होगा :—

(क) कथानिका (उदाहरण : ?)	अधिकतम निकट
(ख) उपकथा (उदाहरण चित्रलेखा)	कम निकट
(ग) परिकथा (उदाहरण शूद्रक)	और कम निकट
(घ) खण्डकथा (उदाहरण इन्दुमती)	दूर
(ङ) कथा (उदाहरण कादम्बरी)	अधिक दूर
(च) आख्यायिका (उदाहरण हर्षचरित)	बहुत अधिक दूर

(२) संस्कृत में कथा और आख्यायिका के नाम बहुत पहले से चले आये हैं और लक्षण-साहित्य में मुख्य रूप से इन्हीं की चर्चा हुई है । आश्चर्य नहीं यदि इनकी रचना विश्व भर की अन्य भाषाओं की कहानियों या उपन्यासों की अपेक्षा

सबसे पहले हुई हो। इस सम्बन्ध में इस पुस्तक का सातवाँ उच्छ्वास अव-लोकनीय है।

(३) 'कहानी' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कथानिका' शब्द से हुई है, जो केवल अग्निपुराण में मिलता है।

(४) संस्कृत में एक तो शेष साहित्य की तुलना में आख्यायिका और कथाओं की रचना कम हुई और दूसरे इस वर्ग में भी, आज जिसे हम कहानी कहते हैं उसके आकार-प्रकार की (अर्थात् छोटी किन्तु अपने में सम्पूर्ण) रच-नाएँ इस वर्ग की शेष रचनाओं की तुलना में और भी कम हुईं। यहाँ तक कि संस्कृत में सारी उपलब्ध आख्यायिकाओं, कथाओं आदि की संख्या ३० से ऊपर नहीं जाती। (देखिये परिशिष्ट २) लक्षणों पर विचार करते समय भी आचार्यों ने इसी कृपणावृत्ति से काम लिया है। इसका कारण यह नहीं था, जैसी कि कई क्षेत्रों में, विशेषकर पाश्चात्य समालोचना से प्रभावित क्षेत्रों में, भ्रान्ति है, कि उस काल में मनुष्य का जीवन इतना व्यस्त नहीं था अथवा यह कि संस्कृत साहित्य इनसे अनभिज्ञ था। क्योंकि अगर ऐसा होता तो संस्कृत में न केवल इनके, बल्कि भाण, व्यायोग और वीथी जैसे एकाङ्की नाटकों के उदाहरण नहीं मिलते जिनके अभिनय मे कठिनाई से आध घण्टा लगता था। प्रत्युत इसका कारण एक तो यह था कि ये गद्यप्रधान रचनाएँ हैं जिनकी ओर संस्कृत लेखकों का विशेष रुझान नहीं था और दूसरा यह था कि संस्कृत के साहित्यकार का ध्यान सदैव जीवन के व्यापक से व्यापक पक्ष की ओर रहा, उसके किसी एक अङ्ग विशेष की ओर नहीं। इस प्रकार संस्कृत में कहानियों की कमी का कारण तात्विक अधिक है, व्यावहारिक कम।

(५) संस्कृत के आलोचकों का ध्यान (जहाँ तक कहानी का सम्बन्ध है) अधिकांशतः उसके बाह्य रूप की ओर ही केन्द्रित रहा, यद्यपि कहीं-कहीं उनकी सूझ बहुत गहरी है। आख्यायिका और कथा आदि को लेकर लक्षणों में जो पिष्टपेषण सा दिखाई देता है वह भी इसी कारण है, यद्यपि 'चातुर्यद्योतन' के कारण कहीं-कहीं विवरणों में अन्तर है।

ऊपर बताए गए विवेचन-ग्रन्थों के रचना-क्रम के देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि आख्यायिका आदि के विषय में संस्कृत में ईसा की प्रारम्भिक शता-ब्दियों से लेकर ठेठ १४ वीं सदी के उत्तरार्ध तक विचार-विमर्श होता रहा। इस विचार विमर्श में आद्योपान्त वैसे तो सामान्यतः बहुत कम अन्तर आया है किन्तु जो कुछ भी अन्तर आया है उसका कारण बहुत सी अन्य बातों के अति-रिक्त मूल आख्यायिकाओं के आकार प्रकार के अन्तर को भी मानना चाहिए।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पञ्चतन्त्र आदि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों की जो रचनाएँ हैं उनमें आज की कहानी के बीज भरपूर मिलेंगे।

पाश्चात्य कहानी की मानसिक पृष्ठभूमि और सामान्य स्वरूप—राजनैतिक और व्यावसायिक जीवन की उग्रता ने पाश्चात्य जातियों की एकता को नष्ट करके उन्हें संशयशील, विग्रही और खण्डित कर दिया था। यद्यपि उन खण्डों में स्वतन्त्र रूप से वह योग्यता एवं वरिष्ठता नहीं आ पाई थी जो उनके संगठित स्वरूप में थी, फिर भी वे खण्ड अपने आप में सर्वथा अनुपादेय या हेय नहीं थे। स्थिति यह थी कि एक की श्रेष्ठता अनेक में विभाजित होकर भी सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुई थी, प्रत्युत सभी खण्डों ने अपनी-अपनी श्रेष्ठता को सुरक्षित व सम्वर्द्धित करना चाहा। सामूहिक जीवन की इस अवस्था का प्रभाव वर्गगत जीवन और फलतः व्यक्तिगत जीवन पर भी पड़ा। जीवन को एक व्यापक सत्य के रूप में न देखकर मानव मनोशास्त्री ने उसके गुणों अवगुणों का विश्लेषण करके देखना चाहा। जीवन में घटित होने वाली एक-एक घटनाएँ उस सम्पूर्ण जीवन का कहाँ तक निर्देशन कर सकती हैं, इस बात पर आलोचक का ध्यान नहीं गया जितना कि स्वयं उन्हीं घटनाओं की इकाइयों, उनके बलाबल, उनकी सम्पूर्णता-अपूर्णता पर।

यह निष्पक्ष होकर स्वीकार कर लेना चाहिए कि आधुनिक कहानी इसी विशिष्ट राजनैतिक, व्यावसायिक, मानसिक अवस्था की उपज है। यहीं से इसका बीज डाला गया है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि विशुद्ध साहित्य के रूप में कहानी का कोई मूल्य नहीं है। कम से कम अवकाश में जीवन की आंशिक अभिव्यक्ति की अधिक से अधिक कलात्मक प्रणालियों में कहानी की सादर गणना होती है। इसके अतिरिक्त समय आदि की व्यावहारिक सुविधाओं की दृष्टि से कहानी मनोरञ्जन का अच्छा साधन है।

स्वरूप परिवर्तन क्यों नहीं ?—इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर पश्चिम में कहानी का अच्छा विकास हुआ। वहाँ यद्यपि इसका प्रारम्भ यहाँ की अपेक्षा बाद में हुआ किन्तु इससे अपेक्षाकृत कम समय में उन्नति की। यह उन्नति उसके रूप (कलेवर) और उसके स्वरूप (आत्मा) दोनों को लेकर हुई है। विशेष रूप से इसके रूप में अधिक निखार आया है; कहानी की मूल भावना में जैसा कि उसे पश्चिम में प्रारम्भ से समझा गया, कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। यह होते हुए भी जहाँ तक व्याख्या का प्रश्न है, वहाँ इसके रूप पर इतना अधिक विचार नहीं हुआ जितना इसकी मूलभूत भावना पर। इसका कारण यह था

कि रूप में कितना ही परिवर्तन हो पाश्चात्य कलाकार इसकी आधारभूत भावना को छोड़ने को तैयार नहीं हुए, अन्यथा वह कहानी नहीं कही जा सकती। इसकी जितनी भी परिभाषाएँ हुई हैं उन सब में इस बात को कहीं नहीं भुलाया गया। इसके तीन-चार कारण हैं। एक तो पाश्चात्य साहित्य में आख्यायिका का जीवन सापेक्षतः अल्प है। अतः इसके स्वरूप विवेचन में अधिक अन्तर को अवकाश नहीं मिल सका है जो कि विस्तृत जीवन काल वाले साहित्य के सम्बन्ध में हो जाता है। दूसरी बात यह है कि उनके लक्ष्य साहित्य में उतना परिवर्तन नही हुआ जितना हमारे यहाँ हुआ। यह भी आख्यायिका की व्याख्या की एकरूपता का एक कारण है। तीसरी बात यह है कि पश्चिम में आख्यायिका का विकास तब हुआ जब कि वहाँ विज्ञान ने उन्नति कर ली थी। अतः परस्पर आवागमन के साधनों की बहुलता में विचार-विनिमय एवं सम्प्रेषण के लिए अधिक अवकाश था जिस बात का हमारे यहाँ अभाव था। विचार-विनिमय के साधनों के अभाव में यहाँ की आलोचनाओं में जो मतान्तर आदि उपस्थित किया जाता था वह शङ्का न बनकर संशोधन या नियम बन जाया करता था। यही कारण है कि छोटी-छोटी बातों के सम्बन्ध में हमारे यहाँ अनावश्यक वैषम्य देखने को मिलेगा। चौथी बात यह है कि यहां के आलोचक विवेच्य विषय की अपेक्षा अपने आप को अधिक महत्व देते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि आख्यायिका का स्वरूप निश्चित न हो सका। पश्चिमी साहित्य में इसका विपरीत हुआ है जिससे विवेच्य विषय की मौलिकता पर कोई आघात नहीं पहुँचा है। वरञ्च उसकी मुहुर्मुहु पुष्टि हुई है। कहानी के स्वरूप में मौलिक अन्तर न होने के कारण इसकी जितनी समालोचनाएँ की गईं उनमें अभिव्यक्ति की विभिन्नता ही है, अभिव्यक्त की नहीं।

पाश्चात्य आलोचकों के विशिष्ट मत—कहानी की पाश्चात्य समालोचना पद्धति पर इतना सामान्य विवेचन करने के पश्चात् हमें वहाँ के आलोचकों के विशिष्ट मतों की परीक्षा करनी चाहिए ताकि हम कहानी का वास्तविक स्वरूप समझ सकें। ये मत नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

मैथ्यूस—(१)"A short story deals with a single character of a series of emotions called forth by a single situation. The short story must be an organic whole........It differs from the novel chiefly in its essential unity of impression." –Brander Mathews.

अर्थात् कहानी में एक ही चरित्र या एक ही घटनात्मक स्थिति में विभिन्न भावों का चित्रण होता है। वह अपने आप में पूर्ण होनी चाहिए। उपन्यास से उसका भेद प्रधानतया उसकी संवेदना की अनिवार्य एकता में ही परिलक्षित होता है। —ब्रैंडर मैथ्यूस

फास्टर—(२) "It (The short story) is a series of crisis, relative to each other and bringing about a climax" —John Faster.

अर्थात् असाधारण घटनाओं की वह शृङ्खला जो परस्पर सम्बद्ध हो कर एक चरम परिणाम पर पहुँचाने वाली हो, कहानी है। —जॉन फास्टर

वेल्स—(३) "The short story is a fiction that may be read in something under an hour, and so that it is musing and delightful; it does not matter whether it is as trivial as a jap print of insects seen closely between grass items or as spacious as.... It does not matter whether it is human or inhuman or whether it leaves you thinking deeply or radiantly but superficially pleased. It may be horrible or pathetic or beautiful or profoundly Illuminating, having this essential that it should take from 15 to 50 minutes to read." —H. G. Wells.

अर्थात् छोटी कहानी या आख्यायिका एक जैसा घटना साहित्य है जो घण्टे के अन्दर-अन्दर पढ़ा जा सके, साथ ही जो रोचक और मनोरञ्जक हो। चाहे वह लघु हो या वृहत्, मानव सापेक्ष हो या मानव निरपेक्ष; चाहे वह समाप्त होते-होते आपको गम्भीर विचार-सागर में डुबोता जाय अथवा तीव्र आनन्द में छोड़ दे; चाहे वह भयावह हो अथवा करुण, हास्यजनक हो अथवा शृङ्गारमय, या गहरे चमत्कार से ओत-प्रोत; उसमें जो बात अनिवार्य है वह यह कि उसके पढ़ने में पन्द्रह मिनट से लेकर पचास मिनट से अधिक समय न लगे। एच. जी. वेल्स

एक अन्य स्थल पर स्वयं वेल्स ने कहा है :—

"It can not be defined except as one of the most exacting and most satisfying forms of literary expression."

अर्थात् साहित्यिक अभिव्यञ्जना के सबसे अधिक मर्मस्पर्शी एवं सन्तोष-प्रद स्वरूपों में कहानी एक स्वरूप है। यह कहानी की अन्यतम परिभाषा है।

बेट्स—(४) "The short story is the most flexible of all prose-forms. It can be anything from a prose poem without plot or character, to an analysis of the most complex human emotions. It can deal with any subject under the sun, from the death of a horse to a young girl's first love affair."

—H. E. Bates.

अर्थात् कहानी गद्य के समस्त रूपों में सबसे अधिक लचकीला रूप है। कथावस्तु अथवा चरित्र-चित्रण से रहित गद्य-काव्य से लेकर अत्यन्त उलझी हुई मानवीय संवेदनाओं के विश्लेषण तक को यह अपना क्षेत्र बना सकती है। कल्पना की परिधि में आने वाले किसी विषय को एक घोड़े की मृत्यु से लगाकर किसी नवयुवती के प्रथम प्रणय-व्यवहार तक को लेकर यह चल सकती है।

मागहम (५) "The short story must have a well-knit beginning, a middle and an end."—S. Mogham.

अर्थात् कहानी का प्रारम्भ, मध्य एव अन्त सुव्यवस्थित होना चाहिये।

ओ ब्रायन—(६) "The first test of a short story is the measure of how vitally compelling the writer makes his selected facts or incidents. The test may be conveniently called the test of substance...........But a second test is necessary if the story is to take rank above other stories. The true artist will seek to shape the living substance into the most beautifull and satisfying forms by skilful selection and arrangement of the materials, and by the most direct and appealing presentation of it in portrayal and characterization." —O. Bryan.

अर्थात् कहानी की पहली कसौटी इस बात में है कि कहानीकार अपनी निर्वाचित घटनाओ एवं बातो को कितने गहरे एव प्रभावशाली रूप में व्यक्त कर सकता है। इसे सुविधा के लिए हम तत्त्व अथवा तथ्य-सम्बन्धी कसौटी कह सकते हैं। किन्तु कहानी में अद्वितीयता लाने की एक और जांच है। सच्चा

कलाकार जीवन-तत्त्व को उपकरणों का कौशलपूर्ण चयन एवं व्यवस्था करके उसे भाषाशैली और चरित्र चित्रण के माध्यम से अत्यन्त सुन्दर और सन्तोषप्रद स्वरूप में सङ्गठित करता है। —प्रो. ब्रायन

एलब्राइट—(७) "The short story of today aims not merely to recount a series of interesting events in chronological or logical order, but to create a vivid picture of a bit of life in such a way as to render a preconceived idea or impression. It presents people and events in their relation to one another and their environment." —Albright.

अर्थात् आजकल की कहानी का उद्देश्य केवल ऐतिहासिक अथवा तर्क संगत क्रम में जीवन को कुछ रोचक घटनाओं की पुनरावृत्ति करना नही बल्कि जीवन के एक छोटे-से अंश का एक ऐसा स्पष्ट चित्र खीचना है जिससे पाठक के हृदय में लेखक की पूर्व निर्धारित भावना या संवेदना घर कर जाय। इसमें व्यक्तियो और घटनाओं को उनके परस्पर सम्बन्ध से तथा उनके आस-पास के वातावरण को ध्यान मे रखते हुए व्यक्त किया जाता है।

बुलेट—(८) "The short story exists for the sake of an illuminated and illuminating moment of beauty or of terror, of wonder or of sheer surprise." —Bullet

अर्थात् सौन्दर्य अथवा आतंक, आश्चर्य अथवा साधारण विस्मय, के चमत्कार से भरे हुए तथा चमत्कार उत्पन्न करने वाले एक क्षण की सिद्धि करना ही कहानी का लक्ष्य है। बुलेट

स्ट्रांग—(९) "A short story is a short piece of prose fiction. We need ask no closer definition. All we need require is that each short piece of prose fiction should have an aim worthy of an artist and should succeed in reaching it. Plot or no plot, situation or no situation, character study or no character study, manner as you please, setting what you fancy, length anything within reason; these are the needs for the short pieces of prose fiction of the future

plus the free extension of the term "Short story" to cover them all. Without that freedom, the art of short story can neither develop nor thrive."

—L. A. G. Strong

अर्थात् कहानी एक लघु गद्यकथा होती है। इससे अधिक सूक्ष्म परिभाषा की अपेक्षा हमें नही होनी चाहिये। प्रत्येक गद्य कथा के लिए जो उपकरण आवश्यक है वे है केवल एक सच्चे कलाकार की कला के अनुकूल एक निश्चित ध्येय एवं वहाँ तक पहुँचने में सफलता की प्राप्ति। कथावस्तु कठिन स्थिति, अथवा चरित्रावलोकन, हो या न हो स्वरूप शैली, स्वरूप विधान, एवं लम्बाई-चौड़ाई युक्ति संगत सीमा के अन्दर कैसी ही क्यो न हो भावी गद्य-कथा वाङ्मय के इस लघु रूप की रचनाओं के लिए ये सब उपकरण आवश्यक है, और इसके साथ आवश्यक है—'लघुकथा' शब्द का एक व्यापक अर्थ में प्रयोग, जिसमें इसकी ये सभी आवश्यकताएँ भी पूरी हो सकें। जब तक कहानी को यह स्वतन्त्रता प्राप्त नही होगी, तब तक कहानी कला न पल्लवित हो सकती है न पुष्पित।

(१०) "A short story is a narrative short enough to be read in a single sitting, written to make an impression on the reader, excluding all that does not forward that impression, complete and final in itself."

—E. A. Poe

अर्थात् एक ऐसा संक्षिप्त आख्यान है जो सुगमता से एक बैठक में पढ़ा जा सके और जिसका उद्देश्य पाठक पर एक ही प्रभाव डालना हो, कहानी है। उस सम्पूर्ण और स्वतः पूर्ण प्रभाव की ओर न ले जाने वाला कोई भी विवरण कहानी में नही आना चाहिए।

(११) ह्यूवाकर मानव के प्रत्येक क्रिया कलाप को कहानी मानते है।

(१२) पोकाक के अनुसार कहानी का, प्रत्येक भाग प्रसंगानुकूल और उचित तो होना ही चाहिए। उसके प्रत्येक भाग, प्रत्येक शब्द और वाक्य का सम्बन्ध भी कथा-वस्तु, चरित्र या वातावरण से होना आवश्यक है।

पाश्चात्य मतों की परीक्षा—इन मतों से कहानी का स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है। पूर्णता की दृष्टि से प्रत्येक मत की अलग अलग विवेचना की जाती है।

(१) **ब्रैण्डर मेथ्यूस**—आपके मत से कहानी का सार उसकी संवेदना

की एकता है चाहे वह चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में हो चाहे घटनाओं के सम्बन्ध में। हमारी दृष्टि से इस मत में पर्याप्त बल है यद्यपि इस परिभाषा को ज्यो का त्यो इसलिए स्वीकार नही किया जा सकता कि उसमें कहानी साहित्यिक अभिव्यक्ति का कौनसा रूप है इसे स्पष्ट नही किया गया। यह ध्यान में रखने योग्य है कि ब्रैण्डर मैथ्यूस पो के बाद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने कहानी-कला के स्वरूप की विवेचना की है। आपका मत साधारण तथा बहुत प्राकृतिक माना जाता है।

(२ जान फॉस्टर—आपका सिद्धान्त सामान्यतः ठीक है किन्तु यह आवश्यक नही कि कहानी कई घटनाओ का जाल हो। घटनाओ से लेखक का अभिप्राय कदाचित एक ही मूल घटना की विभिन्न परिस्थितियों से है।

(३) एच. जी. वेल्स—आपने कहानी की परिभाषा को दो लक्षणों में विभक्त किया है :—

(अ) कथा-तत्व का अस्तित्व (आ) एक निश्चित लघुता।

(अ) का लक्षण साधारणतया विवादहीन है किन्तु किसी भी अवस्था में कहानी को लघुता को एक निश्चित सीमा मे बांधकर रक्खा नही जा सकता।

(४) एच० ई० वेट्स—गद्य के लचकीले रूप को कहने से इसके सिवा और क्या अर्थ हो सकता है कि उसका विस्तार (scope) असीमित है ? इसी बात को आगे की पंक्तियों में दुहराया गया है। इस मत से न हम कहानी का स्वरूप जान सकते हैं न उसका कोई भी अनिवार्य लक्षण। वस्तुतः इस मत में परिभाषा की वैज्ञानिकता का अभाव ही नही, भ्रान्ति की बहुत बड़ी गुञ्जाइश है।

(५) एस० मॉगहम—आपका मत कहानो का स्वरूप निर्धारित करने में काफी हद तक सहायक नही होता। यह बात और है कि सॉमर सैट मॉगहम एक अत्यन्त लोकप्रिय एव उत्कृष्ट कोटि के कथाकार हैं।

(६) ओ ब्रायन—आपके मत के अनुसार कहानी की जो दो कसौटियाँ निर्धारित की गई है उनका विश्लेषण तीन लक्षणों से हो सकता है :— (अ) कुछ घटनाएँ, (आ) उन घटनाओ का कुशल निर्वाचन, (इ) भाषा-शैली तथा चरित्र चित्रण द्वारा उन घटनाओ की सबल अभिव्यक्ति। इस विश्लेषण से हम कहानी के अत्यन्त निकट पहुँच जाते हैं। वास्तव में इस परिभाषा में कहानी के प्रमुख तत्व आ जाते हैं। किन्तु मुख्यतः इस शब्दावली में अच्छी कहानी के गुणों की चर्चा है, कहानी की परिभाषा प्रस्तुत करने की ओर कोई ध्यान नहीं रक्खा गया है।

(७) एल. ब्राइट—आपने कहानी में घटना और पात्रों की अपेक्षा एक

निश्चित लक्ष्य या संवेदना पर अधिक बल दिया है। जीवन के एक छोटे से खण्ड के चित्रण के द्वारा एक गहरी संवेदना जगाना कहानी का लक्ष्य माना गया है। यह मत एक प्रकार से पश्चिम के कहानी विषयक शास्त्रीय लक्षणों का प्रतिनिधित्व करता है।

(८) बुलैट—आपके मत में कहानी का अनिवार्य लक्षण जीवन का एकांगी चित्रण है, जो सही है।

(९) एल० ए० जी० स्ट्रांग—इस परिभाषा में कहानी के मुक्त विचरण की वकालत अवश्य की गई है किन्तु इसके अनेक खतरे हैं, जिनके कारण परिभाषित विषय की सीमाएँ निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है।

(१०) ई० ए० पो०—ये आधुनिक कहानी के जनक कहे जाते हैं। किन्तु जहाँ इसका 'एक प्रभाव' वाला लक्षण कहानी दर्शन का एक नारा हो चला है वहाँ कहानी की लघुता की सीमा को शब्दों में अथवा समय की इकाइयों में बाँधा नहीं जा सकता।

(११) ह्यू वाकर—एक प्रभाववादी परिभाषा है।

(१२) पोकाक—आपने वस्तुतः शास्त्रीय विचार धारा का अनुसरण किया है।

हिन्दी साहित्य में कहानियों का श्रीगणेश—

जिस वेग से तथा जागरूकता के साथ पाश्चात्य कहानी साहित्य ने उन्नति की वह भारत के लिए ईर्ष्या की वस्तु रही है। जिस युग में पाश्चात्य कहानी साहित्य धडाधड जीवन के बहुविध पक्षों की रोचक व्याख्या निकाल रहा था, उस युग में हम लोग नायक-नायिकाओं के शृङ्गार प्रसाधन में उनके हाव-भावों में, उनकी लास-लीलाओं में लगे हुए थे। कथा कहानियों की बात तो दूर, गद्य मात्र उस युग मे हमारे लिए अर्ध स्वप्न सा था। जब योरोपीय देश इस दौड़ में बहुत आगे निकल गए तब हमारी नींद खुली। उस समय तक हमने यह भी नहीं सोचा कि चलो हमारी मातृभाषा संस्कृत में जो रत्न भरे पड़े है उन्ही की छानबीन करके अपने इस नए साहित्य को गति दें। उनके अनुकरण पर रचनाएँ प्रस्तुत करने वाली बात तो हमारे ध्यान ही में नहीं आई। लक्ष्य साहित्य के इस अभाव में लक्षण साहित्य का दुष्काल तो निश्चित ही था। जब हमने इतर साहित्य की बात सुनी और देखा कि उसमें तो अनेक नए रत्न भरे हुए है तो हमने भी अपना भण्डार भरने की चेष्टा की और साहित्यिक जड़ता के निवारण की ओर कदम उठाया।

पश्चिम का अनुकरण—सबसे पहला कदम अनुकरण का ही हो सकता था। पाश्चात्य और अन्य रचनाओं की शैली आदि की नकल की गई और वहाँ की कहानियों की मूलभूत भावना को समझने की चेष्टा की गई। यह सब उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ। यह स्वाभाविक ही था और भारतीय साहित्य को जीवित रखने के लिये यह आवश्यक था। अनुकरण के ढाँचे पर खडी हुई ये भारतीय रचनाएँ जिस मौलिकता एवं नवीनता को जन्म देंगी वह विश्व साहित्य को विस्मय में डालने वाली होगी। एक ऐसे पथिक की कल्पना कीजिए जो अपना निवासस्थान बहुत पीछे छोड़ आया और जो लम्बे व अज्ञात सुनसान मरुस्थल की उत्तप्त रेत में क्रमशः बढ़ता जा रहा हो। जिस प्रदेश से वह गुजर रहा है उसके पास कोई अपरिचित व्यक्तियों की अच्छी बस्ती है। किन्तु उसका मार्ग उस बस्ती की ओर नहीं जाता। क्या यह उस पथिक के हित में नहीं कि वह अपरिचित सुनसान मरुस्थल की बालू में जलते रहकर नष्ट होते जाने की अपेक्षा उस बस्ती में जाकर अपना मार्ग उधर से कहीं बनाए और तद्द्वारा अपने उद्देश्य की सिद्धि करे। अज्ञात व भीमाकार भयङ्कर बर्फ के पहाडों की चढ़ाई करनेवाले व्यक्ति जब आगे अपना मार्ग नहीं देख पाते और उन्हें आगे जाने में कोई लाभ नहीं दीखता तो या तो वे पुनः अपने किसी नीचे के शिविर में लौट आते है या मार्गान्तर कर देते हैं। आधुनिक भारतीय साहित्यकार ने भी ऐसा ही किया। यहाँ की मूल कहानियों के समान उनके लक्षणों आदि पर भी पश्चिम की छाप स्पष्ट है। इन मतों में कहीं भी प्राचीन आख्यायिका, कथा आदि के लक्षणों का प्रभाव नहीं है। इनमें से कुछ मत नीचे दिये जाते है—

भारतीय आलोचकों के कहानी-विषयक मत—

(१) कहानीकार का उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का एक अङ्ग दिखाना है। —प्रेमचन्द

(२) सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस की सृष्टि करना ही कहानी का उद्देश्य है। —प्रसाद

(३) घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है। साहित्य के सभी अङ्गों के समान रस उसका आवश्यक गुण है। —चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

(४) जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के सङ्घर्ष से उलटा सीधा चलता रहता है। इस सुबृहत् चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति का प्रदर्शन कहानी होती है। —इलाचन्द्र जोशी

(५) कहानी उस महान घटना का संक्षिप्त वर्णन है जो सर्वाङ्गपूर्ण और साधारण से भिन्न हो और जिसमें मानव प्रकृति का कोई मौलिक रहस्य व्यक्त किया गया हो।
—भारतीय

(६) कहानी जीवन रहस्य की अभिव्यञ्जना है। वह एक लघु कथा होती है जिसमें जीवन के किसी एक तत्त्व, किसी एक मर्म और लक्ष्य की झलक रहा करती है। एक अनिश्चय, एक दुविधा तथा संशय चारों ओर से केन्द्रीभूत करके अन्त में स्पष्ट किया जाता है। जब तक कहानी में किसी चरित्र विशेष की सृष्टि नहीं होती किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा का यथार्थ विशिष्ट प्रति-विम्ब नहीं झलकता, उसके जीवन के रागात्मक उच्छ्वास शब्दों की काया नहीं ग्रहण करते तब तक कोई भी कहानी सही अर्थों में कहानी नही होती।
—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

(७) आख्यायिका चाहे किसी लक्ष्य को सामने रखकर लिखी गई हो या लक्ष्य विहीन हो, मनोरञ्जन के साथ-साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है।
—राय कृष्णदास

(८) आधुनिक कहानियों का ध्येय है मनुष्य के मनोरहस्यों का उद्घा-टन करना। इसमें अनियन्त्रित और अप्रासङ्गिक भावुकता के प्रदर्शन का अवकाश नहीं। वह कहानियाँ सफल समझी जाती हैं जिनमें कहानी लेखक निर्लिप्त भाव से एक ऐसी दुनिया की सृष्टि करदे जो वास्तविक जगत से परे न हो। कहानी में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि थोडो देर के लिए पाठक सब कुछ भूल कर उसके पात्रों की भावनाओं के साथ बहने लगे।
—विनोदशङ्कर व्यास

(९) आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है जिसमें लेखक कल्पना शक्ति के सहारे कम से कम पात्रों और चरित्रों के द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसङ्गों की सहायना से मनोवांछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।
—डॉ० श्रीकृष्णलाल

(१०) आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को ध्यान में रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है।
—आचार्य श्यामसुन्दरदास

(११) छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करनेवाली व्यक्ति-केन्द्र घटना या घटनाओं के आर्थिक उत्थान पतन और मोड़ के साथ-पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला वर्णन हो।
—गुलाबराय

ऊपर की सब मननशील आलोचनाओं में हमें दो बातें विशेष रूप से

दृष्टिगोचर होती है:—

(१) कहानी में मानव जीवन के किसी एक अंग का वर्णन होता है।

(२) कहानी मानव के मनोरहस्यो को उद्घाटन करना ही अपना चिरन्तन ध्येय समझती है।

इन मतों की समष्टिगत परीक्षा—यहाँ तक आने पर कहानी का स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है। तब इस स्वरूप को कम से कम किन शब्दों में रख सकते है इस बात पर विचार करना चाहिए। कहानी का क्षेत्र फिर भी इतना व्यापक है कि उसको कुछ शब्दो में बाँधकर इदमित्थ नही कहा जा सकता। हम यह स्वीकार करते है कि अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध साहित्यिक एच० जी० वेल्स के इस मत में पर्याप्त बल है कि कहानी साहित्यिक अभिव्यक्ति के सबसे अधिक मर्मस्पर्शी एवं आनन्द प्रदान करने वाले भेदो में से एक है। केवल इसके अतिरिक्त कहानी की परिभाषा अन्यथा नही हो सकती। किन्तु प्रायः सभी पाश्चात्य समालोचक जिनमें कुछ कहानी के प्रवर्तक भी हैं तथा जिनमें स्वयं वेल्स शामिल हैं इसकी संक्षेप वृत्ति पर अधिक जोर देते हैं। वेल्स का मत है कि कहानी १५ मिनट से लेकर ५० मिनट तक के अन्दर अन्दर पढी जाने योग्य होनी चाहिए। एडगर एलन पो का भी कुछ ऐसा ही मत है। अंग्रेजी के विख्यात आलोचक हेनरी हडसन भी कहते है "एक बैठक में जो सुगमतया पढी जा सके वही कहानी है।" कथा साहित्य के मर्मज्ञ जेम्स डब्लू लिन ने कहानी की अच्छी परिभाषा देने का प्रयास किया है। वे कहते है "किसी एक पात्र के जीवन प्रवाह में किसी मुडाव के स्थल की अर्थात् किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना की नाटकीय अभिव्यञ्जना ही कहानी है। नाटकीय अभिव्यञ्जना का कदाचित् यहाँ प्रतीक रूप में प्रयोग हुआ है और इसका अभिप्राय अनिश्चय और द्वन्द्व के वातावरण से है जिसकी तीव्रतम स्थिति 'चरम' (climax) कहलाती है। ऐसी ही परिभाषा आचार्य श्यामसुन्दरदास की है।

ध्यान से देखें तो किसी भी कहानी को हम समय की इकाइयो में अर्थात् घण्टों, मिनटो या सैंकिण्डों में बाँधकर रख ही नही सकते। अतः उक्त विद्वानों के इस विषय में जितने भी मत हैं उन्हे संकेतमात्र समझना चाहिए। यदि उसमें कहानीपन हुआ तो चार पंक्ति की एक छोटी सी कहानी भी उतनी ही मनोरञ्जक और सफल हो सकती है जितनी तीन या चार हजार शब्दों की लम्बी कहानी। इस विषय में जी० एन० पोकाक ने एक बड़ी महत्वपूर्ण बात लिखी है जिसे नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है—

"कई वर्ष पूर्व सबसे छोटी कहानी के लिए एक पारितोषिक रक्खा गया

था। जिसे वह प्राप्त हुआ उसकी कहानी इस प्रकार थी—

"मुझे भूतो मे विश्वास नही है", एक भद्र पुरुष ने रेलवे कम्पार्टमेण्ट के एक साथ के व्यक्ति से कहा।

"क्या ऐसी बात है ?" दूसरे ने उत्तर दिया।

और वह गायब हो गया।

चौबीस शब्दो की यह कहानी उतना ही बल रखती है जितना कि चौबीस सौ शब्दो की विदेशी या हमारे यहाँ की कोई कहानी। जयशङ्करप्रसाद की 'गुण्डा' और रडयार्ड किपलिंग की 'द मैन हू वाज' कहानियाँ अपनी लम्बाई के लिए प्रसिद्ध हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि कहानी में सक्षिप्तता का ध्यान पाठक के रुचि निर्वाह के अनुपात तक ही रक्खा जा सकता है। इसी बात को निषेधात्मक पद्धति से यो कहा जा सकता है कि कहानी विस्तार की अपेक्षा सक्षिप्तता पसन्द करती है।

हम यह भी नही कह सकते कि कहानी अपने पात्र के जीवन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना का चित्रण करती है। ठीक इसके विपरीत पात्र के जीवन की एक तुच्छ से तुच्छ घटना भी कहानी मे कहानीपन ला सकती है, क्योकि जीवन का क्षेत्र बड़ा व्यापक है और कहानीकार अपनी कहानी के लिए अपने पात्रो के विशाल जीवन की इकाई के प्रत्येक स्थल को देखकर चलने की धीरज की गुञ्जायश नही रख सकता। वह तो किसी एक घटना को ले लेता है और उसे कागज पर ला उतारता है। वही घटना पाठक को रुलाती है, हँसाती है, नचाती है, सब कुछ कराती है, बस। यदि परिवर्तन ही प्रधान होता तो पचासो अच्छी कहानियाँ अवश्य ही प्रसिद्ध नही होती जिनकी घटनाओ ने पात्र के जीवन में कोई परिवर्तन नही डाला है। सच देखे तो परिवर्तन की यह बात पराकाष्ठा या चरम स्थिति का गलत अर्थ लगाना है। किन्तु जैसा कि अगले प्रकरणो से प्रकट होगा, कहानी की घटना अत्यन्त साधारण होते हुए भी साधारण से भिन्न होती है। यही कहानी की विशेषता है।

तीन विशेषताएँ—उक्त विवेचन से कहानियो की तीन विशेषताएँ स्पष्ट है :—

(१) कहानी मे किसी प्राणी, मुख्यतः मनुष्य के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक घटना विशेष का चित्रण होता है जिसका उद्देश्य प्रधानतया जीवन-रहस्यो का उद्घाटन है।

(२) उस घटना विशेष को लेकर चरित्रो की विषमता या सघर्ष द्वारा उसकी तीव्रतम स्थिति का दर्शन कराया जाता है।

(३) कहानी का कलेबर संक्षिप्त होता है।

किसी भा अच्छी कहानी को पढ़कर हमें उसमे चित्रित वातावरण की एक झाँकी हा मिलती है न कि उसका अविकल परिचय। यह तभी हो सकता है जबकि उसमे एक विशेष घटना या घटना के अन्तर्भूत बहने वाली भावधारा के उद्रेक का सकेत करके उसके तीव्रतम स्वरूप का दर्शन कराया जाय अर्थात् उस घटना या भावधारा ही को लेकर पाठक को एक ऐसी स्थिति तक खींच ले जाया जाय जहाँ पहुँच कर वह एक आकस्मिक विस्फोट के लिए तैयार हो जाय। दूसरे शब्दों मे पाठक के हृदय मे 'अब क्या होगा' से लेकर 'बस' तक ही सीमा आजाय। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि पाठक को अन्तिम सीमा तक पहुँचने की बात का ध्यान नही रहना चाहिए। उसे ऐसा लगे कि कोई उसे ज्वालामुखी के ऊपर स आखो मे पट्टी बाँधकर ले जा रहा हो और ठीक उसके मुख पर पहुँच कर उसकी पट्टी खोलदे। और कहानी जब समाप्त होती है तो निश्चित ही वह ज्वालामुखो इस प्रकार फूट पड़ता है कि पाठक की सारी संवेदनाएँ उसके गर्दगुबार के साथ एक विस्फोट करके उड़ जाती है और पाठक हक्का-बक्का होकर देखने लगता है। इस स्थिति को उपस्थित करने के लिए जब तक एक विशिष्ट मार्ग का अवलम्बन नही किया जायगा तब तक लेखक अपने उद्देश्य में सफलता नही प्राप्त कर सकेगा। कहानी एक बरसाती नदी की भाँति केवल एक ओर द्रुतगति से बढ़ती है। इधर-उधर झाँकने की, पहाड़ी झरने की भाँति छीटे उछालने की, न तो उसे अनुमति ही है और न अवकाश ही। इसी बात को लेकर कहा जाता है कि कहानी में एक हो संवेदना होती है। हिन्दी के ख्याति प्राप्त कहानोकार प्रसादजो न कहानी की उपमा किसी स्थल पर खेलते हुए एक गोलमटोल शिशु से दी है जिसकी झाँकी एक तेज चलती हुई सवारी पर चढ़े हुए व्यक्ति का केवल दो क्षणो के लिए मिलती है। वस्तुतः कहानीकार का उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह पाठक को रमणीक मार्गो से ले चलता हुआ किसी बीहड़ जङ्गल में छोड़ दे।

कहानी की परिभाषा—इन सब बातो को देखते हुए हम कहानी की परिभाषा इस प्रकार बता सकते हैं—कहानी वह स्वतःपूर्ण रचना है जिसमें जावन के किसी एक तत्व, मर्म अथवा लक्ष्य की एक ही घटनात्मक स्थिति में अभिव्यक्ति हो। इस परिभाषा को एकांकी नाटको की परिभाषा से भिन्न करने के लिए कह सकते है कि कहानो का ढाँचा सम्पूर्ण रूप से कथोपकथन के आधार पर हो नही बनता। साहित्य के अनक अङ्गो से कहानी किस प्रकार भिन्न है इसका विवेचन तीसरे प्रकरण में किया जायगा। कहानी की परिभाषा करते

समय 'एक संवेदना' का प्रयोग बहुत किया जाता है।

'एक संवेदना' की व्याख्या—यहाँ 'एक संवेदना' मूल रूप से पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र का शब्द है। जिसका पर्यायवाची शब्द प्रभावान्विति (unity of impression) है। शुद्धता की दृष्टि से इसे (Singleness of impression) कहना चाहिए। 'एक संवेदना' के लिए इन बातों की आवश्यकता है—

१—घटना एक हो, अविच्छिन्न हो, और सुलझी हुई हो। उपकथाएँ ` हों, हों तो प्रतीक रूप मे या संकेत रूप मे आ सकती है।

२—कहानी का प्रत्येक पात्र उस कथा से सम्बन्धित हो।

३—घटना की दिशा एक हो, जो पराकाष्ठा तक पहुँचाने में समर्थ हो।

४—लेखक के उद्देश्य की पूर्ति में सभी पात्र एवं घटना की दिशा सीधे या उल्टे रूप मे सहायक हों।

५—भाषा, भाव और शैली का एकता के आधार पर रस की एकता हो।

६—जहाँ तक हो सके देश और काल की अन्विति का ध्यान रखा जाय। जहाँ समय में कोई बड़ा व्यवधान हो तो वह गौण होकर प्रायः कहानी के अन्तरङ्ग में आवे।

'एक सवेदना' की निष्पत्ति के लिए (१) संक्षेप वृत्ति, (२) अनावश्यक वर्णन-विस्तार का त्याग; ये दो तत्व सहायक होते है। 'सक्षेप-वृत्ति' में चरित्रों की न्यूनता वातावरण का संकोच आदि सभी आ जाते है।

हम प्रसादजी की 'देवरथ' नामक एक कहानी लेकर उक्त लक्षणों के आधार पर यह सिद्ध करेंगे कि एक कहानी में एक ही संवेदना होती है।

(१) घटना संक्षेप में यों है :—

कलिंग का राजवैद्य आर्यमित्र अपनी वाग्दत्ता भावी पत्नी का पता लगाने के लिए, जो संसार को दुःखपूर्ण समझकर शान्ति के लिए बौद्ध संघ में आकर भिक्षुणी बनी थी, बिहार मे दीक्षित हुआ एवं उसे वहाँ प्राप्त कर उससे सघ को छोड़कर दाम्पत्य जीवन बिताने का प्रस्ताव किया। किन्तु सुजाता ने आर्यमित्र से कहा कि संघ के बन्धनों को तोड़ने का साहस नही कर सकती। फिर उसने इतने दिनों संघ में रहकर एक अभूतपूर्व लांछना का उपार्जन किया है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं है। यद्यपि अब भी आर्यमित्र से प्रेम करती है। संघ के अध्यक्ष ने जब यह सुना तो उसने सुजाता को धर्म द्रोह के अपराध में मृत्यु दण्ड सुना दिया। प्रातः काल जब रथयात्रा के जुलूस में उसने आर्यमित्र को देखा तो उसने उसके साथ भाग चलने का सङ्कल्प कर लिया, किन्तु जब

कोलाहल में आर्यमित्र ने उसकी पुकार नहीं सुनी तो उसने कूदकर रथ के भीषण चक्र के नीचे अपने आपको सदा के लिए समर्पित कर दिया।

घटना स्पष्ट रूप से एक है, अविच्छिन्न है और सुलझी हुई है। कोई उपकथा नहीं है। अवश्य ही हम सुजाता के उस निश्चय का सूत्र नहीं पाते जिसके द्वारा उसने सर्वं प्रथम संघ में, प्रवेश करना स्वीकार किया था, किन्तु हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यही कहानी का कहानीपन है।

(२) कहानी के तीन पात्र है। सुजाता, आर्यमित्र, संघस्थविर। पहले दोनों का घटना से सीधा सम्बन्ध है। संघस्थविर, जो बिहार के चरित्र का प्रतीक है, घटना का सूत्रधार प्रतीत होता है।

(३) पराकाष्ठा सुजाता का आत्मसमर्पण है। कहानी का वातावरण ऐसा बना है कि हमें आरम्भ से ही कुछ अमङ्गल की आशंका होने लगती है। घटना देवरथ के नीचे आकर समाप्त हो जाती है, नायिका की भाँति ही।

(३) लेखक का उद्देश्य बौद्ध संघों की अनैतिकता एवं भीषणता का चित्रण करना है। सुजाता एवं आर्यमित्र अपने वचनों द्वारा एवं संघस्थविर अपने व्यवहार द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते है। घटना स्वयं उसी उद्देश्य की ओर बढती है।

(४) भाषा प्रसादजी की आपादमस्तक वही है। भाव से हमारा अभिप्राय चरित्रों के विचार क्रम आदि से है। शैली में भी ऐसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ है कि जिससे संवेदना को आघात पहुँचे।

(६) स्थान आद्योपान्त एक ही है बिहार का कम्पाउन्ड। काल में भी कोई भारी व्यतिक्रम नहीं है। घटना केवल एक रात के अन्तर्निवेश के कारण मुड़ जाती है।

एक से अधिक संवेदना होने पर कहानी को किस प्रकार आघात पहुँचता है इसे हम तीसरे प्रकरण में देखेंगे।

कहानी का क्षेत्र—हमने देखा कि कहानी साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक रूप है तथा इसका सम्बन्ध किसी घटना अथवा चरित्र की विशेषता से होता है। अब हमें देखना चाहिए कि इसका क्षेत्र क्या है। आकार प्रकार में छोटी लगनेवाली तीन अक्षरों की यह कहानी तीनों लोकों, तीनों कालों को सहज में ही माप लेती है। इसका क्रीड़ा क्षेत्र चराचर ब्रह्माण्ड है और उससे भी परे कल्पना के वे लोक जिनमें केवल कवि ही रमण किया करता है, इसमें अतिरञ्जना की कोई बात नहीं। कहानी के उपादान हमें बच्चों, युवकों, बूढ़ों, स्त्रियों, पुरुषो, पेड़ पौधों, सड़क पर पड़े पत्थर-ढेलों, आकाश के मूक नक्षत्रों, बहती

नदियों, जमे हुए पहाड़ों, खौफनाक जङ्गलों सभी में अनायास मिल सकते हैं। जड़-जङ्गम का भेद कहानीकार के लिए चिन्ता का विषय नहीं। अतएव कहानी का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। वास्तव में कविता के समान उसकी भी वस्तु-विस्तार के विषय में कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

किन्तु मनुष्यों की इस सृष्ट कहानी में मनुष्यों को ही प्रधानता मिले तो कौनसा आश्चर्य। वैसे मनुष्य ने सारे संसार पर अपना एक जाल फैला रक्खा है। अपने को उसने प्रज्ञाशील घोषित करके अपने आप पर प्राणियो में शिरोमणि के पद का आधान कर लिया है। हम उसी की बातें सुनते है, उसी के हँसने रोने गाने में सम्मिलित होते हैं, उसी की तान में तान मिलाते है। इस जाल में हम इतने जकड़े हुए हैं कि हमें बेचारे पशु पक्षियों के गाने रोने को सुनने को अवकाश नहीं है। पेड़ पौधों और पहाड़ों नदियों की तो कौन बात ? बेचारा कहानीकार तो हम जैसा हाडमाँस का बना है, उसी देश का जिसका अधिनायक मानव है। उसे भी हमारे ही ढोल पीटने को मिलते हैं। भूला-भटका यदि कहीं वह अपनी ढफ्ली अपना राग अलापने लगता है और अमानवी सृष्टि की बातें करने लगता है तो उसका एक अलग स्कूल बन जाता है, एक अकेला कोई साथी नहीं। कथाकार द्वैपायन व्यास ने भी कुछ-कुछ ऐसा ही किया था। लेकिन उसके गरुड़ादि मानवी सृष्टि के ही अङ्ग बनकर आये। फिर रामायण युग ने तो सारी वानर सृष्टि को मुखरित कर दिया और उनसे मनमाने काम करवाए। पञ्चतन्त्र काल में तो सब पशु-पक्षियों को जैसे मानव वाणी और वाणी ही नहीं, मेधा भी मिल गई, कोरे नाम को छोड़ कर और पश्चिम में ऐसप साहब को भी मानवेतर जीवों में मानवी प्राण फूंकने का चस्का लगा। आज हमको इन्हें प्रतीकार्थ में ग्रहण करना पड़ता है।

आज का कलाकार तो निस्सन्देह मानवी लोक का ही प्रतिनिधि है या किंकर है। पशुपक्षियों को देखेगा भी तो अपने चश्मे से। जैसे उनमें भी चरित्र है, ज्ञानार्जन की लालसा है, सदसद् का विवेक है। अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो उस पर अस्वाभाविकता का, युग से पिछड़े रहने का, अथवा कुत्सा का लांछन लगेगा। कौन इन झंझटों में पड़े ? कौन पराई आफत मोल ले ? उसको तो मनुष्य और मनुष्य के श्वेत कृष्ण कारनामे ही मुबारक हों।

सत्यं, शिवं, सुन्दरम्—जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कहानी मनुष्य जीवन की आनन्द साधना का उपादान है। शेष साहित्य के समान ही इसका उद्देश्य किसी विराट् तत्व का उद्घाटन करना है जिसे मनुष्य का ज्ञान सदैव खोजा करता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के कार्यकलाप, भिन्न-भिन्न चरित्रों के

विकास-विलास, भिन्न-भिन्न भावनाओं की मूर्त्त क्रियाएँ—इन्हीं के माध्यम से साहित्यकार एक शाश्वत सत्य को देखा करता है। कहानी का इस दर्शन में एक अपूर्व योगदान है। वह यथार्थ घटनाओं एवं व्यक्तित्वों के चित्रण द्वारा 'सत्य' की अभिव्यक्ति उनकी असफलताओ एवं अभाव-अभियोगों द्वारा प्रतिपादित आदर्श के रूप में 'शिव' की अभिव्यक्ति तथा उन सब के मध्य में बहने वाली एक अजस्र रस धारा के प्रतिकरण द्वारा 'सुन्दर' की अभिव्यक्ति किया करता है। कहानीकार के लिए यह सब अकस्मात् ही है। वह अपनी कहानी में जिन पात्रों, जिन घटनाओं का चित्रण करेगा वे निश्चय ही यथार्थ जीवन से ली हुई होंगी। उनकी सत्ता इस दृश्य जगत में कम से कम इस रूप मे तो होगी कि पढ़ने वाले उसे देख कर चौंक न उठें। कहानीकार के सत्य और यथार्थ के सत्य में उतना ही अन्तर है जितना कि सर्कस के पिंजड़े में बन्द शेर और जंगल में निर्भय विचरण करने वाले शेर में होता है। सर्कस के दर्शकों के लिए सर्कस के शेर का सत्य है भी और नहीं भी। इसलिए कि वे, प्रत्यक्ष उसे अपने सामने देख रहे हैं और सहसा आँखों पर अविश्वास करने का साहस नहीं होता। नही इसलिए कि शेर नाम के एक प्राणी का परिचय उन्हें जिस रूप में प्राप्त है कि वह एक भयङ्कर प्राणी होता है जो चौबीसों घण्टे मनुष्य को जान का ग्राहक होता है, आदि। वह परिचय उन दर्शकों के लिए अभी कोई महत्त्व नही रखता। इसका अर्थ यह नही कि यथार्थ का सत्य अर्थात् कहानीकार की परिधि के बाहर का सत्य सदैव सांघातिक होता है। वैसे रोचकता की दृष्टि से तो अच्छी कहानी किसी सर्कस से कम है भी नही।

आदर्श और यथार्थ –कहा जाता है कि कहानी में आदर्श की गुञ्जाइश हो ही नहीं सकती। कुछ महानुभाव तो कहानी को उपन्यास से केवल इसी रेखा से विभक्त करते हैं। किन्तु प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचन्द का मत है कि उपन्यास का आदर्श थोपा हुआ होता है जब कि कहानी का आदर्श अनायास। फिर भी कहानी के ढाँचे से आदर्श को सर्वथा नहीं निकाल सकते। इस विषय में हमें यही कहना है कि कहानी के लिए शिव और सुन्दर उतना ही उद्देश्य है जितना सत्य। यदि कहानीकार यथार्थ का चित्रण यथार्थता से कर सकता है तो आदर्श का चित्रण भी यथार्थता से उसी सफलता के साथ कर सकता है। किसी भी अवस्था में हम यथार्थ के विरोध में आदर्श को अलग करके नहीं रख सकते। समस्त साहित्य का उद्देश्य एक ही है और इस प्रकार कहानी और उपन्यास को परस्पर उद्देश्य के आधार पर विभक्त करने से साहित्य के मूल तत्त्व पर आघात पड़ने की सम्भावना है।

यथार्थवाद के दो पक्ष—प्रेमचन्द के उपन्यासों में जिस मार्ग का अवलम्बन लिया गया है उसी मार्ग का उनकी कहानियों में। वह मार्ग है आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का। केवल इसी की दृढ धारणा के फलस्वरूप वे अपने साहित्य में यथार्थवाद की कुत्सा का प्रवेश रोक सके है। वास्तव में प्रेमचन्दजी साहित्य का आदर्श इसे ही मानते है। मन्तव्य यह है कि यदि उपन्यासों में यथार्थवाद के निर्वाह की इतनी अधिक आवश्यकता हो गई है जो स्वाभाविक ही है तो कहानी में उसका प्रवेश एक प्रकार से वांछनीय ही नहीं अनिवार्य है। इस यथार्थवाद के दो पक्ष हैं। जहाँ कलाकार अशिव का चित्रण नहीं कर रहा हो वहाँ तो कोई समस्या नहीं खडी होती। जैसे यदि किसी कहानी में किसी धर्मचक्षु सन्त का चित्र हो तो हमें अनायास उसे आदर्शवाद का लाइसेंस या आरोप नहीं दे देना चाहिए। जगत के रङ्गमञ्च पर सत्य के रूप में एक लम्पट जुआरी का जितना महत्व है उतना ही उस धर्मात्मा पुरुष का। इन दृष्टान्तों की आदर्शवादिता या यथार्थवादिता का निर्णय कहानी के प्रवाह और कहानीकार के उद्देश्य को देख कर ही दिया जा सकता है। प्रश्न वहाँ उपस्थित होता है जहाँ कलाकार आद्यन्त उन चरित्रों अथवा घटनाओं को प्रकाशित करता है जिन्हें हम अपने प्रचलित नैतिकता के मानदण्डों के द्वारा मापकर अहितकर या अनैतिक घोषित कर देते हैं। कहानीकार एक लुब्ध वैशिक, भाण्ड, अथवा पूंजीवादी नरपिशाच की गतिविधियों पर, प्रकाश डाल रहा है ; इस परिस्थिति में यह आवश्यक नहीं है कि वह कहानी के प्रत्येक इतर चरित्र की ओर से इन तथाकथित अनैतिक चरित्रों की कटु विगर्हणा उपस्थित करे। और न यह भी आवश्यक ही है कि वह प्रारम्भ से ही इन चरित्रों को एक ऐसे गड्ढे में डाल दे जहाँ जाकर पाठक उनके प्रति स्वभावतः नाक-भौ सिकोडने लगें। इसके विपरीत कभी-कभी हम देखते हैं कि ऐसे घोषित होने वाले रूप से अनैतिक चरित्र दम पर दम उन्नति करते जाते हैं या उनका प्रत्येक क्षण उनके पैरों पर अपार एवं अभूतपूर्व सुख-सम्पदा लाकर डाल देता है। हमारी तो यह स्पष्ट मान्यता है कि कहानीकार के लिए यह बाध्य है ही नहीं कि वह सर्वदा ऐसे चरित्रों की खुली आलोचना करे और हमारा ध्यान उनकी ओर शिवपक्ष की सिद्धि के लिए आकृष्ट करे। तब उसे कौन यथार्थवाद कहेगा ? विश्वास ऐसा किया जाता है कि कहानी के पाठक का व्यक्तिगत निर्णय स्तर इतना योग्य है कि वह स्वतः केवल पात्र विशेष के कार्य-कलापों को देखकर, न कि उनके कार्य-कलापों के द्वारा उत्पन्न होने वाली परिस्थिति की परीक्षा से, उनकी अनैतिकता अथवा नैतिकता

या आदर्शशीलता या आदर्शहीनता को समझ सकता है और वह उन्हें इसी प्रकाश में देखता है। और लेखक उन्हें कितना ही फलता-फूलता दर्शाए, पाठक को अपना मत बना लेने में दुविधा नहीं होती। सजग पाठक की मनोवृत्ति ऐसी भी देखी गई है कि यदि लेखक उन चरित्रों का अत्यधिक बढ़ावा देते रहने से बाज नहीं आता है तो पाठक तत्काल लेखक की योग्यता, अनुभव अथवा नीयत पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगा ही देता है। किन्तु आखिर लेखक भी इतना हठी होकर क्या ले लेगा? अतः प्रकृत रूप से लेखक या तो ऐसे बिगड़े चरित्रों को कहीं न कहीं से उबार लेता है और या उनका निलय ऐसे सोपान पर ले जाकर कर देता है जहाँ पाठक उन पर व्यंग, उपहास, या उपेक्षा की हँसी ही हँस सके, उनके साथ आत्मीय होकर रोने की अथवा उनकी अप्रत्याशित सफलता पर विस्मय करने की बात नहीं कर सके। यही यथार्थवाद की दूसरी परिणति है।

स्थूल से सूक्ष्म की ओर—कहानी हमें जीवन के समीप ले जाने के लिए होती है। उसमें जिन घटनाओं, चरित्रों अथवा विचार धाराओं की विवेचना होती है उनको हम नित्य प्रति अपने जीवन में देखा करते हैं। किन्तु वस्तु-जगत् की विषमताओं का जाल इतना विकट है कि हम उनकी ओर विशेष रूप से अपना ध्यान नहीं देते। वही घटनाएँ आदि जब कहानी में चित्रित होकर हमारे सामने आती हैं तो हमें उनसे आत्मीयता अनुभव होती है। कभी कभी तो ये घटनाएँ अथवा विचार सरणियाँ हमें इतनी प्रभावित करती हैं कि हम अपनी व्यक्तिगत जीवन पद्धति में परिवर्तन करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। यही साहित्य मात्र का सौन्दर्य है। अतः कहानीकार एक ओर जीवन से प्रेरणा लेता है तो दूसरी ओर जीवन को प्रेरणा देता भी है। कहानी की घटनाएँ आदि सभी स्थूल होती हैं। उनके माध्यम से हम जहाँ जीवन के उत्तर प्रदेश में, शाश्वत सत्य की ओर बढ़ते हैं वहाँ केवल भावनाओं अथवा आदर्शों का राज्य है। दूसरे शब्दों में वहाँ एक अव्यक्त सूक्ष्म सत्ता उपस्थित है जिसके आगे हम सविनय अपना सिर झुकाते हैं। गुरुदेव के श्रद्धेय पिता ने इसी सूक्ष्म सत्ता को तीन छोटे छोटे पदों में पुनरांकित करके साहित्य को निश्चय ही एक दिशा दी है।

द्वितीय उच्छ्वास

कहानी का साहित्य के अन्य अङ्गों से सम्बन्ध

कहानी एक भावात्मक अनुकरण है जिसका आधार जीवन की एक उत्तेजनाप्रद घटना है।

द्वितीय उच्छ्वास

कहानी का साहित्य के अन्य अङ्गों से सम्बन्ध

साहित्य का विस्तार—यह मान चुकने के बाद कि जिसका प्राचीन पर्यायवाची शब्द 'काव्य' है उस साहित्य की कोटि में ज्योतिष, गणित, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, दर्शन, भू विज्ञान आदि मनुष्य के मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखने वाले विषयो का प्रवेश वर्जित है। हमें यह निश्चय करने में सुविधा हो जाती है कि साहित्य का विस्तार क्या है। किन्तु देश काल के भेद से साहित्य के विभिन्न स्वरूपो में कमी-बेशी होना स्वाभाविक है। जैसे, हमारे प्राचीन साहित्य में आत्मकथाओं की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नही होती जो पश्चिमी साहित्य की देन है। तुलसीदासजी ने इसे—"कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।"—कह कर उपहास्य घोषित किया है। इसी प्रकार हमारे यहाँ नाटक के जितने भेद-प्रभेद मिलते हैं उतने किसी दूसरे साहित्य में नहीं। फिर भी आज हमें साहित्य जिन रूपों में लिखा दिखाई पड़ता है उन्हीं का कहानी से क्या सम्बन्ध है इसका कुछ विवेचन इस प्रकरण में किया जायगा।

कहानी के अतिरिक्त साहित्य के दूसरे अंग हैं—उपन्यास, नाटक, एकांकी नाटक, आत्मकथा, पर्सनल स्केच अथवा स्केच, निबन्ध, कविता आदि। 'आलोचना' को हम यहाँ इसलिए नहीं लेते कि वह शुद्ध साहित्य के अन्तर्गत नहीं आती। इन सब भेदों में न केवल शैली का ही, अपितु अन्य कई तात्विक बातों का भी अन्तर है। यहाँ हमें केवल कहानी का इन सब अङ्गों से क्या सम्बन्ध है, उनमें परस्पर कितना साम्य है अथवा वैषम्य, केवल इसी प्रसङ्ग पर विचार करने का अवकाश है।

सम्बन्ध विवेचन की आवश्यकता—इस बीच में यह प्रश्न उठ सकता है कि इस परस्पर सम्बन्ध पर विचार करने की आवश्यकता क्यों पड़ी जब कि साहित्य का प्रत्येक अङ्ग अपने आप में स्वतन्त्र है। इसका उत्तर यही है कि साहित्य की मूल प्रवृत्ति एक ही है। मूल प्रवृत्ति एक होने की अवस्था में यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वह कौनसी प्रवृत्ति है जिसके वश हमें साहित्य के भिन्न रूप देखने को मिलते हैं। बात यह है कि मनुष्य नवीनता का उपासक है जिसके कारण वह एक ही वस्तु को उसके अनेक स्वरूपों में देखने का प्रयत्न

मानते हैं—१—वस्तु, २—शैली, ३—वृत्ति।

'रस' स्वतन्त्र आधार नहीं हो सकता क्योंकि इससे साहित्य के विभिन्न अङ्गों के सम्बन्ध पर प्रकाश नहीं पड़ता। 'दृष्टिकोण' के एक और आधार की कल्पना की जा सकती है किन्तु सूक्ष्मतः दृष्टिकोण को लेकर साहित्य के अङ्गों में अन्तर स्थापित किया नहीं जा सकता। विस्तार को लेकर ऊपर विचार किया जा चुका है। स्मरण रखना चाहिये कि हमारे प्राचीन रीति-शास्त्रियों ने कुछ इसी प्रकार साहित्य की स्वतन्त्र सरणियाँ नियुक्त की हैं। जैसे काव्य के दो भेद हैं—दृश्यकाव्य और श्रव्य काव्य। (यद्यपि रस ग्रहण करने वाली इन्द्रियों की भिन्नता के अतिरिक्त इसका मौलिक आधार क्या है इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता)। फिर काव्य के प्रबन्ध की दृष्टि से, भेद किए गये हैं—महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक। इनमें से महाकाव्य हमारे उक्त सम्पूर्ण वृत्ति-मूलक साहित्य में और खण्डकाव्य तथा मुक्तक अंशवृत्ति मूलक साहित्य में आ जाते हैं। इसी प्रकार काव्य के दो और भेद हैं—गद्यकाव्य, या गद्य और पद्य काव्य, या काव्य। इसका आधार शैली है। शैली को लेकर अधिक सूक्ष्मता से विचार नही किया गया प्रतीत होता है। जैसे उपन्यास आदि सभी एक ही नामावली गद्यकाव्य में आते हैं। वस्तु या तत्त्व वाली बात को तो सर्वथा भुला दिया गया है ऐसा लगता है।

साहित्य का नया वर्गीकरण—व्यवस्थित आधार पर रखने पर साहित्य के विभिन्न अङ्गों का विभाजन, उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के दृष्टिकोण से कुछ इस प्रकार होगा—(देखिए पृष्ठ ५६ पर)

कहानी का इस दृष्टि से इन सब भेदों से क्या सम्बन्ध है इस पर कुछ विचार नीचे किया जाता है।

उपन्यास और कहानी—हमने देखा है कि कहानी का सीधा सम्बन्ध उस काव्य से है जिसका आधार घटना है। किन्तु एक तो शैली की आमूल-चूल अन्यथा वृत्ति से एवं दूसरे विचारधारा में मौलिक भेद आ उपस्थित होने से कालान्तर में कहानी काव्य से सर्वथा अलग हो गई। आज के युग में इसका सीधा सम्बन्ध उपन्यास नामधारी साहित्य से जोड़ा जाता है किन्तु उपन्यास और कहानी में भी साम्य की उल्लेखनीय बात इतनी ही है कि दोनों का मेरु-दण्ड एक व्यवस्थित कथानक है। अन्य सब बातें जैसे चरित्रों की सृष्टि आदि उसी का अनुगमन करती हैं।

वृत्ति—उपरोक्त विवेचन के अनुसार उपन्यास सम्पूर्ण, वृत्ति-परक साहित्य है, कहानी अंश वृत्ति-परक। इस दृष्टि से जहाँ कहानी में एक ही संवे-

साहित्य
वस्तु
शैली
वृत्ति
जिनका आधार कथा है
जिनका आधारकथा नही है
कल्पित कथा वाले
अकल्पितकथा वाले
मिश्र
निबन्ध मुक्तक आदि
उपन्यास, नाटक, काव्य कहानी, आदि
आत्मकथा, सस्मरण आदि
उपन्यास, नाटक, काव्य आदि
गद्य
पद्य
चम्पू
दृश्यप्रणाली वाले नाटक
ऐतिहासिक प्रणाली वाले कहानी, उपन्यास, स्केच आदि
महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक आदि
सम्पूर्ण वृत्तिपरक
अंश वृत्तिपरक
महाकाव्य, उपन्यास, नाटक, जीवन विव-रण आदि
कहानी, एकाङ्की, खण्डकाव्य, मुक्तक
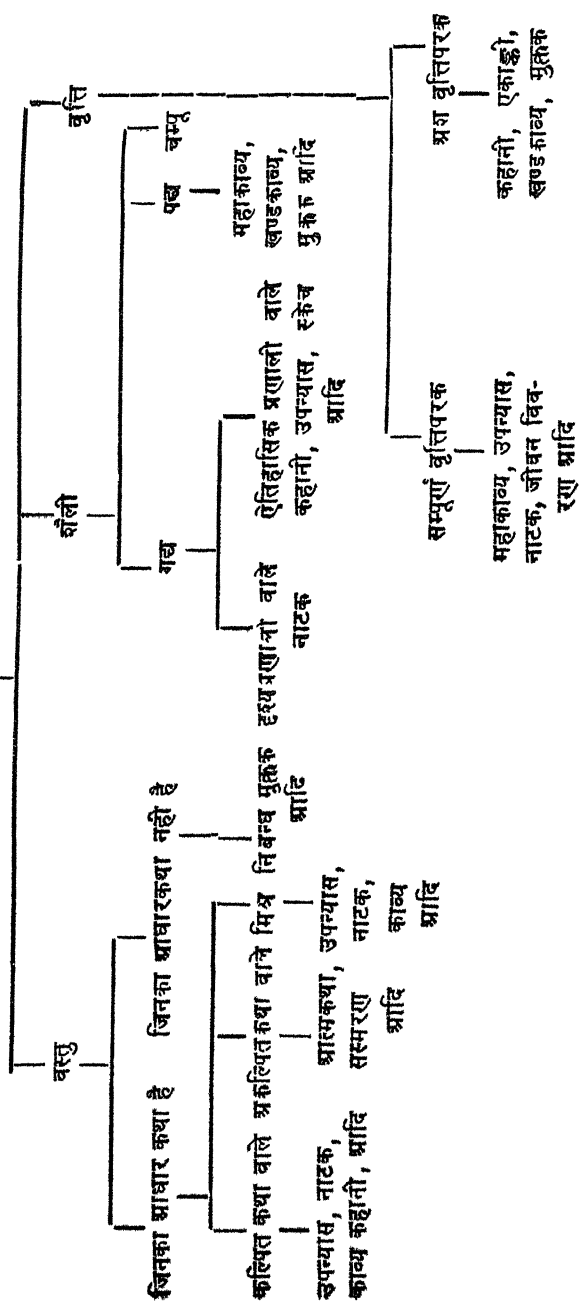
दना का अवकाश है, उपन्याम में वहां अनेक संवेदनाओं का। उपन्यास पढते समय हमें प्रायः ऐसा लगता है कि उसमें कई घटनाओं को जोडकर एक कर दिया गया है, अथवा उसी की अनेक घटनाएँ स्वयं स्वतंत्र रूप से खडी रह सकती हैं। इसके उपरान्त यद्यपि उपन्यास की मूल घटना एक ही होती है, उसमें अनेक छोटी छोंटी कथाओं में जिन्हें उपकथा कहना चाहिये आ सकती है, जिनका अन्तर्निवेश केवल रोचकता की सिद्धि के लिए किया जाता है। ये उपकथाएँ ऐसी होती हैं कि इनके बिना भी उपन्यास की मूल घटना जी सकती हैं। कहानी में ऐसा कदापि नही होता। उसमें न तो उपकथाएँ होती हैं न अनेक घटनाएँ हो। उसमें तो एक अविछिन्न सुलझी हुई कथा होती है जो अकस्मात् ही प्रारम्भ होती है और अकस्मात ही अन्त। किसी उपन्याम को आद्योपान्त पढ लेने के बाद हमें ऐमा मालूम नही पडता कि कोई चीज कहीं पर छूट गई है, जब कि कहानी में प्रायः मालूम पडता है कि कहीं कोई चीज नहीं है। किसी स्थान पर कोई चीज आनी चाहिए थी जो आई नहीं। किन्तु इससे कहानी के प्रभाव पर कोई अन्तर नही आता। उपन्यास के प्रत्येक चरित्र को विकास की पूरी गुञ्जाइश है जब कि कहानी में कोई चरित्र पूरा विकसित हो ही नहीं पाता। उपन्यास के बीच में हमें अनेक भूल भुलैयाएँ; अनेक विश्रान्ति स्थल, अनेक रमणीक प्रदेश मिलते हैं, जिनमें कहीं हम खो जाते हैं, कहीं वैठ कर पाराम करना चाहते हें, कहीं उस मनोहारी दृश्यावली का रस पान करने को लालायित होते हैं। कहानीकार पाठक की साँस रोक कर उसे भगाये चलता है और गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर ही उसको कुछ सोचने का कुछ हँसने का, कुछ रोने का अवकाश देता है।

उपन्यास में लेखक प्रायः पात्र के जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण अवस्था को लेकर ही चलता है (यदि उसके जीवन के प्रारम्भ की नहीं) और किसी महत्त्वपूर्ण अवस्था ही में उसका पर्यवसान कर देता है। प्रायः उसमें पात्र के जीवन का अधिकांश आ जाता है। कहानीकार के लिए पात्र के जीवन की कोई भी घटना महत्त्वपूर्ण है, बशर्ते कि वह उसको कहानी की गति देना जानता हो।

पात्र-संख्या—कहानी के पात्रों की संख्या प्रायः सीमित होती है जब कि उपन्यास में इस पर कोई बन्धन नही है। उपन्यास के कुछ पात्र तो ऊपर से थोपे जान पड़ते हैं जिनका न मूल घटना से अनिवार्य लगाव होता है न पाठक के हृदय में पड़ने वाले प्रभाव से। कहानी के सभी पात्र घटना की गति के साथ

चलते है, सभी पात्रों को लेखक के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होना पडता है। उपन्यास के कुछ पात्रो के साथ आप खेल सकते हैं, कहानी के पात्र आपको खिला देगें, अपने साथ आपको खेलने नही देंगे। किन्तु उपन्यासकार अपने पात्रो को वर्णनाधिक्य से एक अजीब गम्भीरता प्रदान कर सकता है जिसका अवकाश कहानी में नही होता। लेखक यदि ऐसा करेगा तो वह कहानी को बोझिल, अरुचिकर तथा अप्रभावशील बनाकर रख देगा। उपन्यास अपने पात्रो के जीवन में न जाने कितने ही परिवर्तन ला सकता है जबकि कहानी इसी में अपनी सफलता समझती है कि पात्र के जीवन में कम से कम परिर्वतन लाकर भी वह उसके चरित्र को किस कौशल से गुम्फित कर सकती है। उपन्यासकार को यह छूट है कि वह एक चरित्र की जितनी सारी विशेषताएँ हो सकती हैं उन्हे अपनी रचना में मुकुलित करें, कहानी लेखक यह देखेगा कि एक चरित्र की कुल मिलाकर एक या दो विशेषताएँ ही उद्देश्य को प्रकाशित करने में समर्थ है या नही।

मञ्च-परिवर्त्तन—उपन्यास पढते पढते कभी कभी हम देखते हैं कि एक पूरा का पूरा दृश्य मञ्च पर से सहसा गायब हो गया और उसके स्थान पर बिलकुल नया, कोई और ही दृश्य आगया। फिर थोडी देर तक उस दृश्य के पात्रों से हमें परिचय करना पडता है। और हम उनके चरित्रो की विशेषताओं को समझ ही नही पाते हैं कि वे पात्र भी अकस्मात विलीन हो जाते हैं और फिर हमारे पुराने परिचित पात्र हमारे बीच में आ धमकते हैं। यह बात केवल पात्रों तक ही सीमित नही रहती, अपितु घटनाओं, स्थानो, एव समय के साथ भी घटती है। इसे हम देश काल का व्यतिक्रम कहते हैं। इससे संवेदना की एकता पर आघात पडता है वास्तव में अनेक भिन्न भिन्न सवेदनाएँ काल-काल पर बनती बिगडती जाती हैं। कभी कभी घटना या पात्र एक स्थल पर आकर रुक भी जाते हैं, अर्थात् उपन्यास के बीच में ही लेखक की कोई महत्त्वपूर्ण अवस्था समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार उपन्यास का कोई पात्र बीच में ही मञ्च पर से सर्वदा के लिए विलीन हो जाता है। इससे या तो घटना या उद्देश्य की एकता नष्ट हो जाती है अथवा यह सिद्ध होता है कि अमुक पात्र, अथवा घटना की अमुक अवस्था, निष्क्रिय अथवा अनुपादेय थी।

कहानी को एक संवेदना निभाने के लिए यह देखना होता है कि उसका कोई भी तत्त्व घटना अथवा पात्र की तो कौन बात, भाषा का एक भी वाक्य निष्क्रिय अथवा उपयोग हीन नही है, कहानी-पाठक के मस्तक पर भार बनकर नही बैठता और अपना उद्देश्य पूरी सफलता के साथ प्राप्त करता है। संवेदना

की दृष्टि से यह अन्तर महत्वपूर्ण है ।

लम्बाई—कहानी की तुलना में उपन्यास की लम्बाई प्रसिद्ध ही है । उनमें कोई समता हो ही नही सकती । बात भी ठीक है । जब उपन्यास लिखने वाले को यह छूट है कि वह चाहे जितना लिखे, अपनी रचना का कलेवर चाहे जितना बढ़ावे, तो वह क्यो अपनी मक्खीचूस वृत्ति का परिचय देगा ? वह तो अपने प्रत्येक वर्णन को खूब बढ़ा-चढा कर लिखेगा ताकि पाठक उसे कलम तोड़ने का तमगा दे सके । जब वह प्रकृति वर्णन करने बैठेगा तो अपने हृदय की सारा भावुकता और मस्तिष्क की सारी कल्पना को कागज पर अनायास उँडेल देगा । जब वह किसी पात्र की विशेषताओ का परिचय देन लगेगा तो अपने सारे उपार्जित अनुभवा को आपके सामने रखन मे काई कसर नही रक्खेगा । जब किसी पराकाष्ठा पर अपनी घटना को पहुँचान लगेगा तो अस्वस्थ से अस्वस्थ, भयङ्कर से भयङ्कर स्थिति को भी 'स्वभाव' म परिवतन करने का प्रयत्न करेगा । वह चाहेगा तो किसा को सातवे आसमान पर चढ़ा देगा, नही तो उसकी मिट्टा पलाद करन म भा हानता अनुभव नही करेगा । बात यह नहा है कि उपन्यासकार सवथा पाठक निरपेक्ष हाता है, वह अपने प्रभाव का नही जानता या उसको उपयोग म लाने की आवश्यकता अनुभव नही करता । ठीक इसके विपरीत वह पाठक के मस्तक की सिलवटो का भर्ला भाँति भाँपता है, उनसे भय खाता है और उनकी रुचि के अनुरूप ही प्रदर्शन करता है । किन्तु उसको सिद्धान्त रूप से विस्तार का अवकाश है और यदि वह उसे प्रयुक्त करना जानता है तो उससे पूरा लाभ उठाता है । इसलिए उपन्यास आमतौर पर भारी और लम्बे होते हैं । यह बात और है कि आजकल के उपन्यासो के लिए यह विस्तार-वृत्ति कोई विशेष आकर्षण की बात नही है ।

किन्तु कहानी का भारी होना ही पाठक के लिए भारस्वरूप है । वह छोटी होती है, छोटी सी होती है, बस । आप उसे माप कर भले ही मत रखिए, किन्तु विश्वास रखिए कि वह छोटी ही होती है । अंग्रेजी मे कहानी का नाम ही Short story अर्थात् छोटी कहानी है । उसके सारे तत्व मर्यादित होतें है । जैसे, कहानी के पात्र किसी रेस्तरा की धूमिल सन्ध्या मे इधर-उधर की गपशप नही करते हैं, और न किसी राजनैतिक रङ्गमञ्च पर घण्टो तक चलने वालो व्याख्यानबाजी हा । वे तो न जाने किस लोक के प्राणी हैं कि आते है तो दिखलाई नही पड़ते और कुछ देर ठहर कर आपके कानो में कुछ जरूरी सी बात कह कर, जो आपके इर्दगिर्द बहुत समय तक गूँजती है, चले जाते हैं । वे आपसे बात नही भी करेंगे तो भी कुछ इस ढङ्ग से पेश आयेंगे कि आपको अपने

द्वारा उन्हें भुलाया जाना मँहगा पड़ता है, आपका ध्यान बरबस उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। आप अपने ओठों तक अंगुली ले जाकर कुछ सोचने भी लगते हैं। वे आपसे कुछ माँगते नहीं, फिर भी आप उन्हे कुछ देने को तैयार हो जाते है। उन्हें अपना बना लेने की चेष्टा सी करते हैं। कहानी के आगे आकर पाठक की स्थिति निश्चित रूप से असहाय सी हो जाती है। यह तभी हो सकता है जब कि कहानी उतनी ही लम्बी हो जिसे देख कर पाठक किसी प्रकार का सिर दर्द अनुभव न करे। आखिर तो कहानी आपकी एक सहृदय मित्र है।

लेकिन कभी-कभी कहानी इतनी लम्बी हो जाती है कि केवल संक्षिप्तता के विचार से उसे देखा जाय तो वह हमें उपन्यास सा लगे। कई लोग ऐसे साहित्य को उपन्यास और कहानी के बीच की कोई वस्तु मानते हैं। इस विषय में उनका प्रधान तर्क यह होता है कि न तो ऐसी वस्तु कहानी की भाँति संक्षिप्त है, न उपन्यास जैसी विशाल काय (ध्यान रखना चाहिए कि उनकी दृष्टि में उपन्यास के लिए विशालकाय होना आवश्यक है।) इस विषय में हम यही कहेंगे कि इस प्रकार का कोई साहित्य या तो कहानी ही हो सकता है वा उपन्यास ही और या दोनों ही नहीं, क्योंकि इसमें प्रायः उपन्यास के सभी तत्त्व भली-भाँति नहीं पाये जाते और कहानी की परिभाषा में वह इस प्रकार नहीं आता कि इसमें अनेक प्रभावों का घपला होता है। अतः इस प्रकार के असिद्ध विषयों को पहले तो उपन्यासों के तत्त्वों से मिला लेना चाहिये (जिनका कि यहाँ विवेचन करना उचित नहीं) और उस मिलाप की असफलता में उसे असफल कहानी का नाम दे देना चाहिये। इस प्रकार के साहित्य से हमें सर्वदा सजग रहना चाहिये और यह देखते रहना चाहिए कि जितना कूड़ा-करकट कम भरे उतना ही अच्छा है।

पराकाष्ठा—कहानी और उपन्यास के वैधानिक अन्तर की कुछ चर्चा ऊपर कर दी गई है। जिस प्रकार कहानी का प्रत्येक अनुच्छेद लेखक द्वारा डाले जाने वाले प्रभाव का ओर संकेत करता है उसी प्रकार उपन्यास का प्रत्येक प्रकरण लेखक के उद्देश्य में सहायक होता हैं। मूल रूप में दोनों की घटना एक दिशा में हो बढ़ती है और कुछ दूर जाने पर एक ऐसा स्थल आता है जिसे पराकाष्ठा कहते हैं। यहाँ हमें उपन्यास और कहानी में हल्का सा भेद मालूम पड़ता है। कहानी की पराकाष्ठा यदि एक पहाड़ की चोटी है तो उपन्यास का पराकाष्ठा एक फैला हुआ पठार। चरमावस्था तक आने के उपरान्त घटना का सारी रोचकता एक पूर्ण विराम को प्राप्त हो जाती है और उसे या तो अविलम्ब

मुड़ना पड़ता है या तत्काल समाप्त होना पड़ता है। उपन्यास के लिए यह बात आवश्यक नही कि उसकी घटना चरमावस्था तक आने के साथ ही समाप्त हो जाय। उपन्यासकार अपनी रचना को चरमावस्था के उपरान्त उस स्थल तक ले जा सकता है जहाँ वह समझता है कि उसका उद्देश्य पूर्ण होना चाहिये। फिर भी यह निश्चित है कि चरमावस्था की स्थितियाँ कहानी और उपन्यास की अन्तिम गति को निश्चित एवं अभिव्यक्त करने के लिए होती हैं।

आदर्श—एच० जी० वेल्स ने उपन्यास और कहानी की वस्तु को लेकर एक उल्लेखनीय मत का प्रतिपादन किया है। वे मानते हैं कि उपन्यास में आदर्श-तत्व का आना अनिवार्य है, जबकि कहानी में ऐसा नहीं है। वे लिखते हैं कि यदि उपन्यासकार निष्पक्ष होने की चेष्टा या प्रदर्शन भी करे तो भी वह अपने पात्रों को आदर्श उपस्थित करने से नहीं रोक सकता और जैसा कि लोग कहते हैं, वह पाठकों के मस्तिष्क में विचार ठूँसे बगैर नहीं रह सकता। स्मरण रखना चाहिये कि वेल्स एक उच्च स्तर के यथार्थवादी साहित्यकार हैं और उनकी ओर से जब इस प्रकार के गम्भीर मत हमारे समक्ष आते हैं तो हम उन पर विचार किए बिना नहीं रह सकते। हमारी व्यक्तिगत धारणा है कि विद्वान लेखक के इस मत में पर्याप्त बल है। कारण यह है कि जीवन का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे लेकर उपन्यासकार उसके अभाव असमर्थताओं पर, असुन्दर-अशिव पक्ष पर, विचार किए बिना सफल नहीं हो सकता। और जैसा कि पहले प्रकरण में कहा जा चुका है यह मनुष्य मात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह आदर्श की ओर झुकने की लालसा सदैव रखता है। वैसे उपन्यासकार यदि केवल अशिव अमरणीय क्षेत्र का उद्घाटन भर करके रह जाय और आदर्श को केवल आदर्श के कारण नहीं ले तो वह सच्चे अर्थों में यथार्थवादी ही नहीं हो सकता। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उपन्यास में आदर्श-तत्व का प्रस्फुटन अनिवार्य हो। किन्तु विषय प्रतिपादन की दृष्टि से कहानी का क्षेत्र इतना संकुचित है कि उसे इन विषयों पर गम्भीरतापूर्वक विचारने का समय नहीं मिलता। अतएव उसके सम्बन्ध में आदर्श यथाथ का प्रश्न उतने महत्त्व का नहीं।

कुतूहल—जैसा कि आगे देखा जायगा, कहानी में Suspense अर्थात् अनाश्वतता का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें कहानी का वातावरण धीरे-धीरे सकुचित हो जाता है (जब कि उपन्यास में वातावरण क्रमशः प्रस्फुटित होता जाता है) कहानी और उपन्यास का एक और महत्त्व-पूर्ण अन्तर—जैसे हम धीरे-धीरे किसी ऊँचाई पर चढ़ते जा रहे हों—जितना ऊंचा हम जाते हैं उतना ही हमारा दम फूलता जाता है। 'न जाने क्या होगा।' यह

वा न्य यदि सब से अधिक तीव्रता के साथ साहित्य के किसी अङ्ग मे घटित हो सकता है तो वह कहानी में ही। अनिश्चितता का यह वातावरण कहानी के प्राय: अन्त में जाकर समाप्त हो जाता है।

कुछ विद्वान आलोचकों का मत है कि केवल इसी अनिश्चितता के आधार पर हम कहानी को उपन्यास से विभक्त कर सकते है। देखने की बात यह है कि उक्त आलोचक उपन्यास मे अनिश्चितता की स्थिति ही नही मानते। इस सम्बन्ध में यह निवेदनीय है कि उपन्यास में अनिश्चितता का वातावरण सर्वथा न हो ऐसी कोई बात नही है। किन्तु जिस ढङ्ग से—जिस छोटे व्यास के अन्तर्गत कहानी मे अनिश्चितता का उपचार होता है। उसी ढङ्ग से उपन्यास में नही होता। आप किसी ताल के प्रशान्त जल मे एक कङ्कड़ फेकिए। जिस स्थान पर वह कङ्कड़ गिरता है उस स्थान को केन्द्र मानकर ताल का जल बाहर की ओर फैलता मालूम पड़ता है और कुछ देर मे जल पुनः शान्त हो जाता है। उपन्यास की अनिश्चितता ठीक इसी भांति विस्तारोन्मुख होती है। वह किसी स्थान से प्रारम्भ होती है और उत्तरोत्तर अवस्थाओ मे फैलती जाती है, अर्थात् निश्चितता मे, 'किमस्ति' से 'सोऽहं' में परिवर्तित हो जाती है। (सहृदय पाठक ध्यान रक्खें कि सोहं की सच्ची स्थिति को पहुँचते पहुंचते पात्र का जीवन कितना मुक्त या विस्तृत हो जाता है।)

कहानी की अनिश्चितता ठीक इसके विपरीत केन्द्रोन्मुख होती है। वह भ्रमवात की भाँति होती है जो किसी प्रशान्त जल के अन्दर कुछ काल के लिए एक वृत्त बना लेता है जो क्रमशः परिधि से केन्द्र की ओर लीन हो जाता है और अन्त में केन्द्र मात्र रह कर स्वयं समाप्त हो जाता है।

इस विषय में एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये कि अनिश्चितता का सम्बन्ध प्रधानतया घटना से होता है और नवीनतम प्रणाली की कहानी के लिए कुछ लोगो का ऐसा विश्वास है कि उसमें घटना की प्रधानता नही होनी चाहिए। आज के कहानीकार मनुष्य का मनोविश्लेषण करने में अधिक महत्त्व समझते है। (औचित्य अनौचित्य का यह कोई प्रश्न नही है) और घटना की प्रधानता न होने से किसी न किसी कहानी मे घटना केवल नाम मात्र की होने से हमें यह देखने को मिलता है कि कहानी में अनिश्चितता की बात बिल्कुल ही नही आती। इसके विपरीत उपन्यास में घटना का निश्चय ही एक प्रमुख स्थान है और लेखक आकर्षण निष्पत्ति के लिए यह चेष्टा करेगा कि वह उसमें अनिश्चितता का पूरा विकास करे। उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जायगा कि कहानी और उपन्यास में अनिश्चितता को लेकर उक्त आलोचकों के मत के अनु-

रूप कोई अन्तर नहीं सिद्ध किया जा सकता। यह स्वीकार किया जाता है कि अनिश्चितता का किसी कथाखण्ड की सुन्दरता में अवश्य ही एक बड़ा योगदान है।

नाटक और कहानी—उपन्यास और कहानी में भेद करते समय एक बडो कठिनाई यह होती है कि हमारे प्राचीन साहित्य में उपन्यास नाम का कोई साहित्य नहीं मिलता ! किन्तु नाटक के विषय में ऐसा नहीं है। संस्कृत साहित्य में आलोचक और कवि दोनों नाटक के पीछे जितने हाथ धोकर पड़े है उतने और किसी साहित्य के पीछे नहीं। इसका कारण केवल नाटक की व्यापकता ही हो सकती है। शैली की दृष्टि से अर्थात् संवाद और अभिनय के विचार से नाटक वास्तविक जीवन के जितना समीप पडता है उतना कहानी तो क्या, साहित्य का और कोई भी अङ्ग नहीं। सिद्धान्त यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसमें दो गुण हैं। एक तो वह अकेला नही रहता और दूसरे वह चुप नहीं रहता। अपनी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण वह निरन्तर औरों के सम्पर्क में आता रहना चाहता है और उससे अपने विचारों का, अनुभवों का, ज्ञान का, आलाप संलाप द्वारा आदान-प्रदान किया करता है। प्रत्येक अवस्था में अपनी वर्तमान स्थिति में, मनुष्य का क्रियाशील प्रत्यक्ष व्यक्तित्व प्रधान, एवं विचारशील परोक्ष व्यक्तित्व गौण रहता है। जो चित्रण उसके क्रियाशील प्रत्यक्ष व्यक्तित्व का किया जायगा वह सचमुच स्वाभाविक और सरल होगा, और कल्पना के आधार पर की गई उसके विचारशील व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति में संशय और कौटिल्य रहेगी। एक स्वर्णकार अपने स्वाभाविक रूप में अपना उद्योग कर रहा है। उसके पास उसका दूसरा परिचित—मान लीजिये स्वर्णकार ही बैठा हुआ बीच बीच में उससे बात चीत करता जाता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि पहला या दूसरा स्वर्णकार अपने मस्तिष्क से अपने विचारों को निष्कृत कर बैठा है, किन्तु बात यह है कि हम उसके विचारों को ठीक ठीक समझ नहीं सकते जब तक कि वह उन्हें वाणी द्वारा या कार्यों द्वारा प्रत्यक्षतः अभिव्यक्त नहीं करदे। नाटक इसी पक्ष को लेता है। इसी कारण वह जीवन की वास्तविकता के अधिक समीप आ पड़ता है।

एकाङ्की नाटक—संस्कृत साहित्य के मनीषियों ने नाटक की इस व्यापकता को समझा था और उस पर खूब श्रम किया। वहाँ नाटकों ने जिनका प्राचीन नाम 'रूपक' था दस भेद किए गए थे, यथा, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, बीथी, और प्रहसन। इसके अतिरिक्त उपरूपकों के अठारह भेद हैं जिनके उल्लेख को यहाँ अवकाश नहीं है। नाटक के ये भेद करते समय इन बातों पर विचार किया गया है :—

१ – अङ्कों की संख्या ।

२—वस्तु ऐतिहासिक है या कल्पित ?

३—नायक किस वर्ग का है, और नायकों की संख्या ।

४—रस कौनसा है ?

इनके अतिरिक्त नाटकों में आकाश भाषित, स्त्री, पात्र और प्रतिनायक की भी व्यवस्था विशेष रूप से की गई है ।

संस्कृत में नाटक के विषय में जो और सूक्ष्मताएँ मिलती हैं वे हैं—अर्थप्रकृति, सन्धि विष्कम्भादि अर्थापेक्षक, श्राव्य, अश्राव्य आदि कथोपकथन के भेद, नायकों के प्रकार आदि । संस्कृत में नाटक का स्थान क्या था इसका इसी बात से पता चल सकता है कि रस जो साहित्य का चरम लक्ष्य है उसकी उत्पति पर भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के एक छोटे से पद से ही शास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार होना प्रारम्भ हुआ ।

जैसा कि पहले प्रकरण में कहा जा चुका है, संस्कृत साहित्य के आलोचक बाह्य आकार-प्रकार पर अधिक ध्यान देते थे और फलतः नाटक के उक्त भेदों के जो आधार हैं उनमें भी एक अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता है । जो हो भाण, व्यायोग, अङ्क, वीथी और प्रहसन की विशेषताएँ सापेक्षतः कहानी के अधिक निकट पड़ती है । (सम्पूर्ण वृत्ति-मूलक होने के नाते नाटक और अंश-वृत्ति-मूलक होने के नाते एकाङ्की के साथ कहानी के सम्बन्ध पर आगे विचार किया जायगा ।)

	अङ्क संख्या	वस्तु	पात्र	रस	विशेषताएँ
भाण (उ० विषस्य विषमौषधम्, कर्पूरचरितम्)	१	०	१ कल्पित, धूर्त	हास्य	आकाशभाषित
व्यायोग (उ० धनञ्जय विजय किरातार्जुनीय)	१	एक अङ्क की कथा	०	वीर	स्त्री पात्रों का अभाव
अङ्क (उ० शर्मिष्ठा ययाति)	१	प्रसिद्ध	गुणी नायक	करुण	०
वीथी (उ० लीलामधुकर)	१	कल्पित	०	शृङ्गार+वीर	०
प्रहसन (उ० हास्य चूणामणि)	१	,,	कल्पित	हास्य	०

आज कहानी के लिए, वस्तु चाहे प्रसिद्ध हो चाहे कल्पित, पात्र चाहे धूर्त हों या सज्जन, रस चाहे शृङ्गार हो या वीभत्स, किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता । हमने ऊपर जो भाण आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया है वह केवल इसी को ध्यान में रख कर कि उन सबकी अंक संख्या एक ही है । इसका आधार या तो संक्षिप्तता हो सकता है और या एक प्रभाव, अथवा दोनों । और

केवल इसी बल पर हम इन्हें कहानी के पड़ौसी मानने का आग्रह करते हैं। यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि कहानी की भाँति इनमें पात्र, घटना आदि सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं।

आज नाटक के दो स्वरूप ही जीवित हैं, जिनमें दोनों में युगानुरूप पर्याप्त संशोधन हुआ है—१–नाटक और २–एकांकी। ये दोनों परस्पर उसी प्रकार सम्बन्धित हैं जिस प्रकार उपन्यास और कहानी। अतः पहले नाटक के साथ कहानी की तुलना करने के लिए उपन्यास वाली तुलना पर दृष्टिपात कर लेना चाहिये क्योंकि उपन्यास के अनेक तत्व नाटक के तत्वों से मिलते है। यह कहना भी ठीक होगा कि नाटक और उपन्यास में जितना कुछ भी अन्तर है वह सब अन्तर नाटक और कहानी में है। गरज यह कि कहानी में कुछ और विशेताएँ होती हैं जो उपन्यास में नहीं होतीं और फलतः नाटक में भी नहीं।

नाटक वृत्ति— कह चुके हैं कि नाटक विस्तार की दृष्टि से पहले प्रकार का साहित्य है तो कहानी दूसरे प्रकार का। अतः संवेदना को लेकर नाटक और कहानी में विशाल एवं स्पष्ट अन्तर है। कथानक की दृष्टि से नाटक में एक और विशेषता होती है कि उसमें उपकथाओं एवं मूल कथा की अनेक शाखाओं (अवस्थाओं) को बुरी तरह जकड़ दिया जाता है यद्यपि हमारे यहाँ कहीं-कहीं यह भी विधान है कि नाटक में एक अप्रधान घटना कहीं से उठ कर कहीं बीच ही में समाप्त हो जाती है। ऐसी घटना का नाम प्रकरी होता है। हमने ऊपर देखा है कि उपन्यास में भी ऐसी घटनाएँ होती है। घटना को लेकर तो हमारे यहाँ एक स्पष्ट निर्देश है कि नाटक की घटना दोहरी होती है, एक आधिकारिक और दूसरी प्रासङ्गिक। कहानी में ऐसा नहीं होता। पश्चिमी साहित्य के नाटक के 'सङ्घर्ष तत्व' और हमारे यहाँ के नाटक के 'संकट-तत्व' का सीधा सम्बन्ध घटना से है। चरम तक पहुँचते-पहुँचते पाठक यदि अनेक भूलभुलैयाँओं में न पड़े तो नाटककार निश्चय ही अपने आपको धन्य नहीं समझेगा। उपन्यास में भी ये तत्व किसी न किसी रूप में आते हैं पर, किसी भी सम्प्रदाय ने इनका इस रूप में विवेचन नहीं किया। इसी प्रकार हमारे यहाँ घटना की पाँच अवस्थाएँ बताई गई हैं—प्रारम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। पाश्चात्य साहित्य के ड्रामा में प्रायः यही अवस्थाएँ इस रूप में हैं। Exposition (पटोद्घात), Incident (घटना का सूत्र), Rising Action (विकास), Climax (पराकाष्ठा), Denoument (निर्गति), Catestrophe (परिणाम)। कहानी से इनका कोई बहिष्कार नही है। किन्तु साथ ही वह

प्रार्थना करती है कि ये इसे बोझिल न बना दे। सच बात तो यह है कि जिस प्रकार छोटे से शरीर में भारी आभूषण शोभा नही देते इसी प्रकार कहानी की घटनाओं मे इन उतार-चढावों का सम्मान नही है। वह तो इतनी छोटी होती है कि वह पाठक को पता हो लगने नही देती कि एक अवस्था से दूसरी अवस्था पर अन्तर्वर्त्तन कब हुआ। साधारण तौर पर पाठक को या तो चरम का अनुभव होता है, या अन्त का।

घटना—फिर भी व्यवस्थित रूप से कहे तो कहानी में घटना की ये अवस्थाएँ इस प्रकार से आती है—

१—उसमें प्रायः सूत्र का पता नही रहता।

२—विकास सीधा तीसरी अवस्था को जाता है और बिलकुल सरल (Smooth) होता है।

३—नाटक का प्रधान आकर्षण फलागम या Catestrophe में रहता है, कहानी का चरम में। कभी कभी कहानी में चरम तक के दर्शन नहीं होते।

४—निगनि और परिणाम नाम की कोई स्पष्ट अवस्थाएँ नही होती। चरम के होने की अवस्था मे तो कहानी को चरम आते ही उसके ठीक पश्चात् रुक जाना पडता है, और चरम के न होने की स्थिति में लेखक हमें एक ऐसे स्थल पर छोड देता है जिसकी कोई विशेषता नही होती। (देखिए श्री अज्ञेय की 'रोज' शीर्षक कहानी)।

यह कहे तो कदाचित् आपत्ति की कोई बात नही है कि जिस प्रकार नाटक में इन अवस्थाओं का आधार सङ्घर्ष या सङ्कट है उसी प्रकार कहानी की घटना का आधार अनिश्चितता (Suspense) है। वैसे 'सङ्घर्ष' कहानी का एक प्राण-तत्व है।

सङ्कलन त्रय—नाटक में देश काल के व्यवधान के निराकरण के लिए जिस प्रकार सङ्कलन त्रय की व्यवस्था है, इसी प्रकार कहानी में भी। वास्तव में कहानीकार अपने वातावरण में देशकाल का व्यतिक्रम आने ही नहीं देता। नाटक में इसका उद्देश्य होता है "स्वाभाविकता", कहानी में इसका उद्देश्य होता है "प्रभावैक्य"।

जो बात हमने कहानी के अनुच्छेदों की तुलना में उपन्यासों के प्रकरणों की कही है, वही बात संकेत रूप में हमें नाटक के अङ्कों के विषय में कहना चाहिए; यद्यपि संस्कृत के पण्डितों ने नाटक के अङ्कों को वस्तु की अवस्थाओं से जैसा बाँध दिया है वैसा कोई बन्धन कहानी के अनुच्छेदों के विषय में हितकर

नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है, क्योंकि कहानी के अनुच्छेदों का क्रम वैज्ञानिक नही होता ।

उद्देश्य—हमारे यहाँ के प्राचीन नाटको का वातावरण प्रायः व्यक्तिगत होता था और नायक का भाव स्वार्थसिद्धि ही रहता था । इसलिए आदर्श का कोई प्रश्न ही नही उठता । किन्तु आज के नाटको का दृष्टिकोण व्यापक हो चला है और लेखक का उद्देश्य प्रायः सामूहिक समस्याएँ चित्रण करना होता है । उनमे अवश्य ही शिक्षा को बू कुछ न कुछ अशो में रहतो है । किन्तु इधर पश्चिम में कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जिनका आधार मनोविश्लेषण रहा । इस दृष्टिकोण को लेकर कहानी ठीक नाटक के समीप जा पड़ता है । निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार नाटक म आदर्शवाद की अनिवार्य आवश्यकता नही होता उसी प्रकार कहानी मे भी नही होती । इस सम्बन्ध मे ऊपर दो स्थलो पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है ।

मूल मनोवृत्तियाँ—नाटक के मूल मे ये मनोवृत्तियाँ काम करती हैं, ऐसा माना गया है—

१. अनुकरण ।
२. पारस्परिक परिचय द्वारा आत्मा का विस्तार ।
३. जाति की रक्षा ।
४. आत्माभिव्यक्ति ।

कहानी भी एक प्रकार का अनुकरण है, यद्यपि नाटक और कहानी के "अनुकरण" में शैली सम्बन्धी भेद होता है । जीवन की जिस व्याख्या के अनुसार, पारिस्परिक परिचय द्वारा आत्मा का विस्तार नाटक का उद्देश्य होता है वही व्याख्या मूल रूप में कहानी साहित्य मे विद्यमान है । सामाजिक जीवन के अधुनातन सर्वतोमुखी विकास को देखते हुये "जाति की रक्षा" को हम नाटक के मूल की शाश्वत (Fundamental) मनोवृत्ति नही मानते । अतः कहानी के सम्बन्ध में इस पर विचार करने की आवश्यकता ही नही है । आत्माभिव्यक्ति एक अस्पष्ट विषय है और नाटक के विषय में यदि घट सकता है तो उसी सफलता के साथ कहानी के विषय में ।

नाटक के तत्त्व—अब हम एक आवश्यक बात पर आते है । नाटक के तत्त्वो में (१) अभिनय तथा (२) संवाद, ये प्रधान माने गये हैं । कुछ पण्डित नाटक के पात्रो के विषय मे ऐसा कहते है कि उनका व्यक्तित्व मौलिक होता है, यह उनकी विशेषता होती है । इस पर नीचे की पंक्तियो में विचार किया जायगा ।

अभिनय—सम्पूर्ण 'अभिनय' में से संवाद निकाल देने पर (अ) रङ्गमञ्च (आ) सामाजिकों के सामने पात्रों की व्यक्तिगत उपस्थिति एवं (इ) पात्रों की मुद्रा, ये तीन शेष रह जाते हैं। रङ्गमञ्च को यदि गहराई से, नाटक की (जो मनुष्य-नामधारी वास्तविक प्राणियों के क्रीड़ा-कलाओं का रूपक है) भूमिका में देखा जाय, जो जीवन-सापेक्ष साहित्य का सच्चा दृष्टिकोण है, तो अनुभव होगा कि प्रस्तुत नाटक के रङ्गमञ्च में विधान की दृष्टि से खूब बनाव-दिखाव है ताकि सजग पाठक या सामाजिक उसकी अस्वाभाविकता पर तत्काल, किञ्च, पहले ही नाक भौं सिकोड़ने लगता है। रङ्गमञ्च प्रधान रूप से 'देश' का प्रतीक है (जिस प्रकार नाटक की वस्तु, पात्रों के बातचीत की शैली आदि 'काल' की प्रतीक हैं) इस बात को लेकर नाटक के रङ्गमञ्च में एक और बड़ी कमी आती है कि उसमें 'देश' की सारी विशेषताएँ जैसे किसी स्थान पर भारी आग लग जाना, किसी ऊँचे पहाड़ का दृश्य जिस पर से झरना गिर रहा है, मीलों तक चलने वाली लम्बी हरियाली, नहीं चित्रित हो सकती है। इस असम्भाव्यत्व का एक कारण यह है कि रङ्गमञ्च की क्षमता स्थल और व्यवहार की दृष्टि से सीमित होती है। विज्ञ पाठकों को यह ज्ञात है कि भारतीय रङ्गमञ्च पर मृत्यु, दाह, आदि के दृश्य आदर्श की दृष्टि से वर्जित भी हैं, जो कि नाटक की स्वाभाविकता पर एक और आघात है। इस प्रकार यह कहना दम्भ है कि नाटक इस लिए सफल और स्वाभाविक होते हैं कि उनमें जीवन का सबसे अधिक समीप से किया हुआ अनुकरण मिलता है।

कहानी आदि ऐतिहासिक प्रणाली वाले कथा-साहित्य के विषय में निष्पक्ष दृष्टि से कहा जा सकता है कि उनमें न तो मञ्च का कृत्रिम स्वरूप होता है और न उनके 'देश' की कोई व्यावहारिक या अवकाश सम्बन्धी सीमाएँ होती हैं। अनुकृत प्रत्यक्ष की जो कमियाँ होती हैं उनकी पूर्ति आसानी से इस प्रकार के साहित्य मे कल्पना द्वारा करली जाती है। अतः एक सम्पूर्ण चित्र पाठक के सामने आ जाता है।

मुद्रा—यह मानी हुई बात है कि प्राचीन प्रणाली के 'नाटकों में' हाथ-पैर पछाड़ने वाले जो पात्र होते थे (जिसके दर्शन आज भी कहीं-कहीं गाँवों अथवा कस्बों में होने वाली रामलीलाओं आदि में हो जाते हैं) उनका महत्त्व आज व्यावहारिक दृष्टि से नहीं है। यहाँ फिर सहज स्वाभाविकता का प्रश्न आता है। तब निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वाभाविक आलाप-संलाप के प्रसङ्ग में मुद्रा का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, खास करके जबकि एक साधारण नाटक में केवल विशेष मुद्राओं, जैसे विलाप, हास्य, आदि द्वारा रस सृष्टि का अवसर

अपेक्षाकृत बहुत कम रहता है।

पात्रों की व्यक्तिगत उपस्थिति और मुद्रा के सम्बन्ध में भी दृश्य तत्त्व के विषय में वही बात कही जा सकती है, जो रङ्गमञ्च के सम्बन्ध में।

संवाद—(२) कहानी की परिभाषा देते समय यह संकेत कर दिया गया है कि नाटक का ढाँचा कथोपकथन है, जिसका तात्पर्य यह है कि उसी के द्वारा नाटक की सारी वस्तु, उसके उद्देश्य आदि अभिव्यक्त होते हैं। यह नाटक की एक मुख्य विशेषता होती है जो उसे अन्य साहित्यों से भिन्न करती है। कहानी में भी संवाद होते हैं। यद्यपि अनिवार्यतः नही। जहाँ तक संवादो के उद्देश्य का प्रश्न है, कहानी और नाटक दोनों के संवाद कभी घटना का अनुकरण करते दिखलाई पड़ते हैं, कभी वातावरण बनाते हुए। किन्तु दोनो के सवादो में क्या भिन्नता है यह बात एक नाटक और एक नाटकीय शैली पर लिखी गई अर्थात् केवल कथोपकथन वाली, एक कहानी को साथ-साथ पढ़ लेने से स्पष्ट हो जायगी। यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह अन्तर अधिक विराट नही है। वैसे यद्यपि कहानी के संवादो का उत्तरदायित्व उसके शेष भाग द्वारा बंट जाता है, फिर भी कहानी मे जो कुछ भी संवाद होते हैं उनका कहानी में एक विशेष महत्व है। इस पर कहानी के तत्त्वो वाले प्रकरण में अधिक विचार किया जायगा। विस्तार को लेकर कहानी और नाटक म जो भेद किया जाता है उसका उचित अंश तत्वो के साथ सवाद तत्व को भी मिलता ही है।

व्यक्तित्व—कहा जाता है कि नाटक के पात्रो का व्यक्तित्व उनका अपना होता है, लेखक का नही। इसका साधारण अर्थ यही हो सकता है कि कहानी आदि में लेखक को स्वतन्त्र रूप से पात्रो के चरित्र की तथा और भी अनेक वस्तुओ की आलोचना का अवकाश मिलता है। नाटक में उसी को एक पात्र दूसरे पात्र के प्रति परोक्ष-अपरोक्ष रूप में अथवा लेखक स्वयं उसी पात्र की बातचीत एवं गतिविधियो द्वारा कर देता है। आखिरकार कहानी और नाटक दोनों के पात्र हैं तो लेखक के ही मानस पुत्र।

कहानी की परिभाषा करते समय बड़े बड़े विद्वानों ने इस बात पर जोर दिया है कि कहानी में एक प्रकार का नाटकीय अभिव्यञ्जना पाई जाती है। यदि इस बात में बल है तो निस्सन्देह कहानी और नाटक की आत्मीयता में अधिक गहराई आ जायगी। जहाँ तक अनुमान लगाया जा सकता है नाटकीय अभिव्यञ्जना का सम्बन्ध कहानी की पराकाष्ठा एवं उसी की अनिश्चितता से ही है। इन पर ऊपर उपयुक्त विवेचन हो चुका है।

अभिनय—सम्पूर्ण 'अभिनय' में से संवाद निकाल देने पर (अ) रङ्गमञ्च (आ) सामाजिकों के सामने पात्रों की व्यक्तिगत उपस्थिति एवं (इ) पात्रों की मुद्रा, ये तीन शेष रह जाते है। रङ्गमञ्च को यदि गहराई से, नाटक की (जो मनुष्य-नामधारी वास्तविक प्राणियों के क्रीड़ा-कलाओं का रूपक है) भूमिका में देखा जाय, जो जीवन-सापेक्ष साहित्य का सच्चा दृष्टिकोण है, तो अनुभव होगा कि प्रस्तुत नाटक के रङ्गमञ्च में विधान की दृष्टि से खूब बनाव-दिखाव है ताकि सजग पाठक या सामाजिक उसकी अस्वाभाविकता पर तत्काल, किञ्च, पहले ही नाक भौं सिकोड़ने लगता है। रङ्गमञ्च प्रधान रूप से 'देश' का प्रतीक है (जिस प्रकार नाटक की वस्तु, पात्रों के बातचीत की शैली आदि 'काल' की प्रतीक हैं) इस बात को लेकर नाटक के रङ्गमञ्च में एक और बड़ी कमी आती है कि उसमें 'देश' की सारी विशेषताएँ जैसे किसी स्थान पर भारी आग लग जाना, किसी ऊँचे पहाड़ का दृश्य जिस पर से झरना गिर रहा है, मीलों तक चलने वाली लम्बी हरियाली, नहीं चित्रित हो सकती है। इस असम्भाव्यत्व का एक कारण यह है कि रङ्गमञ्च की क्षमता स्थल और व्यवहार की दृष्टि से सीमित होती है। विज्ञ पाठकों को यह ज्ञात है कि भारतीय रङ्गमञ्च पर मृत्यु, दाह, आदि के दृश्य आदर्श की दृष्टि से वर्जित भी है, जो कि नाटक की स्वाभाविकता पर एक और आघात है। इस प्रकार यह कहना दम्भ है कि नाटक इस लिए सफल और स्वाभाविक होते है कि उनमें जीवन का सबसे अधिक समीप से किया हुआ अनुकरण मिलता है।

कहानी आदि ऐतिहासिक प्रणाली वाले कथा-साहित्य के विषय में निष्पक्ष दृष्टि से कहा जा सकता है कि उनमें न तो मञ्च का कृत्रिम स्वरूप होता है और न उसके 'देश' की कोई व्यावहारिक या अवकाश सम्बन्धी सीमाएँ होती हैं। अनुकृत प्रत्यक्ष की जो कमियाँ होती है उनकी पूर्ति आसानी से इस प्रकार के साहित्य में कल्पना द्वारा करली जाती है। अतः एक सम्पूर्ण चित्र पाठक के सामने आ जाता है।

मुद्रा—यह मानी हुई बात है कि प्राचीन प्रणाली के 'नाटकों में' हाथ-पैर पछाड़ने वाले जो पात्र होते थे (जिसके दर्शन आज भी कहीं-कहीं गाँवों अथवा कस्बों में होने वाली रामलीलाओं आदि में हो जाते है) उनका महत्त्व आज व्यावहारिक दृष्टि से नहीं है। यहाँ फिर सहज स्वाभाविकता का प्रश्न आता है। तब निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वाभाविक आलाप-संलाप के प्रसङ्ग में मुद्रा का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, खास करके जबकि एक साधारण नाटक में केवल विशेष मुद्राओं, जैसे विलाप, हास्य, आदि द्वारा रस सृष्टि का अवसर

अपेक्षाकृत बहुत कम रहता है।

पात्रों की व्यक्तिगत उपस्थिति और मुद्रा के सम्बन्ध में भी दृश्य तत्त्व के विषय में वही बात कही जा सकती है, जो रङ्गमञ्च के सम्बन्ध में।

संवाद—(२) कहानी की परिभाषा देते समय यह संकेत कर दिया गया है कि नाटक का ढाँचा कथोपकथन है, जिसका तात्पर्य यह है कि उसी के द्वारा नाटक की सारी वस्तु उसके उद्देश्य आदि अभिव्यक्त होते है। यह नाटक की एक मुख्य विशेषता होती है जो उसे अन्य साहित्यो से भिन्न करती है। कहानी में भी संवाद होते हैं। यद्यपि अनिवार्यतः नही। जहाँ तक संवादो के उद्देश्य का प्रश्न है, कहानी और नाटक दोनों के संवाद कभी घटना का अनुकरण करते दिखलाई पड़ते हैं, कभी वातावरण बनाते हुए। किन्तु दोनो के सवादों में क्या भिन्नता है यह बात एक नाटक और एक नाटकीय शैली पर लिखी गई अर्थात् केवल कथोपकथन वाली, एक कहानी को साथ-साथ पढ़ लेने से स्पष्ट हो जायगी। यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह अन्तर अधिक विराट नही है। वैसे यद्यपि कहानी के संवादों का उत्तरदायित्व उसके शेष भाग द्वारा बंट जाता है, फिर भी कहानी मे जो कुछ भी संवाद होते हैं उनका कहानी में एक विशेष महत्व है। इस पर कहानी के तत्त्वों वाले प्रकरण में अधिक विचार किया जायगा। विस्तार को लेकर कहानी और नाटक म जो भेद किया जाता है उसका उचित अंश तत्वो के साथ सवाद तत्व को भी मिलता ही है।

व्यक्तित्व—कहा जाता है कि नाटक के पात्रो का व्यक्तित्व उनका अपना होता है, लेखक का नहीं। इसका साधारण अर्थ यही हो सकता है कि कहानी आदि में लेखक को स्वतन्त्र रूप से पात्रो के चरित्र की तथा और भी अनेक वस्तुओ की आलोचना का अवकाश मिलता है। नाटक में उसी को एक पात्र दूसरे पात्र के प्रति परोक्ष-अपरोक्ष रूप मे अथवा लेखक स्वयं उसी पात्र की बातचीत एवं गतिविधियों द्वारा कर देता है। आखिरकार कहानी और नाटक दोनों के पात्र है तो लेखक के ही मानस पुत्र।

कहानी की परिभाषा करते समय बड़े बड़े विद्वानों ने इस बात पर जोर दिया है कि कहानी में एक प्रकार का नाटकीय अभिव्यञ्जना पाई जाती है। यदि इस बात में बल है तो निस्सन्देह कहानी और नाटक की आत्मीयता में अधिक गहराई आ जायगी। जहाँ तक अनुमान लगाया जा सकता है नाटकीय अभिव्यञ्जना का सम्बन्ध कहानी को पराकाष्ठा एवं उसी की अनिश्चितता से ही है। इन पर ऊपर उपयुक्त विवेचन हो चुका है।

कहानी और एकाङ्की नाटक—जैसे उपन्यास और कहानी में कालान्तर में यत्किंचित स्पष्ट विभाजन हो गया है उसी प्रकार नाटक और एकाङ्की नाटक का भी। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि हमारे प्राचीन साहित्य में जो आख्यान मिलते थे, उपन्यास आज उन्ही का विवर्द्धित रूप है। नाटक वहाँ अनेकाकी भी होते थे और एकांकी भी। किन्तु भाण आदि जिन एकांकियों का ऊपर परिचय दिया गया है उन एकांकियो से आज के एकांकियों में वस्तु आदि का वैशेष्य तो है ही, अङ्क के विषय मे नाटककार के दृष्टिकोण में भी पर्याप्त अन्तर है। यह बात भी ठीक है कि यहाँ नाटक से एकाङ्की का अवतरण नही हुआ जैसा कि पश्चिम में हुआ। ज्यों-ज्यों गल्पों का महत्व समझा जाने लगा त्यों-त्यों नाटक से क्रमशः एकाङ्कियो का विकास भी सरल होता गया। एक समय आया जब कि जन-जीवन की सुविधा को देखते हुए जो आदर्श कहानी का रक्खा गया वही एकाङ्की नाटक का भी। अतः कहानी के आदर्श पर एकाङ्की के विकास की भी एक निश्चित परम्परा है। इस पृष्ठभूमि को समझ लेने के बाद कहानी और एकाङ्की में परस्पर सम्बन्ध, अन्तर आदि का सूत्र ढूँढ़ना बहुत आसान हो जायगा।

विधान—नाटक के रूप में एकाङ्की और कहानी में क्या सम्बन्ध है इसे ज्ञात करने के लिए हमें उपरोक्त नाटक और कहानी वाले प्रसंगों को देख लेना चाहिये। शेष विषयों मे विस्तार की दृष्टि से एकाकी और कहानी एक ही वर्ग के साहित्य हैं। एकाङ्की का विधान कुछ इस प्रकार का होता है। या तो उसमें एक अङ्क के अन्तर्गत तीन-चार दृश्य होते है, जिनमे से कुछ मे मञ्च-परिवर्तन होता है तथा कुछ मे नही, या एक अङ्क के अन्दर एक ही लम्बा दृश्य होता है जिसमें सम्पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता नही होती। कहानी में भी कुछ इसी प्रकार का विधान मिलता है। कहानियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमे सोपान पाए जाते है, जिनमें से कुछ मे दृश्य परिवर्तन होता है, कुछ मे वही दृश्य चलता है (इसके मूल आधार पर आगे विचार किया जायगा) और ऐसी भी मिलती है जिनका क्रम सीधा चलता है। पत्र-प्रणाली एवं डायरी प्रणाली की कहानियाँ प्रायः पहले प्रकार के अन्तर्गत आती है, किन्तु ऐसा भी देखा गया है कि कोई कहानी एक ही पत्र के अन्दर सिमट कर बैठ गई है या किसी एक ही रोज के अनुभव का आधार बन गई है या बिलकुल सीधी चलती गई है। उस दशा में वे ऐतिहासिक विधान ग्रहण कर लेती है, साथ ही ऐतिहासिक विधान की सारी स्वतन्त्रताएँ उन्हे प्राप्त नही हो सकती।

विषय—वैसे तो एकाङ्की की वस्तु कहानी की वस्तु की भाँति ही

समाज का कोई भी क्षेत्र ले सकती हैं, किन्तु आज का नाटक इतनी उन्नति कर रहा है कि मनुष्य के मनोभावों का भी, जिनका रूपकात्मक अभिनय अत्यन्त कठिन है, चित्रण प्रायः पात्रों के रूपों में नाटकों और एकाङ्कियों में होने लगा हैं। एकाङ्कियों को यह सुविधा निश्चय ही अधिक उदारतापूर्वक प्राप्त है क्योंकि एक तो मञ्च आदि की आवश्यकताएँ उनमें इतनी विस्तृत नहीं होती और दूसरे उनमें भावात्मक चरित्रों की कल्पितता और तज्जन्य अरोचकता का झट से अनुभव नहीं होता।

शैली—शैली की दृष्टि के अतिरिक्त कहानी और एकाङ्की में और कोई प्रकार का अन्तर नहीं करना चाहिए।

आत्मकथा और कहानी—आत्मकथा एक प्रकार का रोचक निबन्ध है जिसका सम्बन्ध जीवन में होने वाली घटनाओं के ऐतिहासिक चित्रण से होता है। उसकी साहित्यिक रुचि-शीलता का सूत्र कदाचित इस मानवीय मनोवृत्ति में है कि उसमें किसी इतर व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध की कोई विशेष अविशेष घटना होती है जिसको हम जानकर एक सापेक्षिक सुख की उपलब्धि करते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि आत्मकथाएँ प्रायः वही अधिक प्रचलित होती हैं जिनमें लेखक की असफलताओं, अपूर्णताओं एवं उसके दुर्गुणों का यथातथ्य अङ्कन होता है।

आत्मकथा में दो तत्व प्रधानतया काम करते है। (१) घटना, (२) विभिन्न अनुभवों अनुभूतियों से पुष्ट चरित्र। पहले को आत्मकथा का बहिः पक्ष, तथा दूसरे को उसका अन्तर्पक्ष कह सकते है।

नायक—साहित्य के सभी रूपों में आत्मकथा एक सबलतम साहित्य है जिस में नायक की सैद्धान्तिक प्रधानता निर्भयता से स्वीकार की जा सकती है। गहराई से देखें तो आत्मकथा के रूप में साहित्य की एक मूल मनोवृति, आत्माभिव्यञ्जन ने बड़े कौशल के साथ एक मोड़ लिया है। वस्तुतः आत्मकथा से ही उतर कर मनोवृति इस रूप में शेष साहित्यों में आई है।

आपने 'मैं' वाली अनेक कहानियाँ पढी होगी। ऐसी कहानियाँ प्राचीन काल मे लिखी चली आती रही है। पाठकों को स्मरण होगा कि प्राचीन संस्कृत पण्डितों ने आख्यायिका के जो लक्षण गिनाये हैं उनमें "नायकेनैव वाच्या" एक प्रधान लक्षण है। इसका सम्बन्ध इसी शैली से है। इस प्रकार की कहानियाँ ऐसी भी होती है जिनमें वाचक अर्थात् नायक की स्थिति अन्य पात्रों के सम्बन्ध में प्रमुख होती है और शेप पात्र मूल संवेदना से उतना वास्ता नहीं रखते जितना स्वयं नायक। दूसरे प्रकार की कहानियाँ ऐसी होती है

जिनमें कहानी का कोई भी पात्र 'मैं' बनकर बोलने लगता है। तथा दूसरे पात्रों की अवसरानुकूल 'वह', 'वे', 'आप' या 'तू' आदि सर्वनाम देकर पुकारता है। पहली कहानियों की भाँति न तो शेष पात्रों की नकेल ही उस 'मैं' के हाथ में होती है और न वस्तु की बागडोर ही। इस प्रकार के नायक प्रायः भावुकता की ओर झुके हुए होते हैं।

ऐसी कहानी का नायक चाहे सबल हो चाहे निर्बल, आत्मकथा का उससे सम्बन्ध तो है ही क्योंकि कम से कम शैली की दृष्टि से तो दोनों एक ही मार्ग का अनुसरण करती हैं।

किन्तु यह एक विडम्बना है कि आत्मकथा साहित्य की तुलना आत्मकथा प्रणाली की कहानियों से करके सन्तोष कर लिया जाय, क्योंकि इस प्रकार की कहानियाँ निश्चय ही कहानी-साहित्य के अधांश से अधिक की पूर्ति नहीं करतीं। उदारतावश हम इस प्रकार की कहानियों की कमियों पर दृष्टिपात करना भी छोड़ दें यह बात और है।

वृत्ति—कहानी का स्वरूप निर्धारित कर लेने के उपरान्त हम उस साहित्य को स्पर्श नहीं करते जिन्हें अभी-अभी हमने सम्पूर्ण वृत्ति-मूलक साहित्य की संज्ञा दी है। क्योंकि केवल यह कहने से कि कहानी विस्तार की दृष्टि से अमुक वर्ग का साहित्य है तथा अमुक साहित्य अमुक वर्ग का, कोई लाभ नहीं है। प्रस्तुत विवेचन के लिए हम पहले वर्ग के साहित्य के भी उसी अङ्ग को लेंगे जो विस्तार की दृष्टि से कहानी से मेल खाता हो।

जहाँ तक आत्मकथा का प्रश्न है, वह जीवन की एक परीक्षा है, सिंहावलोकन है। वह एक तो आलेख्य घटनाओं को सामने रखती है, फिर यह संकेत करती है कि अमुक घटना की अमुक अवस्था में लेखक का (जो हमारे लिए 'अन्य पुरुष' से अधिक नहीं) अपने प्रति, अथवा उन व्यक्तियों के प्रति, जिनके वह सम्पर्क में आया, क्या दृष्टिकोण रहा। यह कर चुकने के बाद (ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं वह कुछ स्थायी सिद्धान्तों को प्रकाश में लाने का) प्रयत्न करती है, जो अमुक परिस्थिति में मनुष्य मात्र पर लागू होते हैं।

वस्तु—ऊपर साहित्य के भेद करते समय हमने वस्तु की दृष्टि से आत्मकथा को उस वर्ग में रखा जिसका आधार अकल्पित कथा है, तथा कहानी को कल्पित या कल्पित-अकल्पित कथा वाले वर्ग में। किन्तु जहाँ सिद्धान्त का प्रश्न है ये आधार अव्यवहारिक सिद्ध होते है, क्योंकि जहाँ तक भूतों और परियों की सीमा नहीं आती, हमें इस समाधान की आवश्यकता ही क्या है कि अमुक घटना घटी है अथवा नहीं? अमुक परिस्थितियों में जो कुछ हो सकता है वह सभी

प्रकार उन परिस्थितियों में जो कुछ हुआ है वह। यही कारण है कि कथा-साहित्य मानव मात्र को घटित सत्य से कम प्रभावित नहीं करता। वाच्य वह है कि जिस प्रकार आत्म कथा मे जीवन की आलोचना होती है उसी प्रकार कहानी में भी। इस प्रक्रिया में आत्म-कथा में यदि लेखक पाठक की रुचि का ध्यान नहीं रखता, तो कहानी के लिए यह एक अतिरिक्त गुण ही होगा कि उसमें नीरसता का कहीं प्रवेश नही है।

उद्देश्य - आत्मकथाओं की भाँति ही कहानियाँ वही सफल होती हैं जिनमे मानव जीवन के शाश्वत सत्यों का उद्घाटन पाया जाता है। यह बात कहानी को उतनी ही अच्छी तरह मालूम है जितनी आत्मकथा को कि इस प्रकरण में न तो वह दर्शन ही है न उसे दर्शन बनाने की चेष्टा ही करनी चाहिए, क्योंकि दर्शन की कुटिलता दोनों के लिये क्षय का काम करती है। (उसका अपना दर्शन हो सकता है, यह बात बिलकुल भिन्न है।) यदि किसी का आर्जव में हो महत्त्व है तो उसे तिर्यक्-वृत्ति में क्यों जाना चाहिये ?

तत्त्व-विधान—तत्त्वों की दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट है कि आत्मकथा में गल्प के वे तत्त्व नहीं होते, जैसे नाटकीय वक्रता, अनिश्चितता, चरम आदि जिनका सम्बन्ध घटना की विशेषता से होता है। ये ही विशेषतायें आत्मकथा को कथा से अलग करती हैं। विधान की दृष्टि से भी कहानी और आत्मकथा में पर्याप्त अन्तर है, जैसे कि आधुनिक कहानी की भाँति आत्म-कथा का आदि और अन्त आकस्मिक हो, यह आवश्यक नही। कहानी लेखक प्रायः यह भी प्रयत्न करता है कि वह एक ऐसा केन्द्र बनाले जिसके आस पास एक निश्चित वातावरण बन सके। आत्मकथा इस प्रसंग से सर्वथा अछूती रहती है। वास्तव में इनके आदर्श भो भिन्न भिन्न हैं यद्यपि अन्तिम उद्देश्य एक ही है।

संस्मरण—आत्मकथाएँ प्रायः लम्बी हुआ करती हैं, संस्मरण छोटे। ये कहानी के अधिक समीप रहते हैं क्योंकि इनमें एक अल्पकालिक विशेषता रहती है। कहानी की भाँति इसमें भी चमत्कार पाया जाता है। इनमें चरित्रों की अपेक्षा घटना की विशेषता होती है। वस्तु की दृष्टि से ये आत्मकथा से मिलते हैं।

स्केच और कहानी—स्केच में, जो साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक भेद विशेष है, किसो व्यक्ति अथवा किन्हीं व्यक्तियों की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण होता है। शैली की दृष्टि से स्केच आत्मकथा और संस्मरण के बीच की कोई चीज है। यद्यपि इसके वातावरण में लेखक के व्यक्तित्व की छाप स्पष्टतया अङ्कित रहती है, एवं इसके व्यक्तिगत अनुभवों के संकेत चिह्न भी पाये जाते हैं,

फिर भी स्केचकार को यह छूट होती है कि अपनी कृति में वह कल्पना का उचित उपयोग करे।[1] लेखक घटना के कुछ ऐसे सूत्रों को जोड़ता है कि उस की रचना चरित्र-प्रधान कहानी सी लगती है किन्तु न तो उसमें कहानी का सा विधान ही होता है और न उसकी सी गति ही। ऐसी कला कृति की प्रधान विशेषता उसकी अभिव्यक्ति में रहती है। आत्मकथा और संस्मरण की भाँति स्केच भी प्रायः भूतकाल की पुनरावृत्ति करते हैं, किन्तु स्केच के लिए ऐसा कोई कठोर बन्धन नहीं है। कहानी की भाँति और कहानी से भी अधिक सफलता के साथ स्केच का वातावरण वर्तमान काल का भी हो सकता है। ऐसे स्केचों को पर्सनल स्केच भी कहते हैं। कहानी से इस साहित्य का प्रधान अन्तर इस बात में है कि इसका मेरु दण्ड कथानक नहीं। किन्तु स्केच का प्रभाव इतना व्यक्तिगत होता है कि उसे कहानी की ही भाँति सहज में ही अपनाना का जी होता है। फिर भी स्केच का अन्तिम उद्देश्य कोई सूचना देना होता है जब कि कहानी का अन्तिम उद्देश्य एक प्रभाव। संक्षेप में कहें तो स्केच को संस्मरण की शैली पर लिखा हुआ एक रोचक निबन्ध कह सकते हैं। स्केच की उत्पत्ति भी निबन्ध से हुई जान पड़ती है जिसमें भावुकता, चरित्र, घटना आदि का संयोग होने से वह अनायास कहानी के समीप आ पड़ता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि एक ही स्केच बहुत लम्बाई तक खींचे जाने पर भी स्केच ही रहता है, जब कि कहानी के साथ इस प्रकार का बल प्रयोग करने से अवश्य ही उसमें दोष घुसने प्रारम्भ हो जाते हैं। किन्तु स्केच का सुरसापन भी लेखक के कौशल की कसौटी ही है।

कविता और कहानी बाबू श्यामसुन्दरदास ने उपन्यास की विवेचना करते समय लिखा है कि उसके एक ओर कहानी है तथा दूसरी ओर कविता। इस मान्यता में यह स्वीकारोक्ति है कि कहानी और कविता किसी दृष्टि से सर्वथा परस्पर असमान, अथवा विरोधी दिशा वाले मार्गों में चलती हैं। हम इस बात को इस प्रकाश में लेंगे कि ये दोनों प्रकार के साहित्य अपने उद्गम के विषय में एक ही उत्स के ऋणी हैं एवं उनका पर्यवसान भी एक ही भूमिका में जाकर होता है।

अन्धकार की पहली अभूतपूर्व, अकल्पनीय, रात के, मानव के हृदय में कम्पन मचा देने वाले चार पहरों के निर्वाण को अन्धकार के ही वर्ण के एक द्विज ने अपने सुमधुर स्वरों में जब मानव के सामने गाया तो उसके विस्मय की सीमा न रही होगी। तब उसने भी कुछ उसी प्रकार के स्वर में भर कर कहा होगा—'आः किम्' ?

[1] हिन्दी में स्केच साहित्य का उदाहरण—महादेवी वर्मा : 'अतीत के चल-चित्र'।

जिसने कहानी के तत्व को समझा है वह निश्चय ही अधिकार के स्वर में कहेगा, यह मानव की कहानी का सूत्रपात है। कविता इस कहानी की अभिव्यक्ति की शैली है बस। कविता को आप भावना समझ लें, उसका आधार जो है वस्तु है वह तो कहानी ही है। हमारा विश्वास है कि अभिव्यक्ति मात्र की पृष्ठभूमि कहानी में ह' है, क्योंकि जो कुछ कहा जाय वही कहानी है, कहानी की इस लौकिक व्याख्या के अतिरिक्त भी हम यही निवेदन करेंगे कि कहा वही जायगा जो घटा हो, चाहे मनुष्य के मस्तिष्क में अथवा उसके बाहर। और घटना के सिवाय कहानी का और कुछ स्वरूप नही है। कविता के जीवन की मौलिक अनुभूति मानने वालों को उसका यह शाश्वत पक्ष कभी नही भूलना चाहिए। पाठक इसे इस बात का पर्याय नही समझें कि हमारे यहाँ काव्य के अन्तर्गत कहानी आदि सभी प्रकार के साहित्य आ जाते हैं। वह तो साहित्य की व्याख्या का व्यवहार-पक्ष मात्र है। कहानी और कविता की एक मार्गी परिणति के विषय में भी हमें यही कहना है।

अंग्रेजी आलोचकों के मतानुसार कविता दो प्रकार की होती है—अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। इस सन्दर्भ में देखने की बात यह है कि इस प्रकार के वर्गीकरण का आधार भी घटना है, चाहे वह भावों के रूप में हो, चाहे क्रियाओं व्यापारों आदि के रूप में। कवि के अपने साथ जो कुछ भी घटा है वह अन्तर्मुखी, और शेष विश्व में प्रचलित अर्थ में, कवि निरपेक्ष जो कुछ घटनाएँ हुई हैं उन्हें बहिर्मुखी काव्य में चित्रित किया जाता है। भावो का भी यदि अधिक विश्लेषण किया जाय तो जान पड़ेगा कि वे भी किसी बात को लेकर उत्पन्न होते हैं। इस विषय में हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नही है।

ऊपर बता दिया गया है कि गद्य और पद्य (शैली) की दृष्टि से कहानी और कविता में एक निर्द्वन्द्व अन्तर है लेकिन लगता ऐसा है कि किसी कहानी को भी यदि कविता का ढाँचा दे दिया जाय, कहानी के दृष्टिकोण से ही, अर्थात् केवल गद्य पद्य वाली विशेषता को छोड़ कर अन्य विशेषताओं का ध्यान रखते हुए, तो केवल कविता के ढाँचे मात्र में चले जाने के कारण ही उस रचना का कहानीपन मरेगा नहीं, जब कि किसी कविता को इसी अर्थ में कहानी के ढाँचे में लाने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इससे यह सिद्ध होता है कि कहानी एक शैली नहीं, तत्व है, जबकि कविता एक तत्व नहीं, शैली है।

घटना के चलते अर्थ से सारे अन्तर्मुखी (गीति) काव्य को घटना-विहीन एवं शेष बहिर्मुखी काव्य को घटनात्मक कहना चाहिये। यहाँ तक आने पर हमें कदाचित काव्य के स्पष्ट रूपों की तुलना में कहानी का अध्ययन करने

का अवसर मिल जाता है। पहले हम बहिर्मुखी काव्य को लेते हैं।

(क) महाकाव्य—सम्पूर्ण वृत्तिमूलक होने के नाते अविवेच्य है।

(ख) खण्डकाव्य—इसका विधान उपन्यास, नाटक, कहानी आदि की भाँति ही ऐसा होता है जिसमें चरित्रों, कथा या कथाओं, वार्तालाप आदि का समावेश होता है। परम्परा से चले आते हुए प्रत्येक प्रबन्ध की भाँति ही इसमें एक प्रधान पात्र होता है। उसके सहारे, उसके कारण, या उसके द्वारा घटना का आद्यन्त सञ्चालन होता है। पात्रों एवं घटना की योजना के वैधानिक साम्य के अतिरिक्त, इसमें नायक के जीवन के वृहद अंश का चित्रण नही होता है और यही कहानी की भी वृत्ति है। फिर भी स्पष्टतया खण्डकाव्य की सीमा इस विषय में जितनी महाकाव्य के समीप है उतनी दूसरी ओर छोटे प्रबन्ध के नहीं। दूसरे शब्दों में, खण्डकाव्य महाकाव्य का संकुचित रूप अधिक है, प्रबन्ध की छोटी से छोटी इकाई का विकसित रूप कम। उससे नगरों, ऋतुओं, व्यवहारों आदि का जो विस्तृत वर्णन तथा देश काल के व्यतिक्रम वाले सर्गों की जो व्यवस्था मिलती है वह निश्चय ही कहानी का ढङ्ग नही है।

(ग) मुक्तक—ऊपर की पंक्तियों में प्रबन्ध की छोटी से छोटी इकाई का उल्लेख है (प्रसङ्ग काव्य हो का है अतः यहाँ काव्य-शैली का ही प्रयोग अभिप्रेत है। मुक्तक की तात्कालिक व्याख्या के लिए हम इस इकाई का परिचय दिये देते हैं। प्रबन्ध का रूढ़ अर्थ कथा की शृङ्खला है। मान लीजिये कि एक ऐसी छोटी सी कविता की रचना की गई जिसमें किसी कथा का समावेश हो। इस प्रकार की कविता को हम शास्त्रीय दृष्टि से प्रबन्ध ही कहेंगे। इसके विपरीत, मुक्तक में कथा की शृङ्खला नहीं रहती है, केवल कथा के कुछ सूत्र असम्बद्ध अवस्था में पड़े रहते हैं, ऐसा माना गया है। इसके साथ ही अन्तर्मुखी साहित्य की स्फुट रचनाएँ, व अन्य कई ऐसी ही कृतियाँ, जैसे छोटी-छोटी उपदेश वाली कविताएँ आदि सभी मुक्तक में आ जाती हैं। पिछले प्रकार की रचनाओं में भी विचार-शृङ्खला अवश्य रहती है, कथा-शृङ्खला (जहाँ कथा भी नहीं है) भले न हो। सब मिला कर यह स्थिति व्यतिक्रान्त मालूम पड़ती है, कारण कि, एक ओर तो यह माना जाता है कि मुक्तक में कथा की शृङ्खला नही होती, दूसरी ओर—उसमें कथा नहीं होती, तीसरी ओर—उसमें शृङ्खला अवश्य होती है।

इस गड़बड़ झाले को दूर करने के लिए हमें प्रबन्ध का अर्थ 'कथा की शृङ्खला' न लेकर 'कथा' मात्र ले लेना चाहिये एवं मुक्तक काव्य उसे मान लेना चाहिये जिसका आधार कथा न हो। उसमें शृङ्खला का प्रश्न उठेगा ही नहीं। ऐसे प्रबन्ध को जिसमें कथा बीच-बीच में भङ्ग होती हो (जहाँ स्वयं कवि ऐसी

रचना कर रहा हो) मुक्तक न मानकर (आज तक उसे मुक्तक माना जाता रहा है) अयुक्त या भङ्ग-प्रबन्ध मान लेना चाहिये। केवल इस नामावली से कवि निन्दा का भागी नही होगा, क्योंकि यह केवल वैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटो पर खरी न उतरने वाला नामावली के परिवर्तन में ही रक्खी गया है।

इस समाधान क बाद, कविता के क्षेत्र मे, उक्त कथात्मक रचना को, विस्तार की दृष्टि से, प्रबन्ध की जैसी इकाई हो, वैसा इकाई कह सकते है। छोटी से छोटी इकाई में उसका स्वतन्त्र महत्व रहता है, संक्षिप्तता होती है, तथा एक स्फुट प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है। यह अन्तिम तथ्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह एक मनोरञ्जक अध्ययन है कि इस प्रकार की कविताएँ हमारे प्राचीन साहित्य में भी नही लिखी गई, उनके समुचित वर्गीकरण की बात तो दूर। हमारे विचार में इस प्रकार की रचना का कहानी-तत्त्व के साथ बड़ा मेल है। घटना की योजना और स्फुट अभिव्यक्ति, ये दोनो विशेषताएँ किसी भी साहित्य को कहानी के बहुत समीप लाने में पर्याप्त हैं।

प्रस्तुत अर्थ के अनुसार मुक्तक के शेष रूपो में (१) प्रायः छोटो-छोटी घटनासम्बद्ध अथवा भावात्मक कविताएँ जैसी कि आजकल पत्र-पत्रिकाओ मे देखने को मिलता है और (२) गीतिकाव्य वाली सारी रचनाएँ आ जाती है। गीति-काव्य को यहाँ इसलिए अलग किया गया है कि उसका एक निश्चित स्टैण्डर्ड होता है जिसका अन्य छोटो-छोटी कविताओं में अभाव होता है। गीति-काव्य का अन्तर्मुखी काव्य मे विचार किया भी जायगा। ऐसी छोटी-छोटी कविताओं की पृष्ठभूमि में यद्यपि कोई घटना प्रायः नही होती, फिर भी जीवन को स्पर्श करने वाली एक मार्मिकता होती है जिसका सम्पादन उनकी आकस्मिकता एवं लाघव से होता है। यही कहानी के साथ उनका समपक्ष है। कभी-कभी आजकल की प्रयोगवादी कविताओ मे प्रख्यात घटनाओ के अंश अथवा सूत्र भी देखने को मिलते हैं।

अन्तर्मुखी काव्य : गीतिकाव्य—आलोचकों के अनुसार कविता के सारे भेदों में गीतिकाव्य ही कहानी का समशील गिना जाता है। इसकी कुछ विशेषताएँ—

१—वह स्वतः स्फूर्त होता है।

२—संक्षिप्त होता है।

३—विविध कल्पना से युक्त अभिव्यक्ति अपनी चरम सीमा को पहुँच जाती है।

४—उसमें भावावेश की प्रधानता होती है।

५—मूल भावना आद्यन्त एक रहती है, जिससे विवर्त्तित होने का अव-

काश नहीं रहता।

६—व्यक्ति के माध्यम से विश्वगत भावनाओं का स्फुटीकरण होता है।

कहानी की तुलना में इन विशेषताओं का अध्ययन इस प्रकार होगा—

१—'स्वतः स्फूर्त' का सीधा सादा अर्थ 'आकस्मिक अभिव्यक्तिका' हो सकता है। स्वतन्त्रतः कहानी की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता होती है।

२—व्यावहारिक साम्य है।

३—अपनी सीमा में यदि कहानी चरित्र, घटना अथवा और किसी तत्व की व्यापकता या अनेकाङ्गिता की ओर संकेत कर सकती है तो कोई हानि नहीं है। स्वयं कथा-वस्तु कल्पना के व्यस्त से व्यस्त रूप को समाविष्ट कर सकती है। जब कहानी का यह लक्ष्य होगा कि छोटे से छोटे आकार में भी जीवन का अधिक से अधिक सजीव एवं गतिशील चित्र उपस्थित किया जाय तो उसका एक मात्र साधन यही होगा कि उसका विधान अत्यन्त सूक्ष्म एवं उच्चकोटि की अभिव्यञ्जना से सम्पन्न हो। किन्तु इस निष्कर्ष को कहानी की दिग्भ्रान्ति का लाइसेंस नहीं समझना चाहिए।

४—जिस प्रकार गीतिकाव्य में उद्वेलनशील भावों को जब शब्दों में उतारा जाता है तो उनमें एक प्रकार की अस्थिरता आ जाती है, उसी भाँति कहानी में जब सङ्कोच-वृत्ति[1] का आश्रय लिया जाता है तब ग्राह्य पदार्थों के विरुद्ध त्याज्य पदार्थों का सङ्घर्ष होता है और प्रधान अनुभूति अनेक मुख होने लगती है। स्वाभाविक है कि कहानीकार में इस अराजकता के शमन की योग्यता है। पाँच-छः प्यालों में भरे अपनी-अपनी विशेषता वाले रङ्गों को जब चित्र का रूप दे दिया जाता है, तब वह कितनी सम्पूर्ण इकाई लगता है।

५—कहानी का प्रधान सिद्धान्त है।

६—व्यक्ति चरित्र का प्रतीक हो सकता है। यद्यपि यह स्वीकार किया जाता है कि कहानी का प्रत्येक चरित्र विश्व-मान्य महत्व नहीं रखता, फिर भी यह एक आदर्श तो है ही। जहाँ तक भावनाओं का प्रश्न है, उनका आश्रय चरित्र ही है।

अन्तर्मुखी काव्य के अन्तर्गत ऐसी रचनाओं की कल्पना की जा सकती है जिनमें गीति काव्य के कुछ गुण जैसे आकस्मिक अभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, भावना की एकता आदि नहीं मिलते। ऐसी रचनाएँ, अपने स्वभाव के विपरीत, प्रायः लम्बी होती हैं और कविता के क्षेत्र में आत्म निरीक्षण का स्वरूप ले लेती हैं।

[1] एक विद्वान लेखक ने लिखा है कि कहानीकार को यह चिन्ता नहीं होती कि क्या लिया जाय, उसे तो यह चिन्ता होती है कि क्या नहीं लिया जाय। यही भावना सङ्कोच-वृत्ति को जन्म देती है।

यदि ऐसी रचनाओं में कुछ ऐसे गुण मिलें जिनका ऊपर कहीं विवेचन हो चुका है, तब तो ठीक, अन्यथा कहानी के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित करना एक खींचतान होगी। किन्तु सरलता यह है कि ऐसी रचनाएँ देखने में ही नहीं आतीं।

कहानी और निबन्ध—निबन्ध एक ऐसा साहित्य है जिसका आधार कथा नहीं है। अतः वस्तु को लेकर उसमें और कहानी में स्पष्ट अन्तर है। निबन्ध जीवन प्रकृति अथवा विश्व के किसी क्षेत्र को ले लेता है और उस पर प्रायः सभी सम्भव दृष्टिकोणों से विचार करता है। कहानी और उसमें साम्य की बात इतनी ही है कि दोनों किसी इकाई के विवेचन को अपना आदर्श समझते हैं। निबन्ध का क्षेत्र कहानी से निश्चय ही बडा है क्योंकि निबन्ध का आदर्श सम्पूर्णता है। अँग्रेजी आलोचकों का यह विश्वास है कि निबन्ध भी कहानी की भांति स्फुट अभिव्यक्ति किया करते हैं। इसे स्वीकार करते हुए भी यह मानना पडेगा कि निबन्ध यहीं तक सीमित नहीं होते। यदि आप सर्प पर निबन्ध लिख रहे हों तो उसी निबन्ध को श्रेष्ठता दी जायगी जिसमें सर्प के विषय में अधिक से अधिक ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश पड़े। यह अवश्य ही वह सङ्कोचवृत्ति नहीं है जो कहानी की विशेषता है।

लेखक का निजीपन एवं बुद्धि तथा भाव-तत्त्वों का एक साथ प्रयोग, निबन्ध के विषय में ये जो दो विशेषताएँ बताई जाती हैं वे निबन्ध जैसे साहित्य में ही इस रूप में निर्दिष्ट की जा सकती है और कहानी के सम्बन्ध में इन पर विचार करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कहानी और गद्यकाव्य—वर्त्तमान प्रकरण के लिये गद्यकाव्य के दोनों पक्षों को अलग कर लेना चाहिये—१. काव्य या अनुभूति पक्ष, एवं २. अभिव्यक्ति पक्ष। जहाँ तक अनुभूति पक्ष का प्रश्न है हम इसे भावात्मक कविताओं के साथ लगा सकते हैं। किन्तु अभिव्यक्ति पक्ष में अनेक वैधानिक बाधाओं, जैसे घटनाओं व चरित्रों की अपुष्टता आदि के कारण ऐसा करने में सङ्कोच होता है। इनके अतिरिक्त प्रायः ऐसी रचनाएँ गद्यकाव्य के अन्तर्गत मिलती है जिनमें घटना आदि नहीं होती। ऐसी रचनाएँ मुक्तक काव्य का अंश मानली जानी चाहिए, गद्य शैली की छूट देते हुये। लेकिन सब मिला कर कहानी और गद्य काव्य में कई महत्त्वपूर्ण बातों में समानता है जैसे चमत्कार, आकाश-कुसुम-वत् पूर्वापर आश्रय के अभाव में स्थिति, आकस्मिक श्रीगणेश व अवसान अनिश्चित और रहस्यमय वातावरण आदि। दूसरी बातों के विचारार्थ सुविधानुसार इसे गीतिकाव्य के आलोक में भी देखा जा सकता है। उस अवस्था में कहानी और गद्यकाव्य के परस्पर सम्बन्ध में कुछ स्पष्टता आ जायगी। विशेषकर वह गद्यकाव्य जिसमें कुछ कथा रहती है (जैसे खलील जिब्रान का कुछ साहित्य)

अवश्य कहानी का बहुत बड़ा मित्र है ।

कहानी और चुटकुले—चुटकुलों में विस्फोटात्मक चमत्कार होता है । लेकिन उनका क्षेत्र इतना छोटा होता है कि वातावरण में किसी प्रकार से भी प्रौढ़ता नहीं आती । प्रायः उनका पर्यवसान एक ऐसी असहाय स्थिति में होता है जिसमें पहुँच कर पाठक को बरबस हँसना पड़ता है (जिसमें मुस्कराना भी सम्मिलित है) इनका प्रधान आकर्षण उनकी शब्दावली में रहता है । प्रारम्भ में पाठक को किसी प्रकार की विशेषता का अनुभव नहीं होता । किन्तु जब पाठक अन्त तक पहुँचता है, तो उसे अकस्मात् एक मोड़ मिलता है, जहाँ वह लेखक के साथ एक समझौता करने को तैयार हो जाता है । वे कहानियाँ जिन का आकर्षण आखिरी पंक्तियों में रहता है, चुटकुलों के समीप कही जा सकती है किन्तु न तो कहानी की भाँति उनमें चारित्रिक विश्लेषण का ही अवकाश है और न घटनात्मक विधान के कौशल का ही ।

कहानी और मुहाविरे—मुहाविरे अधिकांश में वाक्य का एक अंश होते हैं और इनका विधान कुछ भिन्न कोटि का होता है । जिसमे कहानी से उनकी रिश्तेदारी नहीं बैठती । पानी के टब में चांद की छाया स्पर्श करके ही बच्चा चन्द्रमा के स्पर्श का सुख प्राप्त करले, मुहाविरों का कहानी के समीप जाना कुछ वैसी ही चेष्टा के रूप में होगा ।

कहानी और कहावतें—कहावतों का सम्बन्ध कहानियों अर्थात् घटनाओं से ही है । वस्तुतः कहानियों या घटनाओं (काल्पनिक अथवा वास्तविक) ने ही अपनी सर्व ग्राह्यता के कारण कालान्तर में कहावतों का रूप धारण कर लिया है । "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की कहावत का आधार वह वृत्तान्त है जिसमें भगवान विष्णु का वाहन गरुड़ अपनी कोठरी में जाकर ही आनन्दातिरेक का अनुभव करता है । अकबर ने बीरबल से कहा तुम इस गवैये के श्रोताओं में से पारखी की छाँट कर दो । बीरबल ने सबका सिर हिलाना बन्द कर दिया । किन्तु एक श्रोता से नहीं रहा गया । वह बोला समझदार की मौत है ।" बीरबल ने कहा - यही पारखी है । यह कल्पित घटना इस कहावत की जननी है । यह सम्भव है कि एक ही कहावत को सिद्ध करने के लिए अनेक कहानियाँ गढ़ दी गई हों, किन्तु इससे दोनों के सम्बन्ध में अन्तर नहीं आता ।

तृतीय उच्छ्वास

कहानी कितने प्रकार की होती है ?

यह कहना गलत है कि पाश्चात्य यथार्थवाद ने भारतीय वाङ्मय को पराभूत कर लिया है। प्रेमचन्द जैसे कृती कलाकारों ने सदा अपनी श्रेष्ठ परम्पराओं को जीवित रक्खा है और यथार्थवाद के अवाछित प्रभाव को अपदस्थ।

तृतीय उच्छ्वास

कहानी कितने प्रकार की होती हैं?

पहले प्रकरण में यह बताया गया है कि कहानी का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अतएव केवल वस्तु की दृष्टि से ही उसकी सीमा निर्धारित करना बड़ा कठिन है। जहाँ उसकी अनेकरूपता पर वस्तु के अतिरिक्त और कई दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है, वहाँ तो हमें 'नेति नेति' कह रह जाना पड़ता है। फिर भी साधारण सुविधा के लिए कहानी के वर्गीकरण के कुछ सिद्धान्त स्थिर किये जा सकते हैं जिनके आधार पर किसी भी कहानी का व्यावहारिक अध्ययन सुगम हो जाता है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसा कोई वर्गीकरण हमें किसी अन्तिम तथ्य पर नहीं पहुँचाता, किन्तु केवल यह संकेत करता है कि कहानी (या दूरस्थ अर्थ के लिए और कोई साहित्यिक कृति) कितनी विस्तृत भूमिका को स्पर्श करती है। वर्गीकरण का दूसरा और काफी महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि वह मनुष्य की विश्लेषणात्मक ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने की ओर एक दिशा है।

वर्गीकरण की कुछ आधारशिलाएँ ये हैं—(१) वातावरण और वस्तु, (२) तत्व-विशेष की प्रमुखता, (३) शैली, (४) रस, (५) परिणाम या निवृत्ति, (६) काल की इकाई, (७) विचारधारा व उद्देश्य।

वातावरण और वस्तुगत भेद—वातावरण और वस्तु की दृष्टि से किए गये कहानी के भेद अत्यन्त प्रचलित हैं जैसे ऐतिहासिक, सामाजिक, जासूसी आदि। सिद्धान्त की दृष्टि से भी ऐसा वर्गीकरण खूब महत्वशाली है क्योंकि यह किसी कहानी के अध्ययन की पृष्ठभूमि तैयार करता है और उसके स्वरूप की सम्पूर्णता को समझने के मार्ग में पाठक को घपले से बचाता है। जैसे यदि किसी कहानी के विषय में कह दिया जाय कि उसका वातावरण राजनैतिक है, तो हम उसे उस कहानी के अन्दर जिस काल का चित्रण होगा उस काल की राजनीति की विशेषताओं के प्रति सचेत होकर ही पढ़ेंगे और उसकी घटना अथवा पात्रों आदि के क्रम में कोई धार्मिक या साम्प्रदायिक स्वतन्त्र बाधा पड़ती हो तो कहानी में उसके संयोग का अवसर न देंगे। तथापि इस बचाव की भी कुछ सीमाएँ हैं।

(अ) सामाजिक—घोषित रूप से, यह कहानी का सब से अधिक जाना हुआ और समझा हुआ प्रकार है। और तो और, आप किसी कहानी मासिक या कहानी संग्रह को उठा कर देख लीजिए, नब्बे प्रतिशत कहानियाँ आपको ऐसी मिलेंगी जिनमें समाज के किसी अंग का चित्रण होगा। यहाँ पर यह बात स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस प्रसङ्ग में हमने 'सामाजिक' का यहाँ संकुचित अर्थ लिया है और उसकी सीमा में जनसमूह का वह वर्ग सम्मिलत किया गया है जिसके हम प्रतिदिन सम्पर्क में आते हैं। उदाहरणार्थ—गार्हस्थ्य जीवन, क्योंकि अन्यथा तो जितना भी प्राणिवर्ग हम अपने आसपास पाते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, वह सभी किसी न किसी समाज का ही अङ्ग है। ऐसी कहानियाँ किसी विशिष्ट समुदाय से भी सम्बन्ध रख सकती हैं जैसे एक परिवार, और एक व्यक्ति से भी। इनका क्षेत्र बहुत विस्तृत है और घटना की स्थूल प्रक्रियाओं से लेकर मनोविश्लेषण के सूक्ष्मतम प्रयोगों को इनमें स्थान मिल सकता है। सामाजिक कहानियों की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उनके वातावरण से प्रायः हम कुछ आत्मीयता अनुभव करते हैं। एक ओर ये कहानियाँ समाज के सड़े-गले अथवा हृष्ट-पुष्ट अङ्ग, एवं उसमें पाये जाने वाले दोषों अथवा गुणों का सामूहिक विवेचन करती हैं, (जैसे किसी कहानी में हमारे समाज की दहेज प्रथा की, किसी उदाहरण के रूप में, सैद्धान्तिक आलोचना की गई हो) और इस प्रकार प्रायः एक आदर्श विचारधारा की ओर झुकी हुई होती है, और दूसरी ओर किसी मनुष्य का मनुष्य के नाते जिसमें उसका अवांछनीय पक्ष भी भी आजाता है) चित्रण होता है। पहले प्रकार की कहानियाँ प्रायः देशकाल सापेक्ष होती हैं और इसी प्रकार उनका प्रचार भी, और दूसरी कहानियाँ विश्व-साहित्य की सम्पत्ति होती हैं। सामाजिक कहानियों का इसी वातावरण और वस्तु के वर्ग की शेष कहानियों से अथवा अन्य किसी वर्ग की कहानियों से कोई विरोध नहीं होता।

(आ) ऐतिहासिक—सामाजिक कहानियों की भाँति यह भी एक स्पष्ट भेद है। इस प्रकार की कहानी में इतिहास के पृष्ठों की कोई घटना ले ली जाती है और मनोरञ्जक मसाला तैयार किया जाता है। कहानी के चरित्र भी वहीं के होते हैं। वार्तालाप आदि शेष भाग लेखक के अपने होते हैं। रोचकता को ध्यान में रखते हुये अतिरिक्त घटना अथवा चरित्रों की भी व्यञ्जना की जा सकती है, किन्तु लेखक से यह आशा रक्खी जाती है कि वह इतिहास की किसी प्रसिद्ध घटना आदि के विरोध में कोई बात न कहे। किसी भी इतिहास में ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं जिनमें कथात्मक रोचकता होती है, किन्तु प्रायः उनके पूर्वापर सूत्रों का, अथवा उसकी पूर्णता का इतिहास को ज्ञान नहीं होता।

ऐतिहासिक कहानीकार ऐसी बातों को बड़ी उत्सुकता से ग्रहण करता है और अमुक अवस्था में जो कुछ हो सकता है, खोए हुए सूत्रों के स्थान पर, उसकी कल्पना कर के उन्हें पूरा कर देता है। किन्तु ऐतिहासिक कहानी के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मूल घटना इतिहास से ली हुई हो। अन्यथा कोरे पात्रों के नाम लेकर इतिहास के नाम पर कहानी बनाने की सुविधा इतिहास हमें नहीं देता।

(इ) उपैतिहासिक—किन्तु ऐसी कहानियाँ देखी अवश्य जाती हैं जिनमें नामों के अतिरिक्त इतिहास का कुछ विशेष नही होता। ऐसी कहनियों का 'उपै-तिहासिक' नाम से एक वर्ग बनाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि ऐसी कहनियों में यद्यपि कहने को तो इतिहास में से केवल पात्रों का व्यक्तित्व ही लिया जाता है, किन्तु वास्तव में तत्कालीन वातावरण का बड़ा अंश इनमें अना-यास आ जाता है। किसी भी अवस्था में, जिन पात्रों को कहानीकार अपनी कहानी के चरित्र बताता है उन पात्रों के समय में जो ऐतिहासिक अथवा राज-नैतिक परिस्थितियाँ थी, उनके प्रति लेखक उदासीन नही रह सकता। और यदि वह इस प्रकार की कोई अवज्ञा दिखाकर मनमाने प्रयोग करने लगता है तो प्रायः ऐसी विषमताओं में पड़ जाता है जिनमें उसे केवल उपहास और कटु आलोचना ही मिलती है।

उपैतिहासिक कथाओं की मूल घटना इतिहास से ली हुई नही होती। उपेतिहासिक और ऐतिहासिक, दोनो प्रकार की कहानियों की वस्तु एक सुदूर अतीत की होती है और इस कारण से कहानी मे एक अतिरिक्त रमणीयता आ जाती है। इनमें एक और विशेषता यह होती है कि इस प्रकार की कहानियों में घटना-तत्व की प्रमुखता होती है और आजकल यद्यपि इसे प्रधानता नहीं दी जाती किन्तु फिर भी पाठक के लिए इसका महत्व निस्सन्देह अपरिमेय है। मैं इसे पाठक के आकर्षण का मूलाधार मानता हूँ।

प्रागैतिहासिक—रायकृष्णदास के शब्दों मे "प्रागैतिहासिक कहानी में मनुष्यता और उसकी संस्थाओं के विकास का चित्रण रहता है।" ऐसी कहा-नियों का एक स्वतन्त्र वर्ग बनाने की धारणा का आधार उनकी एक विशिष्ठ वस्तु-योजना की परम्परा है। वे यह नहीं बतातीं कि मनुष्यता क्या है, वे यह बताती है कि मनुष्यता अथवा उसकी अमुक व्यवस्था कैसे बनी। ऐसी कहानिया जैसा कि उनके नाम में संकेत किया गया है प्रायः उन क्षेत्रों का स्पर्श करती हैं, जिन पर इतिहास की छाया नही पड़ी है। उनमें मानव जीवन के मध्यान्ह की स्पष्टता नहीं, उसके भोर की धुँधलाहट है। कभी-कभी वे किसी प्रचलित

अथवा प्रसिद्ध सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक प्रथा अथवा परम्परा को ले लेती है और उसके उद्गम तक पहुँचने की चेष्टा करता है।[1] लेखक निश्चय ही इस क्रिया में कल्पना का प्रचुर प्रयोग करता है किन्तु उसकी यह कल्पना प्रियता स्पृहणीय होती है, अभावन नहीं। इसका कारण एक साधरण जनता का तद्विषयक अज्ञान होता है और दूसरे उसकी कथा साहित्य में पाई जाने वाली सहज आकर्षण वृत्ति। उक्त परम्परा अथवा प्रथाएँ

[1] इन पंक्तियों के लेखक ने इसी प्रकार की एक कहानी द्वारा इतिहास प्रसिद्ध देवदासी प्रथा का उद्गम ढूँढने का प्रयास किया है। कहानी का शीर्षक है "देवदासी"। संक्षेप में उसकी वस्तु इस प्रकार है—

अमुक प्रदेश का नरपाल प्रत्येक वर्ष अपने प्रान्त की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों में से एक सुन्दरी का निर्वाचन अपने उपभोग के लिए किया करता था। वर्ष के अन्त में उस सुन्दरी को जनता में से अधिक से अधिक द्रव्य देने वाले व्यक्ति के हाथ बेच दिया जाता था। एक बार इस निर्वाचन में नगर के प्रसिद्ध जगदम्बा के मन्दिर के पुजारी की कन्या की बारी आई। वर्षान्त में राजसुन्दरी नीला का जब नीलाम हुआ तो सबसे अधिक बोली नीला के कालेकलूटे एक भाई की हुई जिसे उसके पिता ने नीला के राजगृह से जाने के पश्चात गुप्त रूप से दत्तक लिया था। राजपुरुष के प्रधान अमात्य को नीला से सहानुभूति थी और वह उसे जैसे तैसे पुनः ब्राह्मण के यहाँ पहुँचाना चाहता था। अतः उसने युक्ति-पूर्वक यह घोषित कर दिया कि नीलाम की अन्तिम शर्त्त नीला की पसन्दगी है। इस पर नीला का अज्ञात भाई अपने साथियों सहित राज पुरुष के अधिकारियों से भिड़ गया। संघर्ष के बीच में नीला निकल भागी और ठीक जगदम्बा के मन्दिर जा पहुँची। उसके पिता ने उसे पाकर वहां से निकल पड़ने का सङ्कल्प कर लिया। किन्तु नीला के खो जाने का स्वयं राजपुरुष को पश्चाताप हुआ। उसने घोषणा करवादी कि भविष्य में राजपुरुष अपने लिए नहीं, किन्तु जगदम्बा के लिए प्रतिवर्ष नई सुन्दरियों का निर्वाचन करेगा। इस घोषणा की सूचना देने प्रधान अमात्य जब मन्दिर पहुँचा तो वहां न ब्राह्मण ही था और न नीला ही।

संकेत यह है कि इस प्रकार चुनी जाने वाली सुन्दरियां आगे चलकर देवदासियाँ कहलाईं। प्रागैतिहासिक कहानी का एक और उदाहरण रायकृष्णदास की 'रमणी का रहस्य' नामक कहानी है। इधर कुछ दिनों से हिन्दी में प्रागैतिहासिक साहित्य का विशेष सृजन होने लगा था, दुर्भाग्य है कि इस ओर अब पुनः उदासीनता आने लगी है।

आजतक वर्तमान स्वरूप में कैसे पहुँची, यह जनसामान्य के लिए एक मनोरञ्जक विषय होता है, और जब वे अनायास इन समस्याओं का सरल हल प्राप्त कर लेते है तो उन्हें एक प्रकार का ऐतिहासिक अवकाश (relief) मिलता है। प्रागैतिहासिक कहानियों का आकर्षण इसी बात में है। चाहे वे किसी शैली में लिखी गई हों, प्रागैतिहासिक कहानियों का अनेक प्रचलित धार्मिक अथवा सामाजिक रूढ़ियों में इतिहास निर्देशन में बड़ा योगदान होना चाहिए। स्पष्टतः ऐसी कहानियों में लेखक का व्यक्तित्व एक इतिहासकार का सा होता है, कहानी उसकी शैली के रूप में काम आती है।

(उ) **राजनैतिक**—सामान्य रूप से इतिहास भी किसी समय की राजनीति का ही दर्पण होता है किन्तु 'ऐतिहासिक और राजनैतिक कहानियों में अन्तर स्थापित करने का आधार यह होना चाहिए कि इतिहास राजनीति की अपेक्षा एक बड़े क्षेत्र को लेकर चलता है। किन्तु एक बात और स्पष्ट है। इतिहास की वस्तु हमें सुदूर भूतकाल की वस्तु लगती है और उसका अध्ययन करते समय हम अपने आपको एक प्राचीन भूमि की ओर ले चलते हैं। राजनीति में वर्तमान तत्व अधिक रहता है। जैसे प्रेमचन्द की ऐसी कई कहानियाँ हैं जिन में एक सुदृढ़ संस्था द्वारा किसी निर्बल इकाई (जैसे किसान) का दमन चित्रित किया गया है। थोडी देर के लिए मान लीजिये, आज के भारत की यह राजनीति है। इस परिस्थिति का त्रिकालात्मक अनुवाद हम नहीं कर सकते। जिस अतीत के गर्भ से यह आई थी उसमें इसके कथा चिह्न थे। यह हम एक विहंगावलोकन से जान सकते हैं। धूमिल अथवा विशद, किसी भी रूप में इसका वर्तमान हमारे सामने है किन्तु अपने परिमित ज्ञान के बल पर, हम इसके होने वाले परिणामों आदि के विषय में 'इदमित्थं' नहीं कह सकते। तभी हम कहेंगे कि यह इतिहास नहीं है या अधिक सुन्दर शब्दों में, यह इतिहास बन नहीं पाई अतः इस प्रकार की परिस्थिति का कलात्मक विवेचन करने वाली कहानी को हम ऐतिहासिक कहानी नहीं कहेंगे।

राजनैतिक कहानियों का एक व्यवहार-पक्ष और है। यह बात प्रारम्भ ही में स्वीकार कर ली जानी चाहिये कि इन कहानियों का ढाँचा शेष सब कहानियों से भिन्न होता है। उसकी घटना में द्वन्द्व का वातावरण होता है जिस के न्यायरक्षक दो परस्पर विरोधी चरित्र वर्ग होते हैं। प्रायः लेखक पाठकों की सहानुभूति को उस वर्ग की ओर खींचता है जो अपर वर्ग की अपेक्षा दुर्बल अथवा क्षमताहीन होता है। जब तक घटना में यह दो पात्रों अथवा दो पक्षों का अन्तर्विरोध नहीं आवे तब तक राजनैतिक कहानियाँ इस रूप में सफल नहीं

होतीं। किन्तु ऐसी कहानियाँ, जिनमें एक सुसंगठित वर्ग की ओर से एक दूसरे दल पर दमन आदि की आयोजनाओं, प्रक्रियाओं, आदि का दर्शन हो, वे ही होंगी जिनका लक्ष्य एक विशिष्ट विचार धारा का प्रचार अथवा परिज्ञान हो। ऐसी कहानियाँ युग की राजनीति से लाभ उठाने में बहुत तत्पर रहती हैं। यद्यपि प्रायः यह देखा जाता है कि उनमें तथाकथित दलित वर्ग के प्रति बौद्धिक सहानुभूति के अतिरिक्त व्यक्तिगत संवेदनाओं की पृष्ठभूमि नहीं होती। ऐसी कहानियाँ अधिक ठहरती भी नहीं हैं।[1]

किन्तु प्रचार की भावना से रिक्त ऐसी कहानियाँ होती हैं जिनकी वस्तु का सम्बन्ध केवल किसी राज दरबार अथवा इसी प्रकार की कोई पीठ से होने के कारण जिन्हें राजनैतिक कहना पड़ता है। लेकिन जब तक उनमें कोई उच्च-कोटि की विशेषता, जैसे किसी प्रसिद्ध राजनैतिक पात्र के चरित्र की सूक्ष्मताओं का अवलोकन आदि नहीं हो तो ऐसी कहानियाँ पंगु रह जायेंगी स्थायी रूप से ठहरने वाली राजनैतिक कहानियाँ न लिखे जा सकने का कारण यही कठिनता है।

सामान्य रूप से राजनैतिक कहानियों का मेरुदण्ड एक विचार परम्परा है। इनका सम्बन्ध शेष सभी प्रकार की, विशेष रूप से, ऐतिहासिक, जासूसी सामाजिक, कहानियों से होता है। एक नियम स्टेण्डर्ड के पाठकों में प्रचार की दृष्टि से सामाजिक कहानियों के बाद इन्हीं का नाम आता है। वैसे इस वैषम्य-मयी सृष्टि में रुचि की विभिन्नता पर कोई रोक नहीं लगा सकता। राजनैतिक कहानियों का अधिक प्रचार होना उनमें उल्लिखित वातावरण के जन-समूह में विकास का द्योतक है, अतएव अपने उत्कर्षापकर्ष के प्रति समाज इन कहानियों द्वारा पर्याप्त सचेष्ट रह सकता है।

(ऊ) जासूसी— ऐसी कहानियों की रोचकता उनके घटना-चक्र एवं पात्रों के अद्भुत कार्य-कलाप की क्षमता में निहित होती है। प्रायः सारे पात्रों को ऐसे प्रदेशों से गुजरना पड़ता है जहाँ पाठक ओठों पर अंगुली रखकर तमाशगीरों की भाँति सहमे से खड़े रहते हैं। प्रत्येक पाठक ऐसी कहानियों की श्रेष्ठता को अपने मापदण्ड से जांचता है और उसकी दृष्टि से वे ही गल्पें अधिक आकर्षक होती हैं जिनके पात्रों को असाधारण स्थितियों का सामना करना पड़ता

[1] ऐसी कहानियों की तुलना श्री प्रेमचन्द की 'नशा' शीर्षक हिन्दी कहानी के एक प्रमुख पात्र से की जा सकती है जो जमींदारी प्रथा का कट्टर विरोधी था पर किसी जमींदार के यहाँ जाकर ठहरने पर जिसकी मनोवृत्ति ठीक शोषणात्मक हो गई और अन्त में जिसका इसी मनोवृत्ति के कारण कटु अपमान हुआ।

है । पाठक अमुक पात्र के स्थान पर, प्रायः नायक के स्थान पर, अपने आपको रख लेता है और उसके सामने जो घटना जाल आता है उसकी प्रतिक्रिया में वह स्वय क्या करता, कहानी के पात्र की तत्कालीन गति-विधियों को पढ़ने से पूर्व, इसकी कल्पना करता है । यदि अमुक परिस्थिति में लेखक ने अमुक पात्र के द्वारा जिस कौशल का प्रदर्शन कराया है उससे अधिक कौशल पाठक अपनी सम्भावित योजनाओं में पाता है तो वह एक व्यापक असन्तोष लेकर रह जाता है, अन्यथा मुक्त-कण्ठ से 'वाह-वाह' किये बिना नही रहता । किन्तु आम तौर पर लेखक इन स्थलों में ऐसा ही वातावरण बनाता है कि जिनमें पाठक को किसी शिकायत का अवकाश न हो, अपितु वह उसे असहाय अवस्था में ला फेंकता है ।

अपने छोटे स्थल में भी ऐसी कहानी की घटना जितनी घुमाव-फिराव से युक्त हो, उतनी ही कहानी सफल होती है ।

आधुनिक जासूसी कहानियों का उदय विभिन्न स्थानों के राजकीय गुप्त-चर विभागों के विकास का परिणाम है और यह निर्विघ्न कहा जा सकता है कि किसी देश में ये विभाग जितने अधिक पुष्ट एवं विकसित होते हैं उतने ही अनुपात में जासूसी कहानियों का व्यवस्थित विकास पाया जाता है। कम से कम, साहित्य के क्षेत्र में तो जासूसी कहानियाँ बुद्धिवाद की चरम अभिव्यक्ति की प्रतीक हैं । तृतीय श्रेणी के पाठकों में इनका सर्वाधिक प्रचार देखने में आता है । इसका कारण उन कहानियों का कौतूहल-प्रधान होना ही है ।

जासूसी कहानियों में प्रायः दो प्रकार का वातावरण प्रमुख रूप से पाया जाता है : १—मारपीट सम्बन्धी और २—चक्करदार घटनाओं के फलस्वरूप अद्भुतता सम्बन्धी । पहली श्रेणी के वातावरण से वीररस और दूसरी श्रेणी के वातावरण से अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है । किन्तु दोनों रस बड़े हल्के रूप में सामने आते हैं, क्योंकि एक तो कहानी का रङ्गमञ्च कोई युद्ध क्षेत्र तो है ही नहीं, और दूसरे उसमें आश्चर्य उस सीमा तक नहीं पहुँचता जहाँ वह अविश्वास में बदलने लगे । फिर यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक जासूसी कहानी के पात्रों को मारपीट की नौबत आवे ही । साथ ही अजीबपन का अनुभव किए बिना भी हम उनके बुद्धि कौशल की प्रशंसा कर सकते है ।

इस अद्भुतता का स्पष्ट दर्शन हमें तिलस्मी कहानियों में अवश्य होता है जिनका जासूसी कहानियों से अन्तर इस बात में होता है कि उनमें अविश्वसनीय जादू के प्रयोग को अस्वाभाविकता के आधार पर वर्जित नहीं माना जाता ।

होने वाला चिरन्तन स्वरूप। इसलिए धार्मिक कहानियों का वातावरण भी एक विशेष प्रकार के सम्प्रदाय आदि अथवा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों जैसे पुजारी आदि के चित्रण से अनुप्राणित ठहरता है। इस दृष्टि से विभिन्न देश एवं काल के अनुसार धार्मिक कहानियों के रूप में अन्तर आता रहता है। जैसे यदि किसी ऐसे प्रदेश में ईश्वर पूजा की झाँकी दी जाय जहाँ नास्तिकता जन-सामान्य की विचार भूमिका से बाहर की वस्तु है तो कदाचित हम ऐसी कहानियों को धार्मिक न कह सकेंगे। धर्म ऐसे व्यक्तियो की साधारण क्रिया है जो इस अर्थ में कोई विशेषता नहीं रखती, खास कर उन व्यक्तियों की तुलना में जो ईश्वर को अनेक अन्य वस्तुओं की भाँति विज्ञान-सिद्ध न होने के कारण संशयशीलता से शून्य नहीं मानते। इसी प्रकार एक युग के प्रचलित लोकाचार दूसरे युग के लिए केवल इतिहास का वस्तु होते देखे गये है। और फलतः इनके विषय की कहानियों के पात्रों, घटनाओं, भावनाओं आदि में भी खूब अन्तर आ सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि देशकाल का सम्यक् ध्यान रखते हुए ही धार्मिक कहानियाँ लिखी जानी चाहिए।

धार्मिक कहानियाँ अधिक क्यों नहीं लिखी जाती इसका एक कारण तो धर्म के सम्बन्ध में किसी मान्यामान्यता के वादविवाद का अभाव है, और दूसरे वह कठिनाई है जिसके कारण कहानी की सादी वस्तु को धार्मिकता का किसी भी अर्थ में रङ्ग दिया ही नहीं जा सकता। धर्म के विषय में अनिश्चितताओं के निराकरण का, और निश्चित सिद्धान्तो आदि पर किन्ही कारणवश उठाई गई शङ्काओं के समाधान का जहाँ कहीं अत्यधिक प्रयास होता है वहाँ धार्मिक कहानियाँ अधिक ही देखी जायँगी, क्योंकि एक तो वैसे ही इस हलचल का सामान्य रूप से समाज की मध्यस्थता से कहानी पर असर पड़ना स्वाभाविक है और दूसरे, कहानी-लेखक स्वयं ऐसी रोचक स्थितियो का लाभ उठाने मे तत्पर रहते हैं।

अतः धर्म जब कभी संक्रान्तिकाल मे से निकल रहा हो तब ऐसी कहानियों के लेखक और पाठक दानों बढ़ जाते है। ऐसे समय यदि लेखक किसी दलदल मे न फँस कर धर्म के शाश्वत सिद्धान्तो का एवं निकट भविष्य के लिए हितकारी मार्ग का निर्देशन कर सके तो वह श्रेय का पात्र है।

धार्मिक कहानियाँ ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक कहानियों से किस सीमा पर जा कर मिल जाती हैं, यह व्युत्पत्तिशास्त्र के अध्येताओ के लिए एक रोचक विषय हो सकता है। यही कहानियाँ केवल सामाजिक तब रह जाती है जब कि धर्म अपने तात्कालिक अर्थ को छोड़ कर लोक-प्रचलित परम्परा का रूप ले लेता है, अर्थात् धर्म का धर्म के रूप मे महत्व न रह कर, जब वह किसी

और ध्येय की पूर्ति में लग जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी राजनैतिक कहानियों के विकास का सूत्र मिलता है। जैसे, पिछले वर्षों में हिन्दू और मुसलमान, जहाँ इनका एक साथ प्रयोग होता है, हिन्दुत्व और इस्लाम के प्रतीक नहीं किंतु एक विशिष्ट राजनैतिक सम्प्रदाय को पुतलियों के रूप में रह गए हैं। अतः जहाँ किसी कहानी में हिन्दू-मुसलमान का सवाल उठाया जायगा वहाँ उसे वस्तु की दृष्टि से धार्मिक की अपेक्षा राजनैतिक ही मानने का लोभ होगा।

(ओ) जीवट की कहानियाँ—यदि अधिक से अधिक भेद ढूँढ़ निकालने गोया कि बना लेने का ही हमारा ध्येय रहता तो निस्सन्देह ही इस वर्ग की कहानियों का नाम सुनते ही आप पूछ बैठते तो फिर कायरता की कहानियाँ क्यो नही। हमारा निवेदन स्पष्ट है। न केवल मात्रा की दृष्टि से, अपितु वस्तु के महत्त्व का दृष्टि से साहस की कहानियाँ विश्व साहित्य की मूल्यवान सनातन सम्पत्ति रही है और पाठक जिस दिलचस्पी से इन्हे पढते है वह लेखक जिस दिलचस्पी से इन्हे लिखते है उससे किसी भी हालत में कम नही उतरती। प्राचीन, अत्यन्त प्राचीन काल की कहानी ने अपनी पीठ पर अनिवार्य रूप से पड़े हुए उपदेश के भार को जब एक साहस के साथ उतार डाला, तब साहस या जीवट से भरी कहानियाँ ही उन उपदेशात्मक कहानियों की भाँति लोक प्रिय हो सकी। या यो कहना चाहिए कि विश्व साहित्य में अपने शुद्ध रूप मे पहले पहल जो कहानी आई वह जीवट ही की कहानी थी। और अब तो हम इसे सर्वोच्च महत्त्व देने का दुराग्रह नही करते। किन्तु इसका अपना जो स्थान है उसकी हम बेधड़क पैरवी करेंगे। खूंख्वार कुदरत से मनुष्य जब पहली बार लड़ा तो उसने प्रज्ञा की अपेक्षा साहस, मस्तिष्क की अपेक्षा मास पेशी की ही महत्ता स्वीकार की होगी। और आज भी जब सिद्धान्त रूप से मनुष्य का मानस-जगत उसके शारीरिक-जगत का तुलना मे अधिक उपयोगी एव महत्वपूर्ण घोषित किया जा चुका है, हिमालय या आल्पस की बर्फीली चोटी पर चढ़ने के लिए तो उत्साह मे उछलते हुए हाथ पैरो की ही अधिक आवश्यकता है।

यही साहस, स्फूर्ति, चेतना, क्रियाशीलता, निर्भयता जीवट की कहानियों के विषय होते है। किन्तु ऐसी कहानियो में ये सब गुण जीवट के क्षेत्र में अपनी एक आनुषगिक अभिव्यक्ति लेकर नही आते। बल्कि जीवन के एक सम्पूर्ण चित्र के प्रतीक बनकर ही आते हैं। क्योंकि किसी जीवट की कहानी के प्रमुख पात्रों के जब हम वर्णन पढ़ते है तो हमे लगता है कि साहस उनके शरीर में फूटफूट कर भर गया है तथा कहानी में उनके जिन कार्य-कलापों का उल्लेख होता है वे ही कार्य-कलाप उन पात्रों के लिए सर्वथा उचित एवं पर्याप्त हैं। दूसरे शब्दों

में निर्भीकता एवं साहसिकता उनके जीवन की इकाई होती है। पात्र के जीवन मे जो वस्तु इस पूर्णता के साथ समाई होती है, उसी वस्तु के आधार पर कहानी का भेद किया जाता है। जीवट की कहानियाँ इस दृष्टि से पर्याप्त सफलता के साथ अपना एक वर्ग बना सकती है।

जीवट की कहानियों की मुख्य विशेषता उनकी घटना मे होती है। किन्तु इन कहानियों और जासूसी कहानियों मे यह अन्तर होता है कि पहली की घटना पात्रों के सम्बन्ध में इतनी सक्रिय नही होती जितनी दूसरे की। दूसरे शब्दो में, जहाँ जीवट की कहानियो में पात्र प्रमुख होते है। और घटना गौण, वहाँ जासूसी कहानियों में घटना प्रधान होती है और पात्र उसके निमित्त मात्र। इसी बात को यों कह सकते है कि जासूसी कहानियों में पात्रों के बुद्धि-कौशल की अपेक्षा होती है तो जीवट की कहानियों में उनके शारीरिक विक्रम की।

यह ध्यान रखना चाहिये कि जिन कहानियो का यहाँ विवेचन किया जा रहा है वे उन कहानियों से भिन्न है कि जो सत्य जगत से ली हुई हैं। ऐसी कहानियाँ जिनमें केवल इतिवृत्ति प्रधान होता है और कल्पना का प्रयोग नहीं होता, इतिहास के वर्ग में रक्खी जानी चाहिये। किन्तु फिर भी वे कहानियाँ भी जिनमें कल्पना का प्रचुर प्रयोग होता है और जो यथार्थ सत्य से कोई ऐतिहासिक सम्बन्ध नही रखती कुछ इतिहास मूलक कहानियों के आधार पर ही बनाई जाती है, और उनमें भी प्रायः नाटकीय व्यञ्जना, अर्थात् कथोपकथन घटनाओं का विन्यास-वैचित्र्य, बाह्य और आभ्यन्तर परिस्थिति का चित्रण तथा उसके अनुरूप भाव व्यञ्जना, आदि उसी परिमाण में नही पाई जाती जिस परिमाण में वह शेष कहानियाँ उदाहरणार्थ सामाजिक कहानियों आदि में पाई जाती है। ऐसी कहानियो के इतिवृत्ति की शृङ्खला भी टेढ़ी मेढ़ी और इधर उधर गुम्फित होती हुई न जाकर प्रायः सीधी जाती है, और इस प्रतिक्रिया में कभी कभी कहानी की प्रधान विशेषताओ, यथा चरमावस्था आदि से च्युत हो जाती है। अतः शैलो की दृष्टि से जीवट की कहानियाँ शेष कहानियों जैसी सफल नही हो सकती।

(औ) आर्थिक—आर्थिक कहानियों का एक अलग वर्ग बनाना ऊटपटांग सा लगता है। फिर भी इनकी, वस्तु की दृष्टि से, अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ होती अवश्य है। जिस प्रकार कहानी में किसी राजनैतिक सिद्धान्तों आदि का प्रवेश प्रतीक रूप में अनायास हो सकता है, जिनके आधार पर राजनैतिक कहानियाँ बनती है, वैसे ही किसी कहानी मे आर्थिक समस्याओं पर प्रकाश डाला जा सकता है और आज के अर्थ-प्रधान युग में तो यह अटपटा नही लगना

चाहिये। आज हमारे जीवन की आर्थिक समस्याएँ इतनी विकट है कि स्थिति तो ऐसी होनी चाहिये कि आर्थिक कहानियों की बाढ़ सी आ जाय, किन्तु फिर भी जो कुछ भी ऐसी कहानियाँ लिखी जा रही है, वे वस्तु की दृष्टि से पूर्ण है। यदि 'महात्मा गान्धी की जय' का नारा रटने वाले एक कांग्रेस-भक्त को लेकर कोई कहानी बन सकती है तो एक अमानुषी व्यवहार करने वाले मिल-मालिक के विरुद्ध बगावत की आवाज बुलन्द करने वाले एक शोषित मजदूर ने क्या बिगाड़ा है ? कहानीकार की दृष्टि को उससे कोई वैमनस्य नही होना चाहिये। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो समाज का सारा ढाँचा एक विशेष प्रकार की अर्थ व्यवस्था पर खड़ा हुआ है और व्यक्ति के नाम पर जो आर्थिक शोषण आज हमें दीख पड़ता है उससे अधिक एक सामूहिक शोषण है जिसे नंगी आँख नहीं देख सकती। आर्थिक कहानियों में दोनों स्तरों से जो समस्याएं उठ खड़ी होती है उन्हें चित्रित किया जाना चाहिये। आर्थिक कहानियो मे अर्थ-शास्त्र के शुष्क सिद्धान्तों की व्याख्या नहीं होती, प्रत्युत उनसे जन-समूह पर पड़ने वाले प्रभाव का प्रत्यालोचन होता है। प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक दृष्टि से आर्थिक कहानियाँ मनुष्य के उस सम्पूर्ण अर्थ-खण्ड का भी परिचय दे सकती हैं जिसका नाम जीवन है। विभिन्न देशों में समय-समय पर होने वाली अर्थ-क्रान्तियाँ आर्थिक कहानियों के लिये अच्छा क्षेत्र है। इनमें किसी सड़ी-गली अर्थ व्यवस्था पर एक भारी पदाघात होता है और धुंधले भविष्य के निर्देशन के लिये रश्मि-रेखाओं के उपादान भी। इनमें व्यंग, घृणा, रोष, भय, प्रतिक्रिया, प्रतिहिंसा आदि सभी विध्वंसक तत्व छिपे होते हैं तो संस्कार और निर्माण के उत्तरदायी शक्ति और ओज भी। स्पष्ट, अस्पष्ट किसी रूप में आर्थिक कहानियों में एक अदम्य आदर्श की भावना होती है जो किसी न किसी पात्र के मुख बोल पड़ती है। राजनैतिक कहानियों में मुख्य पात्रों को जिस प्रकार कितनी ही विषमताएँ पार करनी होती है वैसे ही आर्थिक कहानियों के प्रधान पात्रों को। अतः विरोध का वातावरण उनमें भी होता है और इनमें भी।

आर्थिक कहानियाँ युग से अधिक जुड़ी रहती हैं, अतः वे समय-समय अपनी केंचुली छोड़ती रहती हैं। समय को देख कर उनको संवेदनाएँ जाग्रत करने में इतनी कठिनाई नहीं होनी चाहिये जितनी एक शाश्वत वृत्ति वाली कहानी की। इसका एक कारण है। मनुष्य के संस्कार अपने वर्तमान देशकाल से अधिक सम्बद्ध रहते हैं, और वे गुणागुण जो सर्वकाल देश और व्यक्ति की सम्पत्ति होते हैं प्रभाव की दृष्टि से अधिक दूर होते हैं। जैसे आपको किसी व्यक्ति ने कोई शारीरिक कष्ट दिया। उस कष्ट की अनुभूति आपको इस रूप में

पहले नहीं होगी कि कष्ट देना बुरा होता है अतः हमें उसे बुरा मानना चाहिये किन्तु इस रूप में होगी कि कष्ट देना बुरा सिद्ध हुआ है अतः हम उसे स्वीकार नही करते। कहने का मतलब यह है कि व्यवहार पक्ष से पुष्ट होकर ही सिद्धान्त पक्ष बनता है। अतः जो कहानी व्यवहार पक्ष वाली बात करेगी वह ऐसी कहानी से जो केवल सिद्धान्त पक्ष की बात करेगी, अधिक सफल होगी। आर्थिक कहानियों की सफलता इसी बात में है कि वे सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा व्यवहार पक्ष का अधिक चित्रण करती हैं। सियारामशरण गुप्त की एक कहानी है "झूठ सच"। उसमें किसी बननेवाली छत पर धूमर कूटने वाली राज-मजदूर परिवार की महिलाओं का एक चित्र है। उनमें से एक रमणी 'रधिया' काम करते-करते स्वभाव वश खिलखिलाकर हँसती भी जाती है। इस हँसी को मकान मालिक नीचे से सुन लेता है और एक विशेष मुद्रा में कहता है— क्या हो रहा है यह ? सब देख रहा हूँ। आज की मजूरी न दी जायगी। यही स्थल संवेदना का है। प्रत्येक पाठक सोचने लगता है क्या खिलखिलाकर हँसना एक राज रमणी के लिए मना है, अपराध है ? और मकान मालिक के प्रश्न का उत्तर मिलते न मिलते उसकी इस दमन वृत्ति पर नाक भौं सिकोड़ने को तैयार हो जाता है। तब वह अर्थव्यवस्था का वह सूत्र खोजने लगता है जिसका एक अङ्ग हमारा यह मकान मालिक है। आर्थिक कहानियां ऐसी ही संवेदनाओं की फिराक में रहती हैं। आर्थिक कहानियाँ करुणाजनक अधिक होती हैं।

(अ) यौन (सैक्स) सम्बन्धी कहानियाँ[१]—इनका प्रचार बहुत कम है क्योंकि सैक्स को लेकर हमारे यहाँ विचार करने की प्रवृत्ति का बीजवपन नहीं हुआ। ऐसी कहानियों में किसी सैक्स समस्या पर कलात्मक ढङ्ग से विचार होता है। वैसे प्रायः ये कहानियाँ सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत आ जानी चाहिए किन्तु चूंकि इनका उद्देश्य सर्वथा अपना और ऐकान्तिक होता है, अतः इस प्रकार की कहानियों का अलग वर्ग ही रखना उचित होता है।

(आ) प्रकृति चित्रण की कहानियाँ—इन कहानियों को भावात्मक कहना चाहिये क्योंकि एकान्त प्रकृति का चित्रण करते समय भी मनुष्य यह

---

१ इस प्रकार की कहानी का उल्लेख 'इक्कीस कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह की भूमिका में हुआ है। संकेत सन् १९२२ ई० में स्व० कृष्णकान्त मालवीय द्वारा 'अभ्युदय' में लिखित 'रजिया की समस्या' नामक कहानी की ओर है। मालवीयजी ने इसे अपने 'मनोरमा के पत्र' में उद्धृत किया है। हिन्दी में ऐसी कहानियाँ कभी-कभी नजर आती हैं। सर्वश्री पहाड़ी, यशपाल और अमृतलाल नागर इस वर्ग के लेखक हैं।

नहीं भूलता कि वह मनुष्य है। इस विचार से प्रकृति के प्रायः सभी पात्र अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार मानवीय संवेदनाओं के वाहक हो जाते हैं। कभी-कभी जब लेखक वस्तु जगत के ऊहापोह और वैषम्य से तङ्ग आ जाता है तो किसी प्रकृति पात्र के मुख से, मनुष्य के काले कारनामों का चिट्ठा खोल देता है और मनुष्य शासित जगत की गर्हणा में लग जाता है। ऐसी कहानियाँ बहुत कम होती हैं जिनमें प्रकृति के लिए प्रकृति (Nature for nature's sake) का चित्रण हो। शास्त्रीय शब्दों में कहें तो जिनमें प्रकृति आलम्बन के रूप में चित्रित की गई हो। जैसे किसी कहानी के दो पात्र हों सागर और मेघ। उस कहानी में दोनों की उपयोगिता अङ्कित की गई हो और यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया हो कि दोनों में किसकी उपादेयता अधिक है। ऐसी कहानियों में पहली दिक्कत तो यह होती है कि इस प्रकार की बातों को लेकर कहानी का पूरा ढाँचा बनाया नही जा सकता। दूसरी कठिनाई यह होती है कि ऐसी कहानियाँ मानव जीवन की वास्तविकता से इतनी दूर जा पड़ती है कि सम्भ्रान्त और निम्न किसी श्रेणी के पाठक इनका आस्वाद अधिक नहीं करते। ऐसी कहानियों में एक तात्विक कमी यह भी होती है कि प्रायः सभी में अपना एक आदर्श या उपदेश होता है जिसकी प्रस्तावना सर्वदा वांच्छनीय नहीं होती लेकिन इन सब झंझटों से दूर रह कर भी यदि कोई प्रकृति का एकान्त चित्रण कर सके तो वह अत्यधिक सफल और श्लाघ्य होता है। मनुष्य से सर्वथा दूर स्वयं प्रकृति में ऐसी शक्ति है जिसके आगे मानवीय रुचियों को हार माननी पड़ती है।[1]

(क) पशु पक्षियों सम्बन्धी—जिस प्रकार एक मानव निरपेक्ष सत्ता के रूप में प्रकृति का चित्रण कम दिखाई पड़ता है उसी प्रकार पशु पक्षियों का अपने स्वाभाविक रूप में अङ्कन बहुतायत से नही होता। पशु-पक्षी जिन कहानियों के पात्र होते हैं उन कहानियों में उन्हें भी मानवीय जामा पहना दिया जाता है, इस अर्थ में कि वे या तो किसी मानवी पात्र के प्रतीक के रूप में सामने आते है, अथवा किन्हीं मानवी कृत्यों की निन्दा अथवा प्रशंसा करते हुए गोचर होते हैं। जैसे किसी कहानी के पाशवी पात्रों के मस्तिष्क में यह बैठा दिया जाय कि उन पर जो मानवीय नियन्त्रण है वह उनके हित में नही है, इस

[1] सुमित्रानन्दन पन्त का 'ज्योत्स्ना' नाटक और रामकुमार वर्मा का एकाङ्की 'अन्धकार' इसी प्रकार के साहित्य के उदाहरण हैं। 'अन्धकार' की वस्तु पौराणिक हो गई है, जिसे प्रागैतिहासिक वर्ग में लेना चाहिये। हिन्दी में ऐसी कहानियों की बहुत गुञ्जायश है।

धारणा को लेकर किसी प्रदेश के (प्रतीकार्थ में, समस्त विश्व के) पशु-पक्षी एक स्थान पर एकत्रित हों और मनुष्यों की भाँति विरोधी प्रस्ताव उपस्थित करें और मानव-जाति के विरुद्ध लोहा लेने का एक सङ्गठित मोर्चा बनावें। इस प्रकार की कहानियों के पात्र यद्यपि स्वतन्त्र रूप से पशु-पक्षी ही होते हैं, फिर भी कहीं न कहीं से उनमें मानवी पक्ष आ जाता है, यह ऊपर लिखे कारण से स्वाभाविक है। देखना यही होता है कि इस प्रकार कहानियों के पात्र प्रज्ञा और सामान्य सद्सद् विवेक के क्षेत्र से कहीं इतने दूर तो नहीं चले जाते कि उनका व्यक्तित्व सारा आरोपित प्रतीत हो। फिर भी इस नियमन की एक सीमा है। निरीह से निरीह जानवर को भी जब निरुद्देश्य एवं अकारण चोट पहुँचाई जाती है तो उसकी प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति निस्सन्देह ही जागृत हो जाती है। यह केवल पशु-पक्षी विशेष की हिंसा की क्षमता और सामना करने की साहसिकता पर अवलम्बित होता है कि वस्तुतः प्रतिशोध में प्रवृत्त होता है या नहीं और कहाँ तक। कल्पना की जा सकती है (विकासवादियों की तरह) कि उन पशु-पक्षियों की यह प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति इतनी विकसित हो गई है कि वे सामूहिक रूप से अपने नियन्ताओं के विरुद्ध जेहाद बोल सकें। तभी उक्त कहानियाँ वस्तु की दृष्टि से असफल अथवा अस्वाभाविक घोषित नहीं की जा सकती।

यह तो हुआ एक उदाहरण। प्रतिहिंसा के अतिरिक्त और भी अनेक प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनका समुचित विकास पशु-पक्षियों में पाया जाता है। सामूहिक रूप से नहीं, तो व्यक्तिशः किन्हीं ऐसी प्रवृत्तियों का चित्रण पशु-पक्षियों की कहानियों में आसानी से हो सकता है। ऐसी कहानियों में सभी में कोई न कोई आदर्श या उपदेश निहित रहता है। पञ्चतन्त्र जैसे प्रसिद्ध आस्थान ग्रन्थ के पात्र पशु-पक्षी ही हैं। वे अपने कार्य-कलापों से इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करते हैं कि लेखक स्वाभाविकता से घोषित कर सकता है कि सत्य की जय एवं असत्य की सर्वदा पराजय होती है। ऐसी कहानियों में कहीं सङ्गठन का महत्त्व होता है, कही फूट के दुष्परिणाम, कहीं बुद्धि कौशल की प्रशंसा होती है, कहीं हीन मनोवृत्ति का पतन। कछुआ और खरगोश, सिंह और शशक, लोमड़ी और कौआ, मगर और बन्दर इस प्रकार की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं जिनमें आदर्श पक्ष प्रधान और मनोरञ्जन पक्ष गौण होता है। दो पात्र बड़े कौशल के प्रतीक के रूप में रक्खे जाते हैं। एक तो सत्-पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा असत्-पक्ष का। सहायक अथवा सहकारी पात्रों को उनकी प्रवृत्ति के अनुसार किसी पक्ष के साथ लगाया जा सकता है। हमारे यहाँ का आदर्श

विधान कुछ ऐसा है कि ये सहकारी पात्र प्राय: सत्-पक्ष की ओर होते हैं। जैसे उस कहानी में, जिसमें एक पशु-भक्षी सिंह का चित्रण है। एक बृहत् पशु समुदाय है जो सिंह के हिंसा व्यापार से तङ्ग आया हुआ है। वह सारा समुदाय असत् पक्ष (सिंह) के विरोध में है किन्तु कहानीकार इतना जानता है कि असत् पक्ष प्राय: इतना प्रबल होता है कि सामान्य मनुष्य को उससे संघर्ष करने का साहस नहीं होता। इसी कारण वह ऐसे व्यक्ति की शरण ढूँढ़ता है जो असत् पक्ष का उन्मूलन करने का साहस रखता हो। प्रस्तुत कहानी में वह व्यक्ति खरगोश है। इस प्रकार यह कहानी एक संगठित योजना होती है जिसके मून में वीरपूजा[1] की प्रवृत्ति वर्तमान रहती है।

ऐसी कहानियों की गतिविधि को देखते हुए हम कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य में वीर-पूजा की प्रवृत्ति का बीज अत्यन्त प्राचीन काल से मिलता है। विदेशी साहित्य में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है किन्तु वहाँ आदर्शपक्ष के प्रधान न होने की अवस्था में इसका समुचित विकास नहीं होता और कहानी का ध्येय केवल मनोविनोद तक ही सीमित रह जाता है।

पशुपक्षियों से सीखने की बात न की जाय तो भी उनके कार्य-कलापों में उनके जिन चरित्रों की झाँकी मिलती है वे निस्सन्देह रमणीय हैं। एक स्वाभाविक रहस्य को अपने में छिपाए रखने के अतिरिक्त उनमें मनुष्य को कितनी ही नवीनताएँ अनायास मिल सकती हैं। आवश्यकता केवल ईषत्कालीन अध्ययन या अनुशीलन की है। अपने प्रत्यक्ष रूप में ये पशुपक्षी हमें कितनी ही संवेदनाओं की प्रेरणा देते हैं। वे संवेदनाएँ जीवन के विस्तृत फलक पर विविधमुखी और विविधरूपिणी होती हैं। इनमें से जो संवेदनाएँ तीव्र मनोवृत्तियों से सम्बन्ध रखती हैं उनका प्रयोग शीघ्रता से होता है, जैसे एकान्त में यदि कोई बिल्ली किसी चूहे को धर पकड़ लेती है तो उस चूहे के शरीर भर में भय की जो अभिव्यक्ति होगी वह निश्चय ही सापेक्षत: अधिक स्पष्ट और संवेदनशील होगी। इसके विपरीत जब किसी शिशु-कपोत को उसकी धाय माँ कहीं से लाकर चुगा देती हैं तब उस कपोत के हृदय में जो हर्ष स्फुरण होता है वह अपेक्षाकृत कम अव्यक्त होने के कारण उसी मात्रा में संवेदनीय नहीं होता।

[1] 'वीरपूजा' में सत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित करदी जाती है। फिर उसे कोई ऐसा कार्य सम्पन्न करने को कहा जाता है जिसे समस्त सामान्य जन-समूह नहीं कर सकता। उसमें भी प्राय: सत्-पक्ष का सञ्चालन वह व्यक्ति करता है जिसे 'वीर' कहते हैं, और असत्-पक्ष का प्रतिनिधित्व एक प्रतिनायक। आज कल की नेतागीरी के बीज इसी वीर-पूजा की प्रवृत्ति में है।

जो कुछ भी हो पशुपक्षियों का जो विशाल जगत् है वह निश्चय ही अपना अलग व्यक्तित्व रखता है। कहानियों के तो उसमें अनेक उपादान मिल सकते हैं। यही इस स्वतन्त्र वर्गविधान का आधार है।

(ख) भूत-प्रेतों की कहानियाँ—ज्यों ज्यो वस्तु-विज्ञान का विस्तार होता जाता है वैसे-वैसे हो इस वर्ग की कहानियों का प्रचार कम पड़ता जाता है। इसका कारण है विज्ञान का अलौकिक सत्ता में विश्वास न होना। किन्तु फिर भी जीव-विज्ञान के सूक्ष्मतम सत्यो एवं विविध रूपों मे अनुसन्धान करते चले तो हमें इस प्रकार के कहानियो में लौकिक सत्य ही सी कोई वस्तु ज्ञात होने लगेगी। अफसोस की बात यही है कि कहानोकार इस सूक्ष्म सत्य को असत्य मानकर इन कहानियो में अपनी शक्ति व्यय नही करते और तभी ये कहानियाँ अल्पसख्यक होती हैं। इन कहानियो का अधिक प्रचार न होने का एक कारण यह भी है कि इनका वस्तु-विधान शेष कहानियों की अपेक्षा अधिक दुरूह होता है और कलाकार का इस विषय में एक सन्तुलन रखना कठिन हो जाता है। वह वस्तुतः सन्तुलन होता है एक ओर तो इन कहानियों की वस्तु के साथ की माननीयता एवं अमाननोयता के अनुरूप इनका ढाँचा बनाने के सम्बन्ध में और दूसरा ओर उस कला के सम्बन्ध में जिसके हाथों कहानी का निर्माण होता है। अर्थात् या तो कहानीकार इनमे सत्य के सत्याग्रह का ध्यान रखकर इनके कला पक्ष को खो बैठता है या इनके कलापक्ष को अत्यधिक पुष्ट करने की चेष्टा में इनमें अनावश्यक स्वाभाविकता को ला घुसेड़ता है। इसलिए इस कठिनाई के विषय में कलाकार को सदैव सतर्क रहना चाहिए।

इस विषय का अधिक विवेचन करने से पूर्व यह संकेत कर देना आवश्यक है कि इस वर्ग की कहानियों में वे भी आ जाती है जिनका सम्बन्ध दैत्यों अथवा परियों अथवा अन्य किसी मानवेतर प्राणियों अथवा स्थितियो या शक्तियों से होता है। इनमें वे कहानियाँ नहीं लेनी चाहिए जिनमें ऐसे प्राणी केवल निमित्त मात्र होकर अथवा किसी अप्रधान पक्ष को लेकर आते है। इस वर्ग की स्वतन्त्रता का आधार केवल इन प्राणियों की प्रधानता ही है। यह प्रधानता संख्या पक्ष में हो चाहे शक्ति अथवा क्षमता पक्ष में।

इस स्पष्टीकरण के उपरान्त एक बात हमारी समझ में आती है कि प्राचीन और नवीन दृष्टिकोणों में एक महान अन्तर है। इस वर्ग की, प्राचीन कहानियों का उद्देश्य जहाँ अलौकिक वस्तु विधान के द्वारा पाठक के हृदय में इनमें आए हुए पात्रों की असाधारण योग्यता आदि के विषय में एक कौतूहल

एवं विस्मय उत्पन्न करना होता था, वहाँ नवीन कहानियों का उद्देश्य उसमें नियोजित घटनाओं को लेकर किसी सिद्धान्त आदि का पोषण एवं विज्ञापन होता है। कम से कम हल्की कोटि की आश्चर्योत्पादक स्थितियों का परिचय देने के लिए तो आज का कलाकार भूत प्रेतों की कहानियाँ नहीं लिखता। दूसरे शब्दों में भूत-प्रेतों की घटनाओं का वह अंश जिसमें पाठक के हृदय में कौतूहल की जागृति होती है, कलाकार का साध्य नही साधन होता है। प्राचीन कलाकार केवल उसी अंश को लेकर कितनी ही होनी अनहोनी कल्पनाएँ करने मे तत्पर हो जाता था, और उनके द्वारा भोले पाठको में एक आतङ्क स्थापित करने की चेष्टा किया करता था। फिर भी इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता कि इस वर्ग की नवीन कहानियाँ भी अपनी वस्तु के अलौकिक और अपनी संवेदनाओं में असाधारण होती है।

अलौकिक सत्ताओ एव शक्तियो का जो स्वरूप हमे प्राचीन साहित्य में मिलता है उस के सम्बन्ध में आधुनिक युग की एक और प्रतिक्रिया है। अभी-अभी तक साहित्य केवल इसी कारण मनोरंजन देता था कि उसकी वस्तु मानवीय है, उसी साहित्य के विषय में हमारा दृष्टिकोण बदल गया है। हम उसे किसी न किसी भाँति मानव-सिद्धि-सुलभ एव स्वाभाविक बनाने की एव उसे इसी रूप में दिखाने का चेष्टा किया करते है। इस प्रक्रिया में या तो हम रूपको का सहारा लिया करते अथवा मुहाविरा आदि का। यह बात यद्यपि बड़ी आश्चर्य-बोधक है फिर भी यथार्थता से ओतप्रोत है। इसका कारण उक्त वैज्ञानिकता की कसौटी की माँग है तथा हमारे पौराणिक और वैदिक साहित्य ही में नही पाश्चात्य देशो के, प्राचीन साहित्य मे भी ऐसी अलौकिक शक्तियो अथवा अपौरुषेय पुरुषो का वर्णन मिलता है। बाद में चलकर इन्ही शक्तियो ने हमारे हृदयो में श्रद्धाजन्य पूजा का स्थान बना लिया। इस प्रकार की अलौकिक सत्ताओ को ज्यो का त्यो न रखकर हम उन्हे किसी न किसी रूप में मानवीय जामा पहना देते है अथवा उनका सीधा व्यक्तित्व हमारे सामने जो दृश्य जगत है उस पर आरोपित कर देते हैं। उदाहरणार्थ सूर्य को लीजिए। वैदिक ऋषि इसे एक अलौकिक शक्ति-सम्पन्न सत्ता मानते थे जो हमारे श्रद्धा-भय का आलम्बन थी। इस धारणा का बीज-वपन निश्चय ही सूर्य के प्रचण्ड आकार प्रकार एव अद्वितीय शक्ति के आभास के द्वारा ही हुआ था। आधुनिक वैज्ञानिक सूर्य को एक अखण्ड प्रकाशमय ग्रह मानता है और उसे जगत के पोषण की संज्ञा देता है। यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो दोनो दृष्टिकोणो में विरोध कहाँ रहा? अन्तर केवल अन्तिम निर्णय में ही है, आधारभूत भ्रामक वस्तु (hypothesis)

में नहीं। सूर्य को प्रखण्ड प्रकाश का एक वृहद् पिण्ड न मानकर एक ऐसी शक्ति मान लीजिए जिसमे यह प्रकाश अवस्थित हो, बस विज्ञान को कोई आपात्त नहा है। और यहाँ हम साहित्य की बात करते है तब तो विज्ञान को उसका गौण होकर ही रहना पड़ेगा। रूपक-दृष्टि स्वय साहित्य की एक अत्यन्त पुरातन सम्पत्ति है और यदि इन अलौकिक सत्ताओ को हम पूर्णतः मानवीय रूप न भी दे अथवा उन्हे दृश्य जगत पर न भी घटावें तो साहित्य की रमणीयता में कोइ हानि नही आती। साहित्य पर अध्ययन करते समय इसी दृष्टिकोण को सामने रखना चाहिए। इसी प्रकार मुहाविरे की बात है। श्री अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ने कृष्ण-चरित्र के गोवर्द्धन धारण के प्रसग को लेकर अपने प्रिय प्रवास में 'अंगुली पर उठाना' के मुहाविरे का क्या ही सुन्दर एव आश्वस्त रीति से घटित किया है। सामयिक साहित्य का सौन्दर्य इसी बात म है कि वह नवीन और प्राचीन का एक अद्भुत समन्वय करता है।

इस वर्ग म केवल वे ही कहानियाँ नही आती जिनका वातावरण अलौकिक अथवा दृश्य-जगत से भिन्न है, अपितु वे भी आती है जिनमें अलौकिक वस्तु का लौकिक स्वरूप ही देकर उपस्थित किया जाता है। ऐसी कहानियाँ कौनसी है और उनमे ऊपर कही गइ कहानियो से क्या अन्तर है? थोड़ी सूक्ष्मता में देखें तो पहले प्रकार की कहानियो म अलौकिक पर लौकिक वस्तु का आरोप होता है, अन्तर्बोध अलौकिक वस्तु का बराबर रहता है। रूपक योजना की सारी निर्बलता इस प्रकार के समारोह में रहती है अर्थात् लौकिक वस्तु का आवरण इतना स्थूल नही रहता कि उससे अलौकिक का बोध होना ही बन्द हो जावे। यदि अलौकिक-बोध होना बन्द हो जावे तो हमारा उद्देश्य गिर जाता है। सूर्य को एक विशाल अग्निपिण्ड माना जावे अथवा एक विराट दिव्य-पुरुष, कहानी में उसको लेकर जब रूपक खड़ा किया जाता है तो उसके अग्निपिण्ड के रूप को तिरोहित किया जाता है और दिव्य पुरुष के रूप का आधान प्रमुख रहता है। यह बात दूसरी कहानियो में नही है। वहाँ लौकिक स्वरूप प्रमुख होता है। हमने कुछ दिन हुए किसी पत्र में एक ऐसी कहानी पढ़ी थी जिसमें यह कल्पना की गइ थी कि सयुक्तराष्ट्र सघ म सेक्रेटरी जनरल का जो पद रिक्त हो रहा था उसकी पूर्ति के लिए ससार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञो ने मिलकर दिवगत आचार्य कौटिल्य को आमन्त्रण दिया और वे इस धरा पर राकेट विमान द्वारा अवतीर्ण हुए। राष्ट्रसघ मे कुछ देर भाषण देने के बाद वे अपने स्थान को लौट जाने ही वाले थे कि लेखक महाशय की कलम टूट गई, ऐसा प्रतीत हुआ। और फिर क्या हुआ यह अविदित है। यहाँ यह शका करना उचित नहीं कि उस

सारे विवरण को कहानी मानना चाहिये यह नहीं क्योंकि प्रसङ्ग केवल वस्तु या वातावरण का है शैली का नहीं। इस प्रकार की कहानी की वस्तु अलौकिक तो होती है क्योकि आचार्य चाणक्य, जो आज से कितने ही संवत्सर पूर्व सदा के लिए यहाँ से उठ गए थे, किसी भी अवस्था में हमारे सामने शरीर धारण करके नहीं आ सकते। किन्तु कहानी पढ़ते समय हमें यह देखने का अवकाश या इच्छा नहीं रहती कि आचार्य महाशय किस प्रकार इस मानव-जगत पर आ गये किन्तु हम केवल उसके लौकिक पक्ष का ही स्मरण रखते है अर्थात् आचार्य हमारे बीच में आकर क्या बात करते हैं केवल इसी बात को जानने का कुतूहल रहता है।

कहने का अभिप्राय यही है कि इस प्रकार की कहानियाँ भी इसी वर्ग में गण्य है और इस वर्ग की शेष कहानियों का विवेचन करते समय इन्हे भूलना नहीं चाहिये।

हिन्दी भाषा की सबसे पहली कहानी 'रानी केतकी की कहानी' (लेखक इंशा अल्ला खां) की वस्तु अंशतः इसी वर्ग की है।

आधुनिक साहित्य में इस सम्बन्ध में एक और भी प्रवृत्ति देखी गई है। वह है लौकिक वस्तुओं, व्यापारो आदि को अलौकिक रूप में उपस्थित करना व उसके द्वारा एक रहस्य की सृष्टि करना। एक उदाहरण लीजिये। इङ्गलैण्ड के एक प्रसिद्ध कहानी लेखक ई० एम० फौस्टर की एक कहानी है 'द सिलैशियल ओम्नीबस' (The celestial omnibus)। इस कहानी को आद्योपान्त पढ़ने के बाद एक इहेतर वातावरण की गूँज हमारे मस्तिष्क में रहती है किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि इसमें अलौकिक वस्तु जैसी कोई चीज नहीं है। इसमें कविता को एक वाहन (omnibus) का रूप दिया गया है जो हमें स्वर्ग-प्रदेश को ले जाती है। आरम्भ से अन्त तक इस वाहन का सच्चा स्वरूप स्पष्ट नही किया जाता है और कई ऐसी वस्तुओ की सृष्टि की जाती है जो इस स्वरूप को अधिक से अधिक दूर तक छिपाने में समर्थ होती है ताकि बहुत देर तक हम रहस्य में गुमे से रहते हैं। किन्तु अन्त की कुछ पंक्तियों में भाव स्पष्ट हो जाता है और हमें तब कहानी को अतिप्राकृत या अप्राकृतिक कहने का साहस नहीं होता। दो विरोधी चीजों : एक अबोध शिशु और एक तिर्यक्वृत्ति (sophisticated) प्रौढ़—की योजना द्वारा कहानी में जान डाल दी गई है। और उससे कहानी का यह उद्देश्य कि कविता का आनन्द वही ले सकते हैं जो तर्क की मरुभूमि से दूर रहते हैं पूर्ण सफल रूप से अभिव्यक्त हो जाता है।

(२) तत्व विशेष की प्रमुखता—यह कहानी के वर्गीकरण का दूसरा

आधारभूत सिद्धान्त है। कहानी का यदि तात्विक विश्लेषण किया जाय तो हमें उसके कुछ आधारी तत्व मिलेंगे जिनसे कहानी का निर्माण होता है। विहंगम दृष्टि से इन तत्वों की संख्या पाँच छह तक आती है। भाषाशैली, कथानक, वार्तालाप चरित्र-चित्रण, वातावरण और सङ्घर्ष। इन तत्वों का विस्तृत विवेचन पाँचवें प्रकरण में किया जायगा। इन्ही तत्वों की प्रमुखता को लेकर कहानी को प्रवृत्त कर सकते है, अर्थात् जिस कहानी में इनमें से जो तत्व प्रमुख होगा उसी तत्व के नाम पर कहानी की संज्ञा निर्धारित हो जायगी। जैसे कोई कहानी चरित्र-प्रधान होती है, कोई कहानी घटना-प्रधान और कोई कहानी वातावरण-प्रधान आदि।

यदि हम कहें कि अमुक कहानी भाषा-प्रधान है तो अनिवार्यतः इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें कथानक-तत्व बहुत विरल है अथवा उसका चरित्र-तत्व बहुत हल्का है। इसी प्रकार दूसरे तत्वों के विषय में बात कही जा सकती है। कभी-कभी तो वे तत्व इस रूप में संयोजित होते हैं कि प्रत्येक का अपना अपना महत्व होता है और हमें प्रत्येक तत्व को प्रधान मानने का लोभ होता है। किंतु यह प्रायः बहुत अच्छी कहानियों में होता है। साधारण कलाकार सभी तत्वों के समान विकास में साधारणतया फिसलता ही देखा गया है। किसी कहानी में कोई तत्व प्रधान हो जाता है किसी कहानी में कोई।

कहानी में किसी तत्व की प्रधानता का क्या तात्पर्य है?

(अ) भाषा और शैली प्रधान कहानियाँ—इस प्रकार की कहानियों का आकर्षण उनकी भाषा और शैली पर केन्द्रित रहता है। यह बात उनके हित में भी घटित होती है और अहित में भी। जैसे कोई ऐसी कहानी लिखी जावे जिसकी भाषा खूब शब्दाडम्बरयुक्त तथा मुहाविरेदार हो उसे पढ़ते समय पाठक के हृदय में उसी भाषा-शैली का ध्यान रहेगा, शेष तत्वों का या तो उचित विकास न होने से या उनकी भाषा-शैली की अपेक्षा कम विस्तार होने के कारण उनकी ओर लेखक का ध्यान नहीं जाता। जिन कहानियों की भाषा अत्यन्त परिमार्जित और शैली अत्यन्त रोचक होती है उनमें भी प्रायः यही बात लागू होती है, यद्यपि यह स्पष्ट है कि जिस लेखक की कलम में भाषा का प्रचुर निखरा हुआ रूप दरशाने की योग्यता होती है उसे कहानीकार होने के नाते स्वभावतः अन्य तत्वों की ओर ध्यान देना आवश्यक एवं प्रिय होता है और इस अवस्था में भाषा-शैली की प्रमुखता कम हो जाती है। भाषा-शैली-प्रधान कहानियाँ अच्छी कहानियों की कोटि में नहीं आतीं, क्योंकि जो भी हो भाषा-शैली आखिरकार विचार-संक्रमण का वाहन मात्र है।

(आ) चरित्र-प्रधान कहानियाँ—मनोविज्ञान के विकास के इस युग में

कथा साहित्य में चरित्रों की प्रधानता सहज ही में उपर उठ आई है और आज के युग में वे ही कहानियाँ अच्छी समझी जाती हैं जिनमें विभिन्न पात्रो की मनोस्थिति का विभिन्न अवस्थाओं में निदर्शन होता है। ऐसी कहानियों में घटना, भाषाशैली आदि सब तत्व गौण होकर आते हैं। भाषा तो भावों की वाहन ही रहती है। कथानक की शृङ्खलाएँ केवल चरित्रों की प्रतिक्रिया ही दिखाने को बनाई जाती हैं। किस प्रकार की अवस्था में पात्र क्या करता है केवल इसी बात को लेकर आज का अधिकांश कथा-साहित्य चलता है। फिर कुछ विशेष पात्र होते हैं जो केवल अपनी विशेषता के लिए ही कहानी के धरातल पर आते हैं जैसे कोई पण्डा, अध्यापक, मिल मालिक, दार्शनिक आदि। इनकी चारित्रिक विशेषताओं को लेकर कहानी चरित्रप्रधान हो जाया करती है। इसमें ऐसे पात्र प्रायः नायक या प्रमुख पात्र बनकर आते हैं।

चरित्र प्रधान कहानियों में दो प्रकार के चरित्रों का विकास देखने को मिलता है। एक तो व्यक्ति (Individual) का चरित्र और दूसरे वर्ग (Class) का चरित्र। किन्तु यह भेद प्रारम्भिक ही है। अच्छे लेखकों का झुकाव वर्ग चरित्र की ओर ही देखने को मिलता है। यद्यपि डिकन्स जैसे स्वनामधन्य लेखकों ने व्यक्ति-चरित्रों की हाट लगाई है। आगे चल कर व्यक्ति ही अपना एक गुट बना लेता है और अमुक पात्र की विशेषताओं वाले जितने समाजजीवी मिलते हैं उनका उस पात्र को प्रतिनिधि मान लिया जाता है। किन्तु यदि ऐसा न भी हो तो व्यक्ति के चरित्र को एक अत्यन्त उच्चकोटि तक विकसित किया जा सकता है। फिर भी वह व्यक्तिगत चरित्र ही रह सकता है। इसमें कोई अपमान अथवा दुर्बलता की बात नहीं है। इसके साथ ही यह भी मानना चाहिए कि वर्ग चरित्रों की अभिव्यक्ति जितनी सहज साध्य होती है उतनी व्यक्ति-चरित्रो की नही। दूसरी श्रेणी के चरित्रों में लेखक को एक अधिक सूक्ष्म अध्ययन एवं वृहत्तर जन समुदाय के अनुभवों की आवश्यकता होती है। कारण स्पष्ट है। हम दैनिक जीवन में जो अनुभव करते हैं वह अनुभव साधारणतया सर्वसामान्य का अनुभव होता है। किन्तु एक अमुक व्यक्ति उस सामान्य दिशा से हटकर किस प्रकार अपना अलग मार्ग बना लेता है इसकी ठीक-ठीक तह में पहुँचना कठिन है। व्यक्ति-चरित्र की यह विशिष्टता लेखक के लिए भी उसी अनुपात में दुर्ग्रहणीय होती है।

यदि हम इस बात का अध्ययन करें कि कहाँ पर जा कर व्यक्तिगत चरित्र वर्गगत हो जाता है तो यह बड़ा मनोरञ्जक होगा। केवल कुछ प्रतीकात्मक कहानियो को छोड़ कर दृश्यरूप में तो समस्त वर्ग-चरित्र व्यक्ति ही के आश्रय

से अभिव्यक्त होता है किन्तु कोई-कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो एक बहुत बडे जन-समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं, इस अर्थ में कि उनकी विशेषताएँ उस जाति अथवा वर्ग के समस्त जनसमुदाय में पाई जाती हैं। प्रतीकात्मक कहानियों में यह प्रारम्भ ही में मान लिया जाता है कि अमुक व्यक्ति 'क' एक समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा है अर्थात् प्रतीकात्मक कहानियों में वर्ग चरित्र का आरोप आदि ही से होता है जब कि शेष कहानियों में इस आरोप को बाद में सुविधा के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में घटाना पडता है।

(इ) **कथानक-प्रधान कहानियाँ**—इनका महत्व यद्यपि अपेक्षाकृत कम है फिर भी प्रचार की दृष्टि से ये बडी लोकप्रिय होती हैं। इसका कारण यह है कि एक साधारण कोटि के पाठक की रुचि प्रायः कहानी के पेचीदे और चक्करदार कथानक में केन्द्रित रहती है। चरित्र और भाषा शैली उनके आकर्षण के केन्द्र बिन्दु नहीं रहते। वातावरण के आधार पर किए गये भेदों की व्याख्या में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि क्यों एक साधारण पाठक को जासूसी आदि कहानियाँ अधिक अच्छी लगती हैं। यदि लेखक के दृष्टिकोण से देखा जाय तो भी हमें यह बात पुष्ट होती जान पडेगी। भाषा के प्रश्न को पार करने के बाद लेखक के समक्ष सीधी यही समस्या आती है कि सजीव चरित्रों की सृष्टि की जाय तो कैसे? कथानक उसके लिए कोई विशेष टेढी खीर नहीं होती। सच तो यह है कि कहानी लेखन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में कथानक ही सब से निकट से सिद्ध होने वाला तत्व है। देखा भी जाता है कि नए कहानीकार की प्रायः सभी रचनाएँ कथानक प्रधान होती हैं।

कथावस्तु के भेदों की दृष्टि से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि प्रायः अधिकांश प्रकारों में कथानक का महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक, ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक, राजनैतिक, जासूसी, वैज्ञानिक, धार्मिक, जीवटीय, आर्थिक, यौनीय, प्रकृति-परक, पाशवीय व अतिप्राकृत सभी प्रकार की कहानियों में कथानक का स्थान गौरवान्वित है। आधुनिक युग में चरित्र-प्रधान कहानियाँ भले ही लिखी जायँ, यह बात स्पष्ट है कि इस चेष्टा में लेखक वातावरण या वस्तु के एक बहुत बड़े क्षेत्र को भूल जाता है और उसका दृष्टिकोण सङ्कीर्ण हो जाता है।

हमारी अल्पमति के अनुसार कथानक-प्रधान कहानियों के सिर पर एक और उत्तरदायित्व होता है जो चरित्र प्रधान या अन्य कहानियों पर नहीं होता। वह होता है आदर्श और गर्हित के निर्माण से सम्बन्ध रखने वाला। यह बात

निद्वंन्द है कि पाठक को अच्छी या बुरी प्रेरणा उसके कथानक से मिलती है। स्वयं चरित्र, 'अर्थात् पात्र' इस प्रसङ्ग में संवेदना शून्य होते हैं। वे यदि कथानक के दास नहीं हों तब भी अन्ततः कथानक की परिणति जिस अवस्था में होती है उसी के आधार पर हमारी श्रेय व अश्रेय की भावनाएँ बनती हैं। इसी बात को नीचे की तालिका स्पष्ट करेगी—

चरित्र अथवा पात्र	कथानक की परिणति	पाठक की मनोवृत्तियों पर पड़ने वाला प्रभाव
१ उत्तम	आदर्श	आदर्श
२ अधम	,,	प्रतिकूल
३ उत्तम	प्रतिकूल	,,
४ अधम	,,	आदर्श
५ मध्यम	,,	,,
६ मध्यम	आदर्श	आदर्श

इस तालिका से यह सिद्ध होता है कि पात्र चाहे कैसे भी हों पाठक पर कथानक का प्रभाव पड़ता है। यदि पात्र निम्नकोटि के हों और उनके कार्य-कलापों का परिणाम अत्यन्त भव्य निकले तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आदर्श अथवा उच्च कोटि के चरित्रों की फिर कोई पूछ नहीं होगी। इसी प्रकार जब तक हम अत्यन्त प्रारब्धवादी न हों आदर्श पात्रों के कार्य-कलापों के परिणाम प्रतिकूल देखकर हमें घोर निराशा होती है और हमारा आदर्श-पक्ष की ओर झुकाव कम होने लगता है। यदि वही प्रतिकूल परिणाम निन्द्य पात्रों के कार्यों के कारण हुआ हो तो हमें अवश्य सन्तोष होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि कथानक प्रधान कहानियाँ जिनका अधिकांश आकर्षण उनके कथानकों में रहता है पाठकों के चरित्र-निर्माण अथवा चरित्र ध्वंस में बहुत दूर तक सहायक होती हैं।

(ई) वार्तालाप-प्रधान कहानियाँ—यों तो वार्तालाप एक शैली है। फिर भी क्योंकि उसकी गणना कहानी के प्रमुख तत्वों में की जाती रही है अतः इस प्रसङ्ग को यहीं पर लिया जायगा।

कुछ आलोचक कथोपकथन को लेकर कहानी का एक भेद निर्धारित करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु यदि निष्पक्षता से देखा जाय तो वार्तालाप को लेकर कहानी का एक वर्ग नहीं किया जा सकता, क्योंकि वार्तालाप की प्रधानता के आधार पर ही कहानी और नाटक में भेद किया जाता है। वार्तालाप कहानी का फिर भी एक महत्वपूर्ण भाग है और उससे जब कहानी का कथा-

नक, चरित्र व वातावरण अनावृत होता है तब उस कहानी को वार्तालाप प्रधान कहा जाता है। कथोपकथन की प्रायः सभी विशेषताएँ ऐसी कहानियों के वार्तालापों में पाई जाती है। (इन विशेषताओं का सविस्तार वर्णन तत्व-निरूपण वाले प्रकरण में मिलेगा)।

(उ) वातावरण-प्रधान कहानियाँ—इनका यद्यपि प्रचार अत्यल्प है तथापि इनका महत्त्व उसी अनुपात में नगण्य नही। लेखक की योग्यता और पाठक पर पड़ने वाला प्रभाव, दोनों की दृष्टि से ऐसी कहानियाँ एक विशेष ऊँचे स्तर की होती हैं। इनका स्वरूप कैसा होता है? मान लीजिये कहानी का कोई पात्र एक ऐसी भयङ्कर स्थिति में पड गया हो जहाँ से उसका निकलना सम्भव नहीं हो। उस स्थिति का यदि लेखक ऐसा वर्णन करे कि हमारे मन में भी ठीक वही भयपूर्ण स्थिति की संवेदना होने लगे और हम अपने आपको उस पात्र की दशा में अनुभव करने लगें तो वह कहानी वातावरण प्रधान होगी। उसी स्थिति में वातावरण कैसे प्रधान होगा? तब न तो पात्र का कोई महत्त्व है क्योंकि वह एक असहाय, विवश स्थिति में है जहाँ उसका होना न होना बराबर है, कथानक का स्पष्ट ही कोई प्रयोग नही हो रहा, वार्तालाप उस स्थिति के सहायक बनकर ही आ सकते है, प्रधान नही। इस प्रकार केवल तत्स्थानीय वातावरण ही एक ऐसा तत्त्व है जो महत्त्व का है। उसकी संवेदना या तो सजीव और ब्योरेवार वस्तुवर्णन से (जैसे यदि किसी एकान्त जङ्गल का चित्र हो तो अँधेरी रात का होना, वायु की सांय-सांय, जो ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से जैसे साजिस में लगी हुई हो, भयावह पशु-पक्षियो के तीव्र-मन्द स्वर, आस-पास और किसी मनुष्य जैसे प्राणी का न होना आदि के द्वारा) अथवा पात्र की मनोदशा के अध्ययन द्वारा अथवा सम्भव हो तो वार्त्तालाप द्वारा जागृत की जाती है।

यह तो वातावरण-प्रधान[1] कहानियो का तीव्र रूप हुआ जिसके आंशिक उदाहरण रवीन्द्रनाथ ठाकुर में मिलेंगे। वातावरण-प्रधान कहानियों का एक हलका रूप भी है। ऐसी कहानियों में मनोदशाओं की तीव्रता द्वारा वातावरण नहीं बनाया जा सकता, किन्तु एक विशेष कालखण्ड अथवा जातिखण्ड का एक ऐसा परिचय उपस्थित किया जाता है कि हमारे सामने तत्सम्बन्धी एक चित्र अङ्कित हो जाता है। प्रेमचन्द की 'नशा' शीर्षक कहानी इसी प्रकार की है।

[1] वातावरण प्रधान कहानियाँ लिखने में श्री एडगर एलेन पो, जो आधुनिक कहानी के प्रवर्त्तक माने गए है, बड़े सिद्धहस्त हैं। उनकी कहानियाँ एक अतीन्द्रिय लोक में ही साँस लेती जान पड़ती हैं। श्री टैगोर ने भी कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी हैं।

उसमें यह सिद्ध किया गया है कि प्रगतिवादी कहे जाने वाले विचारो वाला एक मनुष्य भा किस प्रकार एकाएक जमीदारी वातावरण में पड़कर उसी वातावरण का एक पुतला व पुजारो हो जाता है। उसके आस-पास का वायुमण्डल इतना अजाब है कि वहाँ आन के पश्चात् उसकी सारो सचेष्टता हवा हो जाती है और वहाँ का हवा उसके सिर पर सवार हो जाती है। इसी उदाहरण को यदि परिभाषा की ओर ले जाया जाय तो जान पड़ेगा कि इस प्रकार को कहानियों म वातावरण के आगे पात्र, कथानक, वार्तालाप आदि सब अप्रधान ही रहते हैं।

(ऊ) **सघर्ष प्रधान कहानियाँ**—इस सम्बन्ध में तत्व विवेचन वाले पाँचवे उच्छ्वास म विशेष विचार किया जायगा।

तत्वो की प्रमुखता का निर्धारण—तत्वो की प्रमुखता के निधारक बीजो मे लेखक की रुचि और क्षमता, युग साहित्य की माँग और कहानी की वस्तु और उसका उद्देश्य ये प्रमान्य हैं। इन तीनो पर नीचे की पक्तियो में विचार किया जाता है।

(१) **लेखक की रुचि और क्षमता**—कोई कोई लेखक अपनी भाषा के सौष्ठव प्रदर्शन के लिए कहानी में ऐसी भाषा रखते हैं जो हमारे यहाँ बहुत देर तक गूँजती है। किसी लेखक को चरित्र-चित्रण करना अधिक इष्ट होता है, उसके लिए भाषा और अन्य तत्वो की अपेक्षा उसका अधिक महत्व होता है, एस लेखक चरित्र-तत्व के प्रति शेष तत्वो को गौण बना देते हैं। किन्ही कथाकारो को केवल वातावरण-सृष्टि ही करना अभीष्ट होता है। यह तो हुई रुचि की बात। लेखको में यह भी देखा जाता है कि उनका सारे तत्वा पर अधिकार नही होता। इसलिए अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार जिस तत्व को वे अधिक स्पष्ट और भावुकता स व्यक्त कर सकते है, उसी का अच्छा प्रयोग इनकी कहानियों में मिलेगा। शेष तत्वो का अच्छा विकास वे नही कर पात। यदि सच पूछा जाय तो क्षमता भो रुचि पर हो अवलम्बित होती है क्योकि रुचि से सोचशील वस्तु का अभ्यास शीघ्रता से हो सकता है और उस पर अधिकार किया जा सकता है।

(२) **युग साहित्य की माँग**—इसका भी लेखक को अच्छा आदर करना होता है, यदि उसकी कला जनप्रिय होने की आकांक्षा रखती है और ऐसा होने का दावा करती है। साधारणतया देखा गया है कि भाषा-प्रधान कहानियाँ किसी भाषा के शिशु रूप में पाए जाने वाले चापल्य, फैलाव और बनाव सजाव आदि भावों की द्योतक है। भाषा जब नई नई विकसित होती है तब उसके प्रयोग का चाव साहित्य के सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। और इस नियम के

अनुसार कहानियों में भी उस का पुट आ जाता है। भाषा को अस्वाभाविक अलङ्कारो और रूप-प्रसाधनो का आश्रय बनाया जाता है और एक बार-बनिता के से चमत्कार की निष्पत्ति का प्रयास किया जाता है। प्रसंग में भाषा के सहज विकास की चेष्टाओ को नही लेना चाहिए जो अवश्य ही उसकी सुन्दरता को वृद्धिगत करने में सहायक होती है। विज्ञ पाठक दोनो प्रकार की भाषाओ मे अन्तर के दर्शन तत्काल कर लेता है।

ज्यो ज्यों भाषा मे विकास होता जाता है वैसे-वैसे कहानी आदि साहित्यों में भाषा की प्रमुखता विलुप्त होती जाती है और शेष तत्वो की ओर ध्यान दिया जाने लगता है। दूसरे शब्दो में भाषा साध्य नही साधन बन जाती है। सच पूछा जाय तो भाषा का मिशन भी यही है। भाषा का प्रभुत्व समाप्त होने के बाद युग के जैसे अपने सस्कार होते है उन्ही के अनुरूप वह कहानी में तत्वों की योजना की ओर ध्यान देता रहता है। इसके विषय में कोई नियम नहीं बनाए जा सकते कि कौनसा युग किस तत्व को अधिक अपनाएगा किन्तु साधारण तौर पर यदि यह माना जाय तो हानि नही होगी कि चरित्र-प्रधान कहानियाँ उस युग की देन होती है जिनमे जन जीवन के विभिन्न स्तरो में चरित्र का सघर्ष होता रहता है। इसी प्रकार कथानक प्रधान कहानियाँ कौतूहल को पसन्द करने वाले जनवर्ग को रुचि की पात्र होती हैं। कथोपकथन को प्रचुरता को देखकर नाटकीय अभिरुचि की ओर सकेत होता है और वातावरण की सृष्टि करने वाली कहानियाँ भावनात्मक दृष्टिकोण की द्योतक है।

(३) कहानी विशेष की वस्तु—अर्थात् कथावस्तु भी तत्व विशेष की प्रमुखता में पर्याप्त योगदान देता है। जैसे जीवट की और जासूसी कहानियो में कथानक की प्रधानता पाई जाती है। अच्छी सामाजिक कहानियो में चरित्र और कथानक का सन्तुलन होगा; आर्थिक कहानियो में चरित्रो की सम्यक योजना होती है, अतिप्राकृत कहानियां में वातावरण का निर्माण अच्छा होता है, आदि। यह ठीक है कि इस प्रकार के परस्पर सम्बन्ध के लिए कोई वैज्ञानिक प्रतिबन्ध नही है।

शैलीगत भेद—यो तो शैली को लेकर विस्तृत विवेचना एक अलग प्रकरण मे की जायगी फिर भी यहाँ कहानी के भेदो को निर्धारित करने के प्रश्न को लेकर उस पर विचार किया जा सकता है।

यहाँ शैली का अर्थ वह पद्धति अथवा प्रणाली है जिसके द्वारा कहानी लिखी जाती है। हम जानते है कि कहानी अनेक प्रणालिया से लिखी जा सकती है। इनमें से कुछ प्रणालियाँ तो अत्यन्त प्रचलित हैं, दूसरी प्रणालियाँ

उनसे कुछ कम प्रचलित । सबसे पहले इन सभी प्रणालियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) आभ्यान्तरिक और (२) बाह्य । आभ्यान्तरिक वर्ग में दो प्रकार की कहानी शैलियाँ पाई जाती है—(क) रूपात्मक और (ख) शुद्ध । बाह्य वर्ग में कहानी की प्रचलित शैलियो का विवेचन हो सकता है—(क) ऐतिहासिक (ख) डायरी-शैली (ग) पत्र शैली (घ) आत्मकथा-शैली और (ङ) मिश्र । पहले हम बाह्य वर्ग की शैलियों का विवेचन करेंगे ।

बाह्य वर्ग की इन शैलियो के निर्धारण का आधार क्या है व इन्हें बाह्यवर्ग में रखने का क्या तात्पर्य है ? बाह्यवर्ग का तात्पर्य कहानी के ऊपरी ढांचे से है । अतः जिन-जिन तरीकों से कहानी का ऊपरी ढाँचा तैयार हो सकता है उन तरीकों की छानबीन करने के बाद एक संख्या निर्धारित हो सकती है, यद्यपि यह संख्या केवल अध्ययन की सुविधा ही के लिए है और अन्तिम सीमा नहीं है । ये तरीके या शैलियाँ पांच है—

(क) ऐतिहासिक—यह कहानी लिखने की सबसे अधिक प्रचलित, सरल और महत्त्वपूर्ण शैली है । यद्यपि इसे जो नाम दिया गया है वह बिलकुल पूरा जँचता हुआ नही है, तथापि किसी अन्य अधिक उचित संज्ञा के अभाव में इसी का प्रयोग वाछित है । जिस रीति से इतिहास लिखा जाता है उसी रीति से ऐसी कहानियाँ लिखी जाती है । विवरणों का चुनाव कहानी का अपना होता ही है । कभी-कभी कुछ समय के लिए ठीक अन्य पुरुष की शैली का प्रमोग नहीं दिखाई पड़ता तथापि कुछ दूर जाने पर कहानी की प्रधान शैली का पता झट से लग जाता है । इस तरह की आरम्भिक कठिनता अन्य शैलियों की कहानियों में नही है । इनके कुछ उदाहरण ये हैं—

(१) चिकनी मेज पर डाले हुए सफेद मेज-पोश पर अपनी कुहनियों, तथा हथेलियों पर अपना सिर टिकाए हुए एक अजीव तरह का आदमी कमरे के एकान्त के अभिशाप का निराकरण कर रहा था । सामने खिड़की से सीधी आती हुई हवा उसकी लम्बी दाड़ी से खिलवाड़ कर रही थी । उसकी अधमुँदी आखें एक चित्र को देख रही थीं जिसे उसकी नव-परणीता पत्नी ने बनाया था । उसके नीचे लिखा था—'जीवन' । '?'—'प्रखर'

(२) जब कहीं पुरुषार्थ और भाग्य की बात चलती है तो गंगाधर मिश्र उत्तेजित होकर अपने प्रयत्नों की विफलता की कहानी सुनाने लगते हैं । मतलब यही होता है कि उन्होंने सदा ही सद्भावना से भाग्य से लोहा लेने की चेष्टा की, परन्तु भाग्य की जबर्दस्त मुट्ठी से वे कभी छूट नहीं पाये ।

'पर्दे की मर्यादा'—यशपाल

(३) 'बन्दी', 'क्या है ?', 'सोने दो', 'मुक्त होना चाहते हो ?', अभी नहीं', 'निद्रा खुलने पर', 'चुप रहो', 'फिर कवसर न मिलेगा'। "बड़ा शीत है कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।" "आँधी की सम्भवना है, यही अवसर है, आज मेरे बन्धन शिथिल है।" 'आकाश दीप'—प्रसाद

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक शैली का क्षेत्र विस्तृत है कभी उसमें वर्तमान काल का प्रयोग होने लगता है कभी भूत काल का, कभी उसमें वार्तालाप चल पडते हैं, कभी शुद्ध ऐतिहासिकता ही रहती है; कभी लेखक घटना की विवृत्ति करता है, कभी बिचारों का प्रचार। अन्य शैलियों पर विचार करते समय इसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जायगा।

जहाँ तक कहानी के इतिहास का पता चलता है उसमें अत्यन्त प्राचीन काल से ऐतिहासिक शैली का ही प्रयोग होता आया है, विशेषतः जिसका प्रारम्भ "अमुक स्थान में अमुक नाम का एक नरपाल राज्य करता था।" इस प्रकार से हुआ करता था। कहानी कहने का प्रवृत्ति की गहराई में जायँ तो हमें इस शैली की यथार्थता का सरलता से ज्ञान हो जायगा। कहानी सर्वदा किसी भूतकाल से सम्बन्ध रखती है तथा उसी की घटना आदि की अभिव्यक्ति करती है। यहाँ तक कि जहाँ कहानी 'वर्त्तमान काल' में लिखी मालूम पड़ती है वहाँ भी हमें उसके कथानक में प्रवेश करते ही उसके अतीत पृष्ठ का परिचय मिलने लगेगा, चाहे वह अतीत कल्पित हो अर्थात् अघटित भविष्य का वर्त्तमान की कल्पना करके बनाया गया हो, चाहे यथार्थ अर्थात् किसी सत्य अथवा कल्पित भूतकाल की घटना से निर्मित हुआ हो। (यहाँ हमारा ध्येय कहानी के प्रभाव की शाश्वतता के प्रति आक्षेप करने का नही है) और जहाँ भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख होना होता है वहाँ इतिहास लिखने की रीति अपनाना ही सुविधाजनक व स्वाभाविक होता है। यदि इसी बात को और अधिक बारीकी से देखें तो लगेगा कि इसी के अन्तर्गत शेष समस्त शैलियाँ अर्थात् पत्र-विधान, डायरी-प्रणाली आदि आ जाती हैं। इस मान्यता का आधार यह है:—किसी भी शैली की कहानी को आप सरलतम प्रणाली में अपने शब्दों में अनूदित करके उपस्थित करने की चेष्टा कीजिए, आप ऐतिहासिक शैली पर स्वतः उतर आयेंगे। किन्तु इनमें परस्पर विभेद इसलिए किया जाता है कि इन्हें देखते ही इनमें एक विभिन्नता स्पष्ट प्रतीत होने लगती है। अध्ययन की सुविधा के लिए भी इनका अलग विवेचन करना ही अभीष्ट है। तथापि इस विभिन्नता के अन्दर भी समानता का एक सूक्ष्म तन्तु पिरोया हुआ है जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट होता जायगा।

ऐतिहासिक शैली की विशेषताएँ—इस सब पैरवी को यदि रहने दें तब भी ऐतिहासिक शैली की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जो शेष शैलियों में उसी सम्पूर्णता व सफलता के साथ नहीं निभाई जा सकतीं। उनमें से एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि भाषा, कथानक, चरित्र, वातावरण एवं विचारों आदि की अभिव्यञ्जना में लेखक को पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है। देखिये—

(१) भाषा—यह द्रष्टव्य है कि ऐतिहासिक शैली की कहानी में लेखक का व्यक्तित्व छिपा हुआ है और नाटक के सूत्रधार की भाँति वह सारी कहानी को परदे के अन्दर से अप्रत्यक्ष होकर सञ्चालित करता रहता है। अनिवार्यतः वह न तो किसी चरित्र के साथ बँधता है और न स्वयं को किसी भी स्थल में अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रकट करता है। अतः कहानी की सामान्य गतिविधि को छोडकर इस प्रकार की शैली में लेखक को अनेक प्रकार की भाषा का प्रयोग करने का अधिकार होता है। किसी पात्र के द्वारा वह एक प्रकार की भाषा बुलवाता है, किसी अन्य पात्र के द्वारा अन्य प्रकार की। जहाँ वार्तालापों को अवकाश नहीं होता वहाँ किसी स्थल में लेखक सीधी-साधी भाषा का प्रयोग कर सकता है! किसी अन्य स्थल में उसमें लच्छेदार शैली आ जाती है। यह सब होते हुये भी यह मान लेना चाहिये कि भाषा आदि के विषय में लेखकों के अपने मानस्तर बने हुए होते हैं और उन्हीं के नियमित प्रयोग के द्वारा उन्हें हम उनके नाम के अभाव में भी पहचान लेते हैं। कहने का अर्थ यह कि एक गद्यखण्ड में केवल चमत्कार की दृष्टि से लेखक अपनी भाषा में अधिक परिवर्तन नहीं करता।

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो प्रतीत होगा कि पत्र-विधान वाली शैली ही एक ऐसी प्रणाली है जिसमें भाषा सम्बन्धी सबलता देखने को (और पर्याप्त पुष्कलता में देखने को) मिल सकती है। पत्र शैली में एक ही कहानी अनेक पात्रों के पत्रों के या एक ही पात्र के अनेकों पत्रों के आधार पर बनती है। वे सारे पत्र किसी एक मूल घटना अथवा चरित्र को लेकर चलते हैं। यह स्पष्ट है कि एक पत्र का लेखक अपनी भाषा में दूसरे पत्र के लेखक से अनायास भिन्न हो जायगा। यहाँ तक कि लेखक के लिए यह आवश्यक सा होगा कि वह एक पत्र की भाषा को दूसरे पत्र की भाषा से पूर्ण रूप से नहीं मिलने दे। कभी कभी तो यह भिन्नता बड़ी दुस्साध्य हो जाती है और पत्र शैली असफल हो जाती है। यह बात वहाँ नहीं होती जहाँ कहानी आद्योपान्त एक ही पत्र में सिमटी हुई होती है। किन्तु उस अवस्था में उसमें पत्र विधान की दृष्टि से कई त्रुटियाँ आ जायेंगी जिनका आगे दिग्दर्शन किया जायगा।

आत्मकथा की शैली में लेखक को भाषा सम्बन्धी अत्यन्त कम या किं अकिंचन छूट रहती है। उसके हाथ एक ही बार में उस पात्र या चरित्र से बंध जाते हैं जिसे वह कहानी का वक्ता बताता है। कहानी का वह वक्ता जैसी भाषा का कहानी के प्रारम्भ में प्रयोग करेगा उसी भाषा का निर्वाह वह कहानी के अन्त तक करे ऐसी आशा की जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि एक पात्र भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग नहीं कर सकता किन्तु व्यवहारिक रूप में उस कहानी को जिसके पाठक केवल श्रोता ही माने जाते हैं (आत्मकथा की शैली में यह समझा जाता है कि लेखक का वक्ता कोई बात सुना रहा है।) एक ही बार में कहने की प्रक्रिया में यह स्वाभाविकता सम्भव नहीं कि वह भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करे। किन्तु पात्रों की भिन्न-भिन्न स्थिति के अनुरूप भाषा भेद के लिए यहाँ भी अवकाश है।

डायरी प्रणाली में भी प्रायः यही बात घटती है, केवल इस अन्तर के साथ कि डायरी की तिथियों में अन्तर होने के कारण भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं। फिर भी उस भिन्नता की एक सीमा है।

(२) कथानक—भाषा के समान इस तत्व के प्रयोग में भी लेखक को खूब स्वतन्त्रता है कम से कम ऐतिहासिक कहानियों में। यद्यपि साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि कहानीकार जिन पात्रों की सृष्टि करता है वे लघुवृहत् रूप में कहानीकार के मन में प्रतिनिधि होते हैं, तथापि ऐतिहासिक शैली के प्रयोग के द्वारा लेखक प्रत्यक्षरूपेण कहानी के पात्रों से, जो घटना-नायक होते हैं अधिक से अधिक दूर रह सकता है। यह प्रतीत होने वाली दूरी कहानीकार में किसी भी वस्तु को अधिक स्पष्ट और प्रकट रूप में व्यक्त करने का साहस भर देती है। इस प्रकार कथानक के दृष्टिकोण से लेखक को खूब स्वतन्त्रता मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त कुछ वैधानिक कठिनाइयाँ भी होती हैं जिनके कारण अन्य शैलियों में कथानक सम्बन्धी इतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती। उदाहरणतः आत्मकथा शैली को लीजिए। ऐसी कहानी में वक्ता अपने दैहिक अन्त का दिग्दर्शन कराने में कदापि समर्थ नहीं होगा। किसी कारण से उसके जीवन का अन्त हो जाता है इस बात को किसी भी रीति से वक्ता प्रकट करने में विवश है क्योंकि यदि उसका एक बार अन्त हो जाता है तो वह कहानी कैसे कह रहा है ? यह ऊपर बताया जा चुका है कि कहानी भूतकाल से सम्बन्ध रखती है। वर्तमान काल का लेखक भी अपने इहप्रयाण की घटना हमें नहीं कह सकता।

यही बात डायरी शैली की कहानियों में घटित होती है। पत्र विधान में जबकि कहानी केवल एक ही पत्र में कही हुई होती है, प्राय: ऐसा देखने को नहीं मिलता। यद्यपि यह असम्भव नहीं है। जहाँ पत्र अनेक होते हैं वहाँ निस्सन्देह लेखक को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है कि अमुक पात्र के निर्जीवन को वह किसी अन्य पात्र के पत्र में अनावृत कर सकता है।

यह तो हुई मरने की बात। जीवन की इस सुविस्तृत रङ्गभूमि का मरण तो अन्तिम परिणाम है, उसके मध्य में ऐसी घटनाएँ होती हैं जो पात्रों के जीवन शैलियों को प्राय: प्रभावित करती रहती हैं। ऐसी घटनाओं को लेकर भी ऐतिहासिक शैली की कहानी ही अधिक सफल हो सकती है। यह साधारणतया देखा जाता है कि एक साधारण मनुष्य अपने जीवन के उज्ज्वल पक्ष को व्यक्त करने में अधिक उन्मुख रहता है और कलुषित पक्ष को छिपाने में अधिक सचेष्ट। अन्य पुरुष उसी व्यक्ति के दोनों पक्षों को निष्पक्षता से कह सकता है। एक ओर डायरी, आत्मकथा व पत्र-प्रणाली में और दूसरी ओर ऐतिहासिक प्रणाली में यही अन्तर होता है। ऐतिहासिक प्रणाली की कहानी अपने प्रत्येक पात्र के सु और कु को सम्यक अभिव्यञ्जना दे सकती है जबकि दूसरी कहानियों में यही अभिव्यञ्जना पूर्वाग्रह व व्यक्तिगत लगावों से प्रभावित होकर आती है।

कथानक के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक शैली में अन्य शैलियों से एक और भेद है। पत्र-शैली में लेखक कुछ ऐसी बातों से बँध जाता है जिनसे उसे मूल-कथानक के अतिरिक्त और भी कई बातें लिखनी पड़ती हैं। अन्यथा पत्र की रोचकता या स्वाभाविकता को आघात पहुँचता है। डायरी शैलियों में भी कम-वेशी रूप में यही बात घटित होती है यद्यपि अन्य बातों को लेखक अपनी डायरी शैली की कहानियों में न ले तो इसका समाधान इस बात को लेकर किया जा सकता है कि सम्पूर्ण अंश न लिए जाकर डायरी के कुछ आवश्यक अंशों को ही कहानी के लिए संग्रहीत किया गया है। फिर भी इस प्रकार की शैली उतनी चुस्त नहीं होती जितनी ऐतिहासिक शैली। ऐतिहासिक शैली में लेखक अपने कथानक को चाहे जिस गति से, चाहे जितनी स्वच्छन्दता से घुमा फिरा सकता है। हाँ, आत्मकथा वाली शैली में यह स्वच्छन्दता अवश्य कुछ अंश में विद्यमान रहती है। फिर भी चरित्र की सीमाओं के आधार पर कथानक में भी संकोच का आना स्वाभाविक है। आत्मकथा वाली शैली की कहानी का 'मैं' नामक पात्र अपने और अन्य पात्रों के प्रति किन्हीं विशेष धारणाओं और विश्वासों का वाहक हो यह प्राय: आवश्यक है और उसके दृष्टिकोण की इस संकीर्णता से कथानक पर सीधा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

(३) चरित्र—ऊपर कहा जा चुका है कि ऐतिहासिक शैली में जहाँ चरित्र का विकास बिना किसी गत्यवरोध के और निष्पक्षता से हो सकता है वहाँ अन्य शैलियो में वही सकुचित और एक-पक्षीय हो जाता है। इसी बात को हम यहाँ विस्तार से देखेंगे।

कहानी में प्रायः तीन चार पात्र होते हैं। यह देखा जाता है कि पात्र जितने अधिक होगे, अन्य कई बातो के साथ उन पात्रो की प्रकृति का उद्घाटन भी उतना ही अधिक होगा, ऐसी सम्भावना है। महाशय 'क' किस प्रकार के व्यक्ति हैं इस बात को महाशय 'ख' अपने ढङ्ग से प्रकट करेंगे। महाशय 'ग' अपने ढङ्ग से, महाशय 'घ' भी अपने ढङ्ग से आदि। चरित्र जब तक अतिकृत न हो तब तक उस समूह के विभिन्न मतो में विभिन्नता व विरोध भी हो सकता है। यदि दुर्भाग्य से लेखक भी उन महाशयों में से किसी के साथ मिला हुआ है तब तो समस्या और भी जटिल हो जाती है। यदि लेखक महाशय स्वयं महाशय 'क' हो आत्मकथा शैली की स्वाभाविकता के आग्रह के कारण वे अपने दोषों को छिपाने और गुणों की प्रशंसा करने में तत्पर रहेगे। लेखक महाशय यदि 'ख' महानुभाव से मिले हुए हों और 'ख' थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कहानी के सत् पक्ष के भीरु हों तो उससे यह डर रहता है कि असत् पक्ष की हीनता का उद्घाटन करने में बहुत अधिक बल लगेगा जिससे उसके अतिरंजित होने की आशंका है। दूसरी ओर यदि लेखक महाशय 'ग' से मिले हुए हों जो असत् पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। तो कहानी आजकल के अर्थों में यथार्थ-वादी-प्रगतिवादी (!) होते होते उपहासास्पद हो जायगी। किन्तु मिलने का प्रश्न तो केवल आत्मकथा शैली में ही उठता है। वहाँ भी सदा आवश्यक नहीं है कि आत्मकथा शैली की कहानी का 'मैं' लेखक ही हो। निम्न स्तर के पाठकों को प्रायः यह भ्रम हो जाया करता है कि वह 'मैं' लेखक ही है। यहाँ सीधा प्रश्न तो यही है कि किसी भी पात्र (चरित्र) की ऐतिहासिक शैली को छोड़ कर अन्य शैलियों में विकसित होने का पूरा अवसर निष्पक्षता से कैसे नही मिलता। यह विश्वास किया जाता है कि किसी न किसी पात्र के मुख से तो लेखक बोलता ही है। यह आत्माभिव्यक्ति प्रायः सबसे अधिक सबल पात्र का आश्रय ही लेती है। आत्मकथा वाली शैली की चर्चा ऊपर हो चुकी है। अब डायरी शैली को लें। दुर्भाग्यवश डायरी का 'मैं' आत्मकथा के 'मैं' से अधिक 'अहं' का वाहक होता है। यदि ऐसा न भी हो तो यह निश्चित है कि दोनों के 'मैं' किसी अन्य पात्र को विकास का समान अवसर नहीं देते। कारण स्पष्ट है। डायरी और आत्मकथा की कहानियों में जो कुछ घटनाएँ होती हैं वे

केवल नायक के जीवन के इतस्ततः चक्कर काटती हैं और उसी की सम्यक् अभिव्यञ्जना के लिए नियुक्त होती है। सर्वांश में तो नायक को छोड़ कर कोई पात्र अथवा घटना आदि तो अन्यत्र जाते ही नहीं, अतः विधान का यह आग्रह शेष पात्रों को विकसित होने का उतना अवसर नहीं देता, यह स्पष्ट है।

पत्र शैली को लें। पहली बात तो यह है कि उसका ढाँचा ही ऐसा कठिन होता है कि उसमें कहानी का कोई भी तत्त्व, जिनमें चरित्र भी सम्मिलित है, सफलता के साथ चित्रित हो सके इसके लिए बड़े कौशल की आवश्यकता है। दूसरी बात, जब तक किसी न किसी माध्यम से लेखक कहानी के प्रत्येक चरित्र का सच्चा स्वरूप अपनी ओर से उद्घाटित न करदे प्रत्येक पत्र का लेखक, यह बहुत सम्भव है, प्रत्येक अन्य चरित्र के विषय में अपने-अपने मत दे जिनमें कभी विरोध और कभी साधारण असाम्य होना स्वाभाविक है। यह कठिनाई वहाँ पैदा नहीं होती जहाँ अमुक पात्र का चरित्र एक मानी हुई बात हो कि अमुक प्रकार का है और उसका कोई तथ्यात्मक खण्डन न हो। तीसरी बात जो थोड़े अधिक आकार-प्रकार में पत्र-शैली के अतिरिक्त और भी सभी शैलियों में घटित होती है, वह यह कि पात्र के चरित्र की अभिव्यञ्जना केवल ऐतिहासिक शैली में ही हो सकती है। शेष शैलियों का चरित्र की अभिव्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है; केवल प्रथम, मध्यम व अन्य पुरुष भेद ही से शैली में भेद नहीं हो जाता।

मिश्र शैली को लेकर आगे विचार किया जायगा।

ऐतिहासिक शैली में प्रत्येक पात्र का अस्तित्व अलग-अलग होता है। लेखक दृश्य रूप में किसी भी पात्र के साथ जुड़ा हुआ नहीं होता। उस अवस्था में सबका चरित्र समान रूप से विकसित होने का अवसर प्राप्त करता है। यह लेखक की मर्जी पर है कि वह किस चरित्र को अधिक उद्घाटित करे व किसको कम।

(४) वातावरण—जिस प्रकार भाषा चरित्र एवं कथानक के निर्बन्ध प्रवाह के लिए ऐतिहासिक शैली की कहानी ही सबसे अधिक उपयुक्त होती है उसी प्रकार वातावरण के लिए भी इसी शैली का उपयोग वाञ्छनीय होता है। लेखक को अपनी कहानी में देशकाल सम्बन्धी एक रूपरेखा पाठक के मस्तिष्क में बैठानी पड़ती है। यह रूपरेखा अनेक स्वरूपों में प्रकट होती है। उदाहरणार्थ प्रकृति वर्णन को लीजिए। किसी स्थान विशेष की प्रकृति का चित्रण करने में लेखक तभी सफल हो सकता है जबकि वह एक इतिहासकार की लेखनी लेकर बैठ जाय अर्थात् जब वह एक दर्शक की भाँति प्रकृति को देखकर उसका वर्णन करे। यह होते ही वह ऐतिहासिक शैली में प्रकृति-चित्रण या तो थोपा हुआ

लगता है क्योंकि उन सब शैलियों का प्रधान व्यवसाय कहानी की वस्तु और विचार-धारा में निहित रहता है, और या जहाँ ऐसा प्रकृति चित्रण होता है वहाँ कुछ देर के लिए कहानी ऐतिहासिक शैली को धारण कर लेती है। यही ऐतिहासिक शैली की सर्वव्याप्ति का प्रमाण है। अच्छे-अच्छे प्रकृति-चित्रण ऐतिहासिक शैला की हा कहानियो में इसी कारण देखने को मिलते हैं कि लेखक को इस शैली में कुछ देर प्रकृति को चार गज दूर से देखने का अवसर रहता है और वह उसके रस मे रमण करने का आज्ञापत्र लिये रहता है क्योकि वह पाठक की पकड़ में कभा नही आता शेष शैलियो में पाठक तत्काल ही लेखक की इस स्वच्छन्द मनोवृत्ति पर ताला लगाने को उद्यत रहता है और दो-तीन पंक्तियो पर हा पूछ बैठता है आखिर आप कहना क्या चाहत है ? इस दृष्टि से ऐतिहासिक शैलो यदि एक रमणाय उपवन है जहाँ आपको स्वैर रमण को यथेष्ट सुविधा है तो शेष शैलयाँ वनस्पति शास्त्र के छात्रो के लिए तैयार की गई प्रयोग वाटिकाएँ जहाँ आपका दृष्टिकाण साकुश और कार्य-क्षेत्र सामित रहता है।

वातावरण की दृष्टि स ऐतिहासिक शैला को छोड़कर अन्य शैली को कहानिया के हाथ एक और बात से बंधे हुए रहते हैं। थाड़ी देर के लिए १४ वी सदा के किसा समय को कोई कहाना ले लीजिये। इस प्रकार की कहानी को लिखते समय देखना पड़ेगा कि अमुक शैली तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाक्रम रीति रिवाज और सभ्यताओ आदि से मेल खाती है या नही। जैसे कि डायरी लिखना हमारे यहाँ बहुत बाद में आया है। डायरी शैली का किसी कहानी में प्रयोग तभी सगत होगा जब कि कहानी जिस समय का वातावरण हमारे सम्मुख रखती है उस समय में डायरी लिखना एक प्रचलित या ज्ञात प्रथा थी। इसी प्रकार पत्रो की बात है। पत्र भी उसी समय के अनुकूल होने चाहिए। इसका कारण यह है कि इन शैलियो की कहानियाँ पात्रो के एव कहानी के काल विशेष के हमें अत्यन्त समीप ला देती हैं। और साथ ही माँग पूरा न करने पर अनौचित्य दोष लगता है।

आत्मकथा-शैली में भी प्रायः यही कठिनाई सामने आती है। वातावरण की रक्षा कहानो की व उसके पात्रो की भाषा व आहार-व्यवहारादि करते हैं। अतः जब देशकाल के अनुरूप भाषा व रीति-रस्मो का प्रयोग दर्शाया नही जा सकता तब तक वातावरण का निर्माण नही होगा और कहानी के एक बड़े तत्व की हत्या हो जायगी। अनुकुल वातावरण बनाने की सुविधा ऐतिहासिक शैली की कहानियों में ही अधिक होता है। उनकी भाषा आदि पर लेखक का सहज नियन्त्रण होता है। इसका अर्थ यह नही कि ऐतिहासिक शैली मात्र ही

कहानी के वातावरण का उचित और प्रभावशाली रीति से अङ्कित करने की अधिकारिणी है। ऐसी बहुत कहानियाँ देखी जाती हैं ऐतिहासिक शैली में जिनमें देशकाल सम्बन्धी भारी व्यतिक्रम पाये जाते हैं। यहाँ केवल यह संकेत करने का प्रश्न था कि अन्य शैलियों की तुलना में ऐतिहासिक शैली वातावरण रक्षा और निर्वाह की दृष्टि से कहाँ तक अधिक सफल होती है।

(५) लेखक का अपना दृष्टिकोण—इस बात पर विचार करें तब भी ऐतिहासिक शैली की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होती है। यह बात है भी महत्वपूर्ण। ऊपर हमने इसे विचारो के अन्तर्गत गिनाया है। यो तो कहानी मात्र स्वयं लेखक ही की उपज होती है और उसमें व्यक्त किए गए विचारों आदि के लिए वह प्राय: सम्पूर्णतः उत्तरदायी होता है तथापि कभी कभी लेखक ऐसे पात्रों एवं ऐसी घटनाओं आदि की सृष्टि करता है जिनके प्रति उसका अपना दृष्टिकोण उपेक्षा घृणा आदि हीन भावों से बनता है तथा जिनके साथ लेखक अपना तादात्म्य स्थापित करने की इच्छा नही रखता। उन भावों को अभिव्यक्ति कैसे हो? डायरी-शैली में, पत्र शैली में और आत्मकथा शैली में पात्रों का अपना अलग अस्तित्व होता है। आत्मकथा में कभी-कभी लेखक किसी पात्र (प्राय: नाटक) के व्यक्तित्व के साथ अपना व्यक्तित्व विलीन कर देता है, अन्यथा उसमें भी लेखक सामने नही आता। परिणाम यह होता है कि लेखक को अपने वचारों की अभिव्यक्ति के लिए किसी न किसी पात्र का आश्रय लेना पड़ता है। पाठक के लिए इसमें कभी-कभी गलतफहमी होने की सम्भावना रहती है। लेखक किस पात्र के मुँह से बोल रहा है, यदि लेखक आवश्यकता से अधिक सूक्ष्म हो जाय तो इसे समझने में कठिनाई अथवा गलती हो सकती है। ऐतिहासिक शैली में ऐसी कोई दुविधा नहीं है। पात्रों के परस्पर आलाप-संलाप के अतिरिक्त लेखक को अपनी ओर से कुछ भी कहने का यथेष्ट क्षेत्र रहता है जिसमें वह किसी पात्र की गतिविधि पर शङ्का-समाधान कर सकता है, किसी परिस्थिति पर अपना मत व्यक्त कर सकता है और इस प्रकार तथा अन्य अनेक मार्गों द्वारा पाठक के दृष्टिकोण को सन्तुलित रखने का अवसर लिए रहता है। लेखक यदि उसकी अपनी रुचि की सृष्टि उपस्थित करे तो उसे बड़ा सन्तोष होता है।

/ (ख) डायरी शैली—दैनन्दिनी के पृष्ठों में कभी-कभी अत्यन्त महत्वपूर्ण अथवा रोचक घटनाएँ अङ्कित हो जाया करती हैं। इसी तथ्य का आधार लेकर कहानी लिखने के लिए इस शैली का प्रयोग प्रचलित हुआ है। काल्पनिक डायरी के अंशों का सृजन करके उनमें कथानक, चरित्र आदि कहानी के तत्वों को जमा दिया जाता है। पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हम डायरी पढ़ रहे हैं।

बीच-बीच में कथानक आदि की उद्घोषणा उसे रोचक बना देती है और जब तक हम काल्पनिक डायरी के उन चार-पाँच पृष्ठों को समाप्त करते हैं तब तक हमारे मस्तिष्क में कहानी को सारी बातें बैठ जाती है। इसी प्रकार की कहानियाँ डायरी शैली की कहानियाँ कही जाती हैं। इनका एक उदाहरण यह है—

—१३ जून, चढ़ता सूरज।

पृष्ठ खुलता है। एक अजीब सी गुर्राहट। क्या वह मेरी ही ओर ताक रहा है?

हाँ स्त्रियों ने डायरी लिखना कब से शुरू किया?

ठीक है, वह मेरी ही ओर देख रहा है।

मै ठिठक जाती हूँ। अरे उसने तो घूरना शुरू कर दिया।

कोई बात नहीं। पड़ौसियों को सभी कुछ क्षम्य है। किन्तु क्या उत्पात भी? उपद्रव भी? अ……नी……ति……भी?

शायद। शायद नहीं। यह अनीति नहीं है।

कौन कहता है कि मैं गोरी हूँ। हो भी नहीं सकती। क्या मुझमें गुणों का आकर्षण है?

हाय! एक अजीब सा दर्द। टीस। मेरी पीठ का घाव खुल पड़ता है। कल रात···! रात कितनी भयानक होती है। उन्होंने मुझे पीटा था। न जाने किस अपराध में? क्या इसलिए कि मै कुरूप हूँ? क्या इसलिए कि मैं उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकती? क्या इसलिए कि मैं उनको चाबुक नहीं दिखा सकती। शायद।

शायद इसलिए कि मैं छत पर चढ़कर आँखें…………

छिः! कैसी हीन भावना। ओह अपराध! उनके प्रति कुछ कहना भी अपराध। सोचना भी, सोचने का साहस करना भी।"

उद्धृत अंश कहानी का प्रारम्भिक अंश है।

इस प्रकार डायरी-कथा आगे बढ़ती है। देखिए इसके इतने अंश से कितनी बातें समझ में आती हैं और कहानी के कितने तत्व प्रस्फुटित होते हैं।

(१) पात्र और चरित्र—पहला पात्र स्त्री-पात्र है, डायरी लेखिका। दूसरा पात्र एक ऐसा व्यक्ति है जो नायिका को घूरकर देखता है। तीसरा पात्र नायिका का पति है, 'उन्होंने' शब्द से इसका आभास होता है। नायिका डायरी लिखती है यह इस बात का प्रमाण है कि वह पढ़ी-लिखी है, उसके शिक्षा-सस्कारों का परिचय अन्यथा भी, डायरी की पंक्तियों से मिलता है। एक विशेष परिस्थिति को लेकर उसके हृदय में उथल-पुथल होती हुई प्रतीत होती है। वह

वर्तमान के प्रति असहिष्णु है और उससे विद्रोह करना चाहती है। घूरने वाले व्यक्ति (रामदास उसका नाम है) के प्रति वह उदासीन जान पड़ती है। किन्तु ऐसा भी लगता है कि वह इस परिस्थिति की परीक्षा करने में संलग्न है। क्या उसको कोई व्यक्ति घूर कर देखे, यह अनीति है ? एक नैतिक प्रश्न है उसके सामने। वह इस प्रश्न की तह में जाना चाहती है। इसका क्या कारण है ? अपने पति के व्यवहार से वह सन्तुष्ट नहीं है। वह उसे पीटता है। किन्तु क्यों ? इस पर वह खूब विचार करती है। फिर एक व्यंग मारकर रह जाती है जिससे समाज के प्रति उसके दृष्टिकोण का अनुमान लगाया जा सकता है। डायरी की पंक्तियों में थोड़े-थोड़े अन्तर पर विषयान्तर हो जाता है, यह इस बात का प्रमाण है कि नायिका के चित्त में स्थैर्य नहीं है, वह उद्विग्न है। रामदास और नायिका के पति का चरित्र इन पंक्तियों में विशेष प्रस्फुटित नहीं हो पाया है। वह डायरी के आगे की पंक्तियों में है—कहानी का एक गुण।

(२) कथानक—उद्धृत अंश से कथानक की दो मोटी-मोटी बातें ज्ञात होती हैं। एक तो रामदास नायिका का पड़ोसी है और उससे कुछ विशेष प्रकार का सम्बन्ध रखता है अथवा स्थापित करने की चेष्टा में है। जहाँ तक अनुमान लगाया जा सकता है यह सम्बन्ध अवैध और अनुचित है। दूसरे नायिका का पति उसे अर्थात् नायिका को कई बार बुरी तरह से पीटा करता है। इसके कितने ही कारण कहे गए हैं।

(३) वार्तालाप—उद्धृत अंश तक कथोपकथन का प्रयोग इस गल्प में नहीं हो पाया है, वैसे भी डायरी शैलियों में वार्तालाप विरल ही होते हैं।

(४) वातावरण—इसका सबसे पहला परिचय डायरी पर दी हुई तारीख से लगता है। १३ जून की तिथि से मालूम पड़ता है कि गर्मियों के दिन हैं। फिर 'चढ़ता सूरज' कह कर परिस्थिति की विकटता का प्रदर्शन कराया गया है। इस संकेत का सम्बन्ध कथानक से है। तेज गर्मियों के मध्याह्न में छुपे हुए छतों पर जाकर असम्बन्धित स्त्री पुरुषों का परस्पर वार्तालाप आदि करना अवश्य ही कोई विशेष अर्थ रखता है यह इस बात का प्रमाण है। डायरी की लेखिका रामदास और अपने पति के प्रति पाठक के हृदय में गिरे हुए विचार वपन करने में सहायक होती है। अपने आपको भाषा जाल की दुरूहता के द्वारा इस दोष से अवश्य ही मुक्त रखने की चेष्टा करती है, यह लगता है। समाज के एक निरभिनन्दनीय रूप की ओर संकेत करना भी कहानी लेखक को इष्ट है।

(५) उद्देश्य—इसका ज्ञान कहानी के सर्वांश को पढ़कर ही किया जा सकता है। किन्तु प्रारम्भिक अंश से ज्ञात होता है कि कहानी में अवश्य ही किसी विचार क्रान्ति का बीज है।

ऊपर जिस कहानी का उदाहरण दिया गया वह सर्वांग में डायरी शैली के अनुकूल नहीं कही जा सकती। कुछ आख्यायिकाएँ ऐसी होती हैं जिनमें डायरी के अंश इधर उधर से बहुत थोडी-थोडी मात्रा में दिए हुए होते हैं। पत्र कहानियों की भाँति ऐसी कहानियों में भी कुछ ऐसी बातें अनिवार्य रूप में प्रवेश कर जाती हैं जिनसे डायरी में स्वाभाविकता तो आ जाती है किन्तु जिन का कहानी के प्रभाव से सीधा या तिरछा कोई सम्बन्ध नहीं होता। समष्टि में कहानी के लिये वे दोष रूप सिद्ध हो जाते हैं और इसका दायित्व उसकी शैली पर होता है।

डायरी शैली में एक जबर्दस्त दोष और पाया जाता है। यह बात तो सर्वसम्मत है कि डायरी का प्रत्येक अंश जो एक बार में लिखा जाता है उस समस्त काल खण्ड का जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है संक्षिप्त इतिहास होता है। इसके साथ ही लेखक की स्वयं की टीका-टिप्पणी, उसके उन घटनाओं के प्रति बनने वाले या बने हुए विचार आदि का समावेश दैनन्दिनी के कुछ अंश में होता है। ९० प्रतिशत अंश में यह सही है जिस डायरी का आधार स्वरूप इकाई लेखक का समग्र जीवन है उसकी तुलना में उस सीमित काल खण्ड को लेखक इतनी प्रधानता नहीं देता कि उसमें कितनी ही ऐसी चमत्कार बोधक भावातिरेक-व्यञ्जक अथवा अन्तिम तथ्य-निरूपिणी बातें मिल जायें जिनसे कहानी का पूरा ढाँचा तैयार हो सके। (वास्तविक बात तो यह है कि डायरी लिखने वाला कहानी लिखने के लिए डायरी नहीं लिखता है) अतः डायरी से कहानी के तत्वों के सम्पूर्ण चयन के लिए यह आवश्यक सा है कि डायरी के विभिन्न अंशों के उद्धरणों को इस प्रणाली से लिया जाय कि घटना की सर्वाङ्गीण एकता, चरित्रों की समीचीन उद्भावना, वातावरण का अनुकूल निर्माण और अन्ततः एक समष्टिगत प्रभाव की सामग्री एकत्रित हो सके। इसके लिए कहानी का आवश्यकता से अधिक लम्बा होना अपरिहार्य हो जायगा। दूसरी ओर डायरी की स्वाभाविकता पर आघात होगा।

ऐतिहासिक शैली में जहाँ लेखक अपने क्षेत्र का स्वयं नियन्ता होता है, डायरी और पत्र शैली में उसके हाथ किसी अदृश्य एवं उससे अधिक बलवती शक्ति के द्वारा बँध जाते हैं और ऐसा लगता है कि लेखक अपनी कहानी के लिए

भीख मांग रहा हो । ऐतिहासिक शैली में लेखक जो चाहेगा, जहाँ चाहेगा, कितना चाहेगा, उसे वहाँ उतनी ही मात्रा में रखेगा । उसे न तो अपनी कहानी के प्रारम्भ में आपका पत्र अबकी बार बड़ो विलम्ब से आया, आशा है आप कुशल पूर्वक तो होंगे, ऐसे निरर्थक एवं कहानी के प्रभाव मे कोई सम्बन्ध न रखने वाले पत्र-वाक्य लिखने पड़ते हैं और न "आज प्रातः काल ही से सुस्ती सी आ रही है, मस्तिष्क भारी हो रहा है" वाले डायरी के वाक्य, जिनसे कहानी में भी सुस्ती आ जाती है और पाठक का मस्तिष्क सचमुच भारी हो जाता है । कम्प्रैशन अर्थात् निग्रह का डायरी शैली में बड़ा दुर्बल स्थान है ।

डायरी लिखने का शौक यदि एक अलग महत्व रखता है तो डायरी पढ़ने का शौक उससे अधिक व्यापी महत्वपूर्ण और सापेक्षतः कम व्यक्ति सापेक्ष होता है । इसका कारण यही है कि साहित्य में आत्मकथा से भी अधिक डायरी में लेखक की अपनी निश्छल अभिव्यक्ति का अवसर रहता है । यही आत्मीयता पाठक के हृदय में लेखक के अत्यन्त समीप आने का आग्रह करती है और फलतः उसमें पाठक की रुचि सहज ही में घर कर लेती है । यह रुचि कभी-कभी इतनी तीव्र और अपरिहार्य होती है कि डायरी में कूडा-करकट भरा हो तो भी पाठक को उसका अनुशीलन करना प्रिय होता है । यह केवल शैली के कारण है ।

पाठक की दृष्टि से डायरी और डायरी-कहानी दोनों में अन्तर नहीं होता । कल्पना का पुट डायरी-कहानी को और भी अधिक स्पृहणीय बना देता है । डायरी के अरोचक स्थल डायरी की कहानी में आसानी से कुछ कम किये जा सकते हैं सम्पूर्ण फलस्वरूप डायरी कहानी का जो ढांचा शेष रह जाता है वह पाठक के लिए अच्छा मनोरञ्जन-कारी सिद्ध होता है ।

किन्तु अनेक कारणों से जिनमें से कुछ पर विचार किया जा चुका है डायरी कहानी लिखना एक अत्यन्त दुसाध्य काम है । मांग और पूर्ति का यह असाधारण अन्तर डायरी कहानी के 'बाजार भाव' को सहज ही में ऊपर उठा लेता है ।

वस्तु (मैटर) की दृष्टि से डायरी कहानियों का क्षेत्र सीमित है । उदाहरणार्थ ऐतिहासिक कहानियों को डायरी शैली में लिखना समय के प्रतिकूल ही नहीं पड़ता कहानी के गम्भीर वातावरण पर भी सीधा आघात पहुँचाता है । डायरी शैली में जो कहानियाँ लिखी भी गई हैं या लिखी जायेंगी वे प्रधानतया सामाजिक वस्तु में, जिनमें आधुनिकता के बीज अधिक प्रत्यक्ष रहेंगे, प्रकट होंगी । उससे उनके पात्रों पर भी सीधा प्रभाव पड़ेगा । कम से कम एक पात्र तो प्रत्येक ऐसी कहानी में होगा ही जो डायरी लिखने का शौक रखता हो

अर्थात् जो पढ़े-लिखे संभ्रान्त स्तर का हो।

डायरी शैली की कहानी, आत्म-कथा और पत्र-कहानियों से कितनी भिन्न होती है इस पर विचार करना सैद्धान्तिक दृष्टि से यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

मूलतः तो सब कहानियों का उद्देश्य एक निश्चित लक्ष्य की ओर जाने वाली संवेदना की जागृति करना होता है किन्तु शैली-भेद से कहानी से रूप-विधान में अन्तर आ जाता है। डायरी में अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ (जिन्हें घटना के अंश कहना चाहिये) सम्बद्ध या असम्बद्ध रूप में एकत्रित रहती है। उसमें समय की एक निश्चित इकाई—प्रायः एक दिन—आधार रहती है यद्यपि कहानी की डायरी में ऐसी छोटी-छोटी घटनाओ के शृङ्खला-भाव को कोई अव-काश नही रहता फिर भी उनकी विविधता तथा अनेकता के प्रति कोई अवरोध नहीं है। आत्म-कथा, जैसा कि उसके नाम से ज्ञात होता है, स्वयं एक कथा है जो अपने में सम्पूर्ण है। काल-खण्डों से अबाधित किन्तु उनके कम से अनुशासित उसका प्रवाह एक तरङ्गिणी की भाँति होता है जिसमें यद्यपि अवस्थाएँ होती हैं किन्तु विराम-स्थल नहीं। कहानी का आकार-प्रकार लेने पर आत्म-कथा का कलेवर छोटा अवश्य हो जाता है किन्तु उसके मूल स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। डायरी में कहानी के घटना-तत्त्व का स्रोत अनेक काल-खण्डों से लिया हुआ होता है उन्हें एक ढाँचे में ढाल दिया जाता है।

पत्र-शैली की व्यवस्था दोनों से भिन्न है। उसमें एक पत्र में भिन्न-भिन्न पत्रों के द्वारा घटना में प्रभाव की एकता लाने की चेष्टा की जाती है अर्थात् कालखण्डों में तो कहानी यों ही बंटी रहती है किन्तु उन कालखण्डों को प्रधा-नता नहीं दी जाती। डायरी कहानी और आत्मकथा में लेखक सीधा पाठकों को संबोधित करता है (ऐसा बहुत कम होता है कि इस नियम का उल्लंघन हो) जब कि पत्र-शैली में एक पात्र दूसरे पात्र को सम्बोधित करता है। इस प्रकार की स्थिति से कहानी के प्रवाह में जो कुछ बाधा, स्वतंत्रता अथवा विशेषता आ जाती है वह पत्र-शैली में होती है। साधारणतया पत्र शैली की कहानियों का विकास जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है दूसरी शैलियों की तुलना में रुका हुआ रहता है। जहाँ पत्र-शैली एक ही पत्र का प्रयोग करती है वहाँ कहानी बहुत कुछ आत्मकथा से जा लगती है। किन्तु परस्पर सम्बोधन की स्थिति उसमें भी रहती है।

तीनों में जिस बात की समानता होती है वह यह है कि उनमें किसी रूप में 'मैं' नाम का एक पात्र होता है।

हिन्दी में डायरी शैली का कहानियों का प्रचार बहुत कम, किंच नगण्य है।

(ग) पत्र शैली—सापेक्षतः अप्रचलित किन्तु विधान की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण, कहानी लिखने की यह एक और शैली है। इस प्रकार की कहानी का कुल ढांचा पत्रों अर्थात् चिट्ठियों से बनता है। कहानी के समस्त तत्व या तो एक ही पत्र में सिमटे हुए होते हैं या कई पत्रो में अभिव्यक्त होते है। पत्रों के लेखक अर्थात् प्रेषक तो इनके पात्र होते ही है, जिन व्यक्तियों का उल्लेख पत्र के कलवर में होता है वे व्यक्ति भी अवस्थानुसार कहानी के कम या अधिक महत्वपूर्ण पात्र गिन जाते है। इस शैली की कहानी के पत्रो की यह विशेषता होती है कि उनमें से प्रत्येक मे एक न एक सुव्यवस्थित घटना के बीज होते हैं जिसका सञ्चालन शेष कहानियों की भाँति एक चरित्र वर्ग किया करता है। घटना-अभाव की स्थिति मे किसी पात्र के चरित्र के एक बहुत महत्वपूर्ण अंग का उद्घाटन करना इनका उद्देश्य होता है। कहानी के किसी अन्य एक ही तत्व के लिए एक पूरा पत्र प्रायः नही लिखा जाता। ये पत्र केवल पत्र-लेखक और पत्र-प्राप्त की कुशलता का सवाहन नही करते अपितु पात्रों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली किसी कथा आदि के उद्घाटन के द्वारा पाठक के हृदय में एक सम्पूर्ण एवं संश्लिष्ट संवेदना जागृत करके समाप्त हो जाते हैं। इस शैली की दृष्टि से निकृष्ट कहानियाँ वे होती है जिनमें पत्रो का उपयोग केवल नाम-मात्र के लिए ही होता है, केवल स्थान व तिथि-निर्देश करके तथा सम्बोधन की रस्म अदा करके या तो एक इतिवृत्तात्मक विवरण खोल दिया जाता है या आत्मकथा का आलाप प्रारम्भ कर दिया जाता है तथा अन्त मे 'पत्रोत्तर की प्रतीक्षा मे, आपका' आदि निरर्थक पद जोड़ दिये जाते है। इसी शैली की अच्छी कहानियाँ वे होती है जिनमे एक ओर पत्रो की पत्रात्मकता का अर्थात् पत्र की आत्मा व उसके कलवर का सम्पूर्ण निर्वाह किया जाता है और दूसरी ओर कहानी के किसी भी तत्व को आघात नही पहुंचता। इस प्रकार की नियो-जना असम्भव नही है जैसा कि इस विवेचन से संदेह हो सकता है।

यद्यपि पत्रों द्वारा अपनी भावनाओं तथा अपने विचारो-समाचारों का विज्ञापन करना मनुष्य की भाषा द्वारा आत्माभिव्यक्ति के साथ ही उद्भूत होने वाला व्यवसाय है, फिर भी आधुनिक कहानी ने, जिसका स्वयं का जीवन कुछ ही दशाब्दियों का है। इनके द्वारा मानसिक संवेदना जागृत करना अभी अभी सीखा है। सच बात तो यह है कि अभी तक इस उद्देश्य में उसे सफलता मिली ही नहीं। इसमें प्रयोग भी बहुत कम हुए हैं।

यह बात तो प्रायः सर्वमान्य ही है कि कहानी में एक ही प्रकार के दो या अधिक पात्रों के लिए अवकाश नही होता। चरित्रों की यह विभिन्निता कहानी में, विशेषतः पत्र-कहानी में, एक विशेषता ला देती है। एक पत्र-लेखक अर्थात् कहानी का एक पत्र-प्राप्ता अर्थात् कहानी के दूसरे पात्र के सम्मुख, उस अवस्था तक अपनी बात ईमानदारी से नही करता जब तक कि दोनों के मध्य कोई ऐसी घनिष्ठता न हो जिससे कि दोनो के चरित्रों में कोई समानता का आभास होता हो। किन्तु चूँकि कहानी के सीमित क्षेत्र मे इस चारित्रिक ऐक्य को बहुत कम स्थान होता है अतः यह आवश्यक हो जाता है कि एक पात्र दूसरे पात्र के सम्मुख इस तरीके से आता है कि कथानक का प्रवाह पंकिल हो कर अवरुद्ध एवं दूषित हो जाता है। इसका एक ही प्रतिपक्ष है। वह यह कि उक्त अवस्था से किसी दूसरा अवस्था मे किन्ही ऐसे पात्रों की सृष्टि करनी पड़ती है जो कहानी के लिए अतिरिक्त एव अत्यन्त दुर्बल हो। उनका विकास ठीक-ठीक न हो तभी लेखक की सफलता प्रकाश मे आती है।

पत्र शैली की कुछ सीमाओं तथा कुछ बन्धनो का उल्लेख ऊपर हो चुका है जबकि हमने अन्य शैलियो के साथ उसकी तुलना की। इसका एक अपरिहार्य दोष और होता है कि इसका कलेवर दूसरी कहानियो की अपेक्षा अनिवार्यतः अधिक विशाल होता है। इसका कारण यह है कि जब तक कोई पत्र पूरा व्यवसायात्मक न हो तब तक इसके लेखक के हाथ सरलता से नहीं बाँधे जा सकते। जहाँ केवल पत्रो द्वारा ही चरित्रों घटनाओं एवं परिस्थितियों का दिग्द-दर्शन कराया जाता है वहाँ तो लेखक को अपनी भावनाओं का प्रकट करने का पर्याप्त अवसर रहता है। इन्ही भावनाओं में बहकर लेखक प्रायः अपना संयम खा देता है क्योंकि जहाँ बन्धन है वहाँ सुख नही है। पत्र का कुछ भाग पत्र की औपचारिकताएँ भी ले लेती हैं।

इस शैली की कहानियों को लिखते समय लेखक को एक और आवश्यक बात पर ध्यान रखना पड़ता है। वह है पत्रों की तिथि के सम्बन्ध में। परस्पर स्थान की दूरी को देखते हुए एक पत्र और दूसरे पत्र की तिथियों में जो अन्तर हो वह सम्पूर्णतया युक्तिसगत होना चाहिए। बचाव उसी अवस्था में रहता है जबकि यह अन्तर अधिक से अधिक हो। किन्तु साथ में यह भी देख लेना चाहिए कि इस अन्तर के कारण कहानी की किसी संवेदना में धक्का न लगे। बहुत सम्भव है कि अधिक समय बीत जाने पर एक पत्र की कथा का महत्व उसका अन्तर आने तक बहुत कम हो जाय। ऐसा भी हो सकता है कि उसका महत्व अधिक काल यापन से वृद्धिगत हो जाय। किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम

आते हैं। तात्पर्य यह कि इस सम्बन्ध में बड़े कौशल एवं सावधानी से काम लेना चाहिए।

डायरी-कहानियों की भाँति ही पत्र-कहानियाँ ऐतिहासिक आदि जैसी वस्तु से नहीं बनतीं। उनमें प्रायः नवीन वातावरण का आधार और सम्भ्रान्त से पात्रों की स्थिति का होना आवश्यक है। पशु-पक्षियों, भूत-प्रेतों आदि मानवेतर प्राणियों अथवा शक्तियों का क्षेत्र भी ऐसी कहानियों के बाहर है।

यह कहना भी कदाचित भयशून्य है कि कथोपकथन तत्व का स्वतन्त्र विकास भी पत्र-कहानी में रुक जाता है।

जहाँ कहानी भर में एक ही पत्र से काम चलाया जाता है वहाँ भाषा-सम्बन्धी वैविध्य का अभाव मुख्य रूप से, तथा बहुत कुछ आत्मकथा शैली के साथ उसकी भ्रान्ति हो जाने का भय गौण रूप से खटकता है। किन्तु एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति को निकटता से सम्बोधित करने में जो आत्मीयता होती है, जो कि आत्म-कथा शैली में नहीं पायी जाती, इस शैली मे जीवित रहती है।

सम्पूर्ण पत्र-शैली की कहानियाँ उन कहानियों से कुछ भिन्न होती है जिनमें पत्रों का उपयोग कहानी के बीच में कहीं-कही या एकाध स्थान पर किया जाता है। ऐसी कहानियाँ पत्र-शैली को छोड़ कर अन्य किन्हीं भी शैली में लिखी जा सकती है। किन्तु प्रधानतया ऐसी कहानियाँ ऐतिहासिक शैली की होती है। इनका प्रचार शुद्ध पत्र-शैली की कहानियों की अपेक्षा अधिक होता है। इसका कारण एक वैधानिक दुविधा है। दो या अधिक पात्र यदि देश-भेद के कारण अथवा और किसी कारण परस्पर मिल नहीं सकते, और उनके विचारों अथवा समाचारों का आदान-प्रदान कहानी की किसी गुत्थी को सुलझाने में समर्थ होता है, अथवा किसी घटना या चरित्र के सम्बन्ध में कोई आवश्यक उद्घोषणा करने की शक्ति रखता हो, वहाँ किसी भी अन्य शैली में पत्रों का प्रयोग हो सकता है। ऐसे पत्र कहानी के मार्मिक स्थलों पर, विशेषतः चरमावस्था के समय, प्रयुक्त होने पर कहानी के चमत्कारात्मक सौन्दर्य को अनायास ऊपर उठा लेते हैं। शेष शैली की कहानियाँ भी अपने संक्रान्ति-काल में पत्र-शैली की मुहताज होती हैं। यह पत्र शैली के महत्व का उज्ज्वल प्रमाण है! इसके साथ ही ऐसे समयों पर पत्र-शैली का दुरुपयोग भी होता देखा गया है। विशेष कर नौसिखिया कलाकार ऐसा करते है। जहाँ कहीं वे स्थिति को काबू से बाहर होता देख लेते है, वहीं किसी न किसी पात्र-कुपात्र के नाम किसी न किसी के द्वारा एक सुन्दर सा पत्र लिखवा देते हैं और मामला यों सुलझ जाता है जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। ऐसे समय आलोचक एक सरल से माप-

दण्ड के प्रयोग के द्वारा यह जाँच सकता है कि पात्र-शैली का इस मध्यान्तर में किया गया उपयोग समीचीन ही नहीं आवश्यक भी है या नहीं। वह कुछ देर के लिए ऐसी कल्पना करता है कि जिस स्थान पर पत्रशैली आई है वह स्थल पत्र-शैली से शून्य है और पत्र की क्रांतिकारी घटनाओं आदि को किसी और माध्यम से प्रकट करने का प्रयास करता है। यदि कहानी के मूल प्रभाव पर आघात पहुँचे बिना ऐसा सम्भव होता है तब तो वह यह कह सकता है कि पत्र-शैली का प्रयोग अनधिकृत है, अन्यथा इसकी वास्तविकता एवं उपादेयता वैसे प्रमाणित हो जाती है।

(घ) आत्म-कथा शैली—जिस प्रकार डायरी के अंशो से कहानी का ढाँचा उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार आत्मकथा के अंशों से। किन्हीं व्यक्तियों की आत्मकथाओं में कुछ ऐसी जीवन स्पर्शिनी मार्मिक घटनाएँ पाई जाती हैं जो कहानी का आधार निर्भयता से बन सकती हैं। इसी प्रकार की घटनाओं को लेकर उन्हें आत्मकथा के ढाँचे में फिट करके कहानियाँ तैयार की जाती हैं। इन कहानियों के किसी एक पात्र को लेखक 'मैं' का नाम देता है जिसका सर्वदा यह अर्थ नहीं होता कि उसमें लेखक का व्यक्तित्व निहित है। कभी यह पात्र कहानी का नायक, कभी कहानी का महत्वपूर्ण अथवा गौण कोई और पात्र होता है किन्तु अनिवार्यतः कहानी की सारी वस्तु को उसी पात्र से जुडकर चलना पडता है। जिन अवस्थाओं में यह पात्र केवल मूक तटस्थ एवं असम्पृक्त प्रेक्षक के रूप में ही रहता है क्योंकि वह पात्र तो केवल एकाध समय पर ही बाहर आता है और सारी कहानी ऐतिहासिक शैली में चलती रहती है।

पाठकों को स्मरण होगा कि काव्यादर्श में महाकवि दण्डी ने आख्या-यिका के जो लक्षण बताये है उनमें एक यह भी है कि वह स्वयं नायक द्वारा कही गई होनी चाहिए। आत्म-कथा शैली की कहानियाँ अधिकांशतः वैसी ही होती हैं, केवल इस अन्तर के साथ कि सब में वक्ता नायक हो हो यह आवश्यक नहीं है। दण्डी द्वारा लक्षित आख्यायिका के उदाहरण में काव्यादर्श के टीका-कार ने कादम्बरी गद्य के महाश्वेता प्रसङ्ग में नायक चन्द्रापीड के आत्मवृत्त को गिनाया है। (यहाँ पर यह शंका करना अप्रासांगिक है कि कादम्बरी गद्य भर में से एक प्रसङ्ग के एक अंश मात्र को आख्यायिका कैसे कहा जा सकता है जबकि आख्यायिका का किसी अन्य साहित्य से पूर्वापर सम्बन्ध नहीं रहता।)

'मैं' नामक पात्र की स्थिति को ध्यान में रखते हुए आत्मकथा शैली की कहानी में तीन वर्ग हो सकते हैं—

(५) कहानी की समस्याओं पर लेखक के व्यक्तिगत विचार जानने की कठिनाई।

(६) घटनाक्रम प्रायः शिथिल और कलेवर विस्तृत हो जाता है।

गुण—(१) कहानी के वातावरण से पाठक आत्मीयता सहज में ही स्थापित कर लेता है।

(२) कथानक सम्बन्धी दुरूहता तथा क्लिष्टता का समावेश नहीं हो पाता।

(३) उस अवस्था में जब कि कहानी अनेक पात्रों द्वारा कहलाई जाती है। कथानक को विविध दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं तथा इनसे एक रोचकता का निर्माण होता है।

(४) कुछ विशेष प्रकार की रूपक-शैली की कहानियों में जिनमें किसी पात्र का कोई प्रचलित नाम आदि नहीं रक्खा जा सकता वहाँ 'मैं' नामक पात्र इस कठिनाई का उद्धार कर लेता है।

(५) निर्माण-संख्या की दृष्टि से आत्मकथा शैली की कहानियों की गणना ऐतिहासिक शैली की कहानियों के ठीक बाद में होती है। अतएव वे लिखने में अपेक्षाकृत सरल होती हैं।

(६) वे कहानियाँ जिनमें नायक के स्थान पर नायिकाओं का अस्तित्व होता है। आत्मकथा शैली में स्वतः अधिक रोचक बन जाती हैं। (पाठिकाएँ क्षमा करें!)

(ङ) मिश्र शैली—इस प्रकार की कहानियाँ वे होती हैं जिनमें ऊपर लिखे विधानों में से एक से अधिक विधानों का एक साथ प्रयोग होता है। इस प्रकरण में, चूँकि ऐतिहासिक शैली सबसे अधिक प्रचलित एवं अनुकरणीय शैली होती है अतएव इसे ही आधार स्वरूप मान लिया जाना चाहिए। यह एक ऐसी शैली है जिसका संयोग अन्य किसी भी शैली के साथ कहानी की स्वाभाविक गतिशीलता तथा आकर्षकता में बिना आघात पहुँचाए हो सकता है। व्यवहार रूप में यही देखने में आता है कि जहाँ किसी कहानी में मिश्र शैली का प्रयोग होता है वहाँ ऐतिहासिक शैली की ही पृष्ठभूमि रहती है।

वैसे तो कहानी के सर्वांश को पढ़कर यह सरलता से पता लगाया जा सकता है कि उसमें मिश्रण है या नहीं, और यदि है तो कितने अंशों में, और किन किन शैलियों का, किन्तु ऐतिहासिक शैली की कहानी जब आत्मकथा शैली से घुल मिल जाती है तब उसके विभक्तीकरण में कुछ कठिनता होती है। इसका कारण संक्षेप में यही है कि आत्मकथा शैली का 'अहं तत्व' इतना

चिरन्तन नहीं होता कि वह 'सत् तत्व' अर्थात् ऐतिहासिक शैली को ढक ले। इसका व्यापक विश्लेषण ऊपर हो चुका है।

शास्त्रीय दृष्टि से तो इन कहानियों को भी मिश्र शैली ही कह सकते हैं जिनमें एकाध स्थलों पर ऐतिहासिक शैली के बीच में पत्रों का आदान-प्रदान हुआ हो परन्तु आम तौर पर उन्हें ऐतिहासिक शैली का ही माना जाता है।

'अहं तत्व' की जितनी शैलियाँ होती है, जैसे पत्र शैली, डायरी-शैली और आत्मकथा-शैली, उनका परस्पर सम्मिश्रण एक स्वाभाविक बात है। कभी डायरी शैली में आत्मकथा शैली ऐसी घुल जाती है कि उसमें कोई विभाजक रेखा खींचना दुस्साध्य हो जाता है। पत्र शैली की कहानी में यदि एक ही पत्र का आद्योपान्त प्रयोग किया जाय तो उसका बहुत अंशों तक आत्मकथा अथवा डायरी शैलो से भ्रमात्मक ग्रन्थिबन्धन हो जायगा, ऐसा कभी-कभी सम्भव है।

मिश्र शैली का एक लाभ यह होता है कि उसके पढ़ने में एक विशेष प्रकार का आनन्द होता है। उससे एक कठिनाई कभी-कभी यह उपस्थित हो जाती है कि भिन्न-भिन्न घटना स्थितियाँ तथा चरित्र-सम्बन्धी गुत्थियाँ उतनी सरलता से सुलझ नहीं पातीं और उससे कभी-कभी कहानी के आकर्षण को दबा रहना पड़ता है।

मिश्र शैली की कहानियाँ बहुत कम अथवा अकिंचिन मात्रा में देखने को मिलती हैं। इसका कारण है ऐतिहासिक शैली के अतिरिक्त अन्य शैलियों का सापेक्षिक स्वल्प प्रचार।

आभ्यन्तरिक वर्ग—ऊपर जिन शैलियों का विवेचन किया गया है वे बाह्य वर्ग में आती है। अब आभ्यन्तरिक वर्ग की शैलियों पर विचार करना चाहिए। जहाँ बाह्य वर्ग की शैलियों का सम्बन्ध कहानी के ऊपरी ढाँचे से है वहाँ आभ्यन्तरिक वर्ग की शैलियों का सम्बन्ध कहानी की आत्मा से है। जिस प्रकार आत्मा और शरीर का परस्पर सम्बन्ध अभिन्न होता है उसी प्रकार इन दोनों वर्गों का परस्पर सम्बन्ध भी अभिन्न है। वास्तव में ये दोनों वर्ग एक ही बात पर विचार करने की दो प्रणालियाँ हैं।

रूपक शैली—आभ्यन्तरिक वर्ग के अन्तर्गत रूपक-शैली तथा शुद्ध शैली का प्रयोग अभिप्रेत है। कथा पर अवान्तर अथवा अप्रस्तुत कथा का आरोप करना रूपक का एक प्राचीन शास्त्रीय भेद हैं। ऐसी अवान्तर कथा प्रायः गौण होती है। जिसका उद्देश्य यह होता है कि उससे प्रस्तुत कथा की रोचकता पर कोई आघात न पहुँचे। किन्तु जहाँ ऐसी कथा गौण नही होती वहाँ भी आरोप की व्यवस्था ऐसी की जाती है कि वह अधिक से अधिक गोपनीय रहे। इस

आरोप की सफलता प्रबन्धादि विशेष की भाषा शैली पर ही अवलम्बित रहती है। वास्तव में आरोप की तो कल्पना की जाती है। प्रबन्ध आदि के कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमें द्वयर्थक भाव का बोध कल्पित रहता है। कहीं यह बोध प्रकट व कहीं अप्रकट रहता है। ये शब्द कहानी आदि में अपना विशेष महत्व रखते है। या तो ये शब्द (जो प्रायः जातिवाचक अथवा व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ होती हैं) किन्हीं प्रमुख पात्रों के नाम होते है अथवा उनकी जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस प्रकार के सभी रूपको की भाँति ऐसी कहानी दीखने में तो सरल और यथार्थ होती है किन्तु उसका सच्चा सौन्दर्य उसके रूपक के उद्‌घाटन में ही निहित रहता है। सिवाय उन स्थलो को छोड़कर जो कहानी के प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों अर्थों में घटते हैं कहानी के शेष सभी स्थल अपने साथ एक विशेष चमत्कार लिए रहते हैं। किन्तु क्योंकि लेखक के लिए अप्रस्तुत तो अभिप्रेतार्थ में प्रयुक्त होता है, तथापि उसका आधार प्रस्तुत ही होता है अतः वह प्रस्तुत को भी उसी प्रकार रमणीय बना देता है जिस प्रकार अप्रस्तुत को। रूपक कहानियों का सौन्दर्य व साफल्य इसी द्विकोणात्मक व्यक्तित्व मे है।

'कोलाहल का शून्य' नामक एक छोटी कहानी में इन पंक्तियों के लेखक ने इसी प्रकार की रूपक-शैली का प्रयोग किया है। उसका संक्षेप में कथानक इतना ही है कि एक व्यक्ति समाज की ज्ञान-गम्भीरता के प्रदर्शन व उसके कोलाहल से डर कर एक ऐसे प्रदेश में पलायन कर जाता है जहाँ निविड़ एकान्त है एवं प्रकृति का रमणीय सहचर्य। किन्तु कुछ ही दिनों तक वहाँ रहने पर उसे अनुभव होने लगता है कि उस एकान्त में उसे सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता। तब वह उस जन-शून्य प्रकृति की क्रोड़ को छोड़ कर पुनः जनता जनार्दन के मध्य आकर अपनी कला-पिपासा को शान्त करता है।

इसमें पलायनवादी कवि को 'मैं' नामक पात्र की संज्ञा दी गई है। कोलाहलवादी समाज को क्रमशः अपने ऊपर आती हुई एक धर्मान्ध भीड़ का रूपक दिया गया है, समाज के ज्ञानातिरेक के प्रदर्शन को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—"उनमें कितनों हो के हाथों में मुझे पुस्तकें दिखाई दी" आदि।

खलील जिब्रान (१८८३-१९३१) की अधिकांश रचनाएँ रूपक शैली में ही लिखी गई है। इनके द्वारा लेखक किसी सर्वव्यापी सिद्धान्त का उद्‌घाटन करता हुआ प्रतीत होता है।

'लोमड़ी' शीर्षक रचना में लेखक कहता है—

"एक लोमड़ी ने सुबह के वक्त अपनी छाया पर दृष्टि डाली और कहा—मुझे आज कलेवे के लिए एक ऊँट चाहिए।"

"उसने सबेरे का सारा समय ऊँट की तलाश में घूमते हुए व्यतीत कर दिया। लेकिन जब दोपहर तक उसने दूसरी बार अपनी छाया देखी तो कहा—अपने लिए एक चूहा काफी है।

इसी प्रकार "मन्दिर को सीढ़ियों पर" इस शीर्षक से लेखक ने केवल इतना सा लिखा है—

"कल शाम मैंने मन्दिर की सङ्गमरमर की सीढ़ियों पर एक स्त्री को बैठे देखा। उसके दोनों तरफ दो मनुष्य बैठे हुए थे। उस स्त्री का एक गाल पाला पड़ रहा था और दूसरे पर लाली दौड़ रही थी।"

ये दोनों रचनाएँ रूपक-शैली की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। पञ्च-तन्त्र आदि हमारे प्राचीन आख्यानों में भी जिन अमानवी पशु-पक्षी पात्रों को कहानियों का संवाहक बनाया गया है एक प्रकार से मानवी पात्रों के रूपक ही है। किन्तु उदाहरणार्थ यदि मगर और बन्दर की बुद्धिमानी पर इस अर्थ में शङ्का करने का अवकाश न हो कि वह बुद्धिमानी बन्दर की अपनी है, या हो सकती है या नहीं तब रूपक शैली का पहाड़ ढह पड़ता है। रूपक शैली तभी तक जीवित रहती है जब तक कहानी के रूपक पात्रो को निमित्त मात्र स्वीकार किया जाता है।

रूपक शैली को छोड़कर सभी शैलियाँ शुद्ध शैली के अन्तर्गत आती हैं। संसार का अधिकांश साहित्य इसी में लिखा जाता है।

(४) **रस-गत-भेद**—यह बात स्वयंसिद्ध है कि साहित्य के अन्य अङ्गों की भाँति कहानी भी हमारे हृदय में रस की स्थापना करती है। पहले प्रकरण की व्याख्याओ से यह भी जान पड़ता है कि कतिपय समालोचकों ने कहानी की परिभाषा निर्धारित करते समय रस पर विशेष बलाधान किया है। इसी के आधार पर हम कहानी के वर्गीकरण का एक और सिद्धान्त नियत कर सकते हैं। समालोचकों को हम यह कहते हुए भी पाते है कि अमुक कहानी में करुण रस है, अमुक में हास्य रस आदि।

साहित्य में नौ रस माने गये है—शृङ्गार, वीर, हास्य, करुण, वीभत्स, भयानक, रौद्र, शान्त, और अद्भुत। इनमें से सभी रसो की कहानियो का प्रणयन हो सकता है, किन्तु प्रधानतया शृङ्गार, हास्य, अद्भुत, करुण और भयानक रसों की कहानियों का प्रचार सापेक्षतः अधिक है। कभी-कभी घटनाचक्र की स्थिति के अनुकूल एक ही कहानी में अनेक रसों का समावेश होता है, किन्तु ध्यान से देखने पर प्रकट होता है कि कहानी में जिसका ध्येय किसी एक निश्चित लक्ष्य पर पहुँचना और उसके द्वारा एक ही संवेदना जगाना होता है, छोटे से आकार में अनेक रसों की सामग्री एकत्रित करने का अवकाश बहुत कम होता

है। इस बात को ध्यान में रखने पर यह सिद्ध हो जाता है कि अनेक रसों में से कहानी में कोई एक रस प्रधान है इसकी चर्चा निरर्थक है। चूँकि रस ही सवेदना का आधार अथवा पर्याय है अतः जिस प्रकार की संवेदना जागृत करने का कलाकार का लक्ष्य होता है उसी के अनुरूप रस की व्यञ्जना वह कहानी में प्रारम्भ से ही करने लगता है। तभी हम कहते है कि कहानी में अमुक वातावरण की सृष्टि हो रही है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होगी—

पौ फटने की खुशी में संसार के सारे मुरगे अपना गला फाड़ कर चुप हो चुके थे। अब छोटी चिड़ियों की बारी थी। वे खुली हुई खिड़कियों से झाँक कर सोने वालों को धिक्कार रही थीं।

—"लोहार की एक" (श्री अन्नपूर्णानन्द)

कहानी के इस श्रीगणेश में कुछ गम्भीरता नहीं है। स्पष्ट ही लेखक कहानी में हास्यरस की संवेदना जागृत कर के पाठकों के हृदय को थोड़ी देर के लिए गुदगुदाना चाहता है। कहानी का शीर्षक भी इसमें सहायक होता है।

"उसका नाम मत पूछिए। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आखों से दूर करने को पागल हुआ फिरता हूँ। पर वह नाम और सूरत सदा मेरे साथ है। में डरता हूँ, वह निडर है; मै रोता हूँ, वह हंसता है; मैं मर जाऊँगा, वह अमर है।" —'खूनी' (श्री चतुरसेन शास्त्री)

क्या इन पंक्तियों से हमारे हृदय में प्रारम्भ से ही एक भय की स्थापना नहीं हो जाती ? स्पष्टतः यह कहानी आद्योपान्त भयानक रस की है।

"भौजी, तुम सदा सफेद धोती क्यों पहनती हो ?"

"मै क्या बताऊँ, मुन्नी ?"

"क्यों भौजी ? क्या अम्मा तुम्हें रङ्गीन धोती नहीं पहनने देती ?"

"नहीं मुन्नी, मेरी किस्मत ही नहीं पहनने देती; अम्मा भी क्या करे ?"

"किस्मत कौन है भौजी ? वह भी क्या अम्मा की तरह तुमसे लड़ा करती और गालियाँ देती है ?" — किस्मत' (श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान)

इन पंक्तियों से करुण रस का परिपाक सहज ही में हो उठा है।

रस की संवेदना जागृत करने का एक और उपाय है। उसे विषम चित्रण सम्बन्धी उपाय कह सकते हैं। उसके द्वारा लेखक को अपनी कहानी में जिस रस का प्रभाव निक्षेप करना अभीष्ट होता है उसके प्रतिकूल अथवा विरोधी वातावरण अथवा भावों का एक भिन्न दृश्य वह उपस्थित करता है। इससे पाठक के हृदय में प्रतिकूल वातावरण के प्रति, जिसके साथ लेखक की सहानुभूति किञ्चितमात्र भी नही होती, एक अरुचि अथवा विरोध की भावना सर्जित

होती है, उससे कहानी के प्रधान वातावरण या प्रधान रस की अनुभूति में कोई कठिनाई नहीं होती। इसका एक उदाहरण जैनेन्द्रजी की 'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक वाली कहानी है। कहानी का प्रारम्भ यों होता है—

"बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने के बाद हम सड़क के किनारे की एक बेंच पर बैठ गये।"

"नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से भाप के बादल हमारे सिरों को छू-छू कर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अँधियारी से रङ्ग कर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।"

"पीछे हमारे पोलो वाला मैदान फैला था। सामने अंग्रेजों का एक प्रमोदगृह था जहाँ सुहावना रसीला बाजा बज रहा था। और पार्श्व में वही सुरम्य नैनीताल।"

आगे चल कर लेखक ने स्थानीय वातावरण की भिन्न रूपा झाँकियाँ उपस्थित की हैं जो शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करने में संयुक्त हैं। ताल की सफेद पाल वाली किश्तियाँ, पोलो लान में हाकी खेलने वाले किलकारी मारते हुए बच्चे, ओर न छोर वाला सड़क पर चलने वाला अखण्ड नर-नारी प्रवाह, जिनमें अधिकार गर्व में तने अंग्रेज, चीथड़ों से सजे पहाड़ी, लाल लाल अंग्रेजी बच्चे व हिन्दुस्तानी नौनिहाल, अंग्रेज और भारतीय पिता, अंग्रेज रमणियाँ और भारतीय कुल-ललनाएँ सभी थे। इस प्रकार से एक अत्यन्त विस्तृत विवरण सहित लेखक प्रारम्भ से जिस वातावरण की झांकी उपस्थित करता है वह उस वातावरण से सर्वथा भिन्न है जो कहानी की आगे की पंक्तियों में है। लेखक के शब्द ध्यान देने योग्य हैं—

"घण्टे के घण्टे सरक गए। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफेद हो कर जम गए। मनुष्यों का ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। रोशनियाँ मानो मर गईं। सब कुछ इस घनी सफेदी में दब गया। जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैल कर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबा दिया। ऊपर नीचे चारों तरफ निर्भेद्य सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।"

इन सबसे क्या निर्णय किया जा सकता है ? विश्वास रखिए, लेखक की ये पंक्तियाँ सोद्देश्य हैं। देखिए—

"मित्र अचानक बोले—देखो यह क्या है ?

मैंने देखा कुहरे की सफेदी में कुछ ही दूर से एक काली सी सूरत हमारी तरफ बढ़ी चली आ रही थी।"

रेखाङ्कित शब्द लेखक के मनोनीत अन्तर्लंद्य का बड़ी सूक्ष्मता से उद्घाटन करते हैं। सारी कहानी इस विरोध के वातावरण में पनपी है और जब अन्त में लेखक व उसके मित्रों का दल नैनीताली सैर खुशी-खुशी खतम कर चलने को तैयार हुआ, उसी समय उन्हें सूचना मिली कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड के नीचे, ठिठुर कर मर गया। यह एक मनोवैज्ञानिक स्वयंसिद्ध सत्य है कि निविड़ अन्धकार में प्रकाश की एक क्षीण रेखा का, घोर अज्ञान में विद्या के एक लघु कण का, रोमाञ्चकारी वेदना और करुणा के क्षण में एक क्षणिक सुख के अनुभव का जो महत्व होता है वह अतुलनीय है। ठीक इसी प्रकार निश्चिन्त निरापद अनन्त सम्पदा राशि के मध्य यदि अस्थिर किन्तु तीक्ष्ण पीड़ा की एक लहर छोड़ दी जाय तो वह निर्मम से निर्मम कुलिश-हृदय को संवेद्य बन जायगी।

कुछ कहानियाँ प्रचलित क्यों नहीं हो पातीं, इसका एक प्रमुख कारण यह है कि उनमें कहानी के तत्वों का समान विकास होते हुए भी रस जाग्रत करने की शक्ति नहीं होती। रस प्रायः सजीव एवं अवसरानुकूल विवरणों से जाग्रत होता है। आज की प्रचलित कहानियों में नब्बे प्रतिशत कहानी साहित्य किसी न किसी रूप में यौन प्रेम का आधार लेकर चलता है किन्तु उनमें से कुछ अंगुलियों पर गिनी जाने वाली ही कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें शृङ्गार रस का परिपाक होकर कहानी की सच्ची संवेदना जाग्रत हो पाती है।

वस्तु और वातावरण की दृष्टि से कहानी के जितने भेद ऊपर गिनाए गए हैं उनका रस से एक निकट सम्बन्ध है। नीचे की तालिका यह स्पष्ट करेगी कि किस वस्तु अथवा वातावरण की कहानी में प्रायः किस रस का प्रभाव अथवा संवेदनीयता होती है। इन निर्णय का आधार तत्व के अत्यन्त समीप की एक सम्भावना ही हो सकती है।

वस्तु भेद	रस
१—ऐतिहासिक—	वीर, रौद्र, शृङ्गार।
२—उपैतिहासिक	वीर, रौद्र, शृङ्गार।
३—प्रागैतिहासिक	अद्भुत, वीर, शृङ्गार।
४—सामाजिक	शृङ्गार, हास्य, करुण, शान्त।
५—राजनैतिक	वीर।
६—जासूसी	अद्भुत, वीर, भयानक।
७—वैज्ञानिक	अद्भुत, भयानक, शान्त।
८—धार्मिक	शान्त, वीर, [दानवीर] आदि।

९—आर्थिक	रौद्र, करुण।
१०—जीवट की	अद्भुत, वीर, भयानक।
११—यौनात्मक	शृङ्गार।
१२—प्राकृतिक	शृङ्गार, भयानक।
१३—पशुपक्षियों की	शृङ्गार, वीर।
१४—अति-प्राकृतिक	अद्भुत, भयानक, वीभत्स!

इस विश्लेषण के आधार पर प्रयोग अथवा प्रचार की दृष्टि से रसों की परिगणना की जाय तो क्रमशः वीर, शृङ्गार, अद्भुत, भयानक, शान्त, रौद्र, करुण, हास्य और वीभत्स का नामोल्लेख होगा। किन्तु ऐसा मानना भ्रमात्मक है। क्योंकि उदाहरणार्थ, वीर रस को लें तो प्रतीत होगा कि उसका प्रयोग ऐतिहासिक, उपैतिहासिक, राजनैतिक, जासूसी, धार्मिक, जीवटीय एवं पाशवी इन सब कहानियों में होता है किन्तु वस्तुतः प्रचार की दृष्टि से जिस वस्तु की कहानी का नाम अग्रणी के रूप में लेना चाहिए, अर्थात् सामाजिक कहानी, उसमें वीर रस का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। उक्त विश्लेषण का तात्पर्य यही दिखाना है कि कौन कौन से रस कहानी की विस्तृत से विस्तृत भूमिका को स्पर्श करते हैं तथा किस रस का सम्बन्ध किस वस्तु-विशेष से अधिक है।

कथावस्तु की विभिन्न अवस्थाओं के अन्दर से ज्यों ज्यों पाठक गुजरता है वैसे वैसे रस की निष्पत्ति कैसे होती जाती है इसका विस्तृत दिग्दर्शन आगे शैली वाले प्रकरण में किया जायगा।

(५) परिणाम या निवृत्तिगत भेद—इससे हमारा अभिप्राय उस स्थिति से है जिस में जाकर कहानी का पर्यवसान होता है। वह स्थिति या तो दुखान्त हो सकती है अथवा सुखान्त। कुछ नये खेवे के आलोचक प्रसादान्त शीर्षक के द्वारा एक और प्रकार के परिणाम की ओर इङ्गित करते हुए जान पड़ते हैं। प्रचलित मान्यता के अनुसार सुखान्त की स्थिति तब होती है जब नायक अथवा नायिका अथवा दोनों का फलागम हो जाय अर्थात् इष्ट परिणाम की प्राप्ति हो जाय। इसके विपरीत दुखान्त कथा साहित्य में नायक नायिका अपने इष्ट-लाभ से वञ्चित रह जाते हैं और कथा विषाद के एक वातावरण की छाप पाठक पर लगाती हुई चली जाती है। प्रायः नायिका नायक में से किसी की अथवा दोनों की मृत्यु भी परोक्ष अथवा प्रकट रूप में प्रदर्शित की जाती है। प्रसादान्त कहानियाँ वे कही जाती हैं जिनके अन्त को न पूर्ण रूप से सुखद न पूर्णरूप से दुःखद कहा जा सकता है, किन्तु जिसमें दोनों का मिश्रण सा रहता है। जैसे नायक यदि फलागम करके मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो न तो उसे हम दुःखान्त कहेंगे

न सुखान्त। इसका एक उदाहरण जगत् प्रसिद्ध शेक्सपियर का एक नाटक 'हैमलेट' है। इसमें यद्यपि सर्वान्त में नायक हैमलेट की मृत्यु हो जाती है, फिर भी जिस सङ्कल्प को लेकर उसने अपना जीवन-यापन किया उस सङ्कल्प की पूर्ति पाठक अन्त से कुछ मिनटों पूर्व देखकर आश्वस्त सा हो जाता है और उसे जगत् की असारता पर विश्वास और अतिभाग्यवाद पर आस्था नहीं होती। ऐसा ही साहित्य प्रसादान्त कहा जायगा। इसके अतिरिक्त यदि कहानियों को लें, तो हम देखेंगे कि उनका आधुनिकतम विधान कुछ ऐसा होता है कि उसमें नायक आदि के बँधे बँधाये कार्य क्रम आदि या नियत इष्ट आदि नहीं रहते, प्रत्युत भाव-चित्रण करना, अथवा चरित्र की अनाकृत रेखाओं को गहराई से उभारना अथवा मनोरहस्यों का उद्घाटन करना आज की कहानियों का उद्देश्य रहता है। अतः नायक [यदि कोई हो भी] को अपने इष्ट की प्राप्ति हुई या नहीं, वह अन्त में विजयी और उसका कार्य-क्रम सफल हुआ या नहीं, इसके ऊपर कथा की सुखान्त-वृत्ति अवलम्बित नहीं रहती। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जो कहानी सुखान्त होगी वह प्रारम्भ से ही सुख की लहर में दौड़ती दृष्टि-गोचर होगी और जो कहानी दुखान्त होगी वह अवसाद के पंक में गिरी हुई। इसका कारण यह है कि लेखक अपनी मूल संवेदना को हाथ से कभी जाने नहीं देना चाहता, और उसी में पाठक को आद्यान्त रखना चाहता है। यह उसके कौशल पर अवलम्बित है कि इतना होने हुए भी कहानी में एकरसता अर्थात् नीरसता क्यों नहीं आने पाती। इन परिस्थितियों से प्रारम्भ होने वाली कहानी अन्त में यदि प्रसादान्त हो जाय तो आश्चर्य की कौन बात ? यद्यपि श्री श्याम-सुन्दरदासजी के अनुसार कहानी एक निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर लिखा जाने वाला नाटकीय आख्यान है, फिर भी यह निश्चित उद्देश्य सर्वदा कहानी को या तो सुखान्त ही बनाता है या दुखान्त ही, इस बात पर आश्रित नहीं रहता। या यों कहिये कि सुखान्त दुःखान्त को लेकर कहानीकार सोचता ही नहीं। उसे तो कोई ऐसा चित्रण देना होता है जो एक साथ पाठक पर गहरी संवेदना छोड़ जाय। यह बात भी सही है कि उस छोटे से चित्रण में जिसमें एक से अधिक संवेदनाओं का भार-वहन करने की शक्ति नहीं होती, हम यह कैसे स्वीकार कर लें कि लेखक प्रारम्भ में एक अमुक प्रकार का वातावरण तैयार करता है, तो अन्त में जाकर पाठक के सामने ठीक उससे विपरीत वाता-वरण ला धरेगा ?

इसका यह अर्थ नहीं कि कहानी में (Suspense) अनिश्चितता का

उपयोग हो ही नहीं। वह तो एक प्रकार से कहानी की जान है। किन्तु जो कलाकार मूल रूप में अपने इष्ट वातावरण की रचना व रक्षण के प्रति सचेष्ट रहता है और दूसरी ओर उक्त अज्ञेय-तत्त्व को भी हाथ से जाने नही देता वही सच्चा कलाकार है। इसी बात का यदि वैधानिक विश्लेषण करें तो यो कहना चाहिए कि अज्ञेयतत्त्व तो कथानक के साथ जुड़ा रहता है और वातावरण की एकमार्गिता कहानी के वातावरण-तत्त्व के साथ उल्लेखनीय होती है। अतः वास्तव में दोनो विरोधी स्थितियाँ नही है।

कहने का आशय यह था कि कहानीकार जीवन के किसी महत्त्वपूर्ण या साधारण पक्ष को जब इस प्रकार अङ्कित करता है कि उसमें एक असाधारणता आ जाती है और पाठक के हृदय को प्रभावित करने की शक्ति का समावेश होता जाता है तब उसके लिए सुख और दुःख दोनो एक समान भाव भूमि पर आकर विश्राम लेते हैं और वह सुखान्त को भी उतना ही सवेद्य बना देता है जितना दुखान्त को।

तब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि परिणाम या निवृत्ति के आधार पर किये गये कहानी के इन दो या तीन भेदों, सुखान्त, दुःखान्त एवं प्रसादान्त का क्या महत्त्व है? इसके उत्तर में यह निवेदन है कि इस प्रकार के व्यापक साहित्यिक प्रश्न पर किसी एक दृष्टिकोण से ही विचार करना न्याय नही है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी देखना चाहिये कि ऐतिहासिक काल-क्रम से कहानी की निवृत्ति में प्रायः किस प्रकार का परिवर्त्तन आगया है यथा उससे जनता के जीवन-दर्शन में किस मौलिक क्रान्ति के दर्शन मिलते हैं। जहाँ हमारे प्राचीन साहित्य में दुःखान्त का निषेध था, हमारे आज के साहित्य में उसी का बोल-बाला है। मध्य युग (शेक्सपियर-युग) में योरोप और अन्य पश्चिमी देशो के साहित्य में हम पाते हैं कि दुःखान्त का बहुत प्रचार था। आज से कुछ वर्षों पहले के समालोचको ने इसका समाधान यह किया कि जीवन का, जो विषमताओं से ग्रस्त है, प्रायः दुःख में ही अन्त होता है, अतएव दुःखान्त साहित्य ही जीवन का निकटवर्त्ती है अतः अधिक स्वाभाविक है। उत्तर मध्य और पूर्व आधुनिक काल ने, जिनमें व्यक्ति का जीवन वैसा ही या उससे कुछ अधिक ही विषादग्रस्त रहा, इस मत की पुष्टि ही नहीं की, अपितु इसकी वैधानिकता व वास्तविकता का प्रचार किया। किन्तु देशकाल की सीमाओ से बँधकर न रहने वाले साहित्य का जीवन के प्रति क्या उत्तरदायित्व है इस प्रश्न पर जब हाल ही में पाश्चात्य आलोचना-जगत में विचार किया गया तो यह सिद्ध हुआ कि सुखान्त भी उतना ही सत्य है जितना दुःखान्त। कम से कम

सुखान्त को दुःखान्त के विरोध मे कम सत्य (?) मानने वाला समालोचक सुखान्त के महत्त्व को तो घटाता ही है, दुःखान्त के प्रति व सुखान्त के विरोध मे अवैध पक्षपात भी करता है।

अतः जिस सुखान्त और दुःखान्त को लेकर ससार भर के साहित्य में इतना सङ्घर्ष हुआ उसका निश्चय ही कोई मौलिक अस्तित्व है। दोनो की सवेदनाएँ भिन्न हैं। दोनो का आकार प्रकार भिन्न है। दोनो की अभिव्यक्ति भिन्न है। यह बात दूसरी है कि कलाकार के लिये दोनो ग्राह्य ह। पर इसी सम्बन्ध में जो विवाद किया गया है वह केवल दो बाते स्पष्ट करने के उद्देश्य से हीः—एक तो सुखान्त या दुःखान्त साहित्य का परिचय की अन्तिम पक्तियो अथवा उसक अन्तिम परिच्छेदो में ही नही मिलता, अपितु अन्त म सुखान्त या दुःखान्त होना उस समग्र साहित्य पर, विशेष कर जब हम कहाना की बात करत ह अपना जैसी हो एक अमिट छाप लगा देता ह, और दूसरा बात यह कि लखक के लिए दोनो का समान महत्त्व है। इस विवाद का अर्थ यह नही कि दोनो म कोई मौलिक अन्तर नही है।

स्वय यह बात कि कहानी यदि अन्त मे दुःखान्त है तो उसका प्रभाव उस समस्त कहानी पर पड़ेगा, इसी प्रकार सुखान्त कहानी का वातावरण भी उसके अन्त से प्रभावित रहता है, यह सिद्ध करती है कि दोनो का जगत परस्पर बिभिन्न तत्त्वो से बना है।

(६) काल की इकाईगत भेद—यद्यपि यह कहानी के वर्गीकरण का कोई विशेष महत्वपूर्ण आधार नही है, फिर भी कुछ दृष्टियो से वर्गीकरण में इसका अपना स्थान ह। मोटे तौर पर हम काल की दृष्टि से कहानी को दो भागो में बाँट सकते है—(१) एक दिन की कहानी और (२) एक से अधिक दिनो की कहानी। इसका सम्बन्ध प्रमुखतः कहानी के कथानक से है। कहानी को कथावस्तु २४ घण्टो के अन्दर-अन्दर यदि घटित हुई हो तो उसे कहानी के पहले वर्ग में लेना चाहिये और यदि कथावस्तु का विस्तार एक से अधिक दिनो में व्याप्त हो तो कहानी को दूसरे वर्ग की कहानो गिनना चाहिए। इस वर्गीकरण का सिद्धान्त यह है कि कहानी बिना किसी काल सम्बन्धा व्यवधान के पूरी हुई है अथवा नही। कथानक का सीधा प्रभाव पाठक पर पड़ता है। अतः शृङ्खलाबद्धता द्वारा कथानक जिस सवेदना का उद्रेक कर सकता है वही सवेदना शृङ्खला में जितने अधिक रिक्त स्थान होगे उतनी ही शिथिल व अपूर्ण होगी। एक दिन की कहानी में यह शृङ्खला सबसे अधिक अभक्त व सवेदनशील होती है। ज्यो-ज्यो कहानी की वस्तु अधिक समय का आश्रय प्राप्त करती जायगी

त्यों-त्यों ही वह कम सवेदनीय होती जायगी। इसका कारण स्पष्ट है। एक दिन का कहानी का वस्तु को पाठक मानो एक ही साँस में रोक रखता है, ज्यों ही कहानी अधिक लम्बी हुई, पाठक की साँस टूट जाती है और उसे प्रत्येक व्यवधान के साथ या तो सवेदना के एकदम नए स्थल को पकड़ना पड़ता है या सम्पूर्णत: नई सवेदना को। इसके लिए वह साधारणतया तैयार नही रहता और फलत: पाठक का यह श्रम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कहानी के प्रभाव पर बुरा आघात पहुचाता है।

वसे तो स्वय एक दिन की कहानी मे भी काल-सम्बन्धी व्यतिक्रम पाया जा सकता है, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। यदि हो तो भी हम एक दिन की कहानी उसे ही कहेगे जिसकी सारी कथावस्तु बिना किसी काल-सम्बन्धी बाधा आए सुशृङ्खल रूप में चलती हो।

टेकनीक की दृष्टि से भी एक दिन की कहानी प्रायः अन्य कहानियो से भिन्न होती है। विवरणों को दबाकर रक्खा जाता है। अल्पकालीन कहानियों का ढाँचा ऐसा ही होगा। जहाँ किसी सिद्धान्त विशेष की थोड़े में पुष्टि अथवा प्रतिपत्ति करनी हो वहाँ एक दिन की कहानी ही काम में लाई जाती है। इस प्रकार की कहानियो में अपनी लघुता में ही एक सम्पूर्ण प्रभाव की मार्मिकता सँभालने वाली कोई छोटी सी घटना ले ली जाती है। (कभी-कभी यह घटना रूपक का भी काम करती है) और उसे कम से कम शब्दो में उतार कर रख दिया जाता है।

इस बात में किसी को कोई सशय नही हो सकता कि काव्य या साहित्य की रचना करने से पूर्व कवि को जो प्रेरणा प्राप्त होती है वह किसी इतनी अल्पकालीन घटना अथवा प्रसग से उद्भूत रहती है कि हम उसे भोंड़े रूप में पाच दस शब्दो अथवा एक वाक्य म आसानी से कह सकते है। उसी प्रसग को लेकर कवि आवश्यकतानुसार बड़ा-छोटा काव्य-भवन बनाता है। कही-कही यह प्रारूप एक बृहद् मानसाकार काव्य अथवा उपन्यास बन जाता है। कही-कही लघु आख्याना (जैसे पञ्चतन्त्र) के रूप तक सीमित रहता है, कही-कही चुटकुला म भी समाता है और कही कही तो एक वाक्य की लोकोक्तियो और कुछ शब्दो वाले मुहाविरो तक ही इसकी सम्यक् अभिव्यक्ति हो जाती है। प्रसग विशेष इन भिन्न-भिन्न रूपो मे से कौनसा रूप लेता है, यह कवि की इच्छा, योग्यता, व बाह्य परिस्थितियो, जैसे समय की माग आदि अनेक बातो पर निर्भर रहता है। अपने-अपने स्थान पर सभी उपयुक्त रहते हैं और किसी का काम किसी अन्य से नही निकल सकता।

किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है, मूल रूप में सबकी सवेदना सूक्ष्म ही नही अत्यन्त सूक्ष्म होती है और जहाँ केवल उसी सवेदना की पुनरावृत्ति का प्रश्न होता है वहाँ कहानी के क्षेत्र में एक दिन की कहानी सबसे अधिक सफल होती है। शेष सभी कहानियों से इसे एक स्वतन्त्र रूप और नाम देने का आधार यही है।

राजनैतिक अथवा साहित्यिक जैसी अन्य किसी क्रान्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सम्पूर्ण कालखण्ड को कथानक की पृष्ठभूमि बनाकर जो कहानी लिखी जाती है उसे इस वर्ग में नहीं लेना चाहिये। सच बात तो यह है कि कहानी में इस प्रकार क समग्र कालखण्ड का एकान्त परिचय दिया ही नहीं जा सकता, उसमें तो उसकी एक झाँकी मात्र दी जा सकती है।

(७) विचारधारा गत भेद—वर्गीकरण की इस आधार शिला पर सब से अन्त म विचार किया जा रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि इसका महत्व अन्य आधार शिलाओ से कम है। इसके अन्तर्गत विश्लेषण प्राप्त कहानी के भेदो के लेखक का समष्टिगत दृष्टिकोण अभिज्ञात होता है और एक ही दृष्टि में पाठक यह जान जाता है कि लेखक उस पर किस प्रकार का प्रभाव डालना चाहता है। अतः ऐसा वर्गीकरण कहानी-विशेष के अध्ययन में बहुत सहायक होता है। यद्यपि इस वर्गीकरण को सुगम बनाने के लिये अनेक प्रकार के मत-वाद प्रचलित हैं, जिनमें से किसी एक या अधिक वादो की सज्ञा कहानी-विशेष को दी जा सकती है, तथापि यह स्पष्ट है कि इन मतवादो को न हम सख्या की दृष्टि से पूर्ण मान सकते हैं न विचारो की दृष्टि से ही। ये मतवाद केवल इस बात का प्रतिनिधित्व करत है कि किसी एक साहित्यिक समस्या को लेकर कौन से आलोचक किस दृष्टिकोण को लेकर सोचते है अथवा अमुक आलोचना-क्षेत्र में उस समस्या का हल क्या निकाला गया है। चूंकि साहित्य का प्रवाह प्रत्येक देश और काल में किसी एक वैज्ञानिक प्रणाली से नही चलता, अतः उसके सिद्धान्तो में देश काल के भेद पर अन्तर होना स्वाभाविक है। इस अन्तर का फल यह होता है कि प्रत्येक कहानी वर्गीकरण के सीमित दायरे में नही आ पाती। सौन्दर्य-समष्टि की दृष्टि यह विभाजन स्वीकार भी नही करती। किन्तु आलोचना-शास्त्र के विस्तार के साथ ही साथ इस वर्गीकरण का परिवार भी बढ़ता जाता है और इसको ग्राहिका शक्ति के पजे में प्रत्येक कहानी किसी न किसी रूप में आ ही जाती है।

इस सम्बन्ध म कतिपय प्रचलित दृष्टिकोणो को लेकर हिन्दी में ये मत-वाद व्यवहार मे आते है—यथार्थवाद, आदर्शवाद, प्रगतिवाद, कलावाद (?)

अभिव्यञ्जनावाद, छायावाद, रहस्यवाद, गाधीवाद आदि इनमें से कुछ तो शुद्ध कविता (पद्य साहित्य) से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ सभी साहित्य से जिसमें गद्य साहित्य भी आ जाता है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद—जहाँ तक कहानी साहित्य का सम्बन्ध है, उन वादो में, जिन्होने उसे प्रभावित किया है, यथार्थवाद और आदर्शवाद प्रमुख हैं। इनमें से आदर्शवाद हमारे समस्त पुराकालीन वाङ्मय का प्राण रहा है। यथार्थवाद या तो कला को कला के लिये ही प्रतिष्ठित मानता है या जीवन के यथातथ्य स्वरूप को उसके शुद्ध सस्कारो रूप में देखने का आग्रही है। इसका जीवनकाल हमारे साहित्य का जब इतर (विदेशी) साहित्य से ससर्ग हुआ (गद्यकाल के सूत्रपात से लेकर) तब से मानना चाहिये। कला का इनसे क्या मौलिक सम्बन्ध है इस विषय की चर्चा ऊपर कई स्थलो पर हो चुकी है। वर्गीकरण के समय इनकी विवेचना फिर आवश्यक हो गई है।

यदि आदर्शवाद को वर्गीकरण का एक आधार मानें तो हम समस्त भारतीय साहित्य को दो मोटे काल-खण्डो में बाँट सकते है। (यह विभाजन कहानी पर भी लागू होता है) एक तो सारा साहित्य और दूसरा आधुनिक साहित्य। यदि कहानी के इतिहास की ओर देखा जाय तो इसी प्रकार का वर्गीकरण हम अभारतीय (पाश्चात्य) साहित्य का भी कर सकते है। अंग्रेजी में स्टिवेन्सन कहानी कला के प्रवर्त्तको में गिने जाते हैं। आज के साहित्य-जगत में भी उनका उतना ही सामयिक सम्मान है। उनकी कहानियो मे भी आदर्श-वाद की छाप प्रत्यक्ष दिखाई पडती है। इटली के एडगर एलेन पो जो कहानी-कला के एक और प्रशस्त प्रवर्त्तक माने जाते हैं, आदर्शवाद की परम्परा में आते थे। वैसे उनकी कहानियाँ किसी मत विशेष का प्रचार या सवाहन नही करती, उनका उद्देश्य तो एक अतीन्द्रिय वातावरण तैयार करके पाठक पर एक अलौकिक प्रभाव डालना है। अन्य कहानीकारो में चरित्र-चित्रण की ओर विशेष ध्यान रहा। इस प्रक्रिया मे उन्होने आदर्शवाद और यथार्थवाद की ऐसी सम्मिलित लोक-रचना का है कि दोनो में सीमारेखा का ढूँढना श्रम साध्य हो जाता है। टॉलस्टाय का नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। एच० जी० वेल्स कृत 'कीटाणुओ की चोरी' शीर्षक कहानी वेल्स के इस विषय के मत पर प्रकाश डालती है। इस कहानी का नायक एक अराजकवादी (अनार्किस्ट) है जो किसी वैज्ञानिक को धोखा देकर उसके पस रक्खे हुए हैजे के कीटाणुओ को उससे चुरा-कर चलता बनता है और उन्हे पानी की एक ऐसी बडी टङ्की में डाल देता है जो शहर भर को पानी पहुँचाया करती थी ऐसा करके उसे परम सन्तोष होता है

किन्तु अन्ततोगत्वा जब उसे पता चलता है कि जिन कीटाणुओं की उसने चोरी की वे हैजे के जीवित कीटाणु नहीं प्रत्युत दिखावटी कीटाणु थे तब उसे बड़ा क्षोभ होता है। यथार्थवाद के नाते कहानीकार ऐसा दिखा सकता था कि चुराए हुये कीटाणु कृत्रिम नहीं, किन्तु वास्तविक हैं। किन्तु उसके शिव-प्रेरित वैज्ञानिक मस्तिष्क ने ऐसा स्वीकार नहीं किया और सारे शहर को नष्ट होने से बचा लिया। कथानक की परिणति आदर्शवाद में होती है।

किन्तु यदि सब पक्षों को मिलाकर देखा जाय तो इस कहानी का सौन्दर्य उसके लेखक के अन्तर्गत में विद्यमान शिव (आदर्शवाद) अशिव (यथार्थवाद) की भावना में नहीं किन्तु उस अराजकवादी के चरित्राङ्कन में है जिसका प्रभाव सारे समाज पर गहराई के साथ पड़ा है।

इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य का इधर का साहित्य क्रमशः आदर्शवाद का परित्याग और यथार्थवाद का ग्रहण करता गया। वैसे अपने यहाँ के साहित्य के समान उधर के प्राचीन साहित्य में, जो समय-समय पर होने वाले सन्तों आदि से प्रभावित रहा है, आदर्शवाद की स्पष्ट रूपरेखा मिलती है। बाइबिल से लेकर ऐसप तक की कहानियाँ आदर्शवाद में ही डूबी हुई हैं।

समालोचना क्षेत्र में इस विषय को लेकर बड़ी चर्चा हुई कि अमुक रचना आदर्शवाद की रचना है अतः हेय, या कला या जीवन के यथार्थ से रिक्त अथवा यथार्थवाद की है अतः जीवन की वास्तविकता के समीप है। ठीक इसके विपरीत एव असहमत मतो का भी परिचालन हुआ। सिद्धान्त की दृष्टि से यह प्रश्न ही निराधार ठहरता है जिसका कारण ऊपर बता दिया गया है। किन्तु इतना होते हुए भी वर्गीकरण में इस विवेचन का महत्त्व है। इससे कहानी के, और उसके द्वारा समाज के (जो सदा साहित्य की पृष्ठभूमि में रहता है) ऐतिहासिक विकास और समय-समय पर रहने वाली जीवन-दर्शन की सरणियों का आभास मिलता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अमुक प्रवृत्ति अमुक देश-काल में सम्भ्रान्त मानी जाकर दूसरे देश काल के साहित्य को किस प्रकार प्रभावित कर गई अथवा दोनो के साम्य के द्वारा हम किस बात का अनुमान कर सकते हैं।

यह कहना गलत है कि पाश्चात्य यथार्थवाद ने भारतीय वाङमय को पराभूत कर लिया है। प्रेमचन्द जैसे कृती कलाकारो ने सदा अपनी श्रेष्ठ परम्पराओ को जीवित रक्खा है और यथार्थवाद के अवांछित प्रभाव को अपदस्थ। इसलिए यथार्थवाद को इस सामन्तशाही में ही 'प्रतिक्रियात्मक' कहे जाने वाला आदर्शवाद यदा-कदा अपना मुँह खोल ही लेता है। और उन रचनाओ का

स्थान और महत्व सर्वथा अकिञ्चन नहीं हो पाया है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद का इतने विस्तार से विवेचन करने का कारण यही है कि ये कहानी के मूलस्थ तत्वो में से हैं और प्रायः सभी प्रकार की वस्तु-समष्टि, रस आदि सभी आधार-शिलाओं के अन्तर्गत आने वाली कहानियो पर इनका प्रभाव होता है। हल्की दृष्टि से कहे तो रस के अन्तर्गत हास्य रस की कहानियो में आदर्श (शिष्ट) हास्य का भी प्रयोग हो सकता है और यथार्थ (शिष्ट अथवा अशिष्ट) हास्य का भी।

'छायावाद' ने कहानी का कलेवर भले ही स्पर्श किया हो, उसकी आत्मा का नही। सार्वजनिक रूप में छायावाद का कहानी पर प्रभाव भी कम, अत्यन्त कम, पडा है।

'प्रगतिवाद' आदर्शवाद और यथार्थवाद की ही भाँति एक सैद्धान्तिक विवाद को लेकर खडा होता है, किन्तु उसका क्षेत्र सभी प्रकार की कहानियों तक व्याप्त नहीं है। इसका कारण प्रगतिवाद की विचारधारा ही है। जीवन को जिस दृष्टि से मार्क्सवाद (प्रगतिवाद का मूलाधार) देखता है वह दृष्टि सभी विचारकों को पूर्ण नही प्रतीत हो सकती। मार्क्स की दृष्टि में जीवन एक भौतिक अर्थपिण्ड हो सकता है जिसके विकास-ह्रास के बँधे बँधाए मार्ग (स्थिति, प्रतिस्थिति और संस्थित) हों किन्तु अन्य दार्शनिकों की दृष्टि में जीवन भौतिकता से अतिरिक्त एक ऐसे वातावरण में भी साँस लेता है जिसे आध्यात्मिक अथवा सूक्ष्मता कह सकते हैं। इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य स्कूल से प्रभावित जो रचनाएँ होगी वे उस स्कूल की परम्पराओं का भले ही निर्वाह तथा पृष्ठपोषण करें, अन्य रचनाएँ उस वातावरण के सम्पर्क में आकर भी उससे उतनी ही असम्पृक्त होंगी जितनी अन्तराल (ईथर) से पदार्थ (मैटर) या जल से कमल। अतः इस दृष्टिबिन्दु को लेकर कहानियो के दो वर्ग किये जा सकते हैं, प्रगतिवादी और पगतिवाद निरपेक्ष। इनमें से प्रथम वर्ग की रचनाएँ वस्तु समष्टि की दृष्टि से आर्थिक ही हो सकती हैं। (आपको स्मरण होगा कि आर्थिक वर्ग की विवेचना करते समय 'अर्थ' का व्यापक रूप ही आधार भूत रक्खा गया था तथा अर्थ शास्त्र की परिभाषाओं के अनुसार समय समय पर मनुष्य ने जो रूप बदले हैं उन्हे सबको उसके अन्तर्गत परिगणित किया गया था।) हमारे यहाँ ही नही, अन्यत्र भी कहानीकारों के समूह में से अमुक कहानीकारो के नाम गिनाए जा सकते हैं जो प्रगतिवादी साहित्य की सृष्टि करते हैं। इस बात से प्रगतिशील साहित्य की विशिष्टता की सहज ही में पुष्टि हो जाती है।

यथार्थवाद और प्रगतिवाद से लगता हुआ ही एक और मत है जिसके प्रवर्त्तक हैं फ्रायड महोदय। आपने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव के सभी प्रयत्नो एव व्यापारो का आधार लैंगिक ही है। कहानी में सेक्स का प्रयोग तो हुआ है किन्तु इस मत की चरमता तक ऐसा कोई प्रयोग नही पहुँच पाया है।

उद्देश्य—विचारधारा का ही दूसरा पक्ष है लेखक का उद्देश्य। इस दृष्टि से भी कहानी के कितने ही भेद किये जा सकते है। उदाहरणार्थ, कोई कहानी ऐसी लिखी गई हो जिसमे चरित्र के एक या एकाधिक टाइप (प्रतिनिधि) का प्रत्याकन हो। प्रसादजी का 'गुण्डा' शीर्षक कहानी इसी वर्ग में आती है। कुछ कहानियो में लेखक का उद्देश्य समाज के किसी विकृत अङ्ग का शोधन सस्कार करना होता है जिसका साधन हास्य या व्यग में से कोई बनता है। ऐसी कहानियाँ समाज-सुधार की कहानियो में आती हैं और इसका एक अलग वर्ग बनाया जा सकता है। कुछ कहानिया इसी उद्देश्य को लेकर लिखी जाती हैं कि उनसे किसी जाति अथवा समाज के अतीत की झाँकी दी जाय अथवा किसी प्रचलित प्रथा अथवा परम्परा का, जिसका इतिहास कोई मूल-सूत्र नही देता, उद्गम ढूँढने का प्रयास किया जाय। ऐसी कहानियाँ वस्तु अथवा वातावरण की दृष्टि से तो क्रमशः ऐतिहासिक उपैतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक होगी, किन्तु उद्देश्य की दृष्टि से इनका अलग महत्व होगा। प्रसादजी के अधिकाश साहित्य का महत्व इसी में है कि उन्होने अज्ञात के गर्भ में थके हुए भारत के अतीत को ऐतिहासिक शोधो के बल पर प्रकाशित किया। उनके साहित्य को हम केवल ऐतिहासिक, उपैतिहासिक कहकर टाल नही सकते, प्रत्युत उसकी रचना के भीतर छिपा हुआ महत् उद्देश्य ही उसका महत्व है। कुछ कहानियो का उद्देश्य जीवन के किसी महान सत्य का उद्घाटन अथवा पुनर्संस्थापन होता है। ऐसी कहानियो का भी अपना अलग महत्व है। वे वस्तु, वातावरण आदि के भेदो के अनुसार किसी भी प्रकार की कहानियो में न गिनी जायँ, ऐसी कहानियाँ विश्व साहित्य की स्थायी सम्पत्ति होती हैं। कुछ कहानियाँ किसी ऐसी सामाजिक अथवा अन्य समस्या को लेकर चलती हैं जिन पर समाज का कोई व्यवस्थित समाधानात्मक दृष्टिकोण नहीं है। कहानीकार कभी इस प्रकार की समस्या का प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष समाधान दे देता है और कभी कभी बिना समाधान के ही कहानी

को छोड देता है। ऐसी कहानियाँ समस्या-कहानी कही जाती है। इनका विवेचन छठे उच्छ्वास में मिलेगा।

इधर कुछ समय से गान्धीवाद का प्रभाव भी कहानियो पर पडता हुआ दिखाई देने लगा है। स्वय प्रेमचन्द ने गान्धीवाद से बहुत कुछ लिया है। किन्तु गान्धीवाद की कोई निश्चित रूपरेखा न होने के कारण इस प्रभाव का विवेचन करना कोई विशेष अर्थ नही रखता इसके आधार पर कहानियो का एक स्वतन्त्र वर्ग नियत करना तो सर्वथा अनुपयुक्त होगा।

चतुर्थ उच्छ्वास

कहानी की शैली

"....but the body and end of a short story is bone of the love and blood of the blood of the beginning.

—Stevenson

शाश्वत कुतूहल ही कहानी का लक्ष्य होना चाहिये और जो कहानी अपने किसी भी उपकरण द्वारा इस कुतूहल से जितनी अधिक दूर जायगी वह कहानी उतनी ही अधिक असफल होगी।

चौथा उच्छ्वास

शैली या टेकनीक

शैली क्या है—साहित्य में भावो, विचारो अथवा तथ्यो को प्रकट करने की रीति को शैली कहते हैं।

प्रत्येक लेखक अपनी साहित्यगत वस्तु को अपने ढङ्ग से व्यक्त करता है। इसी कारण समग्र साहित्य की एक निश्चित शैली नही हो सकती, प्रत्युत प्रत्येक लेखक की शैली भिन्न हाती है। शैली की यह भिन्नता शब्द-संकलन, वाक्याशो का प्रयोग, वाक्यो मे शब्दो का स्थान, क्रियापदो का चुनाव, वाक्यो अथवा शब्दों की ध्वनि, तथा समुच्चय अर्थात् वाक्य में किस बात पर लेखक विशेष बल देना चाहता है आदि कई बातो को लेकर होती है।

शैली का उद्देश्य—किन्तु प्रत्येक शैली का अन्तिम उद्देश्य साहित्यगत वस्तु को अधिक से अधिक प्रेषणीय, सवेद्य या प्रभावशाली बनाना होता है। इस बात के लिए यह आवश्यक है कि वह शैली इस प्रकार की हो कि पाठक उसको पढने में प्रवृत्त हो। पाठक की रुचि को आकृष्ट करने की योग्यता शैली की न्यूनतम योग्यता है।

यह सच है कि यह योग्यता विषयभेद और पाठक की तात्कालिक और स्थायी वृत्तियो के भेद से बाधित होती है। अतः इसके बारे में कुछ निश्चित सिद्धान्त स्थिर नही किए जा सकते। इस बात को हमें लेखक पर ही छोड देना पड़ता है कि वह देखे कि अमुक वस्तु को किस शैली में व्यक्त करना चाहिए और अमुक वस्तु को किस शैली में।

विषय भेद आदि को ध्यान में रखकर कतिपय वस्तुओ को हम स्वभावतः ही शैली के आधार पर पाई जाने वाली आकर्षकता की क्लिष्ट श्रेणी में रख सकते है, जैसे दर्शनशास्त्र आदि तत्वविचार वाले शास्त्रो की शैली। इस प्रकार की शैलो के सम्बन्ध में हम समान रूप से रुचिशीलता का आग्रह नही कर सकते। इसकी आकर्षकता विशिष्ट पाठक समुदाय में ही पाई जाती है। किन्तु कुछ वस्तुएँ ऐसी होती है जिनका अधिकाश में आकर्षक और रुचिग्राहक होना आवश्यक है। इनमे घटना साहित्य का नाम निर्भीकतापूर्वक लिया जा सकता है। कहानी के विषय में यह बात शताश में लागू होती है।

कहानी की उत्पत्ति—यदि कहानी के इतिहास पर दृष्पात किया जाय तो प्रतीत होगा कि इसकी योजना एक विशेष उद्देश्य से हुई है । मानव-जीवन के वे तत्व और वे रहस्य जिनके अस्तित्व ने विश्व को एक शाश्वत भूल-भुलैया बना रक्खा है, उसके हृदय की वे शिव और अशिव वृत्तियाँ जो समाज की व्यवस्था में सहायक अथवा बाधक होती आई हैं, उसके अन्तस के वे सस्कार जो प्रतिक्षण जीवन का निर्माण या ध्वस करते हैं, फिर भी प्रत्यक्ष नही हैं: सक्षेप में जड और चेतन जगत् के वास्तविक स्वरूप को बहुत दिनो तक मनुष्य ने अपने आप समझना और उसे अपने अनुभूत और आप्त धार्मिक साहित्य मे प्रगट करके अपनी एक विशेष पिपासा को शान्त करना चाहा । किन्तु उसे ज्ञात हुआ कि अभिव्यक्त जितना रहस्यमय है उससे कही अधिक रहस्यमयी उसकी अभिव्यक्ति हो गई है । वह अपने उद्देश्य में सफल नही हो सका । रहस्यमयी होने के कारण यह अभिव्यक्ति उसे नही रुची । वह ससार के सामने खुलकर जाना चाहता था । जो वस्तु उसकी अनुभूति मे इतनी विशद थी, वही वस्तु उसकी अभिव्यक्ति में उतनी स्पष्ट क्यो नही ? जो कुछ भी वह सोचता था, समझता था, जानता था, उसे वह कह नही पाता था । उसके दर्शन पर समय-समय पर जैसे कोई ग्रहण लग जाता हो । उसने फिर अपनी अभिव्यक्ति को जीवन के फलक पर आँक कर देखा । उसने पाया कि उसकी अभिव्यक्ति यथार्थ जीवन के दैनिक रूपो से बहुत दूर है, उसमें मस्तिष्क और हृदय का उचित सन्तुलन नही है । उसमे विचार ही विचार है, विचार्य नही; सिद्धि है, साध्य नही ।

अतः अभिव्यक्ति को अधिक प्रभविष्णु बनाने के लिए उसने जीवन के घटना-पक्ष का आश्रय लिया । कथाओ के माध्यम से उसने भावो और विचारो को प्रकट करना आरम्भ किया । और लो, उसे अभूतपूर्व सफलता मिली । उसकी बातों को बालकों और बूढो ने, पुरुषो और महिलाओ ने, पढे लिखे और अपढ़ो ने समझा और आकर्षण पाया । यही कहानी का सूत्रपात हुआ ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जिस उद्देश्य को ले कर साहित्य मात्र की सृष्टि हुई उस उद्देश्य को सबसे सफल सिद्ध करने वाला साहित्य कहानी ही है । अतः आकर्षकता कहानी में कूट-कूट कर भरी होनी चाहिए । रुचि-भेद और विषय-भेद से उसकी सजीवता में कम से कम, किञ्चित, शून्यवत् प्रभाव पडना चाहिए ।

इस प्रकार कहानी की लोकप्रियता का सारा भार उसकी शैली पर आ पड़ता है । आगे की पंक्तियों में हम देखेंगे कि किस प्रकार शैली उस उत्तरदायित्व का निर्वाह करती है ।

शैली के भेद—साधारणतया कहानी के सम्बन्ध में हम शैली पर दो

दृष्टियों मे विचार करते हैं। एक तो उस पद्धति अथवा प्रणाली की दृष्टि से जिससे कहानी का सम्पूर्ण ऊपरी ढाँचा तैयार होता है, जैसे ऐतिहासिक प्रणाली, डायरी प्रणाली, पत्र प्रणाली आदि। यह विशुद्ध रूप से कहानी के बाह्य आवरण से सम्बन्ध रखता है। इनका विवेचन विस्तार से कहानी के वर्गीकरण वाले प्रकरण में किया जा चुका है। दूसरे, कहानी की कुछ विशेष बातों, जैसे, कहानी का शीर्षक, प्रारम्भिक अंश, अन्त आदि को ले कर। इस प्रकरण में दूसरे वर्ग में आने वाली सभी बातो पर विचार किया जायगा।

कहानी की शैली को विधान भी कहते है। कहानी का आकर्षण इसी समग्र विधान पर ही अवलम्बित रहता है। अतः इसका कहानी के विवेचन में बडा महत्त्व है।

कृत्रिम और स्वाभाविक—शैली के दो स्थूल भेद किये जा सकते हैं—(१) कृत्रिम, (२) स्वाभाविक। यों तो सारी शैली बनाई हुई अर्थात् कृत्रिम होती है, किन्तु कुछ शैलियाँ ऐसी होती हैं जिन्हे पढ कर आत्मीयता का अनुभव होता है। उसमें आए हुए विवरणो के साथ हम तादात्म्य सा अनुभव करते हैं। इसके विपरीत कुछ शैलियाँ ऐसी होती हैं कि उन्हे पढकर उनके रङ्ग-ढङ्ग पर हमें कभी विस्मय, कभी क्षोभ और कभी अपार उत्साह होता है। पहले प्रकार की शैली को मैंने स्वाभाविक वर्ग मे और दूसरे प्रकार की शैली को मैने कृत्रिम वर्ग में रक्खा है। शैली के प्रकरण में यह विषय महत्त्व का है, अतः इसका विस्तारपूर्वक विवेचन किया जा रहा है।

कहानी में शैली का विचार प्रायः इन बातो को लेकर किया जाता है—(अ) कहानी के तथ्यगत विवरण, जिन्हे कहानी का घटनात्मक अंश भी कह सकते हैं। (आ) कहानी के कथोपकथन, (इ) कहानी के पात्रो का परिचय जो प्रत्यक्ष हो, अर्थात् जो उनके कार्यकलापों से अथवा वार्तालापो के द्वारा प्रकट न हो, प्रत्युत जिन्हे कहानीकार अपनी ओर से अर्थात् उनका प्रवक्ता बन कर देता हो, तथा (ई) शीर्षक।

(अ) घटनात्मक अंश की कृत्रिमता—शैली की स्वाभाविकता या कृत्रिमता का सब से अधिक स्पष्ट दर्शन हमें कहानी के घटनात्मक अंश में होता है। प्राचीन शैली की जितनी कहानियाँ हैं उनकी शैली सरल, फलतः स्वाभाविक होती थी। इसके उदाहरण हमारे प्राचीन कथा-साहित्य में भरपूर मिलेंगे, जैसे—"अन्तकवन में रक्तमुख नामक एक बन्दर रहता था। उसके निवास स्थान से ठीक नीचे एक ताल था जिसमें लोभमूर्ति नामक एक मगर रहता था। एक दिन मगर को बन्दर का शिकार करने की सूझी।" ये उदाहरण स्वाभाविक

शैली के है। इनमें इस बात पर विचार नही किया जाता कि भाषा में प्रसाद-गुण है अथवा नही, किन्तु इसकी कसौटी यह है कि इनकी गति और अन्विति में कही वक्रता तो नही है। अधिकाश आधुनिक कहानियों में केवल प्रारम्भिक अश को छोडकर इसी शैली का उपयोग होता है। केवल प्रारम्भिक अश ही में कुछ 'कुटिलता' के दर्शन होते है --

'डाकिए ने मेरे हाथ में एक पत्र पकड़ाया। उसे देख कर मै कुछ विस्मित सा रह गया क्योंकि उसके लिफाफे की लिखावट मेरे लिए अपरिचित थी। खोल कर देखा, लिखने वाले के हस्ताक्षर अपरिचित थे और पत्र बडी शीघ्रता में लिखा गया जान पडता था। ·····"

जिन व्यक्तियो को आधुनिक कहानियाँ पढने का अभ्यास है उन्हे इस कहानी के प्रारम्भ में कुछ कुटिलता दिखाई न दे, किन्तु यह स्पष्ट है कि इसमें दिए गए विवरणो की भूमिका से हमें परिचित नही कराया गया और फलतः हमें ये कहानियाँ एक दम पकडकर जैसे एक ओर ले जाती है और हमसे प्राइ-वेट रूप में जैसे कुछ कहती हैं। इसके विपरीत प्राचीन शैली की कहानियाँ पढते समय प्रायः ऐसा लगता है जैसे हम किसी राजदरबार की घोषणा पढ या सुन रहे हो। यही इस नवीन शैली की अनिश्चितता है। एक और उदाहरण—

"विस्फोट की राख उड चुकी थी। शहर मृतवत् पडा था। भोर होते-होते लोमडियो ने चिल्लाकर कर कहा—हम यहाँ नही रहेगी।"

इस उदाहरण में और भी अनिश्चितता है। किन्तु अनिश्चितता शैली की कृत्रिमता की कसौटी नही है। आधुनिक कहानियो में आरम्भ की प्रणाली सम्पूर्णतः यही है। कहानियों के विकास स्थल की शैली, जैसा कि कहा जा चुका है, अधिकतर स्वाभाविक शैली होती है। कतिपय लेखको की शैली मूलतः कृत्रिम होती है। इसका एक उदाहरण—

"रात हो चुकी थी और चारो ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। सूर्य के नगर में जिन्दगियाँ ऊँघ रही थी। "सगमरमर के स्तम्भो को जोकि ईश्वर के मन्दिरो की रक्षा कर रहे थे, चन्द्रमा अपनी चाँदी की किरणो से नहला रहा था।"

—(खलील जिब्रान)

"विस्फोट की राख उड़ चुकी थी·····" वाले उदाहरण में भी इस दृष्टि से शैली की कृत्रिमता है कि उसकी वर्णनप्रणाली बिलकुल नवीन है। न तो विस्फोट की राख ही दिखाई देती है जो उड चुकी हो, न वही लोमडियों को ही चिल्लाकर कहने की उत्सुकता होती है कि हम यहाँ नही रहेगी। जिब्रान

साहब के उक्त उद्धरण की रेखाङ्कित शब्दावली शैली की कृत्रिमता का स्पष्ट संकेत देती है।

कृत्रिम शैली का एक और स्पष्ट उदाहरण देखिये—(रेखाङ्कित वाक्य सारा कृत्रिम शैली का उदाहरण है।)

"एकाएक रामलाल गाडी (चलती हुई रेलगाडी) के कुछ और निकट आकर कूदा। इन्दु जरा और झुकी कि देखें वह सवार हो गया कि नहीं और निश्चिन्त हो जाय। उसने देखा—

अन्धकार—कुछ डूबता सा—एक टीस—जांघ और कन्धे में जैसे भीषण आग—फिर एक दूसरे प्रकार का अन्धकार।

गाडी मानो विवश क्रोध से चिचियाती हुई रुकी कि अनुभूतियों से बँधे हुये एक क्षुद्र चेतन संसार की एक घटना के लिये किसी ने चेन खींचकर इस जड, निरीह और इसीलिये अडिग शक्ति को क्यों रोक दिया है।" (अज्ञेय)

शब्द सङ्कलन और शब्द संयोग की नवीनता के अतिरिक्त इस उद्धरण में छोटे से स्थल ही में जो अनेक विभाजक चिह्न (–) आये हैं वे सब कृत्रिम शैली का परिचय देते है।

हिन्दी में चण्डीप्रसाद हृदयेश, जयशङ्करप्रसाद और अज्ञेय की कहानियों में भावात्मक अथवा आलङ्कारिक वर्णनो के आधार पर बनी कृत्रिम शैली के उदाहरण भरपूर मिलेंगे।

आजकल कहानियों में एक और रिवाज चल पडा है। वह है वाक्यो के बीच बीच में .....इस प्रकार के चिह्नों से पद विभाजन करना। यह भी कृत्रिम शैली के अन्तर्गत आता है। इस शैली के अन्तर्गत कभी-कभी वाक्य भी जान बूझकर अधूरे छोड दिये जाते हैं जो साधारण बुद्धि में अजीबोगरीब लगते है और लालबुझक्कड की पहेलियो जैसे प्रश्नचिह्न बन कर रह जाते है। देखिये—

"और मेरे मुँह से निकल गया—हाँ, विमलादेवी, अब तुम अपने नृत्य में जरा दिखलाओ तो सही कि अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए उसकी प्राण प्यारी नवभार्या की हत्या विष देकर कैसे की जाती है, कैसे कला के सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप की प्रतिष्ठा के नाम पर यौवन, सौन्दर्य और प्रेम का नित्य नव-नव प्रकारो से नीलाम किया जाता है। और अन्त में प्रतिहिंसा की यथेष्ट पूर्ति न होने पर कैसे विम्टो के गिलास में .....।

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि पहले गिलास विमलादेवी के हाथ

से छूटकर सगमरमर के फर्श पर गिरकर चूर चूर हो गया। तदनन्तर विमला-देवी···· ! यह रक्त और विम्टो और ·····!!"

यह है श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'नर्तकी' का आखिरी वृत्तान्त ! बिन्दुओ के सतत प्रयोग तथा विभाजन चिन्ह एवं आश्चर्यबोधक चिन्हों को यथा-स्थित रक्खा गया है, बिना किसी हेरफेर के। कहानी का कथानक कुछ भी हो, इस 'विम्टो के गिलास में····· ' क्या था (अधिक से अधिक इसमें विष की सम्भावना हो सकती है) और अन्तिम अनुच्छेद में 'विमलादेवी' के बाद का विभाजक चिन्ह क्या वास्तव में उसका संसार से विभाजन कर देता है तथा रक्त और विम्टो के अतिरिक्त और कौनसी तीसरी वस्तु थी जो पांच-छः छोटे-छोटे (विषैले !) बिन्दुओ में जा समाई है तथा जो प्रस्तुत न रहकर भी इतनी भीषण है कि सारी कहानी को लील गई है, ये सब बातें सर्वथा अस्पष्ट हैं। और इस अस्पष्टता का उत्तरदायित्व इन विषैले बिन्दुओ तथा विभाजक चिन्ह पर ही है। यह सही है कि कल्पना का प्रयोग यहाँ अबाधित रूप से शताश में सत्य (अर्थात् लेखक के मनोनीत सत्य) के अनुकूल होगा, यह नही कहा जा सकता। समस्या और अधिक कठिन हो जाती है जबकि ये बिन्दु कहानी के सर्वान्त में प्रयोग किए गए हैं।

एक और उदाहरण जिसमें इन भयंकर बिन्दुओं के पूर्वापर सम्बन्ध का कोई पता नही लगता, यह है—

"ढाई रुपये····· ···वह मोटर का काम जानता है। ······

नसीराबाद रेलवे स्टेशन। काफी धक्कापेल। एक जवान सा छोकरा।"

—'शव की छाती' (प्रखर)

उसी कहानी में—

"त्रिपोलिया पर पुस्तकालय खुला होगा। ·······

पीछे से आवाज आई—भाई साहब, साँगानेर दरवाजा किधर है ?"

यह शैली इतनी असाधारण रूप से संघटित होती है कि इसकी सत्यता पर सन्देह होने लगता है और हम यह निष्कर्ष निकालने पर आमादा हो जाते हैं कि इसका वास्तव में कुछ भी अर्थ निकलता है या नही। कभी-कभी तो यह पागल का प्रलाप जान पडता है। जब स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है तो इस पर विचार करना आवश्यक है और यदि यह स्थिति 'सत्य' अर्थात् दोषरहित सिद्ध हो तो इसका सिद्धान्तत प्रतिपादन एवं समर्थन करना चाहिए और यदि यह स्थिति दूषित सिद्ध हुई तो इसका सिद्धान्ततः खण्डन और विरोध करना चाहिए ताकि हम साहित्य में कूड़ा-करकट न आने दें।

यह बात सही है कि इस प्रकार की कृत्रिम शैली के दर्शन हमें प्राचीन साहित्य, चाहे वह भारतीय हो चाहे अभारतीय, में कही भी नही मिलते। उदाहरणार्थ—शेक्सपियर और तुलसीदास ने बिना किसी दुराव-छिपाव के या बनाव सजाव के अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण बात सरल से सरल शली में प्रकट कर दी है। इसके साथ यह भी सही है कि इस नई शैली का बीजारोपण तब हुआ जब हमने इस नए युग में पाश्चात्य देशो की जीवन-प्रणाली की अन्धाधुन्ध नकल करके अपने जीवन-क्रम में फैशनपरस्ती की ओर सदर्प पग बढाया। जीवन की इस कृत्रिमता का प्रभाव साहित्य पर भी अनेक मार्गों द्वारा पडा है और शैली की कृत्रिमता इसी प्रभाव का लक्ष्य परिणाम है। इसे साहित्य के अनेक नए फैशनो में से एक फैशन ही समझना चाहिए। यदि सिद्धान्त के नाम पर फैशन का प्रयोग अनुचित हो तो इस शैली का खुला बहिष्कार करना हम सब साहित्य-सेवियो का कर्तव्य हो जाता हैं। किन्तु यह प्रश्न इतना विवादास्पद है कि इस पर कोई भी निर्णय देना पक्षपात-शून्य नही होगा और इस परिस्थिति के प्रति हमें आँख मीच कर रह जाना चाहिए।

किन्तु इसी प्रश्न का दूसरा पहलू भी है। एक दृष्टि से देखने पर हम इसे हृदय या मन की व्यवस्थित अवस्था का यथातथ्य चित्रण कह कर स्वाभाविक घोषित करने को लालायित होते है। मनुष्य के मन मे सङ्कल्प-विकल्प का जो ज्वार, भाव विभाव का जो आन्दोलन सतत रूप से चलता रहता है उसके अन्तर्गत कभी-कभी किसी शृङ्खला के दर्शन करना दुर्लभ ही नही, असम्भव हो जाता है। मनुष्य एक बात सोचता है और उस पूरी किए बिना ही दूसरी बात पर जा लपकता है। यह क्रम इतना नित्य है कि हम इसकी ओर कभी विचारने का कष्ट नही करते। कभी-कभी इस प्रकार अनवरत रूप में आए हुए दो विचार परस्पर घोर असम्बद्ध अथवा एकागी होते है। विचारो अथवा भावो की यही शृङ्खलाहीनता अभिव्यक्ति म आकर कृत्रिम रूप धारण कर लेती है। साहित्यकार को न तो इतना अवकाश है कि दो या अधिक अशृङ्खल विचारो की पृष्ठभूमि का दिग्दर्शन करा के उनमें सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करे, न उसे ऐसा करना स्वाभाविकता के अनुकूल लग कर रुचता ही है। वह अनावश्यक रूप से अपने कौतूहल का सन्देहास्पद लोकप्रियता से सौदा नही करना चाहता। शैली की कृत्रिमता को जब हम इस पृष्ठभूमि में देखेंगे तो रिक्त स्थानो (········) की पूर्ति अथवा असम्बद्ध लगने वाले विचारो को सम्बद्धता देने का विचार छोड़ देंगे और हमें शैली कृत्रिम लगते हुए भी यथार्थ जान पड़ेगी।

इसी प्रकार आलङ्कारिक शैली की कृत्रिमता का परिहार स्वयं अलङ्कार-योजना के मौलिक महत्त्व के सिद्धान्त से हो जाता है।

यहाँ थोडा सा इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि उक्त शैली जिसमे जान बूझकर पहेलियो के रूप में खाली स्थान छोड दिए जाते हैं अथवा असम्बद्ध विचारो का एक साथ रक्खा जाता है, उस शैली से भिन्न है जिसमें वक्ता या पात्र या तो इस कारण बोलना बन्द कर देता है कि दूसरा वक्ता उसके वक्तव्य में बाधा उपस्थित कर देता है या वह स्वय कुछ सोचकर अपना वक्तव्य या मन्तव्य पूरा रखना नही चाहता। यह शैली उससे भी भिन्न है जिसमें असम्बद्ध या अनर्गल विचारो की अभिव्यक्ति इस कारण होती है कि वक्ता सही दिमाग का नही है। जहाँ किसी पात्र या वक्ता को वक्तव्य आदि के प्रति उत्तरदायी बनाये बिना लेखक अपनी ओर से कृत्रिम शैली का उपयोग करता है वहाँ पाठक कदाचित् इतनी सहिष्णुता से तो काम लेंगे ही कि लेखक को किसी मानसिक चिकित्सालय का सम्भाव्य पात्र या अधिकारी घोषित न करदें। कृत्रिम शैलीकारों के हित में ईश्वर पाठको को सद्बुद्धि दे।

(आ) कथोपकथन की कृत्रिमता—जहाँ वार्तालापो के मार्ग से शैली की कृत्रिमता का प्रश्न है, यह प्रश्न इन परिस्थितियो में उत्पन्न हो सकता है—

(१) जहाँ क और ख आपस में बातचीत करते हो, उस समय ख की बात क की बात से निकली हुई न जान पडे और उसमें कुछ नवीनता या अप्रासङ्गिकता की झलक दिखाई दे। हिन्दी में जैनेन्द्र की शैली इसी प्रकार की है।

(२) जहाँ प्रश्नो के उत्तरो के निमित्त जो कुछ कहा गया हो वह उन प्रश्नो के उत्तर जैसा न लगे, यद्यपि उसमें अपेक्षित सूचना उपस्थित हो।

(३) जहाँ उत्तरो का सम्बन्ध प्रश्नो से बिल्कुल न हो।

(४) ऐसी भाषा का प्रयोग हो जिसका अधिकारी उसका वक्ता न हो यह दोष अधिकाश वार्त्तालापो मे पाया जाता है। इसमें पात्रो के बौद्धिक स्तर का ध्यान रक्खा जाता है। इसी के अन्तर्गत उस भाषा शैली को भी लेना चाहिये जिसका प्रयोग अमुक वक्ता ऐसी स्थिति में रह कर भी करता है जिसमें उस भाषा शैली का प्रयोग सर्वथा अस्वाभाविक हो, जैसे रणभूमि के मध्य रङ्गभूमि का प्रणय प्रसङ्ग। इसके कुछ अपवाद भी है जिनके एक सम्पूर्ण उदाहरण स्वरूप प्रेमचन्दजी की 'शतरञ्ज के खिलाड़ी' कहानी का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जा सकता है।

(५) भाषा में अनावश्यक भावुकता अथवा अनावश्यक दार्शनिकता का प्रयोग तथा काव्यमयता का समावेश। इस सम्बन्ध में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

ने अपने 'मुक्ति का रहस्य' नाटक की भूमिका में द्विजेन्द्रलालराय के नाटको के कतिपय अशो को उद्धृत करके उनमे प्रकट की गई दो पात्रो की परस्पर प्रणय भावना की सर्वथा अस्वाभाविक अभिव्यक्ति की ओर जो प्रकाश डाला है वह दर्शनीय है।

(इ) चरित्रचित्रण मे कृत्रिमता—चरित्रचित्रण के प्रश्न को लेकर शैली की अस्वाभाविकता पर विचार करने योग्य कोई विशेष बात नही है। अधिकाश में इसकी कृत्रिमता या तो घटनात्मक अश की कृत्रिमता से अन्तर्भूत हो जाती है या उससे बिलकुल मिली जुली रहती है। मोटे रूप म इतना अवश्य कह सकते है कि यदि लेखक ऐसे चरित्रो का निर्माण करे जो नाम में, व्यवहार म अथवा बोलचाल में अस्वाभाविक रूप से पेश आवें तो उन्हे अस्वाभाविक पात्र कह सकते है। ऐसे पात्र अनजान या नीम हकीम लेखको के हाथो प्रायः बनते है। किन्तु उस अवस्था मे इन्हे शैली की कृत्रिमता के अन्तर्गत नही लिया जायगा। हाँ, जो पात्र स्वाभाविक रूप ही से अस्वाभाविक होते है उन्हे यहाँ कृत्रिम कहना कृत्रिम ही होगा!

(ई) शीर्षक की कृत्रिमता—शीर्षक के सम्बन्ध मे स्वाभाविकता या कृत्रिमता को लेकर अत्यन्त विस्तार-पूर्वक शीर्षक वाले अश मे विचार किया जा रहा है। यहाँ यह कह देना चाहिए कि जो शीर्षक जितना ही अधिक कृत्रिम होगा वह उतना ही अधिक सफल होगा। यहाँ कृत्रिम शीर्षक को असफल शीर्षक की अवस्थाओ मे से किसी के साथ (जिनका विवेचन नीचे किया जारहा है) मिलाकर या उसके समानार्थक रूप में नही देखना चाहिए।

स्वाभाविक शैली—कृत्रिम शैली के अतिरिक्त शेष सभी प्रकार की शैलियाँ स्वाभाविक वर्ग ही में ली जानी चाहिएँ। स्वाभाविक शैली का एक अपूर्व उदाहरण प्रेमचन्द है जिनकी सफलता का रहस्य अधिकाश में उनकी शैली की स्वाभाविक सरलता ही है। प्रेमचन्द इस बात का प्रमाण है कि शैली सरल होने से ही असफल नही हो जाती और कृत्रिम शैली की चाहे जितनी वकालत की जाय, जो अपूर्व प्रभावोत्पादक शक्ति स्वाभाविक शैली में है वह कृत्रिम शैली में नही।

शीर्षक का महत्व—शैली या टेकनीक पर विचार करने के प्रकरण मे सबसे पहले हम शीर्षक पर आते है। यद्यपि ऊपर से देखने पर यह कहानी का बड़ा महत्वहीन अश लगता है, पर निम्न विवेचन से प्रतीत होगा कि कहानी में उसका अपना विशिष्ट स्थान है। सबसे पहले तो यही बात स्पष्ट है कि कहानी के आकर्षण का प्राथमिक आधार यही है। इसी के द्वारा पाठक कहानी के प्रति

आकृष्ट या पराङ्मुख होता है। शीर्षक जितना ही अधिक रोचक होगा, कहानी के प्रति उतने ही लोगो का ध्यान आकृष्ट होगा। इसके विपरीत यदि इसमें कुछ रोचकता नही हुई तो अधिक सम्भावना यही है कि पाठक कहानी से किनारा कर जाय। कहानी के शेष तत्त्वो की श्रेष्ठता या अभीष्टता का पाठक पर प्रारम्भ-ही मे न कोई प्रभाव ही रहता है न उसका उसे कुछ अभिज्ञान ही। अतः, चूँकि शीर्षक भी लेखक की ही लेखनी से निकला हुआ कहानी का एक अङ्ग है, पाठक उसकी अच्छाई बुराई को देखकर उसी के अनुरूप कहानी की अच्छाई-बुराई की घोषणा करने को बडा उत्सुक होता है। अतः यह स्पष्ट है कि कहानी की सफलता के लिए लेखक को शीर्षक का चुनाव बहुत सोच समझ कर करना चाहिए और उसे अधिक से अधिक आकर्षक बनाने का प्रयास करना चाहिये।

(१) **शीर्षक की योग्यताएँ (रसानुकूलता)**—शीर्षक को रोचक कैसे बनाया जाय, या रोचक शीर्षक की योजना कैसे की जाय, इसके लिये कहानी-कला-शास्त्र में कोई बँधे बँधाये नियम नही हैं। कहानी के रस और उसकी सवेदना के रूप को देखकर कहानीकार को चाहिए कि उनके अनुकूल शीर्षक का चुनाव करे। जैसे, हास्य रस की कहानी का शीषक ऐसा ही होना चाहिए जिसे पढकर कुछ गुदगुदी हो। इसी प्रकार करुण रस की सवेदना वाली कहानी का शीर्षक ऐसा ही होना चाहिए जिससे करुणा का भाव पुष्ट होता हो। यही बात कहानी के वातावरण के सम्बन्ध में कही जा सकती है। प्राचीन ऐतिहासिक देशकाल की भूमिका वाली कहानी का शीर्षक उस देशकाल की सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुकूल होना चाहिए जिससे उसका आभास मिल सके।

(२) **मन्तव्य को प्रकट करने की शक्ति**—शीर्षक की दूसरी योग्यता यह है कि उसमें कहानी का सारा मन्तव्य एक साथ, अधिक से अधिक प्रभावशाली रूप में तथा समष्टितया प्रकट हो जाना चाहिये। शीर्षक का सारा उत्तरदायित्व उसकी इसी योग्यता में निहित रहता है। यह बात महत्त्वपूर्ण है, अतः इस पर विस्तार से विवेचन करना आवश्यक है।

प्राचीन शैली की कहानियो में शीर्षक अपने इस उत्तरदायित्व को बडी सरलता से निभाया करता था। उनमें किसी भी प्रकार की पेचीदगियो के न होने की अवस्था में, विशेष रूप से जिनका सम्बन्ध कथानक से हो, कहानी के नायक के (जो प्रायः एक 'वीर' हुआ करता था) नाम पर अथवा उसकी योग्यता आदि के आधार पर शीर्षक का (यदि कोई हो) चुनाव हो जाया करता था, जैसे, 'वीर राजकुमार', 'खरगोश की चालाकी', 'पद्मसिंह का साहस', 'राजकुमारी का विवाह' आदि। ऐसे शीर्षकों में कहानी के कार्य व्यापार

का एक अत्यन्त संक्षिप्त विवरण भी आ जाता था जिससे कि पाठक अथवा श्रोता के मस्तिष्क में कहानी के कथानक को सुग्राह्य करने की उचित भूमिका तैयार हो जाय। ऐसे शीर्षकों का यह भी महत्त्व होता था कि श्रोता और वक्ता दोनो के सन्दर्भ की सुविधा के लिए, अर्थात् समय पर कहानी-विशेष के स्मरण के लिए शीर्षक बडा काम आता था। न्यूनाधिक रूप में शीर्षक की यह योग्यता आज तक भी चली आती है और कहानी की जीवनावधि तक कदाचित चली आती रहेगी।

नई कहानियों के शीर्षक—कहानी की टेकनीक में यद्यपि आज दिन तक बडा परिवर्तन हुआ है, फिर भी शीर्षक की उक्त योग्यता, अर्थात् उसके द्वारा कार्य-व्यापार या कहानी की मूल घटना अथवा प्रधान पात्र के विषय में एक दो शब्दो में आवश्यक जानकारी प्राप्त करना, आज तक चली आती है। शीर्षक की भंगिमा में, उसकी सवेदना शक्ति में अवश्य कुछ अन्तर आया है। जैसे कि उसमें बचपन से यौवन आया है। उसके अवयवो का भी सङ्गठन हुआ है, उसके मस्तिष्क का भी। उसका उद्देश्य आज भी वही है—कहानी को एक-दो शब्दों में निचोड कर रख देना। कहानी यदि फूलो से भरा सरोवर है तो शीर्षक उन फूलों से तैयार किया हुआ सुवासित इत्र। इसी के द्वारा हम उसके मूल की ओर आकृष्ट होते हैं। यह बात केवल किसी भी आधुनिक कहानी मासिक के एक-दो अङ्को के शीर्षकों को उठा लेने पर स्पष्ट हो जायगी। यहाँ कुछ शीर्षक दिए जाते हैं; उनकी भंगिमा, प्रखर सवेदनीयता तथा प्रभावोत्पादिनी शक्ति, तीनों के दर्शन कीजिये।

(१) रेखाएँ और वर्ग, वर्ग और वृत्त (धर्मयुग ३०–३–५२)
(२) साए (मनोहर कहानियाँ, मार्च १९५०)
(३) धरती का चक्र (वही)
(४) दीवार (माया, होली विशेषाक, १९४९)
(५) आत्मा के आँसू (माया, फरवरी १९५२) .
(६) अजन्ता का भिखारी (माया, जून १९५१)
(७) हाथी के दाँत (सुमित्रा, १९५०)
(८) छोर का पछी (वही)
(९) मृत्यु-राग (वही)
(१०) दो पैर (वही)
(११) सुइयाँ गलत चलती हैं (वही)
(१२) जब नक्षत्र टूटा (वही)

इन शीर्षकों की ओर संकेत करने का अभिप्राय यही है कि ये अपनी-अपनी कहानी का सम्पूर्ण अंशों में प्रतिनिधित्व तो करते ही हैं, अपितु स्वतन्त्र रूप से भी बड़े विचित्र हैं और फलतः हमारे आकर्षण के आधार अनायास बन जाते हैं। और चूँकि शीर्षक का विशुद्ध रूप से केवल अपना महत्व नहीं के बराबर होता है, अतः इनके द्वारा हम कहानी विशेष को पढ़ने को लुब्ध होते हैं। शीर्षक का अधिकांश काम यहीं समाप्त हो जाता है।

शीर्षक असफल कब हो जाता है?—शीर्षक चार-पांच अवस्थाओं में असफल हो जाता है। सबसे पहले या तो उसमें कोई प्राचीन प्रणाली का अनुसरण हो जैसे 'छोटा राजकुमार'। दूसरे जब वह किसी पात्र का नाम मात्र हो, जैसे 'सुशीला'। तीसरे, उसमें जब किसी अत्यन्त प्रचलित, सुज्ञात अथवा सीधीसादी बात का लाक्षणिकता-विहीन उल्लेख हो, जैसे 'प्रतिज्ञा', 'प्रायश्चित', 'कला का पुरस्कार', 'दो बहनें' आदि। ऐसे शीर्षकों में पाठक पहले ही से कोई बुरी धारणा बना लेता है और कहानी में निम्नकोटित्व का आरोप कर देता है। अधिकांश कहानियों के शीर्षक इसी श्रेणी के होते हैं। चौथे, जब कहानी के प्रारम्भ में ही उसकी पुनरावृत्ति हो या प्रारम्भ अथवा मध्य में उसकी 'सिद्धि' हो जाय, अर्थात् उसका भाव और उस भाव का किसी बात अथवा पात्र के साथ लगाव स्पष्ट हो जाय, जैसे यदि किसी कहानी का शीर्षक 'पागल' है तो कहानी के प्रारम्भ अथवा मध्य में पाठक का परिचय किसी ऐसे व्यक्ति के साथ करा दिया जाय जो पागल हो। सफल शीर्षक की पाँचवी अवस्था वह होती है जब कि कहानी के अन्त तक उसकी सिद्धि न हो। आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से चौथी और पाँचवी अवस्थाएँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

असफलताओं का निराकरण—कुछ विशेष परिस्थितियों में प्रायः इन सभी अयोग्यताओं का परिहार भी सम्भव है। यह परिहार अधिकाश में पाठक की मानसिक स्थिति से ही सम्बन्ध रखता है। यहाँ हम इन शीर्षकों को परिवर्तन करने की बात नहीं करते, प्रत्युत कुछ परिस्थितियों में वर्तमान 'मृत' अथवा 'रुग्ण' शीर्षक ही स्वस्थ व सजीव लगने लगते हैं। वे परिस्थितियाँ कौन-सी हैं?

प्राचीन शीर्षक—पहली अवस्था में, अर्थात् जब कहानी का शीर्षक प्राचीन पद्धति का आश्रय लिये हो। उसमें रोचकता तब आजाती है जब कहानी का कथानक व उसकी शैली बिलकुल नवीन ढांचे की हो, जैसे 'छोटा राजकुमार' शीर्षक कहानी का प्रारम्भ। उदाहरणार्थ, आजकल के किसी बड़े शहर के किसी होटल में गपशप लड़ाते हुये एक मित्र-परिकर के दृश्य से किया जाय। शीर्षक

द्वारा अनुमानित वातावरण और कहानी के प्रस्तुत वातावरण में यह जो वैषम्य दिखाई पड़ता है वह कहानी को सजीव बना देता है। श्री जैनेन्द्र की कतिपय कहानियाँ इसी शैली की हैं।

नाम शीर्षक—दूसरी अवस्था में परिहार कुछ कठिन प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि पाठक को आपके किसी पात्र के नाम से कोई मोह नहीं होता। वह न तो उस पात्र से, जिसके नाम का शीर्षक प्रतिनिधित्व करता है, किसी प्रकार परिचित ही होता है, न केवल शीर्षक उस पात्र की किसी चरित्रगत विशेषता का उद्घाटन ही कर सकता है। अतः ऐसे शीर्षक सर्वथा आकर्षणहीन होते हैं। विशुद्ध नामों के अतिरिक्त ऐसे शीर्षकों में जब वैसी ही कोई और बात जुड़ी होती है तब भी उनकी यही दशा होती है। जैसे, 'इब्राहीम की माँ'। हाँ, जब ऐसे नामों का सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक अथवा पौराणिक पात्रों से होता है तब ये शीर्षक अवश्य हमारे काल्पनिक आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं। इसका स्पष्ट कारण यह है कि हमारे संस्कार अपने अतीत इतिहास से विशेषतया जुड़े रहते हैं और उससे सम्बन्ध रखने वाली किसी बात का पुनस्मरण करके हमारी कल्पना को रुचिकर भोजन मिलता है। कभी-कभी जब पात्र विशेष अनुभूतियों का उत्पादक हो तब भी नाम शीर्षकों की असफलता का परिहार हो जाता है। जैसे 'लबडधोधो'। इस शीर्षक से पाठक के हृदय में हास्य और विस्मय जनित एक विशेष प्रकार की गुदगुदी होती है जो कहानी को आकर्षक बना देती है। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के अतिरिक्त जातिवाचक संज्ञाओं का बोध कराने वाले भी ऐसे शीर्षक कभी-कभी देखे जाते हैं जो सफल होते हैं, जैसे, 'देवदासी'। इसके अतिरिक्त श्लेषार्थी नाम शीर्षक पूर्णरूप से असफल नहीं होते, जैसे, 'शान्ति'। यह कहानी की नायिका का भी नाम है और कहानी की कथावस्तु का परिणाम सूचित करने वाली भाववाचक संज्ञा का भी।

अत्यन्त सरल शीर्षक—तीसरी अयोग्य अवस्था, अर्थात् लाक्षणिकता विहीन सीधी-सादी जातिवाचक अथवा भाववाचक संज्ञाओं के प्रयोग का परिहार तब सम्भव है जब कहानी की कथा में उनकी 'सिद्धि' कुछ भंगिमा लिए हो। दूसरे शब्दों में, शीर्षक से जो साधारण अर्थ निकलता हो उसका उसी रूप में कहानी में उपयोग न हो, बल्कि उसी से मिलता जुलता कोई विचित्र अर्थ निकलता हो। व्यङ्ग-शीर्षकों का महत्त्व इसी दृष्टि से होता है। श्री जैनेन्द्र की 'मौत के बाद' कहानी की सफलता इसी बात पर निर्भर है। देखने की बात यह है कि ऐसी कहानियों में शीर्षक का महत्त्व सबसे अधिक होता है। पाठक

सांस रोककर उस शीर्षक की सिद्धि की प्रतीक्षा करता है जबकि कहानी के अन्त में उसके अनुमान से सर्वथा भिन्न किसी और ही अर्थ की निष्पत्ति अकस्मात् हो जाती है। प्रत्यक्षत: दोषयुक्त शीर्षकों की कोटि में आने वाले ऐसे ही शीर्षक अच्छी कहानियों के प्राण होते हैं। जहाँ अच्छी कहानियों में योग्य शीर्षक (जिनकी श्रेणी का संकेत ऊपर किया गया है) नहीं मिलते, या अधिक सचाई यह कि कहानीकार वैसे शीर्षकों के निर्वाचन में अपना समय नष्ट नहीं करता, वहाँ ऐसे ही अयोग्य प्रतीत होने वाले शीर्षकों का प्रयोग होता है, बहुत अधिक मात्रा में कदाचित आशातीत रूप में और सफल। कहानी की शैली के आलोचकों को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

पूर्वसिद्ध शीर्षक—शीर्षक की अयोग्यता की चौथी अवस्था वह है जिस में उसकी सिद्धि कहानी के प्रारम्भ ही में अथवा उसके मध्य में हो जाय। पहली और तीसरी अवस्थाओं के समान इसका सम्बन्ध भी केवल शीर्षक से नहीं होता, प्रत्युत उसकी योग्यता अथवा अयोग्यता पर निर्णय देने से पहले आलोचक पाठक में ईषत् धैर्य का आरोप कर देता है ताकि वह कहानी को पढ़कर शीर्षक की श्रेष्ठता आदि पर अपनी सम्मति दे। अस्वाभाविक होते हुए भी यह अवस्था सर्वथा अप्राप्य नहीं होती। इसी से इसका विवेचन यहाँ किया जारहा है। किन्तु कुछ अंशों में यह चौथी अवस्था पहली अवस्था और तीसरी अवस्था के बिलकुल विपरीत नहीं तो सदा असंगत अवश्य नहीं पड़ती। क्योंकि परिहार का प्रश्न उत्पन्न होने से पहले ही उन अवस्थाओं में शीर्षक प्रारम्भ में असफल कहा जा सकता है, परिहार के बाद चाहे वह अवस्था न रहे। चौथी अवस्था में शीर्षक स्वयं चाहे जितना रोचक हो, और तदर्थेण सफल प्रतीत होता हो, यदि उसकी सिद्धि कहानी के बीच में कहीं हो जाती है तो उसकी सफलता पर तुषारापात हो जाता है। परिहार का प्रश्न तब कहीं जाकर उत्पन्न होता है। यदि शीर्षक स्वयं रोचक नहीं हुआ तो समस्या और भी विकट हो जाती है।

इस अवस्था का परिहार भी सामान्यत: अत्यन्त कठोर और असाधारण अवस्था में ही सम्भव है, क्योंकि शीर्षक की योजना का एक मूल उपादान लक्षण यह है कि उसका आकर्षण कहानी के अन्त तक बना रहना चाहिये। इसी बात पर अधिकांश अंशों में कहानी भर का आकर्षण रहता है। अतः घटना आदि से सम्बन्ध रखने वाले जिस उद्देश्य को लेकर कहानी का शीर्षक खड़ा होता है, वह उद्देश्य यदि कहानी समाप्त होने से पूर्व ही पूरा हो जाता है तो शीर्षक की अपूर्णता चट से प्रकट हो जाती है। अच्छे कहानीकार ऐसी अवस्था को न आने देने के प्रति सदैव सजग रहते हैं।

इसका एक उपाय यह भी है कि प्रत्यक्षत: ऐसा भले ही लगे कि शीर्षक की सिद्धि कहानी के मध्यान्तर ही में हो गई हो, किन्तु वास्तव मे ऐसा न हो। इसके लिये बडे कौशल की अपेक्षा होती है। शीर्षक का चुनाव ऐसी रीति से किया जाता है कि उसमें कल्पना की अधिक से अधिक गुञ्जायश हो और शीर्षक साधारण से साधारण भाव, वस्तु अथवा पात्र आदि का द्योतक हो, ताकि उसे लेकर पाठक के पास नियमित विचार-प्रणाली के लिये कम से कम अवकाश हो।

यह अवस्था तीसरी अवस्था के परिहार से कुछ मिलती सी है। अन्तर इतना ही है कि तीसरी अवस्था में एक लाक्षणिक चमत्कार पाया जाता है जो इसमें नही पाया जाता। उदाहरण के लिये, "पागल" शीर्षक को लें। इस शीर्षक वाली किसी कहानी का एक पात्र (नायक हो तो कोई आपत्ति नही) ऐसा चित्रित किया जाय कि वह पागल प्रतीत हो, उसके व्यवहारो आदि से यह बात पुष्ट की जाय और पाठक के मन में शीर्षक की योग्यता की बात जमने दी जाय। (यह एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका हम उल्लेख कर रहे है।) एक ओर पाठक इस प्रकार के शीर्षक के सम्बन्ध मे कोई कौतूहल की सामग्री न देख कर निराश होगा, और दूसरी ओर उस पागल से सम्बन्ध रखने वाली मूल घटना का पर्यवसान कैसे और कहाँ होता है, तथा उस घटना के द्वारा वह पागल किस प्रकार प्रभावित होता है, इस प्रतिक्रियात्मक जिज्ञासा के कारण उसका आकर्षण कहानी में जीवित रहता है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि सहृदय पाठक एकदम शीर्षक को सिद्ध देख कर ही कहानी के पढने के लाभ को नही खो बैठता, प्रत्युत् अन्य लोभो के वश उसे आद्यन्त पढने को उत्सुक रहता है। मुडाव का स्थल वहाँ आता है जब कहानीकार अन्त में या अन्त के कुछ समीप यह सकेत सिद्ध अथवा प्रकट करदे कि जिस नायक को हम अभी तक पागल मानते आये हैं, वह पागल नही, बल्कि यातो उसमें पागलपन का आरोप है या उसको पागल मानने वाला शेष जगत पागल है। तभी शीर्षक की अयोग्यता की चौथी अवस्था का परिहार हो जाता है।

चरित्रप्रधान कहानियो में यह परिहार केवल पाठक को उक्त 'साधारण' अवस्थाओ में रखने के ही द्वारा सिद्ध हो सकता है। —(उदा० खजांचीबाबू)

असिद्ध शीर्षक—अयोग्यता की पाँचवी अवस्था का परिहार भी आख्यायिका के विधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। हास्यरूप मे लें तो इस अवस्था को "जन्म से अन्धे, नाम नयनसुख" वाले मुहावरे से प्रकट किया जा सकता है। जिस शीर्षक की सार्थकता कहानी भर म कही भी नही प्रतीत होती हो उसके

प्रयोग का क्या अर्थ ? ऐसे शीर्षक से तो शीर्षक का न होना ही अच्छा। यदि किसी ऐसी अवस्था की कल्पना की जा सकती है तो यह बात विवादमुक्त है कि ऐसा शीर्षक पाँचो प्रकारो के शीर्षको में सबसे अधिक असफल होता है। और यदि ऊपर से दीखने पर शीर्षक अत्यन्त रमणीय हो और उसकी सिद्धि कहानी भर में न हो तो स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। और लेखक को "काटो तो खून नही" वाली अवस्था को प्राप्त होना पडता है।

इसी से मिलती अवस्था वह होती है जिसमें शीर्षक की सिद्धि अपूर्ण रूप से हो, अर्थात् शीर्षक से जितना भाव प्रकट होता है उतना सब भाव कहानी में रूपान्तर मे घटित न होता हो। दूसरे शब्दो में, जब कि शीर्षक की सवेदना कहानी की सवेदना से अधिक बलवती हो।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रतीत होगा कि ऐसे असिद्ध शीर्षको की योजना कहानी कला के विधान से अनभिज्ञ, अनुभवहीन, आवश्यकता से अधिक उत्साही, भावुक नवयुवको (जिनमें नवयुवतियाँ भी शामिल है) के हाथो होती है जो प्रयोगवाद के कुत्सित रूप में विश्वास रखते हैं। और बात-बात में उसका आश्रय लेते रहते है। जो महानुभाव कहानी लिखने से पूर्व ही शीर्षक की उचित व्यवस्था कर लेते हैं, उन्हे भी कभी-कभी इसी आलोचना का शिकार होना पडता है।

पूर्णता की दृष्टि से असफल शीर्षको की पाँचवी दशा (सम्पूर्ण कहानी भर मे उसके घटित न होने की दशा) की गणना अवश्य कर दी गई है, किन्तु वास्तव में ऐसी अवस्था देखी बहुत कम जाती है। शीर्षक का अर्थ ही यही होता है कि कहानी भर में प्राप्त होने वाली घटना को एक-दो शब्दो में गुम्फित कर दिया जाय और उसका उद्देश्य पाठक के लिए उन एक-दो शब्दो में कहानी की रूपरेखा उपस्थित कर देना होता है। प्रत्येक कहानी-लेखक को इस तथ्य का ज्ञान रहता है और वह इस ज्ञान का उचित रूप से उपयोग भी करता है। अतः सम्पूर्ण रूप मे पाँचवी अवस्था के लिए प्रायः अवकाश नही होता। हाँ, कभी-कभी ऐसा अवश्य होता है कि शीर्षक इतना 'कुटिल' होता है कि उससे कहानी का भाव झट से प्रकट नही होता। कभी-कभी कहानी को पढ चुकने पर भी शीर्षक की सार्थकता समझ में नही आती। ऐसे शीर्षक, जो प्रायः रूपक प्रणाली को लेकर चलते है प्रायः एक विशेष भावभूमि से नियोजित होते है और सामान्य अर्थ स्तर से ऊँचे होते है। 'जोक', 'गिरगिट', 'हाथी के दाँत', 'साए' आदि शीर्षक इसी कोटि में आते है। प्रचलित प्रसङ्ग की भाषा मे उनका भावानुवाद कर देना ही उक्त पाँचवी अवस्था का परिहार है।

शीर्षको का वर्गीकरण—कहानी के शीर्षकों को तीन-चार स्थूल भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) वस्तु के अनुसार, (२) रचना के अनुसार, (३) कौतूहल उत्पन्न करने की शक्ति के अनुसार और (४) कहानी में शीर्षक कहाँ घटित होता है इस दृष्टि से।

(१) जहाँ तक वस्तु का सम्बन्ध है इसका निर्देशन बड़ी सरलता से हो सकता है। शीर्षक या तो मुख्य पात्र के नाम पर या कहानी के प्रधान विषय, भाव अथवा रस के आधार पर या कहानी की प्रधान घटना का चित्रण करते हुए रखा जा सकता है। पहिले का उदाहरण 'सुखदा', दूसरे का उदाहरण 'बुढापा', तीसरे का 'गृह-दाह', 'आंधी', 'ईदगाह', 'स्वर्ग का खण्डहर' आदि है। इसी प्रकार काल (वर्ष, मास या दिन) के आधार पर भी शीर्षक की नियुक्ति हो सकती है। यह वर्गीकरण अत्यन्त प्रचलित है, और एक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी है। इसी के आधार पर विशेष रूप से कहानी में पाठक का आकर्षण स्थापित होता है।

(२) रचना अथवा निर्माण की दृष्टि से शीर्षक का नियोजन बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है फिर भी पूर्णता की दृष्टि से इसका विवेचन आवश्यक है। जहाँ वस्तु का सम्बन्ध शीर्षक की आत्मा से होता है, वहाँ रचना का सम्बन्ध उसके ऊपरी ढाँचे से है। इसके चार-पाँच उपवर्ग हो सकते हैं—(अ) शीर्षक एक-दो शब्दों में हो अथवा एक सम्पूर्ण वाक्य में। दोनो प्रकार के उदाहरण कहानी में देखने को मिलते हैं। दूसरी श्रेणी के उदाहरणों में "दुखवा कासे कहूँ मोरी सजनी" और "यह किसकी तसवीर है ?" गिनाये जा सकते हैं। पहिले प्रकार के शीर्षकों में आकर्षण किस बात में निहित रहता है और इसकी क्या कमियाँ होती हैं इसका विवेचन ऊपर की पंक्तियों में हो चुका है। वाक्य शीर्षकों का आकर्षण स्वाभाविक होता है। उसकी व्यवस्था कुछ भङ्गिमा लिए हुए होती है। हमारे प्राचीन साहित्य में इसका उदाहरण नहीं मिलता। इसका प्रचार इतर-साहित्य के संयोग से हुआ है। कदाचित यह हमारे यहाँ उर्दू या अंग्रेजी साहित्य की देन है।

(आ) कभी-कभी शीर्षक कुछ विशेष शब्द भेदों (parts of speech) के आधार पर होते हैं। जैसे शीर्षक में केवल एक प्रश्नवाचक चिह्न मात्र रहता है। इस प्रकार के शीर्षकों की योजना का आधार यही है कि भावों को कम से कम भाषा में व्यक्त किया जाय और इस प्रकार ये स्वयं कहानी की योजना के उद्देश्य के अनुरूप होते हैं। भाषान्वय करने पर ये शीर्षक अन्य शीर्षकों की

अधिक परस्पर असङ्गत पदो को एक साथ रख दिया जाता है। एव इनका निर्माण प्रायः एक से अधिक शब्दो से होता ह।

(आ) अपरिचित या अस्वाभाविक शीर्षक, जैसे 'नाई श्रमजीवी सङ्घ', 'आत्महत्या-निवारक सङ्घ', 'महिला पुलिस' आदि।

(इ) वाक्यो वाले शीर्षक, जैसे 'मुगलो ने सल्तनत बख्श दी'।

(ई) एक शब्द वाले शीर्षक, जिनमे भाव प्रवणता की मात्रा अन्य शीर्षको की अपेक्षा अधिक हो, जैसे 'आँखे', 'परम्परा', 'मौत', 'राख', 'बिल्ली' आदि।

(उ) व्यग झलकाने वाले शीर्षक, जैसे 'खुदा की याद', 'आशीर्वाद', 'वैद्य शिरोमणि' आदि।

शीर्षक में कौतूहल की अवस्थिति किस प्रकार हो इसका विवेचन करना कुछ कठिन है क्योकि इसके लिए कहानी साहित्य में कोई बँधे बँधाए नियम नहीं है। शैली के सम्बन्ध में कहा जा चुका है कि कुछ विशेष शब्दो के परस्पर सयोग अथवा सङ्घटन से लेख आदि में चमत्कार आ जाता है। इसी सिद्धान्त का उपयोग यहाँ भी करना चाहिए। इस सम्बन्ध में केवल एक या दो बाते कही जा सकती हैं। शैली में रोचकता तभी आती है जब उसमें कुछ नवीनता हो। इसी प्रकार साधारण अर्थ वाले शब्दो का प्रयोग केवल उन्ही अर्थों में न किया जा कर किन्ही अन्य अर्थों में किया जाय तब भी शैली आकर्षक हो जायगी। प्रतीको की बात भी ऊपर कही जा चुकी है।

(४) शीर्षक के भेद का चौथा आधार उसकी कहानी में कहा सिद्धि होती है यह बात है। शीर्षक या तो कहानी के प्रारम्भ में अथवा कही उसके मध्य में और कही कहानी के अन्त में घटित होता है। इनमें पिछली अवस्था अधिक देखने में आती है। इस दृष्टि से शीर्षको को आदि शीर्षक, मध्यशीर्षक या अन्त-शीर्षक की सज्ञा दी जा सकती है। इसका अर्थ यह नही कि उन शीर्षको का सम्बन्ध केवल कहानी के आदि, मध्य या अन्त ही से होता है। इसके विपरीत यदि इस बात का ज्ञान पाठक को हो कि शीर्षक कहानी के किस स्थान पर घटित होता है तो उसकी कहानी के प्रति धारणा कुछ निर्दिष्ट हो जाती है।

अन्तशीर्षको का कुछ दिन पूर्व एक विशेष प्रयोग देखने मे आया था। निम्न स्तर की कहानियो में यह प्रयोग आज भी कदाचित चलता है। वह प्रयोग है—कहानी की समाप्ति के अवसर पर शीर्षक को उल्लिखित कर दिया जाय। प्रेमचन्दजी की अधिकाश कहानियाँ इसकी अपवाद नही है। 'बड़े घर की बेटो' शीर्षक कहानी का अन्तिम अश इस प्रकार है—

"गाँव में जिसने यह वृत्तान्त सुना उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता को सराहा--"बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती है।"

कहानी का सारांश तो प्रायः कहानी के अन्त में आ ही जाया करता है, इस सब घटनाचक्र को लेखक जो नाम देता है उसे सार्थक घोषित करने की प्रवृत्ति इस प्रक्रिया के मूल में काम करती हुई दिखाई देती है। यह ऐसी ही बात है जैसे शेर को मार कर शहर में आने वाला शिकारी सबसे इस बात को कहे कि मैं शेर को मार कर आया हूँ। यद्यपि मरा हुआ शेर वह साथ ही में लाता है। शीर्षक कहानी में कही न कही घटित हो जाय, यही पर्याप्त है, उसके विषय में यह कहने की क्या आवश्यकता है कि "लो, यह घटित हो गया! देखिए हमारी करामात! हम कोई फालतू के शीर्षक थोड़े हो रखते है।" अच्छे कहानीकार अब इस बात के महत्व को समझने लगे है कि एक बात को दो बार तो लिखने की आवश्यकता है ही नही, अपितु वह कहानी-कला और उसके रसिक पाठकों की कौतूहलवृत्ति तथा सवेदनशीलता के प्रति घोर अपराध है।

अन्य साहित्यों के शीर्षक—शीर्षक के विषय में कदाचित एक ही बात पर विचार करना शेष रह गया है। कहानी के शीर्षकों में व अन्य साहित्य-विधाओं जैसे निबन्ध, कविता, उपन्यास, आत्मकथा आदि के शीर्षको मे क्या किसी प्रकार का वैधानिक अथवा शैलीगत भेद है और यदि है तो किस प्रकार? प्रश्न कुछ नया सा है। नयेपन के ही कारण इसमें कुछ अटपटापन भी है, किन्तु यह प्रश्न महत्वहीन नही, क्योंकि इससे कहानी के पूर्ण रूप को समझने में हमें सहायता मिलती है।

प्रश्न के उत्तर के लिए इसे दो भागो में विभक्त कर लेना सुविधाजनक होगा। एक तो ऐसे साहित्य जिनका कहानी से कुछ निकट सम्बन्ध हो, चाहे यह सम्बन्ध शैली (कथा आदि विषयक हो, या वृत्ति अथवा विस्तार विषयक (देखिए कहानी के वर्गीकरण वाला प्रकरण) दूसरी ओर ऐसे साहित्य को ले लेना चाहिए जिसका कहानी से अकिंचन अथवा कम सम्बन्ध हो। पहले वर्ग के साहित्य में उपन्यास, निबन्ध, एकाकी नाटक व मुक्तक काव्य आते हैं। दूसरे वर्ग के साहित्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, आत्मकथाएँ आदि है। इस वर्गीकरण का अर्थ यह होगा कि ऐसा साहित्य जिसका कहानी से निकट सम्बन्ध है कहानी के ढाँचे के ही शीर्षक का चुनाव करता है, दूसरी ओर वह साहित्य जिसका कहानी के साथ कोई सीधा सम्बन्ध न हो, शीर्षक के चुनाव में उन्ही बातो का ध्यान नही रखता जिनका ध्यान कहानी रखती है। इस सिद्धान्त की परीक्षा करते समय इस बात से प्रभावित नही होना चाहिए कि जिस प्रकार कहानी का

शीर्षक उसकी वस्तु की ही अभिव्यक्ति एवं उसका प्रतिनिधित्व करती है, ठीक उसी प्रकार अन्य साहित्यो के शीर्षक भी। यह बात अवश्य दोनो में समान है; पर दोनो की अभिव्यक्ति की प्रणालियो में जमीन आसमान का अन्तर है। जैसे, कथातत्व-साहित्य मे तथा अशवृत्तिपरक साहित्य में शीर्षको में जिस भगिमा व लाक्षणिकता को अवकाश है वह वर्णनात्मक अथवा सम्पूर्ण वृत्तिपरक साहित्य के शीर्षको में नही। आत्मकथाओ, महाकाव्यो के शीर्षक प्रायः सीधेसादे और अरोचक होते हैं। केवल शीर्षक द्वारा साहित्य विशेष में आकर्षण उत्पन्न करने की परम्परा ऐसे साहित्यो की नही है। इसका कारण यह है कि ऐसे साहित्य स्वयं अपने आप में इतने विशद व महत्वपूर्ण होते हैं कि उनके लिए शीर्षको का कोई विशेष महत्व नही होता। इसके विपरीत कथा साहित्य में चाहे वह बडा हो चाहे छोटा, उपन्यास हो अथवा कहानी, उसमें रोचकता का अपरिहार्य स्थान है; शीर्षक पहला सोपान है जिससे उस रोचकता की प्राप्ति की जा सकती है। अशवृत्तिपरक साहित्य में, जिसका विस्तार बहुत कम होता है, उसके प्रत्येक उपकरण का व्यष्टिगत और सामूहिक महत्व होता है और जब तक उसका शीर्षक विशेष लाक्षणिकता लिए हुए न हो, उसके सम्पूर्ण महत्व की व्यापकता मे काफी कमी आ जाती है।

यह तो हुई सामान्य बात। इसके अतिरिक्त शीर्षक की दृष्टि से कहानी का उन्ही साहित्यो से क्या अन्तर है जो कहानी के अपेक्षाकृत निकट होते हैं इस पर विचार कर लेना चाहिये। उपन्यासो के शीर्षक प्रायः कहानियो के शीर्षको के अनुरूप ही होते हैं, पर कहानियो में सक्षिप्तता के फलस्वरूप उसके शीर्षकों मे विदग्धता एव सम्प्रेषणीयता की मात्रा कुछ अधिक होती है। हाँ, आजकल की प्रयोगवादी शैली के अन्तर्गत उपन्यासो के शीर्षक भी कुछ अजीब लाक्षणिकता लिए हुए दिखाई पडते हैं, जैसे, प्रेत और छाया (इलाचन्द्र जोशी), दिन के तारे (नरोत्तम नागर), टेढे मेढे रास्ते (भगवतीचरण वर्मा), गिरती दीवारे (उपेन्द्रनाथ अश्क), नदी के द्वीप (अज्ञेय) आदि। प्रयोगवाद के अतिरिक्त उपन्यासों की सापेक्षिक लम्बी जीवनावधि व उनका विस्तृत अनुशीलन क्षेत्र उनके टेकनीक में स्थायित्व लाने का विशेष कारण है जिसमें वचन-वक्रता का सहयोग निश्चित है। यह कहना अनावश्यक होगा कि हिन्दी में प्रयोगवाद की यह नई लाक्षणिकता छायावाद की लाक्षणिकता से पर्याप्त अंशों में प्रभावित है। किन्तु इतना होते हुए भी ये सभी उदाहरण आज की परिस्थितियो में भी अपवाद-स्वरूप ही माने जाने चाहिए और कहानी के शीर्षकों की लाक्षणिकता

उपन्यासों की अपेक्षा निर्विवाद रूप से अधिक है। इसके अतिरिक्त उपन्यासो में कुछ ऐसे विशेष प्रकार के शीर्षकों का उपयोग अच्छा नही लगता जो कहानी में आसानी से खप सकते हैं, जैसे, प्रश्नवाचक चिन्ह, सख्याओ के अथवा विदेशी भाषा के शीर्षक।

पूरे नाटकों के शीर्षकों के विषय में भी प्रायः वही बात कही जा सकती है जो उपन्यासो के शीर्षकों के विषय में।

एकाङ्की नाटको के शीर्षको का चुनाव कहानी के शीर्षको के चुनाव के आधार पर सुरक्षितता से हो सकता है।

निबन्ध में यद्यपि कथातत्व का अभाव होता है, किन्तु उसकी अंशवृत्ति-परकता कहानी का भी एक गुण है जिससे कि उसके शीर्षक का चुनाव भी करीब-करीब कहानी के अनुरूप होता है। किन्तु दोनो में जो स्पष्ट और विशाल अन्तर है वह यह कि कहानी का शीर्षक अधिक से अधिक रहस्यमय होता है, जब कि निबन्ध का शीर्षक अधिक से अधिक स्पष्ट। यह अन्तर कथातत्व के क्रमशः अस्तित्व और अभाव का परिणाम है। इमी के फलस्वरूप सिद्धिपक्ष में निबन्ध का शीर्षक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भांति धीरे-धीरे विकसित होता है और पूर्णिमा तक (अर्थात् अन्त तक) सम्पूर्ण कलामय हो जाता है, जबकि कहानी के शीर्षक का प्रायः ज्वालामुखी के विस्फोट की भाँति आकस्मिक रूप से उद् घाटन होता है।

मुक्तक काव्य का शीर्षक भी कथातत्व के अभाव में कहानी के शीर्षक से कई रीतियों में भिन्न होता है। हाँ, काव्य का निकटतम रूप होने के कारण उसमें लाक्षणिकता का सन्निवेश विशेष रूप से हो सकता है। कहानी इस सम्बन्ध में निश्चय ही पीछे रहेगी। कथातत्व के अभाव में निबन्ध आदि की भांति इसमें भी कौतूहल को कोई स्थान नही है।

कहानी का प्रारम्भिक स्थल—शीर्षक के बाद कहानी का मूल भाग प्रारम्भ होता है। इस मूल भाग का प्रारम्भिक अंश कहानी कला की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। कहानी में आकर्षकता लाने की दृष्टि से शीर्षक के बाद इमी की गणना होती है। शीर्षक की रोचकता यहाँ आकर कुछ बिस्तृत रूप धारण कर लेती है और इस प्रक्रिया में कदाचित् अधिक सूक्ष्म हो जाय तो आश्चर्य नही। किन्तु किसी भी अवस्था में कहानी के प्रारम्भिक अश में रोचकता का सर्वथा अभाव कहानी-कला के प्रति एक भारी व अक्षम्य अपराध है। इसके विपरीत इस अंश में उतनी ही रोचकता होनी चाहिए जितनी कि शीर्षक में। और उन कहानियों में जिनमें शीर्षक कुछ निर्बल या कम रोचक होता है, कहानी

के आकर्षण का प्रायः नब्बे प्रतिशत उत्तरदायित्व उसके श्रीगणेश के स्थल पर ही आ पडता है।

प्रारम्भिक अंश की सीमाएँ—यह बात सर्वमान्य है कि कहानी का प्रारम्भ सुव्यवस्थित होना चाहिए[1]। क्योंकि well begun is half-done. किन्तु कहानी के कितने अंश को उसका 'प्रारम्भ' मानें, इस पर मतभेद हो सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसकी विवेचना करना भी कठिन है।

ऐसा लगता है कि केवल व्यावहारिक सुविधा को देखते हुए कहानी की 'प्रारम्भिक पाँच दस पंक्तियाँ' ही कदाचित इस जाँच के लिए पर्याप्त हैं। यह स्पष्ट है कि शीर्षक के बाद पाठक जिस बात से प्रभावित होता है वह कहानी की आरम्भिक पाँच दस पंक्तियाँ ही है। वह इन्ही ५–१० पंक्तियो को देखकर ही कहानी की ओर आकृष्ट अथवा अनाकृष्ट होगा। इतना तो हम मानकर चलते हैं कि वह इतना अधैर्यवान नही है कि जब उसने कहानी पढने का विचार कर लिया हो तो वह केवल इसीलिए कि उसकी पहली एक पंक्ति उसके लिए रस होन है उस कहानी से किनारा कर जाय। वह आरम्भ की चार पाँच पंक्तियाँ तो पढेगा ही। कहानी के स्टैन्डर्ड आदि की परीक्षा करने के लिए इतना तो आवश्यक है ही (और यह भी सही है कि इन पाच-दस पंक्तियों की सीमा लिखाई या छपाई की कृपा पर अवलम्बित है। किसी के प्रारम्भ में छापते समय कोई चित्र दे दिया जाय और एक पंक्ति में ३–४ शब्द ही आवें तो उस सीमा तक प्रारम्भ की पाँच दस पंक्तियो को अधिक बढाया जा सकता है।)

विशेष दशाएँ—इसके साथ ही एक दो अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें कहानी के प्रति पाठक की रुचि का निर्धारण केवल उसके पहले एक दो वाक्यो को देखकर हो सकता है। जैसे, आज का पाठक इस प्रकार की प्रारम्भ की हुई कहानी को बिना किसी सोच विचार के छोड देगा। "एक था राजा। उसके सात पुत्र थे और एक कन्या। कन्या जब विवाह के योग्य हुई तो राजा ने अपने पुत्रो को देश देशान्तरो में वर ढूँढने के लिए भेजा।" इसका कारण यह है कि ऐसे प्रारम्भो से सारी कहानी की गतिविधि उसके उद्देश्य आदि का तत्काल आभास हो जाता है जो घटनात्मक साहित्य के आधारभूत सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। शाश्वत कुतूहल ही कहानी का लक्ष्य होना चाहिए और जो कहानी अपने किसी भी उपकरण द्वारा इस कुतूहल से जितनी अधिक दूर जायगी वह कहानी उतनी ही अधिक असफल होगी। अच्छी कहानियो में मै उन्हे मानता हूँ। जिनमें

[1] The short story must have a well-knit beginning. E. A. Poe.

'रस्सी जल गई पर ऐंठ न गई' वाली कहावत चरितार्थ होती हो। अर्थात् कहानी के समाप्त होने के पश्चात् भी पाठक कुछ सोचता रह जाय। और जो कहानियाँ प्रारम्भ ही मे कोई ऐसा वातावरण उपस्थित कर देती हैं जिनके प्रति पाठक के पूर्वाग्रहीत होने की सरासर सम्भावना है तब तो निश्चय ही जानिए कि कहानी फेल।

यही बात पाठक विशेष की रुचि के लिए है। किन्हीं महानुभावो को ऐतिहासिक कहानियाँ पसन्द नही होती, कोई महाशय जासूसी कहानियो के खुलते ही नाक भो सिकोडने के अभ्यासी हैं। ऐसी कहानियाँ जिनका वातावरण ऐतिहासिक, राजनैतिक, जासूसी, अलौकिक आदि होता है अपना परिचय प्रारम्भ के एक दो वाक्यो ही से दे देती हैं। यह बात जरा कठिन है कि सभी पाठको की रुचि पूर्ति की जाय, किन्तु यदि ऐसी कहानियो में भी श्रीगणेश ही ऐसे वातावरण से उपस्थित किया जाय कि पाठक का पूर्वाग्रह आतङ्कित हो सके तो शङ्का समाधान के लिये अवकाश नही रहेगा।

जहाँ कहानी का आकार अत्यन्त छोटा होता है (जैसे खलील जिब्रान की कहानियाँ) वहाँ भी प्रारम्भ के एक दो वाक्य ही कसौटी के लिये पर्याप्त होते हैं। देखिये ऊपर उल्लिखित खलील जिब्रान का एक शब्द-चित्र यो प्रारम्भ होता है—

"लोमड़ी ने प्रातः काल होते ही अपनी छाया को देखा और कहा, आज कलेवे के लिए मुझे एक ऊँट चाहिए। ...."

केवल इसी एक वाक्य से आपके हृदय में क्या आकर्षण उत्पन्न नही हुआ ? यही कहानी के श्रीगणेश का सौन्दर्य है। कौन नही जानता कि खलील जिब्रान शैली का मास्टर है ? और लीजिये, कहानी दूसरे ही वाक्य में समाप्त हो जाती है।

"वह दिन भर घूमी और मध्यान्ह होते-होते जब उसने अपनी छाया को फिर देखा तो कहा—अरे, मुझे तो एक चूहा ही पर्याप्त होगा।

हम पुनः मूल प्रश्न की ओर आते हैं। प्रारम्भिक एक दो पङ्क्तियो के अतिरिक्त प्रारम्भ की सीमाएँ क्या है ? कही यह सीमा चार-पाँच पङ्क्तियो तक और कही (शायद लम्बी कहानियो में) एक दो पृष्ठ तक बढ जाती है। इसके अतिरिक्त इसके लिए दो एक दृष्टिकोण और भी है। क्या चरमावस्था से पूर्व की सारी अवस्था प्रारम्भ कही जा सकती है ? अथवा चरमावस्था से पूव के अंश को यदि अनिवार्यतः दो अवस्थाओ (प्रारम्भ और विकास) में विभक्त करें (यद्यपि यह विभाजन इस अवस्था में असैद्धान्तिक ही होगा) तो प्रारम्भ की

अवस्था कहाँ समाप्त होती है और विकास की अवस्था कहाँ शुरू होती है ? यह ठीक है कि प्रत्येक कहानी में प्रारम्भ और विकास का ठीक-ठीक ज्ञान कहानी विशेष को देखकर ही किया जा सकता है, किन्तु क्या इस सम्बन्ध में कोई सामान्य शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है ? इसके अतिरिक्त क्या कालक्रम प्रारम्भावस्था के निर्धारण का एक अनिवार्य आधार है ? जैसे कुछ कहानी लेखक कुतूहल की रक्षा की दृष्टि से पहले की घटना बाद में और बाद मे घटित होने वाली घटना को पहले वर्णन करना अच्छा समझते है। क्या इस अवस्था में कहानी की प्रारम्भिक पक्तियो को प्रारम्भ नही माना जाय और जहाँ से कहानी कालक्रम से प्रारम्भ होती है चाहे वह अश कहानी के बीच मे अथवा अन्त ही में आया हुआ हो वही कहानी का प्रारम्भ माना जाय ? ये सब प्रश्न विचारणीय हैं ।

जिस प्रकार नाटक की पाँच अवस्थाएँ होती है उसी प्रकार कुछ आलोचक कहानी की भी पाँच अवस्थाएँ मानते है। ये अवस्थाएँ हैं—प्रारम्भ, विकास, कुतूहल, चरम और परिसमाप्ति। इस मान्यता का आधार नाटको की उक्त अवस्थाएँ ही हैं जिनमें से 'प्रारम्भ' नियमित रूप से उनका कालक्रम का भी प्रारम्भ होता था, अर्थात् नाटक के प्रारम्भिक अश में वही बात कही जाती थी जो नाटक की कथावस्तु के कालक्रम में पहले घटित होती थी। (सूत्रधार और नान्दीप्रकरण तथा विष्कभक को हम प्रारम्भावस्था में नही गिनते।) कादम्बरी आदि प्राचीन कहानियो में भी नाटकानुरूप इसी परम्परा का पालन किया गया। पंचतत्र आदि में अवश्य पूर्वापर घटनाक्रम का कोई निश्चित मानदण्ड नही है, वहाँ प्रायः उदाहरणो के लिए या विषय के स्पष्टीकरण के लिए पहले की घटनाएँ बाद में कही जाती थी, किन्तु इस अवस्था में सम्पूर्ण पचतन्त्र को एक कहानी न मानकर उसमें आई हुई भिन्न भिन्न कहानियो को प्रस्तुत प्रसग के लिए स्वतन्त्र कहानियाँ मानना चाहिए। कहानी के प्रारम्भ के लिए समस्त संस्कृत साहित्य में कादम्बरी शैली ही अपनाई गई—पद्य की बात छोड कर। किन्तु आगे चलकर स्थिति कुछ बदल गई। हमारा जब से पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क हुआ तब से सभी क्षेत्रो में इसके टेकनीक में वक्रता आने लगी। शीर्षक के बाद प्रारम्भ के लिए भी नया क्षेत्र खुला। जो घटना बाद में घटित हुई हो उसे पहले और जो घटना कालक्रम में पहले घटित हुई हो उसे बाद में लिखना एक फैशन माना जाने लगा। आज भी यद्यपि यह फैशन अत्यन्त विस्तृत रूप में व्याप्त नही है फिर भी इसे कुछ सीमा तक आदर्श अवश्य माना जाता है।

फिर भी इस प्रकार की शैली की वक्रता से, प्रारम्भ किसे कहा जाय इस

पर सिद्धान्ततः कोई अन्तर नहीं आना चाहिए। प्रारम्भ वही से मानना चाहिए जहाँ से कहानी प्रस्तुत रूप में प्रारम्भ हुई है न कि वहाँ से जहाँ से वह अपने कालक्रम में रक्खी जाने पर प्रारम्भ होती। इसका सीधा सम्बन्ध पाठक के आकर्षण से है, न कि कथानक अथवा अन्य किसी तत्व से। सबसे पहला प्रश्न यही है कि पाठक के मन में कहानी के प्रारम्भ करते ही क्या धारणा बनती है। उस अवस्था में जिसमें कालक्रमिक प्रारम्भ कहानी के कही मध्य में प्राप्त हो, पाठक उसे देखने के लिए कहानी का प्रस्तुत प्रारम्भ छोडकर 'वास्तविक प्रारम्भ' की तलाश में लगते ही, कहानी के मैदान में चक्कर नही लगाएगा। न ऐसा करना आदर्श रूप में श्रेष्ठ है, न व्यावहारिक रूप में सम्भव। सच तो यह है कि ऐसा होता तो शैली मे प्रयोग व्यत्यय की यह वक्रता लाने की आवश्यकता ही नही पडती। इस वक्रता का एक निश्चित सिद्धान्त है जिसे हमे स्वीकृति देनी पडेगी। हम न तो वापिस ही जाना चाहते हैं न जाने को तैयार हो हैं। यह ठीक है कि कहानी के घटनाक्रम के सूत्र हमारे मस्तिष्क मे कालक्रम से ही बैठते हैं, पर यदि किसी पाठक का मस्तिष्क इतना सा व्यायाम करना स्वीकार नही करे तो हम उसे अप्रगतिशील ही कहेगे।

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि कहानी चाहे कालक्रम से प्रारम्भ हुई हो अथवा नही उसका प्रारम्भ वही से मानना चाहिए जहाँ से वह प्रस्तुत रूप मे प्रारम्भ हुई हो।

इस रूप में प्रारम्भ कहाँ तक माना जाय ? चरमावस्था का कहानी मे बडा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। गोया कि कहानी की जान भी वही होती है ? चूँकि वहाँ तक पाठक की अन्तर्वेदना तीव्रतम आकार-प्रकार ग्रहण कर लेता है और द्वन्द्व की स्थिति का सुलझाव बहुत शीघ्र होने वाला होता है जिसके बाद कहानी में कोई आकर्षण नही रहता, अतः उसका स्थान प्रायः कहानी के अन्त के समीप या कम से कम कहानी के प्रारम्भ के बहुत बाद मे होता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार चरमावस्था तक के अश को कहानी का प्रारम्भ मानना युक्तिसगत नही है। यह ऐसा ही हास्यास्पद होगा जैसे बुढ़ापे की अवस्था से पहले के सारे जीवन को जीवन का प्रारम्भ मानना। (हाँ, हम यदि दार्शनिक बनकर मृत्यु को ही जीवन का प्रारम्भ मानलें तब तो कहानी के प्रारम्भ को खैर नही है।) अतः चरमावस्था से पहले के अश को कम से कम दो भागो मे विभक्त करना ही पड़ेगा : प्रारम्भ और विकास। (कुतूहल की अवस्था पर जिसे कुछ क्षेत्रो में स्वतन्त्र अवस्था माना गया है, आगे विचार किया जायगा।)

फिर प्रश्न यह आता है कि कहानी में विकास और प्रारम्भ के बीच की

सीमा-रेखा क्या है ? विकास की अवस्था के अन्दर अन्दर कहानी के सारे चरित्रो का परिचय तथा घटना जाल एवं देशकाल-वातावरण का दिग्दर्शन हो जाता है। यह काम धीरे-धीरे भले ही हो किन्तु होता है विकास अवस्था में ही। प्रारम्भ का इसमें यदि कुछ सहयोग है तो इतना ही कि वह देशकाल की एक झलक दे देता है और एकाध (कभी कभी प्रायः सभी) पात्रो के नाम-ग्राम से पाठक का परिचय करा देता है। पात्रो की भावनाओ एव उनके कार्यों का उत्तरदायित्व प्रारम्भ अपने ऊपर लेने को उद्यत नही होता। इस तरह जहाँ घटना के कोई एक सूत्र और एक-दो पात्रो की नाम-उपाधि से पाठक की जानकारी हो जाय वही प्रारम्भ का निर्वाण-स्थल माना जा सकता है।

किन्तु जहाँ बहुत देर तक मूल घटना का कोई सूत्र या किसी पात्र का नाम धाम पकड में नही आता वहाँ पाठक उस सूत्र या पात्र के आने तक कहानी के अश को प्रारम्भ ही मानता जाय, यह बुद्धिमानी का काम नही होगा। इस प्रकार की कहानी में प्रारम्भ में जो वातावरण तैयार किया जाता है उसे ही सम्पूर्ण या आशिक रूप में कहानी का प्रारम्भ मानने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। सिद्धान्त यह है, प्रारम्भ कहानी की सर्वाङ्गीण गतिविधि की एक झाँकी मात्र प्रस्तुत करता है, उसे एक दिशा देता है। (ऊपर कहा जा चुका है कि उसे शीर्षक का ही विस्तृत सस्करण मानना चाहिये।) और इस सर्विस के लिए कहानी कम से कम मात्रा में जितना ही काल और अवकाश चाहती है उतने ही कालावकाश को प्रारम्भ कहना चाहिए। इसके लिए कोई पृष्ठो और पक्तियो की सीमा बाँधना न निरापद ही होगा न सम्भव ही।

किसी अयोमार्ग सगम (रेलवे जकशन के ऐसे सीमा-बिन्दु के पास खडे हो जाइए जहाँ से कई मार्ग भिन्न-भिन्न दिशाओ में बँटते हो। एक सयान आपके पास से गुजरा और कई मार्गों पर से आने-जाने के बाद उसने 'क' मार्ग पकडा जिस मार्ग से उसे बहुत दूर या अपने गन्तव्य स्थान तक जाना है। इससे पूर्व के पार्श्वयिन मार्गो (shunting lines) की आप चिन्ता न करें। प्रारम्भ अवस्था का श्रीगणेश कहानी में उस सीमाबिन्दु से होता है जहाँ आप खडे हो और वहाँ समाप्ति जहाँ से सयान ने 'क' मार्ग पकडा हो। कहानी के श्री गणेश की आद्योपान्त सीमारेखा इन्ही दो बिन्दुओ का अन्तर है।

'अच्छे प्रारम्भ की विशेषताएँ'—कुछ आलोचक आकर्षण को अच्छे आरम्भ की सबसे पहली विशेपता मानते हैं। इस सम्बन्ध में एक विद्वान आलोचक का मत इस प्रकार है—''आरम्भ के विषय में लेखक को अनेको बाते ध्यान मे रखनी चाहिए। प्रथम तो उसमे आकर्षण का होना अनिवार्य है।.....''

यह बात सही है कि अच्छा आरम्भ उसे ही कहेगे जिसमें रोचकता हो। किन्तु यह आरम्भ की एक भिन्न विशेषता नहीं, प्रत्युत उन सब बातों का सार है जिनसे आरम्भ अच्छा या रोचक बनता है। वैसे तो कहानी भर के लिए (और शेष साहित्य के लिए भी क्यो नही) यह आवश्यक है कि उसमें आकर्षण होना चाहिए। (हाँ, शेष साहित्य और कहानी में सौन्दर्य की दृष्टि से वही अन्तर है जो एक वारवधू और कुलवधू में होता है (पाठक भद्दे उदाहरण के लिए क्षमा करें) किन्तु कहानी का श्रीगणेश तो अनिवार्यतः रोचक होना ही चाहिए।

रोचकता कैसे ?—कहानी के इस शीर्षस्थल में रोचकता कैसे लाई जाय, यह लेखक के कौशल पर ही अवलम्बित है। ऐसे शब्दों अथवा वाक्यों का प्रयोग जो पढने में अच्छे लगें और जिनमें आवश्यक रूप से कुछ रहस्य छिपा हो अच्छे प्रारम्भ की विशेषता है। यह रहस्य हमें कहानी के उत्तरांश को पढने को लालायित करता है। यह रहस्य कहानी के किसी भी तत्व को लेकर चल सकता है। यदि स्वय शैली प्रारम्भ में रोचक है तो केवल आगे की शैली का आनन्द लेने के लिए ही पाठक कहानी को पकड कर बैठ जाता है। यदि प्रारम्भ में किसी घटना के उत्तराश का उल्लेख कर दिया जाय तो उसके पूर्वाश का रहस्य जानने के लिए ही हम कहानी को पढने लगते हैं। यदि किसी पात्र की कोई ऐसी चरित्रगत विशेषता बता दी जाय जो हमारे लिए एक नया वातावरण उपस्थित करने मे समर्थ हो तो उस वातावरण का परिपक्व रूप देखने के लिए ही हम कहानी में जुट जाते हैं। यदि किसी देशकाल की ऐसी झाँकी देदी जाय जिसमें हमें रुचि हो तो उसका बृहत्तर रूप देखने के लिए ही हम कहानी को अपने आकर्षण का आधार बना लेते हैं। यदि प्रारम्भ ही में कोई ऐसी घटना कह दी गई हो जिसका परिणाम भयंकर हो या अनपेक्षित हो तो भी हमें कहानी मे रुचि हो सकती है। यदि जाते ही कोई द्वन्द्व का वातावरण उपस्थित कर दिया जाय तो उसका निष्कर्ष निकालने के लिए ही हम कहानी को हाथ मे ले लेते हैं। इस प्रकार कहानी के प्रारम्भ में रोचकता लाने की अनेक परिस्थितियाँ है और लेखक कहानी के रस, संवेदना आदि को ध्यान में रखकर ही कोई न कोई रहस्यगर्भित परिस्थितियाँ रख देता है।

सक्षेप में अच्छे प्रारम्भ की विशेषताओं को निम्नांकित रूप में सूत्रबद्ध किया जा सकता है—

(१) कथा या पात्रो के चरित्र की झाँकी और एक कुतूहलवर्द्धक रहस्य की सृष्टि।

(२) रस, एवं वातावरण की झाँकी—ऐसा न हो कि प्रारम्भ में जिस वातावरण से पाठक अभ्यस्त हो गया हो उससे बाद मे बराबर विमुख होना पडे। इससे कहानी के प्रभाव को आघात पहुँचता है। कहानी प्रारम्भ करते ही उसका देशकाल, वातावरण, कहानी किस वर्ग की है—सामाजिक राजनैतिक, हास्यरस की, आदि इसका तत्काल ज्ञान हो जाना चाहिए। इससे पाठक को एक प्रकार का बौद्धिक सन्तोष होता है। जहाँ प्राचीन वस्तु की कहानी नवीन शैली और वातावरण उपस्थित करते हुये प्रारम्भ की जाय वहाँ भी शीघ्र ही प्राचीन वातावरण आजाना चाहिये। अन्यथा कहानी की संवेदना में अन्तर आ जायगा। इस सम्बन्ध में वर्गीकरण वाला प्रकरण देखिए।

(३) गत्यात्मकता—कहानी के प्रारम्भ में निर्जीवता न हो, प्रत्युत बल होना चाहिए। पढते ही ऐसा लगे कि कोई अज्ञात शक्ति हमे अज्ञात देश में खीचे लिये चली जारही है और हम स्वतः उसकी ओर खिचते चले जारहे हैं।

"दफा ३०२, खून का मुकद्दमा था। नगर भर में इस हत्या की चर्चा थी। अभियुक्त हथकडी बेडी से लदा हुआ कोर्ट के द्वार पर लाल पगड़ी के शासन में खडा था।

शान्तिप्रकाश ने चौक कर देखा—उसके नाम की ही पुकार हो रही थी। सिपाही लोग उसे धक्का देते हुये भीतर लेगये। वह अजायबघर के एक जन्तु की भाँति देखा जाने लगा।" —'३०२', श्री विनोदशङ्कर व्यास

शिथिलता अच्छे प्रारम्भ का एक निश्चित दोष है। उससे कहानी में निर्जीवता आजाती है। इससे सदैव बचिये। जासूसी कहानियो के प्रचार का मुख्य कारण यही है कि उनमे गति होती है।

(४) द्वन्द्व का वातावरण—पात्रों के हृदय की हलचल अथवा कथावस्तु की उलझन दोनो ही यदि कहानी के आरम्भ में अभिव्यक्त हो सकें तो कहानी की रोचकता में कोई सन्देह नही रह जायगा।

"प्रोफेसर कुञ्जबिहारी एम. ए. बिगडकर बोले—यह सब वाहियात बातें हैं। ईश्वर फीश्वर कुछ नही, सब ढकोसला है। हम लोग बहुत समय से विश्वास करने के अभ्यस्त हो रहे हैं, इस कारण हमारा हृदय ईश्वर की ओर झुकता है; अन्यथा हमारे पास ईश्वर के होने का कोई प्रमाण नही।

प्रोफेसर साहब के मित्र पण्डित अयोध्याप्रसाद बी. ए. मुस्कराकर बोले: तुम्हारे बाप-दादे तो गोबर का ढेर पूजते पूजते मर गये और अब तुम ईश्वर पर विश्वास नही करते।

प्रोफेसर साहब कुछ झेंपकर बोले—क्यों साहब, इस गोबर के ढेर से आपका क्या तात्पर्य है ?" —'नास्तिक प्रोफेसर', श्री कौशिक

(५) लम्बे चौडे विवरणो का अभाव—किसी एक बात को जिसमें वातावरण या दृश्य और चरित्र दोनो सम्मिलित हैं, प्रारम्भ में बहुत विस्तार से कहना कहानी का एक दोष है। पाठक कम से कम समय में अधिक से अधिक विभिन्नता चाहता है, यदि किन्ही बातो के लम्बे ब्यौरे उपस्थित करना प्रारम्भ कर दिया जाय तो पाठक की प्रवृत्ति निवृत्ति में बदल जाती है। अत्यन्त सजीव विवरण इसके अपवाद अवश्य हैं, पर उनमें भी शत प्रतिशत आकर्षण की गारण्टी नही ली जा सकती। कहानी को कही भी किसी भी ब्यौरे में रमने का अल्पमात्र भी अवकाश नही होता, प्रारम्भिक स्थल तो विवरणो का दुर्दम्य शत्रु है। प्रसाद ने इसी बात को लेकर कहानी की तुलना एक तेज चलनेवाली गाडी से की है जिसे अपने मार्ग में आने वाले दृश्यों अथवा प्राणियो से कोई भी मोह नही होता। वह सबकी समान झाँकी मात्र लेती चलती है। कहानी लेखकों की कहानियाँ अपने बचपन में ऐसे ही विवरणो से मुग्ध होती हुई अपने श्रीगणेश के लिए उनका सहज ही में वरण कर लेती हैं और इस प्रकार बुरी तरह असफल हो जाती हैं। सफल विवरणो का एक उदाहरण उग्रजी ने उपस्थित किया है—

"मेरी एक बीबी थी। गुलाब की तरह खूबसूरत, मोती की तरह आबदार, कोहनूर की तरह बेशकीमत, नेकी की तरह नेक, चाँदी की तरह सादी, लडकपन की हँसी की तरह भोली और जान की तरह प्यारी।"

मेरे एक बच्चा था। चाँदनी सा गोरा, नए चाँद सा प्यारा, युवती के कपोलों सा कोमल, प्रेम सा सुन्दर चुम्बन सा मधुर, आशा सा आकर्षक और प्रसन्न हँसी सा सुखद।

मेरी एक माँ थी। मसजिद की तरह बूढी, आम की तरह पकी, दया की तरह उदार, दुआ की तरह मददगार, प्रकृति की तरह करुणामयी, खुदा की तरह प्यारी और कुरानपाक की तरह पाक।"

लय ही इन वर्णनों का प्राण है।

(६) अप्रत्याशितता—कहानी के आरम्भ में एक साथ कई बातें ऐसी होनी चाहिए जो अप्रत्याशित होते हुए भी असत्य या असम्भव न हो। इससे कहानी के प्रति आकर्षण को कुछ देर स्थिर रखना सरल हो जाता है। शब्द पर शब्द, वाक्य पर वाक्य पाठक को नए लगें, ऐसे जिनकी उसने कल्पना नही की हो, पर फिर भी जो स्वाभाविक हो, सहज सम्भव हों। कहानी की शैली का यह एक बहुत बड़ा गुण है। वैसे तो कहानी भर में इस अभूतपूर्व ज्ञान का

चमत्कार होना चाहिए, परन्तु कहानी के श्रीगणेश के स्थल में इसका विशेष स्थान होता है। ऊपर दिया हुआ उग्रजी का उदाहरण इस गुण में पारङ्गत है।

(७) आकस्मिकता—कहानी के प्रारम्भ की अन्तिम, किन्तु आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से अनिवार्य विशेषता यह है कि प्रारम्भ एकदम आकस्मिक होना चाहिए। आपको ऐसा कही न लगे कि आपने कोई कहानी प्रारम्भ की है प्रत्युत जैसे कि कहानी तो पहले हो प्रारम्भ हो चुकी है और हम कही उसके बीच में जा टपके हैं। प्राचीन शैली की सभी कहानियाँ एक निश्चित प्रणाली पर प्रारम्भ हुआ करती थी। यथा—

"अत्यन्त प्राचीन काल में पुष्पपुरी नामक नगरी में जीर्णविप नामक एक सपेरा रहा करता था। ... ..."

इस प्रकार के प्रारम्भ आज इतिहास की वस्तु बन कर रह गए है और इनका प्रयोग आजकल हेय एव वर्जित माना जाता है। आजकल की कहानी यो शुरू होती हैं—

"तूफान के कारण जहाज बन्दरगाह में देर से पहुंचा। काफी अँधेरा होगया था। मेरी रेलगाड़ी छूट चुकी थी। दूसरी रेलगाड़ी चौबीस घण्टे बाद मिलने वाली थी। अनजान, छोटा सा शहर, करने को कोई काम नही, किस तरह वक्त कटे, यही प्रश्न था।" —'गली की चाँदनी', स्टीफेन ज्विग

प्राचीन और नवीन प्रारम्भ प्रणालियो का वैधानिक अन्तर—यह एक महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न है कि इन दोनो प्रकार को प्रारम्भ प्रणालियो में क्या कोई अन्तर है, यदि है तो किस प्रकार का? इस प्रश्न का शास्त्रीय रीति से विश्लेषण करना आवश्यक है।

प्राचीन शैलीकार कहानी के मूल भाग को लेने से पहले उसमे आने वाली मुख्य-मुख्य बातो का सक्षिप्त परिचय दे दिया करते थे। उक्त उद्धरण में कहानी के पहले वाक्य ही में एक साथ काल, देश व मुख्य पात्र का नाम व परिचय मिलता है। इससे जहाँ यह सुविधा होती है कि पाठक के मन मे आगे आने वाले विवरण की एक निश्चित पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है, वहा कम से कम इन्ही तीन बातो के सम्बन्ध में उसका कौतूहल वही शान्त हो जाता है। पाठक इन्ही तीन बातो को देख कर कहानी पढ़ने या न पढने का प्रायः निर्णय सा कर लिया करता है। कहानी-कला की दृष्टि से यह एक दोषपूर्ण स्थिति है।

इसके विपरीत आजकल की कहानी मे प्रारम्भ में ऐसा धूमिल, अस्पष्ट एव अपूर्ण चित्र दिया जाता है कि उसको सम्पूर्ण रूप से उघाड़ कर देखने की पाठक को इच्छा होती है। बिहारी की नायिका की भाँति उसमें नए-नए अव-

गुण्ठन है। सम्पूर्ण वातावरण का एक समष्टिगत किन्तु अपूर्ण रूप हमारे सामने आता है और हम प्रत्येक विवरण के विषय में प्रायः भौचक्के रह जाते हैं। और मजा यह कि लेखक अपनी ओर से पाठक के कौतूहल की सक्रिय शान्ति नही करता, प्रत्युत्-स्वय पाठक को शेष वातावरण की कल्पना कर लेनी पडती है। आगे की बातो को समझने के लिए उस बात को अच्छी तरह समझ लेना पडता है जो कह दी गई है। अतः वह अपनी कल्पना द्वारा रिक्त स्थानो की पूर्ति कर लेता है। इस प्रक्रिया मे प्रायः सभी पाठक समान रूप से सफल होते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि इन दोनो प्रकार के प्रारम्भो में कोई मौलिक अन्तर नही है, प्रत्युत् मानसिक ग्रहण (मैण्टल एप्रोच) के दृष्टिकोण का अन्तर है। स्टीफेन ज्विग की उक्त कहानी को आगे पढने से पूर्व पाठक अपने मन में प्रस्तुत वातावरण के शब्दो के अतिरिक्त कई बातो की कल्पना कर लेता है। इस अवस्था मे जो चित्र पाठक के मन में विद्यमान रहता है उसे यदि प्राचीन शैली में रक्खा जाय तो कहानी का प्रारम्भ कुछ-कुछ यो होगा—(हाँ, आज के पाठक का मानसिक विकास उस सीमा तक हो चुका है जहाँ इसके कृत्रिम पाठान्तर की कोई अपेक्षा नही होती।)—

"एक व्यक्ति किसी जहाज से किसी स्थान को जा रहा था। मार्ग में तूफान आने के कारण जहाज बन्दरगाह मे निश्चित समय से देर में पहुँचा। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ से स्थल यात्रा द्वारा उस व्यक्ति को जिस रेलगाड़ी से किसी स्थान को पहुंचना था वह रेलगाड़ी निकल गई। उसी स्थान के लिए जाने वाली दूसरा रेलगाड़ी चौबीस घटे बाद मिलती थी। फलतः उसे वही रहने के लिए वाध्य होना पडा। किन्तु,अँधेरा होगया था, बन्दरगाह वाले शहर से वह व्यक्ति अपरिचित था, शहर भी छोटा सा प्रतीत होता था। (इस प्रतीति का ज्ञान उस व्यक्ति को कदाचित् जनश्रुति, पुस्तक ज्ञान अथवा वहाँ के तत्कालीन वातावरण से हुआ होगा) करने को कोई उपयुक्त काम नही जिससे उसके समय का उपयोग हो सके; इन सब बातो को देखते हुए वह व्यक्ति सोचने लगा कि मूझे क्या करना चाहिए।"

इस पाठान्तर मे कोई भी ऐसी बात नही जोड़ी गई है जिसकी कल्पना लेखक के अन्तर्मन में नही रही होगी। जो शब्द जोड़े गए हैं (रेखांकित) वे पाठक की व्यासबुद्धि के परिणाम हैं और लेखक द्वारा अभिप्रेत चित्र का सम्पूर्ण रूप समझने के लिए पाठक इन्हे अपनी सुविधा के लिए मूल अश में रखना ठीक समझता है ताकि क्रमभग न हो।

इस सारी प्रक्रिया के बाद जो चित्र हमारे सामने आता है उसमे भी कुछ बाते ऐसा है जिनका ज्ञान पाठक को अभी तक नही हो सका हे । ऐसी बातो मे कुछ बातें तो ऐसी हैं जिन्हे पाठक बिना जाने अपना काम चला सकता है और उनके अभाव में कहानी के प्रभाव मे कोई अन्तर नही आता, जैसे पात्र का नाम आदि । किन्तु कुछ बाते ऐसी हैं जिनका जानना आवश्यक है और जिनकी पूर्ति पाठक अपनी कल्पना द्वारा नही कर सकता । जैसे, प्रस्तुत वातावरण किस स्थान का है, पात्र कौनसे स्तर का व्यक्ति है, आदि । इन दोनो प्रकार की बातो के विषय में सम्भव है कि आगे चलकर लेखक कुछ सकेत करे ताकि पाठक की तृष्णा शान्त हो । किन्तु ये ही बाते है जिनके सम्बन्ध में लेखक पाठक के कौतूहल को पकड़े रखना उचित समझता है । नवीन और प्राचीन शैली के प्रारम्भो का यही अन्तर है कि एक अन्तर्मुखी होता है, दूसरा बहिर्मुखी । स्पष्ट है कि कहानी कला की दृष्टि से नवीन शैली का श्रीगणेश ही अधिक उपयुक्त होता है ।

प्रासङ्गिकता और उद्देश्य—कहानी के प्रारम्भिक अश के लिए यह कहना कि उसका शेष कहानी से अनिवार्य सम्बन्ध होना चाहिए (जैसा कि कतिपय आलोचक मानते है) कदाचित कोई विशेष अर्थ नही रखता क्योकि यह बात कहानी के किसी भी अश के लिए समान रूप से कही जा सकती है । साहित्य का कोई भी रूप हो, उसका श्रीगणेश उसके उत्तराश के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य रखता है । यदि हम यह कहे कि दूसरे साहित्यो में भूमिका-स्वरूप जो कुछ लिखा जाय उसका सीधा सम्बन्ध उनके उत्तराश से नही होता, जबकि कहानी मे उसके प्रारम्भ का सीधा सम्बन्ध उसके आगे के अंश से होता है, तो इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि अन्य साहित्यो और कहानी में मूल मनोवृत्ति का अन्तर है । निबन्ध आदि मे जहाँ विस्तार ही एक गुण है, भूमिका का सीधा सम्बन्ध शेषाश से न हो, किन्तु कहानी में वही विस्तार एक दोष माना जाता है और कहानी की प्रत्येक बात का उसके शेषाश से सम्बन्ध होना अनिवार्य है । इसी प्रश्न को सक्षिप्तता के प्रकरण पर विचार करते समय लिया जा सकता है, कहानी की स्वतन्त्र विशेषता मानकर नही ।

कहानी के प्रारम्भ के विषय में यह भी कहना अप्रासगिक सा है कि उसमें कुछ विवरण ऐसे होने चाहिए कि जिनसे कहानी के उद्देश्य की ओर सकेत मिले । हमारे नम्र विचार में यह न तो आवश्यक ही है न सम्भव ही । प्रारम्भ की दो चार दस बीस पक्तियो को पढकर कैसे पता लगा सकता है कि कहानीकार क्या चाहता है ? उस समय तक न तो कथानक के मूल सूत्र पकड़ में आते है न चरित्रो की ही भली भाँति उद्‌भावना होती है । वास्तव में लेखक यह

चाहता भी नही कि उसकी बात कोई इतनी जल्दी समझ ले, क्योंकि ऐसा होने प र सारी कहानी को पढने की बहुत कम आवश्यकता रह जाती है। वास्तव में कहानी जिज्ञासा के अनन्त अंकुर उत्पन्न करके निरोध-कला के चरम उत्कर्ष का उदाहरण उपस्थित करती है। मेरा मत है कि अच्छी कहानी वही है जिसके उद्देश्य के सम्बन्ध में पाठक कहानी समाप्त करने के पश्चात् भी उतना स्पष्ट नही हो सके जितना वह अन्य साहित्यो को पढकर उनके उद्देश्य के विषय में हो सकता है। कम से कम, चरमावस्था से पूव तक तो उद्देश्य का आभास भी पाठक को नही होना चाहिए। इस अवस्था में उद्देश्य को स्पष्ट करने वाली कहानियाँ मध्यम, और निकृष्ट कहानियाँ वे होती है जिनमें उद्देश्य खुलते ही प्रकट हो जाता है। हाँ शीर्षक यदि इस प्रक्रिया में विभीषण का पार्ट अदा कर जाय तो लेखक का कोई बस नही होता।

(१) श्रीगणेश की प्रणालियो का वर्गीकरण—

कहानी प्रारम्भ करने की अनेक प्रणालियाँ है, जैसे कुछ कहानियाँ किसी घटना के वर्णन से प्रारम्भ होती है, कुछ कहानियाँ कतिपय पात्रों की बात-चीत से आदि। अध्ययन की सुविधा के लिए हम इन प्रणालियो को तीन चार वर्गों में बाँट सकते हैं—

(क) शैली

(ख) गतिशीलता की मात्रा

(ग) वस्तु-व्यापार और

(घ) काल-क्रम।

इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाता है।

(क) शैली—कहानी के वर्गीकरण वाले अध्याय में हमने विस्तार पूर्वक देखा कि कहानी अनेक शैलियो से लिखी जाती है, जैसे ऐतिहासिक शैली, पत्र शैली, डायरी शैली, आत्म-वृत्त शैली और मिश्र। कहानी का प्रारम्भ इन सभी शैलियों में हो सकता है, जो कहानी जिस शैली की होती है उसका प्रारम्भ भी प्रायः उसी शैली में होता है। इसके अतिरिक्त कहानी का प्रारम्भ वार्त्तालाप से भी हो सकता है, यद्यपि वार्त्तालाप को हमने सम्पूर्ण कहानी की शैली मानने से अस्वीकार कर दिया है।

ऐतिहासिक शैली के प्रारम्भ वाली कहानियाँ सर्वाधिक प्रचलित हैं। किन्तु टेकनीक की विविधता के इस युग में ये उसी मात्रा में लोकप्रिय है, इसमें सन्देह है। प्रचलित शैलियों में से इस प्रकार के प्रारम्भ की शैली का अधिक से अधिक असंस्कृत रूप मानना चाहिए, फिर भी कुछ अन्य बातें ऐसी है जिनके

संयोग से शैली की यह कमी रुक जाती है, जैसे कार्य व्यापार की क्षिप्रता, असाधारण चरित्रो को नियोजना आदि। यही हाल आत्मवृत्त शैली का है।

इसी प्रकार पत्र-शैली का प्रारम्भ भी कभी कभी असफल हो जाता है जब तक कि उसमें साधारण औपचारिक आवश्यकताओ को कुशलतापूर्वक तिरोहित नही किया जाय। डायरी शैली के श्रीगणेश अपेक्षाकृत अधिक रोचक होते हैं।

प्रारम्भ की दृष्टि से वार्त्तालाप वाली कहानियाँ सबसे अधिक आकर्षक कही जा सकती हैं, क्योकि उनमें अवगुण्ठन की मात्रा सबसे अधिक होती है। लेखक के अतिरिक्त पात्र भी पृष्ठभूमि में रहते हैं। इसी प्रकार घटना आदि शेष तत्त्व सीधे रूप से हमारे सामने नही आते, ताकि हमें सम्पूर्ण रूप से वार्त्तालाप के विषय की यथार्थता पर विश्वास नही होता और हम उसे अन्यत्र रूप में घटित होता देखना चाहते हैं। यह कौतूहल इसी मात्रा में शेष कहानियो में नही होता। इस सम्बन्ध में यहाँ हम एक विद्वान लेखक की कतिपय मधुर पक्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट करने का लोभ संवरण नही कर सकते—

संवाद द्वारा कहानी का आरम्भ सबसे सुन्दर माना जाता है, क्योंकि नाटकीय व्यञ्जना हृदय-वीणा में झङ्कार तो उत्पन्न करती ही है, पात्रों की अपरिचितता स्वतः रहस्य की सृष्टि कर देती है, पात्रों के कथोपकथन सुदूरतम प्रदेश से आते हुए मधुर स्वर तरङ्गो के समान हृदय को आप्लावित कर देते हैं।

इन सब प्रकार की प्रारम्भ शैलियो के उदाहरण कहानी के वर्गीकरण वाले प्रकरण में दे दिये गये हैं।

(ख) गतिशीलता की मात्रा—

इसे मैं कहानी के प्रारम्भ की रोचकता की एक महत्त्वपूर्ण आधार-यष्टि मानता हूँ। प्रारम्भ में कितनी गति है, वह एकदम वातावरण को समेटता तूफान की भाँति चलता है, अथवा साधारण गति से धीरे-धीरे चलता है, इस बात पर आरम्भ का आकर्षण बहुत कुछ अवलम्बित होता है। क्षिप्रगति से चलने वाले प्रारम्भ शिथिल प्रारम्भों की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक आकर्षण उत्पन्न करते हैं। प्रारम्भ की यह गतिशीलता न केवल कार्य व्यापार तक ही सीमित रहती है किन्तु शैली चरित्रों की अभिव्यञ्जना आदि में भी घटित होती है। इसीलिये इसको स्वतन्त्र आधार स्वीकार किया गया है। नीचे सब प्रकार के उदाहरण दिये जाते हैं जिनसे उक्त वक्तव्य स्पष्ट हो जायगा।

(अ) क्षिप्रगति वाले कार्यव्यापार का उदाहरण—

"मैडम, यह पत्र आपके लिये हैं। बाहर इसके जबाब के लिये एक आदमी खड़ा है।"

इरेन ने नौकरानी के हाथ से लिफाफा ले लिया। कागज के एक छोटे से टुकडे पर लिखा था "पत्रवाहक को सौ क्राउन दे देने की कृपा करेंगी।" न तारीख न किसी का हस्ताक्षर, यहाँ तक कि लिखावट भी जैसे जानबूझ कर बिगाडी गई थी। मगर इरेन को समझने में देर न लगी कि वह किसकी लिखावट हो सकती है।" —"परित्राण" (स्टीफेन ज्विग)

(आ) शिथिल गति वाले कार्यव्यापार (वातावरण) का उदाहरण—

"रात हो चुकी थी और चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। सूर्य के नगर (बालजेक) में जिन्दिगियाँ ऊँघ रही थी और जैतून एवं लारेल के वृक्षो के बीच, भव्य मन्दिरो के चारों ओर, तितर बितर बसे मकानों में दिये बुझ चुके थे। संगमरमर के स्तम्भो को, जो ईश्वर मन्दिरो की रक्षा कर रहे थे, चन्द्रमा अपनी चाँदी की किरणो से नहला रहा था और उत्कण्ठा से लेबनान की मीनारों को ताक रहा था जो दूर पहाडियो के माथे पर खडी थीं।"

—"सदियों की राख" (खलील जिब्रान)

(इ) क्षिप्रगति वाले वार्त्तालाप (शैली) का उदाहरण—

"बन्दी"

"क्या है ? सोने दो"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नही, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बडा शीत है कही से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है, आज मेरे बन्धन शिथिल है"

"हाँ धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

—"आकाशदीप" (प्रसाद)

(ई) शिथिल गति वाले वार्त्तालाप का उदाहरण :—

"भौजी, तुम सदा सफेद धोती क्यों पहनती हो ?"

"मैं क्या बताऊँ, मुन्नी।"

"क्यों भौजी, क्या अम्मा तुम्हे रंगीन धोती नही पहिनने देती ?"

"नहीं मुन्नी, मेरी किस्मत ही नही पहिनने देती, अम्मा भी क्या करे।"

—"किस्मत" (सुभद्रा कुमारी चौहान)

(उ) गतिशील चरित्र योजना का उदाहरण :—

"एक जबान सा छोकरा। आँखें गिद्ध की भाँति ढली हुई, संकडा भाल, केश रूखे व धूल में भरे हुये अतः कुछ भूरे, उलझे हुए किन्तु छोटे, गोरा चेहरा, जिम पर समाज की कालिमा अनेक परतो में जम गई है, कान के पास एक गाल पर कुछ खरोंच सी आई हुई, नाक लम्बी, मुँह गोल। कपडे मैंने, सर्द, एक कमीज, एक कोट, नए ढङ्ग का मिला हुआ व एक पाजामा। हाथ में कुछ पोटली सी लिए। मैं दूर से देख रही हूँ, वह हिल रहा है।"

—'शव की छाती' (प्रखर)

(ऊ) शिथिल चरित्र-चित्रण का उदाहरण :—

"पण्डित राजनाथ एम० डी० का व्यवसाय साधारण नहीं है। शहर के छोटे बडे अमीर गरीब सभी उनको अपनी बीमारी में बुलाते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो आप साधु पुरुष हैं दूसरे बडे स्पष्ट वक्ता, और तीसरे सदाचार की मूर्ति हैं।

—'अनाथ बालिका' (पं० ज्वालादत्त शर्म्मा)

इन मब उदाहरणों मे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रारम्भ की शैली गतिशील होती है, उनमें शिथिल प्रारम्भो की अपेक्षा अधिक आकर्षण होता है, गतिशील प्रारम्भ में पाठक बरबस उसके साथ चल पडता है, जबकि शिथिल प्रारम्भों से पाठक आसानी से किनारा कर मकता है।

(ग) वस्तु-व्यापार—इसे मै कहानी के प्रारम्भिक अंश के वर्गीकरण का तीसरा आधार मानता हूँ। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे अभिप्राय प्रारम्भ के ढाँचे से नही, किन्तु प्रारम्भ में क्या कहा गया है इससे है। वातावरण, चरित्राकन, घटना एव सिद्धान्त इसके चार उपादान कहे जा सकते हैं। कहानी या तो किसी स्थान का वातावरण उपस्थित करके या एक वा अनेक पात्रो के चरित्रो की झाँकी देते हुये, या कहानी में होने वाले कार्य व्यापार का कोई अंश लेकर अथवा किसी आप्त सिद्धान्त का उद्‌घाटन करते हुए प्रारम्भ हो सकती है। वास्तव में ये ही चार मार्ग हैं जिनमें से किसी से कहानी को अपना मुँह जनता के सामने दिखाना पड़ता है। इनमें कौन अधिक महत्वपूर्ण है यह अन्तिम रूप से नही कहा जा सकता। निष्पक्षता के साथ इन्हे लोकप्रियता व योग्यता की दृष्टि से देखा जाय तो कदाचित इनका क्रम ऐसा होगा (१) घटना, (२) चरित्र-चित्रण, (३) वातावरण और (४) सिद्धान्त।

इन चार उपादानों में से क्रमश: घटना, वातावरण और चरित्र-चित्रण

के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। घटना के विषय में इतना ही कहना है कि वह भूत, भविष्य और वर्तमान, किसी भी काल की हो सकती है। भविष्य-काल के प्रारम्भ वाली कहानी प्रायः डायरी शैली की होती है। इन कहानियों की संख्या बहुत कम होती है। वैसे, लगने में ये बहुत रोचक होती है क्योंकि भूत और वर्तमान के गर्भ में उतना रहस्य व उतनी जिज्ञासा नही होती जितनी अज्ञात भविष्य के गर्भ मे। भूत और वर्तमान का कहानीकार केवल उसी बात को आपके सामने प्रत्यक्ष करता है जो आपके लिए तो प्रत्यक्ष नही हैं किन्तु उसके अपने लिए प्रत्यक्ष है, किन्तु भविष्य का कहानीकार ऐसी बात प्रकट करता है जो न आपके लिए, न उसके अपने लिए ही प्रत्यक्ष है। यह अन्तर केवल सूक्ष्म है और व्यावहारिक रूप में इसका प्रभाव कोई अधिक नही पडता।

जहाँ तक सिद्धान्त द्वारा कहानी को प्रारम्भ करने का प्रश्न है, दो प्रणालियो से कहानी शुरू हो जाती है। पहली प्रणाली वह है जिसमें सिद्धान्त तत्काल या थोडी दूर ही में प्रकट हो जाता है और प्रकट हो जाने के बाद उसकी सार्थकता भी वही स्पष्ट हो जाती है, अर्थात् उसके विषय में कहानी का आगे का अंश पढने की कतई अपेक्षा नही होती। ऐसी कहानियों में प्रारम्भ का सिद्धान्त प्राय अत्यन्त मार्मिक होता है, और वह कोई न कोई विवेक की अप्रत्याशित बात कहता है।

सिद्धान्त प्रकाशन की दूसरी प्रणाली वह है जिसमें सिद्धान्त का उल्लेख तो प्रारम्भिक भाग में हो जाय, किन्तु उसका 'सफलीकरण' कहानी के बीच में या प्रायः अन्त में हो। ऐसे प्रारम्भ में तात्कालिक रोचकता तो नही रहती किन्तु ये कहानी के सम्पूर्ण रूप में पढे जाने में बहुत सहायक होते हैं क्योंकि कोई ऐसा सिद्धान्त, जो औसत पाठक के लिए अपरिचित हो, किस प्रकार घटित होता है, यह बात जानने की पाठक को उत्सुकता रहती है। इस प्रकार के उदाहरण ऐसे होते हैं—

"भाग्य और कर्तव्य एक दूसरे के पोषक हैं या विघातक, इस विषय में विद्वानो में मत-भेद हो सकता है, किन्तु भाग्य के ऊपर निर्भर रह कर कर्तव्य की अवहेलना कायरता का द्योतक है, इस विषय मे सब एकमत हैं। तब क्या अवहेलना ही कायरता का पर्यायवाचक है? —'अनुष्ठान' (चण्डीप्रसाद हृदयेश)

(घ) कालक्रम—ऊपर घटना के प्रसङ्ग में इसका संकेत हो चुका है, पर इसका सम्बन्ध केवल घटना ही से नही, अन्य सभी प्रारम्भ उपादान से है। घटना तो भूत, भविष्य या वर्त्तमान काल में ही लिखी जाती है, इसके अतिरिक्त वातावरण भी भूत, भविष्य या वर्त्तमान काल में चित्रित किया जा सकता है।

ऐतिहासिक वस्तु आदि इसमें किसी प्रकार से नियन्त्रण नही कर सकती। इसी प्रकार चरित्र चित्रण भी स्पष्ट ही तीनो कालो में किया जा सकता है। हाँ, वातावरण और चरित्र चित्रण के लिये भविष्य काल एक कठिन कसौटी है। इनका प्रयोग इस काल में प्रायः देखा भी नहीं जाता। इनमें से रोचकता की मात्रा किस में अधिक होती है इसका घटना के प्रारम्भ में जो किया जा चुका है वही अन्य उपादानो में लागू होता है। कालक्रम को दृष्टि से इन सब उपादानो पर विचार करना इसके अतिरिक्त आवश्यक होगा।

कहानी का प्रारम्भ और शीर्षक—कहानी के शीर्षक से प्रारम्भ का अनिवार्य सम्बन्ध नही है। प्रत्युत् दोनों का कोई सीधा सम्बन्ध है ही नही। कुछ कहानियो के शीर्षक ऐसे सामान्य होते हैं जो कहानी के अन्य स्थलो की भाँति उसके प्रारम्भ का भी प्रतिनिधित्व करते है या जो प्रारम्भ मे सरलता से उतरे हुये प्रतीत होते है। यहाँ चरित्रो के वर्गो के आधार पर शीर्षको की बनावट होती है वहाँ यह बात अधिक सरलता पूर्वक लागू होती है। श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की "मिठाईवाला" शीर्षक कहानी का प्रारम्भ इस प्रकार है—

"बहुत ही मीठे स्वरो के साथ वह गलियो में घूमता हुआ कहता "बच्चो को बहलाने वाला, खिलौने वाला।"

पाठक को तत्काल मालूम पड जाता है कि जिस व्यक्ति का परिचय इन पक्तियो में है वे वही महाशय है जो कहानी के शीर्षक सिंहासन पर समारूढ हैं। तब आप लेखक महोदय से कहिये कि श्रीमान्‌जी, आपके शीर्षक का उतना सारा रहस्य तो काफूर हुआ, अब आप इस शीर्षक की ऐंठन से कौन काम निकलवाना चाहते है? स्पष्ट है ऐसे शीर्षको का कुछ महत्त्व नही। किन्तु इसका अपराध केवल शीर्षक ही के मत्थे नही मढा जा सकता। आप कहानी के श्रीगणेश ही में उसका उद्‌घाटन कर देते ऐसी जल्दी आपको क्या है, महाशय? कम से कम प्रारम्भ तो ऐसा रखिये कि शीर्षक का कुतूहल भी बना रहे और प्रारम्भ मे भी अन्य रोचक बातें आसके। काम की बात यह है कि यदि आपने कहानी का एक ऐसा शीर्षक चुन लिया है जो कहानी की सर्वाङ्गीण गतिविधि को देखते हुए अन्यतम अर्थात् ऐसा हैं जिसे बदला नही जा सकता तो कहानी का श्रीगणेश तो आप ऐसा करिये ही मत जिसमें उस शीर्षक का कुछ भी गन्ध आती हो। इसी बात को लेकर हमने ऊपर कहा है कि कहानी के प्रारम्भ का सम्बन्ध शीर्षक से सीधे रूप से होता ही नहीं।

प्रारम्भ और अन्त—कहानी के प्रारम्भ और कहानी के अन्त के पर-

स्पर सम्बन्धो के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। कभी दोनो आवश्यक रूप से एक दूसरे से जुडे हुये होते है, कभी दोनो अप्रत्याशित रूप से विच्छिन्न। इसका कारण यह है कि इसके विषय में कोई वैज्ञानिक नियम नही है।

इस सम्बन्ध में दो तीन प्रकार की कहानियाँ देखने में आती हैं। एक तो वे जिनमें प्रारम्भ में किसी पात्र आदि का परिचय दिया जाता है और फिर थोडी ही देर में उसको घटनास्थल से गायब कर देते हैं। कहानी के अन्त मे वही पात्र उसी रूप में या भेष बदल कर आता है और हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। लेखक हमारी सवेदनाओ को उसी पात्र की ओर ले जाना चाहता है जिसका परिचय हमने पहले पहल पाया था। अन्त मे पाठक चाहे स्पष्ट रूप में इसका सकेत दे या नही कि ये अभी अभी प्रकट होने वाले पात्र वही हैं जिन्हे हम एक बार देख चुके हैं, कहानी की टेक्नीक में कोई विशेष अन्तर नही आता। हाँ, ऐसा स्पष्ट सकेत एक अत्यन्त पुरानी और अप्रिय वस्तु हो गई है। अन्यथा भी इस कोटि की कहानियो में कुछ कुछ अलौकिक चमत्कारवाद की बू आती है और इस प्रकार वे आधुनिक पाठक के वैज्ञानिक संस्कारो से मेल न खाने के कारण असफल सिद्ध हो जाती हैं।

इस सम्बन्ध की दूसरी कहानी कहानी-कला का एक रमणीय उदाहरण उपस्थित करती है। कहानी के अन्तिम अश के एक भाग को कहानी के प्रारम्भ में धर दिया जाता है। थोडी देर मे कहानी को अधर में लटका दिया जाता है और कहानी एक और ही स्थल से, अज्ञात प्रारम्भिक स्थल से, चालू करदी जाती है। अन्त मे कहानी का श्रीगणेश और अन्तिमस्थल एक अप्रत्याशित रूप में मिल जाते हैं और बीच मे खोई हुई कडी मिल जाती है। यह शैली अभी प्रयोगावस्था में ही है और विशेष कर इसे आत्मकथा वाले साहित्य में, प्रायः उपन्यासो में देखा जाता है। इसका भविष्य उज्ज्वल है।

इसी शैली से जुडी हुई एक कहानी वह होती है जिसमें यद्यपि प्रारम्भ में अन्त की घटना का कोई अंश तो नही रखा जाता, बल्कि कहानी वहाँ से प्रारम्भ की जाती है जहाँ कालक्रम के अनुसार उसका अन्त होता है। दोनो मे अन्तर केवल इतना ही है कि पहली में वास्तव में कहानी की अन्त-कालीन कथावस्तु का कोई भाग प्रारम्भ में रख दिया जाता है, जब कि दूसरी में केवल उस स्थिति से कहानी प्रारम्भ की जाती है जिस स्थिति में उसका प्रत्यक्ष अन्त होता है और थोड़ी ही देर में कहानी का वह अश आ जाता है जहाँ से कहानी का कालक्रमिक प्रारम्भ होता है और जहाँ से कहानी साधारणतया (अर्थात् सरल शैली मे लिखी जाने पर) प्रारम्भ होती। डायरी और आत्म-

कथा शैली में ये कहानियाँ अधिक चलती हैं और इनमें प्रायः लेखक वक्ता की स्मरणशक्ति पर असाधारण विश्वास रखता प्रतीत होता है। श्री जैनेन्द्र का लिखा 'सुखदा' नामक नया उपन्यास इसी कोटि का कथा-साहित्य है। इसकी विशेषताएँ स्पष्ट हैं।

प्रारम्भ और अन्त का सीधा सम्बन्ध (हाँ, यह सम्बन्ध केवल प्रारम्भ और अन्त ही का नही, प्रत्युत प्रारम्भ और शेष सारी कहानी का है) उन कहानियो में होता है जिनमें प्रारम्भ में कोई ऐसी बात को रख दिया जाता है जिसकी सिद्धि के लिए ही कहानी कही गई जान पडती है। श्री सुदर्शन की 'साइकिल की सवारी' एक ऐसी ही कहानी है। इसमें प्रारम्भ और अन्त को देखकर यह बात स्पष्ट हो जायगी—

"भगवान ही जानता है कि जब मै किसी को साइकिल की सवारी करते या हारमोनियम बजाते देख लेता हूँ तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है। सोचता हूँ भगवान ने ये दोनो विद्याएँ भी खूब बनाई हे। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है। मगर तमाशा देखिए, हमारे प्रारब्ध में कलयुग की ये दानो विद्याएँ नही लिखी गई। न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा बजा सकते है। पता नही, कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं मगर ये दोनो काम नही कर सकते।" (प्रारम्भ)

श्रीमतीजी ने मुस्कराकर जबाब दिया—"यह तो तुम उसको चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस ताँगे पर मै ही तो बच्चे को लेकर घूमने निकली था कि चलो सैर भी कर आएँगे और तुम्हे साइकिल चलाते भी देख आएँगे। मैने निरुत्तर होकर आँखें बन्द करली। उस दिन के बाद फिर कभी हमने साइकिल से हाथ नही लगाया।" —(अन्त)

कहानी का मूल भाग (विकास)—कहानी के शीर्षक और प्रारम्भ के बाद उसका मूल भाग चलता है। इसे कुछ विद्वान नाटक के ढङ्ग पर विकास अवस्था भी कहते है। यहाँ तक आते आते ऐसा विश्वास किया जाता है कि पाठक शीर्षक और श्रीगणेश की दा घाटियाँ पार कर चुका है और अब उसके सामने यह प्रश्न नही रहता कि कहानो पढो जाय अथवा नही बल्कि उसके सामने कहानी पढ़कर कुछ न कुछ निष्कर्ष निकालने का इच्छा होती है। इस का अर्थ यह नही कि प्रारम्भ के बाद आकर्षण को मात्रा मे कुछ रुचि नही रक्खे, प्रत्युत एक दृष्टि से कहानी की विकास अवस्था पाठक के निर्णयानिर्णय का आधार होने के कारण योग्यता का अधिक से अधिक प्रमाण माँगती है। शीषक को थोड़ी देर के लिए पाठक भूल भा सकता है, प्रारम्भिक अश यदि

रोचक नहीं हो तो भी पाठक कहानी पढने ही के नाते उसको छोडता नही किन्तु कहानी का यह अश सुन्दर नही बन पडा तो कहानी भर के प्रति पाठक के हृदय में कोई अच्छा प्रभाव नही पडता ।

आकर्षण की बात जाने दीजिये, यहाँ आपसे पाठक एक ही प्रश्न करेगा, 'कह दीजिये, जो आप कहना चाहते है, बताइए आपका खाता' किसी कम्पनी अथवा फर्म के विषय में आप विज्ञापनो को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो सकते हैं, किन्तु आपके मस्तिष्क में उसकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान तभी होगा जब आप उसके बहीखाते व हानि लाभ के चिट्ठे, आदि पर दृष्टिपात कर लेंगे। कहानी का प्रारम्भ और शीर्षक उसके विज्ञापन के तौर पर है जबकि विकास-स्थल उसका बहीखाता आदि ।

इसमें लेखक घटना की प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण वार्ता व चरित्रो की सम्पूर्ण योजना का विवरण दे देता है । सारे पात्र इस अवस्था से प्रारम्भ होते एक एक करके कार्य-व्यापार में भाग लेने लगते हैं । पात्रो के कार्य-कलाप की सुविधाएँ बाधाएँ व उनसे उत्पन्न होने वाली तथा उन्हे प्रभावित करने वाली उनकी मनःस्थिति व विचारधारा का विश्लेषण क्रमशः होने लगता है । यदि प्रारम्भ में एक साथ अनेक घटनाओ का सकेत दे दिया गया हो तो किस घटना को लेखक प्रधानता देना चाहता है इसका ज्ञान भी पाठक को इसी अवस्था में होता है । देश काल की अभिव्यञ्जना के विस्तार की दृष्टि से यह अवस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । अर्थात् कार्य व्यापार कहाँ-कहाँ और कितने सारे समय में घटित होता है इसका परिचय यही मिलता है । सक्षेप में हम सारी कहानी को यहाँ पहचान लेते हैं और इस अवस्था के अन्त तक हम यह जानने को उद्यत व उत्सुक हो जाते हैं कि लेखक का मूल वक्तव्य, कहानी कहने का प्रधान उद्देश्य क्या है । निश्चय ही यह उद्देश्य इस अवस्था मे नही बल्कि, उसके आगे की अवस्था मे जिसे चरम अवस्था कहते है, प्रकट होता है ।

विकास के बाद की अवस्था पर विचार—यही पर यह प्रश्न उठता है कि क्या यह सही है कि विकास और चरम अवस्था के बीच मे कोई अवस्था नही होती ? हमारा विनीत दृष्टि मे यह सही है कि कहानी जैसे लघु साहित्य को (इसे साहित्य नही बल्कि साहित्यिकता मानना चाहिए) अनेक खण्डो में विभाजित करना न उसके प्रति उचित न्याय करना ही है न सम्भव ही । कहानी-कला का आदर्श यही है कि उसे कम से कम समय में पढा जा सके । यद्यपि इस सिद्धान्त का उक्त विभाजन से कोई सीधा सम्बन्ध नही है और यह

विभाजन केवल एक मानसिक क्रिया विशेष ही है फिर भी प्रश्न यही है कि ऐसा विभाजन न्याय सङ्गत क्यो नही ?

कहानी के अवयवो का निर्धारण एक निश्चित आधार पर हुआ है। वह आधार है रोचकता अर्थात् कहानी का प्रत्येक अङ्ग रोचकता का एक विशिष्ट केन्द्रपीठ है। इसका अर्थ यह है कि जब हम शीर्षक को कहानी का एक अवयव मानते हैं तो हमारा तात्पर्य यही होता है कि पाठक का आकर्षण विशेष-रूप से शीर्षक पर केन्द्रित होता है और इसी आधार पर शीर्षक की स्वतन्त्र सत्ता है। यही बात कहानी के प्रारम्भिक स्थल के सम्बन्ध में कही जा सकती है। चरमावस्था इसी रोचकता का मूल केन्द्र-बिन्दु है। तत्पश्चात् कहानी का अन्त आता है। पाठक का आकर्षण इन सब अवयवो पर रहता है। प्रश्न यही है कि चरमावस्था और प्रारम्भावस्था के बीच के अश को इसी आकर्षण की कसौटी पर कितने भागो में विभक्त किया जा सकता है। सही बात तो यह है कि यदि थोडी देर के लिए कहानी मात्र ही की आकर्षकता की बात भुला दी जाय तो आकर्षण की दृष्टि से इस मध्याश का कोई महत्त्व नही है। किन्तु इसके कारण उसकी स्थिति को भुलाया नही जा सकता। प्रारम्भ की सीमाएँ निश्चित हैं तथा चरमावस्था भी एक विशिष्ट सक्षिप्त अवस्था है। प्रारम्भ का स्थल समाप्त करते ही पाठक चरमावस्था पर नही पहुँच जाता। इस प्रकार दोनो के बीच की अवस्था को स्वीकार अवश्य करना है। किन्तु फिर उसी आकर्षण की कसौटी से कसते हुए इसे पुनः विभाजित नही किया जा सकता। यह अपने में एक सम्पूर्ण अवस्था है जो प्रारम्भ से लेकर चरमावस्था तक हमारा मार्ग तैयार करती है। जहाँ तक कौतूहल का प्रश्न है (जिसे एक आलोचक ने विकास और चरम के बीच की एक अवस्था माना है।) हमारा निवेदन है कि कौतूहल तो सारी कहानी का प्राण है और उसे किसी अवस्था विशेष के साथ अन्तर्मुक्त कर के रखना कहानी-कला के सही स्वरूप को भुलाना है। नाटक आदि साहित्य की अन्विति तथा गति कहानी की गति से कुछ भिन्न होती है और फिर भी जिस समय नाटक की शास्त्रीय अवस्थाएँ (जिनमें सङ्घर्ष Rising Action और नियताप्ति शामिल है) निर्धारित की गई थी उस समय नाटको की एक निश्चित टेकनीक स्वीकार कर ली गई थी जिसका आज कुछ भी महत्त्व नही है। विकास और चरम के बीच कौतूहल, सङ्घर्ष या नियताप्ति की ही पर्याय जान पडता है, अतः इसका भी इस रूप में आज कोई महत्त्व नही है।

इस अवस्था के समय यदि इन बातो का ध्यान रक्खा जाय तो इस अवस्था का सङ्घटन सुन्दर हो जायगा—

(१) संक्षिप्त और प्रसङ्गोचित विवरणों की ही योजना।

(२) सारे मनोनीत पात्रो को घटनास्थल पर ले जाना।

(३) मूल कथा वस्तु का सङ्कलन तथा क्रमिक विकास।

(४) वातावरण को चरमावस्था की ओर ले जाने की योग्यता का सम्पादन। इसके लिए कहानी में एक तीव्र अन्तर्द्वन्द का निर्माण प्रायः आवश्यक होता है।

(५) चरमावस्था के रहस्य की रक्षा।

इनमें से पिछली दो बाते अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। असफल कहानियो का बहुत कुछ उत्तरदायित्व इन्ही बातो की अपूर्ण या दोषपूर्ण पूर्ति पर रहता है। इसकी विस्तृत जाँच करना आवश्यक है।

चरम की ओर—श्री राधाकृष्ण कृत 'रामलीला' कहानी का नायक रामरतन आधुनिक बुद्धि का आदमी होते हुए भी रामलीला के खानदानी पेशे को छोड नही सकता। पाँच दिनो की कडी मेहनत करने पर उसे राम का अभिनय करने के लिए एक बालक मिलता है जिसे वह खुशी से वह पार्ट देता है। इस अभिनय में वह बालक बहुत सफल होता है और उसकी रामलीला चल पडती है।

इस बात को बाईस वर्ष बीत जाते हैं। उसका दल ग्वालियर नरेश के समक्ष अभिनय करना चाहता है किन्तु उसे इसके लिए 'रावण' नही मिल रहा है। परिश्रम के बाद उन्हे एक व्यक्ति वैसा ही मिलता है जो रावण का अभिनय कर सके। उसका अभिनय सर्वोत्तम सिद्ध होता है।

इस अवस्था तक कहानी की विकास-भूमि है। यहाँ तक सारे मनोनीत पात्र घटनास्थल पर आ जाते हैं, मूल कथावस्तु भी चल पडती है (और ऐसा लगता है कि जैसे समाप्त ही हो गई है।) तथा जो विवरण आदि दिए गए है वे संक्षिप्त व प्रसङ्गोचित हैं। इस कथा में पाठक को कोई विशेषता दिखाई नही देती, यही इस कथा का कौतूहल है। कहानी किस प्रकार और कहाँ मोड लेगी (चरमावस्था) इसका किञ्चित भी ज्ञान पाठको को नही होता। इस प्रकार चरमावस्था के रहस्य की रक्षा तो हो जाती है, प्रत्युत हमें ऐसा बरबस मानना पडता है कि इन्हीं दो घटनाओ में से चरमावस्था का उदय होगा। इस प्रकार चौथी और पाँचवीं अवस्थाएँ हमारी इस कथा में स्वतः सिद्ध हो जाती है।

विकास का रूप—विकास-अवस्था की गति प्रायः बड़ी अप्रत्याशित रहती है। कभी कथानक में एकदम गति आ जाती है, कभी निरीह मूकता,

कभी वह पहाडी झरने की धारा और कभी समतल पर बहने वाली मन्द-मन्दाकिनी सी हो जाती है। किन्तु एक अज्ञात रहस्य सर्वत्र व्याप्त रहता है।

करुण रस से ओतप्रोत अज्ञेयजी की 'इन्दु की बेटी' नामक कहानी देखिए। उसका नायक रामलाल अपनी पुराने विचारो वाली स्त्री को लेकर रेलगाडी पर बैठा घर जा रहा है। रास्ते भर उसके व्यवहारो से, उसकी रूढ़िगत मूकता, निष्प्राणता से उसके मन मे एक कुढन एकत्रित हो जाती है। किसी छोटे से स्टेशन पर वह उससे पानी माँगती है। रामलाल उतर कर पानी लाने जाता है, तभी गाडी चल देती है। रामलाल पीछे से एक डिब्बे के दरवाजे का हैण्डल पकड कर गाडी पर पहुँच जाता है। इसी बीच में उसकी पत्नी यह देखने के लिए कि वे गाड़ी पर आगए है या नही अपने डिब्बे के दरवाजे से मुँह निकालती है और झुककर देखती है और आशङ्का के मारे गिर पडती है। इसका चित्रण अज्ञेयजी ने कैसी सजीवता के साथ, कितनी सवेदना के साथ किया है।

"एकाएक रामलाल गाडी के कुछ और निकट आकर कूदा। इन्दु जरा और झुकी कि देखे वह सवार हो गया कि नही, और निश्चिन्त हो जाय। उसने देखा—

अन्धकार—कुछ डूबता सा—एक टीस—जाँघ और कन्धे में जैसे भीषण आग—फिर एक दूसरे प्रकार का अन्धकार।

गाडी मानो विवश क्रोध से चिचियाती हुई रुकी कि अनुभूतियो से बँधे हुए इस क्षुद्र चेतन ससार की घटना के लिए किसी ने चेन खीचकर उस जड, निरीह और इसीलिए अडिग शक्ति को क्यो रोक दिया है।"

कथानक में एकदम तीव्रता आगई है, इन्दु का भीषण घाव उसे वही समाप्त कर देता है। किन्तु कथानक की न समाप्ति ही हुई है, न उसमें चरमावस्था ही आई है। हम सोचते रह जाते है कहानी किस ओर मुडी ?

इसी बीच में कुशल लेखक एक चारित्रिक विशेषता का स्वाभाविक उद्घाटन करता है। कौन पाषाण-हृदय पति है जो अपनी पत्नी से चाहे जितनी घृणा करता है, किन्तु उसे इस अवस्था में देखकर उद्वेलित नही हो जाता ? रामलाल का पिपासु हृदय दो वर्ष के भीषण अलगाव को स्वीकार करने को तैयार नही, आज वह सवेदना, अनुभूति, सौहार्द्र, आत्मीयता और लगाव ढूँढता है :—

"थोड़ी देर के बाद जब जरा कापकर इन्दु की एक आख खुली और

बिना किसी की ओर देखे ही स्थिर हो गई और क्षीण स्वर मे कहा, "म चलो" तब रामलाल को नही लगा कि वे दो शब्द विज्ञप्ति के तौर पर कहे गये ह। उसे लगा कि उनमें खास कुछ है, जैसे वह किसी विशेष व्यक्ति को कहे गये है, और उनमें अनुमति माँगने का सा भाव है ......

उसने एकाएक चाहा कि बढकर लोटा इन्दु के मुँह से छुआ दे, लेकिन लोटे का ध्यान आते ही वह उसके हाथ से छूटकर गिर गया।"

वास्तव मे यही शाश्वत चारित्रिक उत्क्रान्ति है जो कहानी मे एक नया कुतूहल उत्पन्न करके उसकी सजीवता की रक्षा करती है। इन्दु वहीं मर जाती है, किन्तु कहानी चालू है। किस बूते पर ? चरित्र की कौनसी अन्य विशेषता कथानक की कौन-सी दूसरी गुत्थी सुलझानी शेष रह गई है अब ? कहानी में एक शैथिल्य सा, अवसाद सा आ गया है। यह कहानीकार का शैथिल्य नहीं, प्रत्युत उस वातावरण का शैथिल्य है जो किसी की आकस्मिक, अप्रत्याशित, भयङ्कर मृत्यु से वैसे ही बन जाता है जैसे किसी तूफान के बाद शान्ति हो जाती है। किन्तु कलाकार रहस्य के सूत्र को थामे हुए है। 'इन्दु की बेटी' कहानी का शीर्षक। यदि इन्दु मर गई अपत्यहीन, तो उसकी बेटी कैसी ?

गाडी फिर जरा सी रुककर चल पड़ती है। बीस साल बाद रामलाल उसी स्टेशन पर आकर रुकता है। उद्देश्यहीन ? वह कलकत्ते से कमाकर लाया है पर इस स्टेशन मे उसका क्या काम ? पॉइन्टमैन सामान उतार कर रखवाता है।

करुण रस का एक और दिल दहलाने वाला दौरा आता है। रामलाल बूढे पॉइन्टमैन से पूछता है :—

"तुम यहाँ कबसे हो ?"

"अजी, क्या बताऊँ ? सारी उमर ही यही कटी है।

"अच्छा ? रामलाल अपने आपको सान्त्वना देने के उद्देश्य से पूछता है"

"तुम्हारे होते यहाँ कोई दुर्घटना हुई ?

प्रिय की स्मृति कितनी मधुर होती है। मनुष्य की अंतर्वृत्तियाँ फिर-फिर कर उसी की ओर लपकती है, यद्यपि उसके जीवन-काल में मनुष्य को उससे सन्तोष शायद ही होता।

बूढे ने कहानी सुनाते हुए कहा—"बाबूजी औरत जात भी कैसी होती है भला वह गाडी से रह जाता तो कौन बड़ी बात थी ? दूसरी में आ जाता। लेकिन औरत का दिल कैसे मान जाय।"

लेकिन औरत का दिल कैसे मान जाय ? रामलाल के दिल पर सीधी

चोट लगती है। अपनी आत्मा के अकेलेपन को, अवर्णनीय अकेलेपन को, अन्धेरे ही में अनुभव करते हुए रामलाल टहलने लगा।

यह है कहानी की विकास अवस्था। कितना रोमाञ्चकारी रहस्य, कितनी सरलता! मैं सच कहता हूँ कि जब जब मै कहानी का यह अश पढता हूँ तो मुझे रोमाञ्च हो जाता है। समस्त मानव-जाति के विश्वास, उसकी सारी सहानुभूति रामलाल नामक इस नगण्य पात्र में केन्द्रित हो जाती है। क्यो? क्योकि लेखक ने इसमे इतनी शाश्वतता, इतनी सार्वभौमता भर दी है कि हमारा ध्यान बरबस इस ओर खिच जाता है। यह है कलाकार का कौशल।

विश्रान्ति स्थल—ऐसा लगता है कि कहानी की इस फ्रंटियर मेल के लिए, जहा से वह प्रारम्भ हुई वहाँ से जहाँ वह रुकेगी वहाँ तक, बीच में कोई स्टेशन नही है। जैसे कि यात्रा छोटी है और बीच का मार्ग महत्वहीन। किन्तु अनेक ऐसी कहानियाँ होती है जहाँ विकास मार्ग में अनेक ठहराव भी होते हैं। ये ठहराव कभी अप्रत्यक्ष और बहुधा प्रत्यक्ष होते हैं। अप्रत्यक्ष अवस्था में इन विश्रान्ति स्थानो की जाँच कथानक की गति मे शिथिलता, अथवा प्रायः उसकी दिशा में मुडाव को स्थिति से होती है। प्रत्यक्ष अवस्था में इनका परिचय लेखक हो के द्वारा दिए हुए १, २, ३ आदि सकेतो से होना है जो कहानी के प्रकरणो का काम करते है अथवा जिस स्थल पर विश्रान्ति होती है वहाँ से लेकर दूसरे नए स्थल तक कुछ विशेष द्रष्टव्य स्थान रिक्त छोड दिया जाता है, ताकि उससे केवल अनुच्छेद (पैराग्राफ) परिवर्तन की भ्रान्ति न हो सके। दोनों ही अवस्थाओ मे यदि लेखक द्वारा कथानक अथवा कहानी के अमुक स्थलो पर विश्रान्ति लाने का प्रयोजन है तो यह प्रयोजन उसी के किसी आयोजन से स्पष्ट हो जाता है।

जहाँ कहानिया लम्बी होती हैं वहाँ लेखक प्रायः उनमे रोचकता लाने के लिये कथावस्तु के भिन्न-भिन्न मार्ग कर देता है। ये सारे मार्ग अन्त में एक केन्द्र में जा मिलते है जिसे चरमावस्था कहते है। कभी-कभी एक दृश्य के समाप्त होने के पश्चात् बिलकुल दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो जाता है (जैसा नाटक के अङ्को एव दृश्यो में होता है) और कभी वही दृश्य कुछ नवीनता लेकर, सवेदना की तीव्रता लेकर आ खड़ा होता हैं। दोनो का उद्देश्य पाठक को ऊँघने से बचाना है।

इन विश्रान्ति स्थलो के निर्धारण का कोई नियत आधार नही है। जहाँ कही लेखक कथानको म अप्रत्याशित अनुवर्तन उपस्थित करना चाहता है अथवा उसके किसी अंश को तीव्रता देना चाहता है वही ऐसे विश्राम चिन्हो का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के अनुवर्तन में देश-काल व्यवधान भी

समाहित है। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि विभाजन उस स्थल पर कर दिया जाता हे जहाँ घटना का क्रम अविभाज्य रूप से चालू है। किन्तु ध्यान से देखने पर दोनो स्थलो की सीमा रेखा स्पष्ट हो जाती है।

विशेष छोटी कहानियो में ऐसे विश्रान्ति-स्थल अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप मे जितने कम हो उतनी ही कहानी की सवेदना की एकता बनी रहती है। बडी कहानियो में भी इनको मात्रा आवश्यकता से अधिक नही होनी चाहिए। वैसे साधारण रूप से ये विश्रान्ति स्थल कहानी के अनिवार्य अथवा आदर्श अङ्ग नही है क्योकि प्रत्येक विश्रान्ति स्थल के साथ सवेदना की विभक्ति सम्भाव्य है जो कहानी के लिये अहितकर है। ऐसी लम्बी कहानियाँ जिनमें ये विरामस्थल बहुत दिखाई पडते हो, वैसे पाठ्य भी कम होती है, बशर्ते उनमे शैली का अत्यधिक आकर्षण न हो।

चरमावस्था या पराकाष्ठा—कहानीका उच्चतम शिखर है। यह कहानी की वह तीव्रतम अवस्था है जहाँ सारे कथानक का रहस्य, सारे चरित्रो की अन्तः-भूमिकाये, एक शब्द मे, सारी कहानी का मन्तव्य प्रस्फुटित हो जाता है। किन्तु यह झट से नही होता। विकास भर में इसकी उचित पृष्ठभूमि तैयार होती है और यहाँ आकर पाठक की वृत्तियाँ सवेदना की व्यस्ततम अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं और एकदम से भयानक विस्फोट होता है। ऐसा लगता है मानो पाठक ज्वालामुखी के उच्चतम शिखर पर चल रहा है और उसकी आँखो पर बँधी हुई पट्टी इस विस्फोट के बाद ही खुलती है—वह विस्मयाभिभूत होकर चारो ओर देखता है—क्या हो गया? कहने की आवश्यकता नही, यह अवस्था जितनी ईषत्कालीन हो, छोटी हो, उतना हो कहानो मे सौन्दर्य रहता है। चरमावस्था का विशेष महत्त्व उसके लाघव ही में है।

श्री राधाकृष्ण कृत "रामलीला" नामक उक्त कहानी का महत्त्व इतना ही है कि दो पात्र राम और रावण वास्तव में एक ही व्यक्ति के दो रूप है। वही व्यक्ति जो राम का सौम्यशुचि अभिनय करने में सर्वोत्तम रहा, समय पाकर एक ऐसी अवस्था को पहुँच जाता है जहाँ उसका 'राम' 'रावण' में अनायास बदल जाता है, जो विस्मय जनक होते हुये भी सत्य है। इस द्वयर्थक व्यक्तित्व के उद्घाटन में ही चरमावस्था के उपादान है। कथानक के इस भूमिगत अश के अनावरण में लखक का सारा मन्तव्य सम्पूर्ण रूप में प्रकट हो जाता है।

"इन्दु की बेटी" का चरम किञ्चित् अधिक कलात्मक है। कहानी में एक बार फिर अनैमित्तिक आवेग आगया है किन्तु यह आवेग भिन्न प्रकार का है। इसमे दीपक के निर्वाण होने के पूर्व की फड़फड़ाहट है, व्याकुलता है।

रामलाल पटरी के नीचे लकडी के स्लीपरों पर खून के पुराने धब्बों सा कुछ देखता है। उस स्मृति में वह थोडी देर विह्वल रहता है, जब अकस्मात उसे किसी औरत के रोने की आवाज सुनाई पडती है और आवाज ही नहीं, इसमें इन्दु की आवाज की कशिश भी सुनाई पडती है। रामलाल पास आकर ललकारता है, मन्द मधुर।

सारे दृश्य में कितनी विरोधजनक व्यग्रता है। साथ ही कितनी कुशलता से उसका नाटकीय चित्रण हुआ है। दृश्य के सारे विवरण हमारे सामने बिना किसी आवरण में प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

एक स्त्री कपडे की एक पोटली को, कदाचित् अपने नवजात शिशु को, वही छोडकर रामलाल का पीछा करते-करते झुरमुट की ओट मे हो जाती है। रामलाल का पैर उस सोती हुई पोटली से टकरा जाता है। शिशु रो पड़ता है। वह उसे लाकर बेंच पर सुबह पाँच बजे की गाडी की प्रतीक्षा में बैठ जाता है, गाडी में बिस्तर खोला जा सकेगा ····।

यह है कहानी की पराकाष्ठा। यह पराकाष्ठा कथावस्तु की भाषा में प्रकट हुई है। पात्रो के चरित्र में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया, या बताया गया है।

चरित्र-चित्रण में नई दिशा—चरित्र क्रान्ति के रूप में प्रकट होने वाली पराकाष्ठा के उदाहरण जयशंकरप्रसाद की 'पुरस्कार' और उपेन्द्रनाथ अश्क की 'पत्नीव्रत' कहानियाँ हैं। इनमें यद्यपि चरमावस्था के समय कथानक में विशेषता आई है, पर उसका कारण पात्र-विशेष है, स्वतन्त्र परिस्थितिया नही। अतः अपने आप में इस कथावस्तु गत परिवर्तन का कोई महत्त्व नहीं, महत्त्व पात्र-विशेष का ही है। 'पत्नीव्रत' का मुख्य पुरुष पात्र खन्ना दुजबर है। उसको पहली पत्नी से घोर असन्तोष था, ऐसा उसकी दूसरी पत्नी लक्ष्मी का विश्वास है तथा लक्ष्मी यह भी समझती है कि खन्ना साहब उसे बेतरह चाहते हैं। इस बात की विज्ञप्ति भी वह उस अस्पताल के स्टाफ के सामने कर देती है जहाँ वह कई दिनो से यक्ष्मा का शिकार होकर पडी है। इस विज्ञप्ति से कहानी का सारा वातावरण आप्लावित रहता है। किन्तु जब लक्ष्मी मृत्यु-शैया पर पड़ी होती है तब खन्नासाहब उसे सँभालने भी नही आते, प्रत्युत जब वह मर जाती है तब स्टाफ को यह समाचार मिलता है कि खन्ना साहब शादी करने के लिए चल गए है। यही कहानी की पराकाष्ठा है। तभी हमें मालूम होता है कि लक्ष्मी की बीमारी ही मे खन्ना साहब उसके गहने अपने 'पत्नीव्रत' चरित्र का परिचय देने ही ले गए थे। खन्नासाहब के इस वास्तविक चरित्र का संकेत कहानी में कही

नहीं दिया गया है, प्रत्युत उससे विपरीत वातावरण ही तैयार किया गया है ताकि पराकाष्ठा की सवेदना एकदम तीव्र हो जाय। कुतूहल की रक्षा का यह उपाय अद्वितीय है।

'पुरस्कार' की नायिका मधूलिका कोशल की एक कृषक बाला है। उसका परिचय प्रतिद्वन्द्वी देश मगध के राजकुमार अरुण से हो जाता है जो उसके सामने उसके प्रति कोशल नरेश द्वारा किए गए अपमान का बदला लेने का प्रण करता है वह उसे अपनी योजना में भाग लेने को भडकाता है। प्रणय की स्वर्णलालसा में वह उसकी स्वीकृति दे देती है किन्तु उसे जब देश-प्रेम का ध्यान आता है तब वह फौरन अपने व्यक्तिगत स्वार्थ (अरुण-प्रेम) को तिलाञ्जलि देकर अरुण के षड़यन्त्र का भण्डाफोड कर देती है। अरुण बन्दी कर लिया जाता है और उसे प्राणदण्ड सुनाया जाता है, किन्तु जब मधूलिका को उसके देश-प्रेम का पुरस्कार मांगने को कहा जाता है तब वह बोलती है—"तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले" और वह बन्दी अरुण के पास जा खडी होती है। कहानी की इस पराकाष्ठा मे चारित्रिक द्वन्द्व ही है और इसकी नायिका ने देश-प्रेम के लिए स्वार्थ को त्याग देना महत्तर समझा है पर देश-रक्षा की सिद्धि के पश्चात् उसी प्रेम के मधुर अक में ही जाना श्रेष्ठ पाया है जिसके लिए इतना महल बांधा गया, यद्यपि इसका अर्थ स्वय प्राणदान ही क्यो न हो।

चरमावस्था की अनिवार्यता पर विचार—क्या कहानी में चरमावस्था का आना आवश्यक है ? यह एक वैधानिक प्रश्न है। इस प्रश्न के समाधान से पूर्व इसकी भूमिका को समझ लेना आवश्यक है। चरमावस्था प्रायः सभी कहानियो में देखी जाती है। किन्तु कुछ कहानिया ऐसी स्वाभाविक, सहज गति से चलती हैं कि उनमे सवेदना प्रत्येक स्थल पर विद्यमान रहती है और यह आवश्यक नही होता कि उसे कहानी के एक विशेष स्थल पर तीव्रतम बनाया जाये। इस अवस्था में पराकाष्ठा के दर्शन दुर्लभ होते हैं और कहानी एक ही प्रकार की सवेदना जगाकर समाप्त हो जाती है, किन्तु ध्यान से देखने पर इस तथ्य की खोखलाहट नजर आ जाती है। कहानी का इतर साहित्य विधाओ से पृथक करने का मूल आधार उसकी कथावृत्ति अर्थात् उसमें कथा का पाया जाना है। इसके पश्चात् नाटक, उपन्यास आदि कथावृत्ति वाले अन्य साहित्यो से उसे सवेदना की कला (unity of impression) के आधार पर पृथक किया जाता है। वैसे उपन्यास मे भी सब मिलाकर एक ही सवेदना ऐसी है किन्तु वह अनेक स्थलों में इतनी विशदता के साथ बिखरी हुई होती है कि उसका प्रत्येक अश अपने में पूर्ण प्रभावशाली होता है और इस प्रकार हमें वह विभक्त लगती है।

इसके ठीक विपरीत कहानी एक ऐसा साहित्य है जिसमें संवेदना का किसी एक स्थान पर संवर्द्धित, मार्जित तथा केन्द्रित रहना अपरिहार्य है। कहानी कला की सारी मार्मिकता का आधार यही कही है। कहानी के अन्य स्थल उसी केन्द्र स्वरूप की ओर ले जाने के सोपान मात्र होते हैं, उनका स्वतन्त्र कोई महत्व नही। अतः ऐसी कहानिया जिनमें सवेदना का किसी एक स्थान पर मूलाधिकरण नहीं होता कहानी नही, कहानी का भ्रम है। उन्हे कथात्मक स्केच कहना अधिक सही होगा। महादेवी वर्मा के सस्मरण इसी प्रकार के साहित्य की कोटि में आते हैं। हाँ कभी कभी यह चरम इतना अवगुण्ठनशील होता है कि इसकी ओर सकेत करना कठिन होता है, किन्तु इस कारण उसकी स्थिति को इन्कार नही किया जा सकता। इसके साथ ही ऐसी भी कहानियाँ नजर आती हैं जिन्हे न केवल कहानी ही कहने का लोभ संवरण नही किया जा सकता पर साथ ही जिनमें चरम की स्थिति नही के बराबर होती है खलील जिब्रान और कृष्णचन्द्र की अनेक कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

अन्त —अन्त की अवस्था कहानी की चरमावस्था के ठीक बाद की अवस्था है। प्रश्न यह है कि क्या चरमावस्था के बाद भी अन्त नाम की कोई विशिष्ट वैधानिक अवस्था को स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नही है। चरमावस्था में कहानी का अन्तिम परिणाम नजर आ जाता है। कहानी मे तब कहने को और क्या रह जाता है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि कहानी के अन्तिम भाग ही से अन्त का तात्पर्य नही है। उन कहानियो में जिनमें कहानी चरम पर आकर ही समाप्त हो जाती है कहानी का अन्त चरम के अन्तिम अंश को कह सकते हैं। पर ऐसा नही है। यह उस अवस्था की बात है जो कभी कभी चरमावस्था के समाप्त होने के बाद भी चालू रहती है।

अन्त की वैधानिक स्थिति—कहानी का सही आदर्श तो यही है कि उसे चरमावस्था पर ही समाप्त कर दिया जाय, पर कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें इतना ही करने से सन्तोष नही होता प्रत्युत कुछ कहना शेष रह जाता है। हाँ, जो वस्तु रह जाती है उसका मूल सवेदना से कोई सीधा सम्बन्ध नही होता। एक प्रकार से यह कहानी के मिर्च मसाले को समेटने जैसा है। यहाँ कहानीकार वही करता है जो एक बनिया अपनी दिन भर की कमाई के बाद अपनी दुकान समेटते हुए करता है। हिसाब का लेखा जोखा न करे तो दुकान में ताला बन्द करके उसे जाना ही पडता है। यह कहानी का साधारण अन्त है।

'उसने कहा था' शीर्षक कहानी में सूबेदारनी अपने पति और पुत्र की

जीवन रक्षा का आग्रह लहनासिंह से करती है, वह स्थल चरमावस्था का स्थल है। उसके बाद का सारा स्थल अन्त का है। किन्तु दोनों का वास्तविक विभाजन बड़ा दुस्साध्य है। कारण, कहानी के पीछे के अंश को विधान की दृष्टि से इतने कलात्मक रूप में चित्रित किया गया है कि कहानी की संवेदना चरमावस्था के बाद भी स्थिर रहती है। सूबेदारनी ने जो कुछ कहा था उसे लहनासिंह ने प्राणों की बाजी लगाकर निभाया, यह कथानक का अविभाज्य अङ्ग है। किन्तु यह सारा स्थल पराकाष्ठा नहीं है। होरी स्नेह तरल आदेश की पूर्ति (हजारासिंह और बोधासिंह की रक्षा) चरमावस्था की समाप्ति करती है लेकिन स्वयं यह आदेश पूर्ति के पश्चात् प्रकट हुआ है 'स्वप्न में'। लहनासिंह घायल पड़ा है और मृत्यु के कुछ समय पहले ही साफ हुई स्मृति के पटल पर अतीत की सारी बातें एक एक करके लाता है लेखक जानता है कि यहाँ आदेश इतने कुतूहल से भरा है कि उसे प्रकट कर देने के बाद कहानी को लम्बी करने से उसके आकर्षण के नष्ट होने की सम्भावना है। वह थोड़ी ही देर में कहानी समाप्त कर देता है। यदि सारी कथावस्तु को एक सीधे धागे में पिरो दिया जाय तो हजारासिंह व उसके पुत्र की रक्षा के बाद का सारा स्थल अन्त कहा जाना चाहिए। इसका मुख्यांश वह है जिसमें लहनासिंह की घावों से होने वाली मृत्यु का संक्षिप्त, पर मर्मान्तक उल्लेख है।

रहस्यमय अन्त— कहानी का तीसरा अन्त वह है जिसमें कहानी के समाप्त होने के बाद का कुछ ऐसा रहस्य आवृत्त रह जाता है जिसे जानने की हम इच्छा करते हैं। यह बड़ी अस्वाभाविक या कम प्रयोग आने वाली अवस्था है। हाँ नवीनतम टेकनीक में इसका प्रयोग क्रमशः वृद्धिगत होता हुआ जान पड़ता है। यह ठीक है कि कथानक का जो कुछ अंश अनावृत रह जाता है उसकी पूर्ति पाठक अपनी कल्पना से कर लेते हैं, यद्यपि कल्पना की इस पूर्ति में विविधता को अवकाश रहता है। कहानी की मूल संवेदना तथा लेखक की सामान्य गति दिशा से अभिज्ञ पाठक को भ्रान्ति की कम आशंका रहती है और पाठक प्रायः उसी निर्णय पर पहुँच जाता है जिस पर लेखक पहुँच गया होगा।

ऊपर उल्लिखित कहानी 'पुरस्कार' का टेकनीक बिलकुल ऐसा ही है। इसका अन्तिक अंश (शास्त्रीय दृष्टिकोण से अन्तिम अंश नहीं) नीचे उद्धृत किया जाता है :—

"........मधूलिका बुलाई गई। वह पगलीसी आकर खड़ी होगई। कौशल नरेश ने पूछा मधूलिका तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग। वह चुप रही। राजा ने कहा मेरी निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने

एकबार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा मुझे कुछ नही चाहिये। अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा : नहीं, मै तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले। "तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले" कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।"

कहानी समाप्त। मधूलिका का एक संकल्प (देशरक्षा का संकल्प) पूरा हो जाता है। किन्तु उसके साथ ही उसके प्राणों से प्रिय अरुण को प्राणदण्ड मिला है, इससे अधिक उसके प्रेमी हृदय को आघात पहुँचाने वाली और कोई बात नही है। ऐसा लगता है कि उसका जीवन नीरस, संवेदना विहीन, शून्य हो जायगा। इस सम्भावना को उसने समय रहते समझ लिया है। इन परि-स्थितियों में उसकी जो अवस्था है उसको उक्त अङ्क के रेखाङ्कित शब्दो से अधिक सजीव पदावली में व्यक्त नही किया जा सकता।

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मधूलिका को भी अरुण के साथ प्राणदण्ड मिला ? क्या यह सम्भव था ? क्या मधूलिका ने केवल अरुण के प्राणदण्ड को स्वीकार किया ? क्या कोशल नरेश ने इस स्थिति में स्वयं अरुण को प्राणदण्ड से मुक्त नही कर दिया ? क्या यह मधूलिका के लिए सबसे अच्छा पुरस्कार नही होता ? ये सब प्रश्न हैं जो प्रत्येक पाठक प्रसादजी के कथाकार से करता है। किन्तु सहृदय पाठक उसका समाधान अपने हृदय ही में ढूँढ लेते हैं। (यह कला का व्यक्ति-प्रतिपादक स्वरूप है।)

ऊपर की कहानी में अन्त नाम की कोई अवस्था नही है, प्रत्युत कहानी चरमावस्था ही में समाप्त हो गई है। यदि इसमें अन्त का अभिनिवेश किया जाय तो उसका वह अंश अन्त माना जायगा जिसमें प्रणयिनी मधूलिका के द्वारा की गई प्रार्थना पर राजा की क्या प्रतिक्रिया हुई इसका परिज्ञान हो, तथा जिसकी पूर्ति वास्तव में पाठक कल्पना द्वारा ही करता है। किन्तु कुछ कहानियो का अन्त लक्ष्य तो होता है पर अत्यन्त संक्षिप्त होता है। ऐसी कहा-नियाँ तो, जिनमें चरमावस्था के बाद कथानक का कोई अश छूटता नही, बहुत होती है। पर ऐसी कहानियाँ जो चरमावस्था के तत्काल बाद समाप्त हो जाती हैं थोडी होती हैं। निश्चय ही संक्षिप्त अन्त वाली कहानियाँ अन्त की दृष्टि से सफल होती हैं। इसमें कथानक रहता है या नही, इस पर कोई विचार नहीं किया जाता। देखा यही जाता है कि चरमावस्था के बाद अन्तिम अवस्था में लेखक क्या कहना चाहता है, जो कुछ कहना चाहता है वह काफी महत्त्वपूर्ण है या नही, उसमें पर्याप्त रोचकता है या नही, और वह कितनी संक्षिप्तता के साथ अपने वक्तव्य को समाप्त करना जानता है या नही।

श्री राधाकृष्ण की 'रामलीला' कहानी में जब रामलीला के अधिनायक रामरतन के सामने उसके द्वारा पुरस्कार मांगने की बात कही जाने पर रामलीला का खल नायक रावण अपना पूर्व परिचय देता है और यह बतलाता है कि मैं वही व्यक्ति हूँ जो बाईस वर्ष पूर्व राम का सौम्यशुचि अभिनय करने में अत्यन्त निष्णात सिद्ध हुआ था तब "रावण के उस भयानक चेहरे के भीतर से रामरतन को राम की वही सावली सलोनी निर्मूल छवि फूटती हुई सी दिखाई पडी। वह आश्चर्य से चकित होकर बोल उठा हाँ तुम वही राम हो। मुझे याद आगया। तुम वही राम हो। यही अन्तिम अश है, अन्तिम अवस्था भी। इसके ठीक पूर्व ही चरमावस्था आई है, जहाँ वह व्यक्ति अपना परिचय देता है। पर चरमावस्था के कुतूहल की शान्ति मात्र होती है। कहानीकार का असल उद्देश्य प्रकट नही होता। यह उद्देश्य अन्तिम पङ्क्तियों में ही है। इन पङ्क्तियों में आज की खोखली अर्थ व्यवस्था पर जो अलक्ष्य परन्तु गहरा व्यङ्ग है उसे कोई भी सहृदय समझे बिना नही रहेगा। "तुम वही राम हो। मुझे याद आगया। तुम वही राम हो।" में न केवल रामरतन का हर्ष ही प्रकट होता है, प्रत्युत उसमें इतनी कातरता एवं असहायता भरी है कि देखते ही बनता है। समाज व्यवस्था के प्रति यह मूक व निरीह व्यङ्ग ही कहानी की मूल संवेदना का उपादान बनता है।

"पत्नीव्रत" कहानी में डॉक्टर जब लहनासिंह से पूछते है कि खन्नासाहब अब भी अपनी मृत-पत्नी को देखने आयेंगे या नही तभी वह कहता है कि वे तो शादी करने अपने घर चले गये हैं। यह कहानी की पराकाष्ठा है। ठीक उसी के बाद अन्त में लेखक ने लिखा है कि "ठन ठन करता चार्ट मिस सुलताना के हाथ से फर्श पर गिर पडा और रशीदा ने जैसे चीख कर कहा, मिस साहब, मिस साहब, इसका उद्देश्य उस अस्वाभाविक परिस्थिति का चित्रण करना ही होता है जिसमें पात्र अपने आपको उस समय पाते हैं, घोर आश्चर्य। यह सही है कि समाज के सीधे-सादे निरीह प्राणियों को ऐसे धूर्तों के काले कारनामे देखने का अभ्यास नही है। इस प्रकार के अविभाज्य अन्त कहानी की मूल संवेदना के अविभाज्य अङ्ग बनकर ही आते हैं।

"अपना-अपना भाग्य", "पत्नीव्रत", "पुरस्कार", "उसने कहा था" आदि सभी कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें संवेदना कहानी समाप्त होने के बाद भी स्थिर रहती है कइयो में अर्थ कुतूहल रहता है कइयों में भाव गाम्भीर्य की छाप। ये सब कहानियाँ टेकनीक की दृष्टि से अत्यन्त सफल कहानियाँ है। "अन्त भला सो भला" वाली बात सभी कहानी लेखकों को सदैव स्मरण रखनी चाहिये।

भावात्मक अन्त—कुछ विशेष प्रकार की भावात्मक कहानियो का अन्त एक विशेष भङ्गिमा लिए रहता है। उसमें जो चित्र खीचा जाता है वह हृदय में पूरा उतर जाता है और गहरी सवेदना जागृत करता है। इसमें या तो रहस्य-मय मानव मनोवृत्तियो का सूक्ष्म चित्रण होता है या प्रकृति के उपादानो की अपमानता के माध्यम से एक विशेष भावात्मक, मधुर रेखाचित्र की सृष्टि की जाती है और उसके द्वारा अभीष्ट भावधारा का पाठक के हृदय में सक्रमण। दूसरे प्रकार की शैली मे शब्दो के समुचित चयन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। श्री जयशङ्करप्रसाद की अधिकाश कहानियाँ इसी गुण को लिये हैं। उपसहार के रूप में इस प्रकार के अन्त बड़े ही आकर्षक और प्रभावशाली होते है। चरमावस्था के समय पाठक की मनोवृत्तियो को एकदम जो गहरा धक्का-सा लगता है उसका मार्जन करने में प्रसादजी सिद्धहस्त हैं।

"गोधूली थी और वही उदास रमला झील। साजन थका हुआ बैठा था। आज उसके मन में, आँखो मे, न जाने कहाँ का स्नेह उमड़ा पडता था। प्रशान्त रमला में एक चमकीला फूल हिलने लगा, साजन ने आँख उठाकर देखा पहाड़ी की चोटी पर एक तारिका रमला के उदास भाल पर सौभाग्य चिन्ह सी चमक उठी थी। देखते-देखते रमला का वक्ष नक्षत्रो के हार से सुशोभित हो उठा। साजन ने पुकारा 'रानी'। —'रमला' शीर्षक

यह कहानी इसी स्नेह विगलित पुकार मे निर्वाण पा जाती है।

इसी यशप्राण लेखक की 'बिसाती' शीर्षक कहानी का अन्त इस प्रकार है—

"बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नही आया। शीरी ने बोझ तो उतार दिया पर दाम नही दिया।"

कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें अन्त की ठीक अवस्था तक तो अन्त का पाठक को ज्ञान होता ही नही, प्रत्युत अन्त होने के बाद भी ऐसा लगता है कि कहानी समाप्त नही हुई। यह अवस्था ऊपर बताई हुई रहस्यमय अन्त वाली अवस्था से सर्वथा भिन्न होती है। उस अवस्था में कथानक का कोई न कोई आवश्यक अश छूट जाता है, जब कि इस प्रकार के अन्त में कथानक का कोई अंश आवृत्त नहीं रहता प्रत्युत एक ऐसी अप्रत्याशित बात कह दी जाती है जिसके सच्चे अर्थ को पाठक तत्काल नही समझ पाता और कुछ और रेखाओ की प्रत्याशा में रहता है, पर लेखक उन रेखाओ को खीचना अनावश्यक समझता है। सुप्रसिद्ध अमरीकी कहानी लेखक ओ हेनरी की कहानियाँ ऐसी ही होती है।

इस प्रकार के अन्त की एक अद्वितीय कहानी का उदाहरण इङ्गलैण्ड के

पंचम उच्छ्वास

कहानी के तत्त्व

पंचम उच्छ्वास

कहानी के तत्त्व

तत्त्व से अभिप्राय—समालोचना जगत में कहानी के चार पाँच तत्व प्रसिद्ध हैं, भाषा शैली, पात्र, कथानक या कथावस्तु, वार्त्तालाप, वातावरण तथा उद्देश्य। इनमें से किसे-किसे कहानी का सही अर्थों में तत्व माना जा सकता है यह कोई स्वयं सिद्ध बात नही है।

सबसे पहले प्रश्न यही है कि कहानी के तत्त्व से क्या अभिप्राय है और कहानी के तत्वो की गणना का उद्देश्य क्या है। 'तत्व' शब्द निश्चय ही भौतिक दर्शन (मैटाफिजिक्स) का एक पारिभाषिक शब्द है और हमारे यहाँ उसे ऐसा अविभाज्य उपकरण माना गया है जो किसी वस्तु के निर्माण में अकेला या अन्य वैसे ही उपकरणो की सहायता से उपयोगी सिद्ध हो सके। चराचर ब्रह्माण्ड के निर्माण मे जिन पञ्चभूतों (अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल और आकाश) का हाथ है वे सब हमारे यहाँ ऐसे तत्व माने गए हैं जिनका अस्तित्व अपने आप मे स्थिर है तथा जिनका विभाजन होना सम्भव नही। इन्ही के निश्चित मात्रानुसार सयोग से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है और इन्ही के क्षय या निलय से ब्रह्माण्ड का क्षय या निलय होता आया है।

छानबीन करने पर पाश्चात्य भौतिक शास्त्रियो ने यह सिद्ध किया है कि ये पञ्चभूत और चाहे जो कुछ हो, अविभाज्य नही है, उदाहरणार्थ जल हाइड्रोजन और आक्सीजन नाम की दो वायुओ के एक नियत परिमाण मे सयोग कर देने से बन जाता है और नियत परिस्थितियो में उसका इन उद्जन तथा ओषजन वायुओ मे रूपान्तर किया जा सकता है।

यह सिद्धान्त 'तत्व' शब्द की व्याख्या में कुछ परिवर्तन अवश्य उपस्थित करता है किन्तु उसको सर्वथा असिद्ध नही ठहराता। व्यावहारिक अर्थों में तत्व को एक ऐसा मौलिक विशद उपकरण मान सकते हैं जिससे किसी वस्तु के निर्माण में सक्रिय सहयोग मिले और जिसके अभाव में उसका सघटन होना सम्भव नही हो। अनिवार्यता का यह उपादान तत्व की व्याख्या में विशेष महत्व रखता है। कहने की आवश्यकता नही कि कहानी के तत्व भी इसी उपादान को लिए होते है।

'इसी प्रकार कहानी के तत्व हम कहानी के उन उपकरणों को कह सकते हैं। जिनके द्वारा कहानी का सघटन होता है और जिनके अभाव में उस का सघटित होना सम्भव नही होता। यहाँ तक आने पर भी समस्या का हल नही हो जाता। कितनी ही ऐसी बातें है जिन्हे कहानी के निर्माण में सहायक माना जा सकता है। और जिनके अभाव में कहानी का निर्माण होना सम्भव नही जान पडता, फिर भी उन सब बातो को कहानी के तत्वो के अन्तर्गत मानना उसके असली स्वरूप को भुलाना होगा। जैसे, भाषा। यह कहानी का एक अनिवार्य तत्त्व है। किन्तु कोई भी साहित्य बिना भाषा के नही लिखा जा सकता। अतः कहानी में ही विशेष रूप से अथवा सामान्य रूप से इसका उल्लेख क्यो किया जाय? प्रश्न यह है कि क्या किसी भी अन्य प्रकार के साहित्य की भाषा को कहानी में निस्सङ्कोच प्रयोग किया जा सकता है? स्पष्टतः नही। अतः जब हम भाषा को कहानी के तत्त्वो के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं तब उसका वही रूप, उसकी वैसी ही शैली को लेते हैं जिसका उपयोग कहानी में किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य तत्त्वो के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। कहानी साहित्य का ऐसा अङ्ग नही है जो उसके दूसरे अङ्गों से सर्वथा विच्छिन्न हो, प्रत्युत उसका उन सब अङ्गो से घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः यह मानना कि कहानी के तत्त्व अपने आप में सम्पूर्ण अथवा स्वतन्त्र होगे कहानी की झूठी वकालत करना होगा। कहानी के प्रायः सभी तत्व अन्य साहित्यो में अशतः अथवा पूर्णतः मिल जायँगे। उपन्यास में उसके सभी तत्त्व नाम में ज्यो के त्यो उपस्थित रहते हैं। किन्तु अन्तर केवल उनकी मात्रा, स्थिति, गुण तथा धर्म में होता है। उपन्यास में यदि पुरुष का ओज है तो कहानी में स्त्री का कौमार्य।

इससे यह सिद्ध हुआ कि कहानी के तत्व उसके वे ही उपकरण होते हैं जो उसका प्रस्तुत रूप उपस्थित करते है तथा जिनके न होने से उसके वर्तमान रूप में सघटित होने की शका होती। यहाँ प्रस्तुत रूप का अभिप्राय प्रत्येक अलग-अलग कहानी के प्रस्तुत रूप से नही है, प्रत्युत उसके सामान्यतः स्वीकार किए हुए स्वरूप से ही है जो स्वतः प्रत्येक कहानी में फलित होता हुआ देखा जा सकता है।

हम पुनः मूल प्रश्न पर आते हैं। तत्व कौन-कौन से है? उनकी गणना करने के साधन क्या हैं? किसी भी कहानी को उठा लीजिए। सबसे पहले हमारे सामने शीर्षक आता है। उसमें कुछ विचित्रता दिखाई पडती है। फिर हम प्रारम्भ पर आते हैं। उसमे भी कुछ 'अस्वाभाविकता' झाँकती सी दिखाई पडती है। (शैली)। इसी समय या कुछ आगे हमें कुछ व्यक्तियो के दर्शन होते

हु जिनका प्रस्तुत प्रसंग से कुछ न कुछ सम्बन्ध होने की आशङ्का होती है (पात्र)। धीरे धीरे कहानी की 'बात' या घटना से हमारा परिचय होता है, जैसे लेखक हमें केवल तथ्यगत विवरण (निबन्ध) या भावात्मक विचार (कविता) ही नही देता किन्तु कुछ घटनात्मक आदेश (कहानी) देना है (कथानक)। यह घटना कभी किन्ही दो या अधिक पात्रो के साक्षात्कार (कथोपकथन) द्वारा और कही वैसे ही मुकुलित हुई जान पडती है। इसी बीच में हमें घटना के पूर्वापर सूत्रो (देशकाल तथा वातावरण) का भी अभिज्ञान हो जाता है। और सारी कहानी को पढ चुकने के बाद हमें कुछ ऐसा लगता है कि उसकी अभिव्यक्ति में कुछ ऐसी अन्येतरता (इण्डिविजुएलिटी) है जिससे उसे झट से अन्य किसी भी साहित्य के अन्दर अन्तभू त करके नही रखा जा सकता (भाषाशैली)। यही पर हमें यह भी मालूम हो जाता है कि लेखक का विशेष मन्तव्य इस सारे वाग्जाल को इसी रूप में रखने का क्या था (उद्देश्य)। इन्ही बातो में कहानी के ये अनिवार्य तत्त्व छिपे हैं : (१) भाषाशैली (२) कथानक (३) चरित्र चित्रण (४) वार्त्तालाप (५) देशकाल (वातावरण) तथा प्रभाव और (६) उद्देश्य।

तत्त्वों का परस्पर सम्बन्ध—ये छहो तत्त्व परस्पर भलीभाँति गुथे हुए है और एक का काम बिना दूसरे की अनुकूलता के नही चल सकता। जैसे, पात्र जिस स्तर का होगा उसकी बातचीत की भाषा भी उसी स्तर की होगी। इसी प्रकार, ऐतिहासिक अथवा सास्कृतिक कथावस्तु वाली कहानी की भाषाशैली में एक विशेष प्रकार का गुरु गाम्भीर्य होगा जो अन्य कहानियों में मिल नही सकता। वास्तव में यही गाम्भीर्य है जो उसके वातावरण के गौरव की रक्षा करने में समर्थ होगा। पुनः, उदाहरणार्थ, दहेज की कुप्रथा के उन्मूलन के उद्देश्य वाली कहानी का कथानक निश्चय ही ऐसे पात्रो की सहायता बिना नही चल सकता जो उस उद्देश्य की सिद्धि में हाँ पक्ष से या ना पक्ष से सहायक नहीं हो। इन सब तत्त्वों का एक दूसरे से क्या सम्बन्ध है इस पर नीचे अलग-अलग तत्त्वो के प्रसङ्ग मे विचार किया जायगा।

तत्त्व गणना का प्रयोजन—ज्ञान की ज्योति को अखण्ड रखने की स्वाभाविक लालसा से युक्त मानव के लिए कदाचित यह प्रश्न नीरस है कि इन सब तत्त्वो की गणना का विशेष प्रयोजन क्या है। यह प्रश्न उन सैकडो प्रश्नो की शृङ्खला में से एक है जिनका समाधान करने की प्रेरणा सूर्य की पहली किरण ने मनुष्य को दी और जिनका यथेष्ट समाधान विज्ञान के चरमोत्कर्ष के

इस युग में भी मनुष्य को नही मिल सका है। साधारण रूप से ये तत्व विवेचन क्षेत्र में इसलिए आये हैं कि इनसे कहानी के पूर्ण रूप को समझने में सहायता मिलती है और विशेष रूप से यह जानने के लिए कि वह कौन सी वस्तु है जो कहानी को कहानी बनाती है। कहानी के तत्व तो शेष साहित्यो में भी उपलब्ध है, फिर उनकी कितनी मात्रा, उनकी कहां और कैसी स्थिति, उनके कौनसे गुण और धर्मों का संयोग किस रूप में होता है कि कहानी बन पडती है, अन्य कुछ नहीं ? इस प्रश्न का गहरा सम्बन्ध इस बात से है कि कहानी का शेष साहित्यों से क्या अन्तर है जिसका विस्तृत विवेचन दूसरे प्रकरण में हुआ है, अतः अनेकत्र उस प्रकरण की बातों का साकेतिक एव सूक्ष्म सन्दर्भ इस अध्याय में दिया जायगा।

(१) भाषा शैली—भाषा और शैली दो विभिन्न तत्त्व हैं किन्तु उनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि दोनो को एक ही तत्व स्वीकार किया गया है। कहानी की भाषा सर्वांश में न तो दर्शनशास्त्र की भाषा के समान जटिल है न कविता की भाषा के समान आलङ्कारिक। वह तो उपन्यास की भाषा की भांति प्रावाहिक है और उसका काम अबाध रूप से पाठक को आदि से अन्त तक ले चलना है। वह एक ऐसी गाडी है जिसकी लगाम पाठक के हाथ में ही है। इस सम्बन्ध में पाठक और किसी का प्रभुत्व अथवा परवशता स्वीकार नही करता। और कहानी का पाठक आज का एक व्यस्त जीवन व्यवसायी है; वह एकदम अपने गन्तव्य तक पहुँच जाना चाहता है। हाँ, मार्ग में यदि कि[illegible] आकर्षक दृश्य पर क्षणिक दृष्टिपात करने के लिये ठहर जाने का लोभ सबरण नही कर सकता तो वह ऐसा अपनी जिम्मेवारी पर ही करेगा—लेखक उससे ऐसा करने को नही कहेगा।

जैसे कहा जा चुका है, कहानी की भाषा अपनी छाप लिये हुए होती है। उसकी सरलता, उसकी स्वाभाविकता, कहानी के कुतूहल की रक्षा करने की तथा प्रस्तुत रस की संवेदना जाग्रत करने की क्षमता आदि कहानी की भाषा की विशेषताएँ है। इनके अतिरिक्त बिहारी के दोहो की भाँति विवरणो के निग्रह द्वारा छोटे से छोटे स्थल में अधिक से अधिक भावसूचन की योग्यता भी कहानी की भाषा की अपनी योग्यता है। उसमें व्यर्थ के शब्दो को कोई स्थान नही है क्योकि उसके प्रत्येक शब्द का अपना महत्त्व होता है। इसमें अत्युक्ति की कोई बात नही है। इसकी पुष्टि परिशिष्ट से हो जायगी। कहानी की भाषा में एक प्रकार का लोच भी होता है। पात्र जिस स्तर के हो उनके वार्ता-लाप की भाषा भी उसी स्तर की होनी चाहिये; शेष स्थलो में लेखक साधारण-

तथा वातावरण आदि को ध्यान में रखकर स्वतन्त्र भाषा का प्रयोग कर सकता है।

जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है, शीर्षक प्रारम्भिक स्थल, कहानी लिखने की प्रणाली, उसके कथानक की विभिन्न अवस्थाएँ, चरमावस्था, अन्त आदि की विशेषताएँ, सामान्य रूप से, उसमे पात्रो के द्वारा चलने वाली एक घटना होती है जिसकी अल्पकालीन परिणति एक विशेष अवस्था में होती है, ये सब बातें कहानी की शैली की अपनी विशेषताएँ है जिनसे कहानी का ढाँचा तैयार होता है।

अच्छे कहानी लेखको के यश का श्रेय अन्य कुछ बातो के अतिरिक्त उनकी कहानियो की भाषाशैली को विशेष रूप से होता है। यह तत्त्व इस प्रसङ्ग में इतना महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है कि कभी-कभी (और साधारण रूप में क्यो नही ?) कहानी विशेष के लेखक को पहिचानना उसकी भाषाशैली के द्वारा ही सम्भव होता है। भाषाशैली भावो तथा विचारो की वाहन है और प्रत्येक लेखक अपनी वस्तु को सजीव बनाने के लिये अपनी भाषाशैली में ही अधिक से अधिक प्राण प्रतिष्ठा करता है। देखा भी गया है कि भाषाशैली की उत्कृष्टता के पीछे अनेक प्रसिद्ध कहानीकारो की कितनी ही कथाओ के शेष तत्त्वो की निर्बलता अनायास छिप गई है और उन कहानियो में कितनी ही कमियाँ होते हुये भी हम उन्हे श्रेष्ठ मानने का लोभ सवरण नही कर सकते। कथानक चाहे दुर्बल हो, पात्रो की रेखाओ को इस गहराई से विकीर्ण होने का अवसर चाहे न मिला हो कि नका पूरा चित्र पाठक के हृदय में उतर जाय, वार्त्तालाप चाहे कहानी में नही हो, देशकाल का पूरा ज्ञान भले न हो सकता हो, यदि कहानी की भाषाशैली इतनी प्राणवती है कि कहानी बोल पड़ती है तो शेप तत्त्वो की उदासीनता उससे ढक जायगी। सक्षेप में, कहानी का कोई भी तत्त्व ऐसा नही जो भाषाशैली का लोहा न मानता हो। टाल्स्टाय और प्रेमचन्द की अधिकाश कहानियो के कथानकों में कोई विशेषता नही है, उसके पात्र अत्यन्त सहज स्वाभाविकता लिए है, उसके उद्देश्यों मे कोई महत्त्वाकाक्षाएँ नही हैं, किन्तु ये सब बाते यह सिद्ध करती है कि उनकी सर्वमान्य श्रेष्ठता का बोज उनके मूलभूत उद्देश्य के उपरान्त उनकी भाषाशैली की उत्कृष्टता में ही निहित है। फिर भी आप अँगुली रखकर यह नही कह सकते कि अमुक कहानी की अमुक स्थल की भाषा या शैलो विशेष महत्त्व की है। श्री जयशङ्करप्रसाद की कहानियो की महानता का उत्तरदायित्व अधिकाश में उनकी भाषाशैली पर ही है।

किन्तु सभी कहानियो की भाषा-शैली सर्वत्र सरल या स्वाभाविक नही होती, न ऐसा होना कदाचित अच्छा ही है। प्रत्येक भाषा-शैली में अपनी अपनी विशेषता होती है। यह विशेषता, जैसा कह चुके हैं, कभी लेखकगत और कभी

स्थलगत होती है। जहाँ यह विशेषता लेखकगत होती है वहाँ वह लेखक विशेष की विशिष्टता का संकेत देने का काम करती है। और जहा स्थलगत होती है वहा वह विभिन्नता या अनेकरूपता साहित्य का प्राण है इस सिद्धान्त के आधार पर उस कहानी की आकर्षकता की कसौटी होती है। प्रत्येक कहानी में दोनो विशेषताएँ होती है और दोनो प्रायः परस्पर इतनी ग्रथित होती हैं कि अवि-भाज्य। यहाँ केवल स्थलगत विशेषताओं की ही चर्चा की जाती है।

विशेष प्रयोगो वाली भाषा शैली प्रायः चार प्रकार की होती है—

(१) मुहाविरो तथा लोकोक्तियो से सम्पन्न वार्तालापो अथवा वर्णनो की भाषा।

(२) आलङ्कारिक भाषा।

(३) काव्यमय या भावप्रधान भाषा।

(४) चित्रमय भाषा।

(१) मुहाविरे तथा लोकोक्तियाँ भाषा के जीवट की परिचायक होती हैं। जहाँ सरल भाषा काम नही कर सकती वहाँ इस प्रकार की लाक्षणिक भाषा कमाल कर दिखाती है। इस आधार पर कहानी में वार्तालापो अथवा वर्णनो में मुहाविरो अथवा लोकोक्तियो का प्रयोग अभिवाछित प्रभाव का उत्पादन करने में अत्यन्त सफल होता है। एक उदाहरण—

"रघू ने ठण्डी साँस खीच कर कहा—मुलिया, घाव पर नोन न छिडक। तेरे ही कारण मेरी पीठ पर धूल लग रही है।' अलग्योझा' (प्रेमचन्द)

एक समालोचक ने ठीक कहा है कि इन दो मुहाविरो ने रघू के मुह से उसकी सारी अन्तर्वेदना कहला दी है।

यहाँ इतना ही कहना है कि एक तो जब तक मुहाविरे प्रस्तुत प्रसङ्ग मे पूरे न उतरते हो वहा तक उनका प्रयोग नही करना चाहिए और दूसरे उनका अत्यधिक प्रयोग श्रेयस्कर नही होता। मुहाविरो का प्रयोग प्रसङ्ग विशेष की अनुकूलता एव वक्ताओ की सापेक्षिक योग्यता के आधार पर ही करना चाहिए और उनका लक्ष्य भाषा में अजायबघर उतारना नही बल्कि यही होना चाहिए कि लाक्षणिकता के आधार पर प्रभाव को अधिक से अधिक गहरा बनाया जावे।

हिन्दी साहित्य मे यदि किसी ऐसे लेखक का नाम लिया जाय जिन्होने मुहाविरो का अधिक से अधिक और साथ ही पूरी सावधानी के साथ, सुरक्षा-पूर्वक, और साथ ही प्रवाह की स्वाभाविकता का निर्वाह करते हुए उपयोग किया है तो वह मुन्शी प्रेमचन्द ही है।

एक बात और। देखा जाता है कि ज्यो ज्यो पात्रो का शैक्षणिक स्तर

बढ़ता जाता है वैसे वैसे उनके वार्त्तालापों में मुहाविरों और लोकोक्तियों का उपयोग कम होता जाता है। इसका कारण जो कुछ हो, इस बात को कहानी लेखकों को ध्यान में रखना चाहिए और जहां तक सम्भव हो मुहाविरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग उन्हीं पात्रों के मुख से करवाना चाहिए जो निम्न तथा मध्य-स्तर के हों। यदि 'लोकोक्ति' का 'लोक संस्कृति' से सम्बन्ध जोड़ा जाय जिसका भावार्थ उस संस्कृति से है जो निम्न तथा निम्नमध्य वर्ग के आचार-विचारों से सम्बन्ध रखती है तो भी हमारी बात की पुष्टि होती है।

ज्यों ज्यों आधुनिक कहानी की शैली में एक विशेष वक्रता आने लगी है जिसके अग्रदूत सर्वश्री जैनेन्द्र, अज्ञेय, विनोदशङ्कर व्यास, अचल प्रभृति कलाकार हैं, वैसे वैसे मुहाविरों का प्रयोग कहानी से उठता सा जा रहा है। इस पर सम्बन्धित कलाकारों के व्यक्तिगत जीवन स्तर का प्रभाव तो पड़ा ही है, जब से यह भावना काम करने लगी है कि जहां तक हो सके 'नवीनता के लिए नवीनता' का नारा चरितार्थ किया जाय, जिसका परिणाम स्वाभाविकता की पूर्ण हत्या में परिलक्षित होता है, इस बात का भी कहानी की शैली पर प्रभाव पड़ा है और मुहाविरों का लोप इस प्रभाव का एक दुःखद परिणाम है। यह परिणाम निश्चित रूप से बुरा है यह बताना न समयानुकूल होगा और न उन कान्तिप्रभावित लेखकों के कोपभाजन होने से कम। इस बात को निर्णय के लिए हम योग्य समालोचकों पर छोड़ते हैं।

(२) आलङ्कारिक भाषा—मुहाविरों पर इतना कह चुकने के बाद आलङ्कारिक भाषा की वकालत करना मूर्खता होगी। आधुनिक शैलीकारों के कृपापात्र होने के लिए हम इतना अवलम्ब स्वीकार करलें कि आलङ्कारिक भाषा के लिए आज की कहानी में कोई स्थान नहीं है। सिद्धान्त यही कि अलङ्कार भाषा की कसरत है और आज की कहानी अपनी भाषा से क्या किसी भी अङ्ग से कसरत करवाना पसन्द नहीं करती। इस प्रकार की भाषा में शब्दालङ्कार तो आ ही जाते हैं जिनका एक उदाहरण यह है :—

'आगे पान की मिठाई, मोतीमाल की शीतलताई, और दीपज्योति की मन्दताई देख एक बार तो सब द्वार मूँद ऊषा बहुत घबराय घर में आय अति प्यार कर प्रिय को कण्ठ लगाय लेती।" —लल्लूलाल, "प्रेमसागर"

साथ ही अन्य सभी प्रकार के अलङ्कार भी।

किन्तु पुरानी परिपाटी का समालोचक अपनी जीर्ण शीर्ण सामर्थ्य लेकर ससम्मान शङ्का करेगा। साधु, किन्तु महाशय, जरा बताइए, आप अपनी आधुनिक आख्यायिकाओं के अन्दर प्रतीकों के नाम पर जिन अभिनव प्रयो-

लङ्कारो की आंधियाँ उडाते हैं वे क्या अक्षम्य अपराधो के अन्तर्गत नही आते ?

नवीन समालोचक का सिर शर्म के मारे झुक जाता है ! वास्तव में अलङ्कार काव्य का बहिर्गत गुण नही, अन्तःसौन्दर्य है । कदाचित इसी कारण अलङ्कार काव्य जगत में इतनी 'यथार्थता' आने पर भी वहाँ से सर्वथा उठ न गए, प्रत्युत उनमें रूप परिवर्तन मात्र ही हुआ है । प्रतीक तो आज के अनेक शैलीकारो का प्राण बनकर रह गया है और कितने ही लेखको के नाम गिनाये जा सकते है जिनकी कहानियो की शैली सर्वाशतः प्रतीक शैली है । कहानियो में प्रतीक की महत्ता इसी बात को लेकर है कि अर्थ करने में ये साधारणतया इतने जटिल होते हुए भी दिखने मे ये अत्यन्त सरल और फलतः आकर्षक होते हैं । शब्दलङ्कार से अर्थालङ्कार की ओर जाने की जो भूमिका है वह साहित्य में प्रयुक्त होने वाले कठिन से कठिन अलङ्कारो को योजना की सार्थकता का प्रमाण है । हो सकता है आज जिस दृष्टि से हम शब्दालङ्कारो को देखते हैं आने वाले समय मे हम प्रतीक आदि अलङ्कारो को भी उसी दृष्टि से देखने लगें : कोई आश्चर्य भी नही यदि इनके अत्यधिक प्रयोग को देखकर लोग 'अतिपरिचयादवज्ञा' के सिद्धान्त से इनको केवल कौतूहल की ही वस्तु समझने लगें (वास्तव में यथार्थवादियो का एक ग्रूप है भी जो कविता मे भी प्रतीको के प्रयोग को हेय दृष्टि से देखता है) किन्तु इस बात को लेकर हम कहानियो में प्रतीको के प्रयोग को निरुत्साहित करना अकर्तव्य समझते है । हाँ, शब्दालङ्कार, और वे भी ऐसे जैसे कि आधुनिक हिन्दी की पहली कहानी इशाअल्लाखा कृत 'रानी केतकी की कहानी' में प्रयुक्त हुए है (जिनके दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं) वर्ज्य हैं—

(१) प्रारम्भिक अश में से—"एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले…… "अपने मिलने वालो में से एक कोई पढ़े लिखे ……लगे कहने, यह बात होते दिखाई देती नही ।"

(२) "सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरातियाँ थी उन सभी पर खचाखच कञ्चनियाँ रामजनियाँ डोमनियाँ भरी हुई अपने-अपने करतबो मे नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती, धूमे मचातियाँ अँगडातियाँ जम्हातियाँ उँगलियाँ नचातियाँ और खुली पड़ातियाँ थी ।" अपने युग में इनका कितना ही महत्व रहा हो और हरिऔधजी जैसे रसिक जिन्दादिलो के नाम पर इनकी कितनी ही प्रशसा क्यो न करें । वास्तव में ये ही अलङ्कार है जिन्होने कहानी की भाषा में अलङ्कारो के प्रयोग को बदनाम किया है ।

(३) काव्यमय या भाव प्रधान भाषा—इसके स्पष्टीकरण में इतना ही

कहना पर्याप्त होगा कि जब कहानी में ऐसी भाषा का प्रयोग होने लगता है जो पढने में काव्य का-सा आनन्द (?) देती हो तब हम कहानी को काव्यमय भाषा-युक्त कहानी मानते हैं। इस प्रकार की भाषा की वकालत करने का कार्य बडा कठिन है यद्यपि है अत्यावश्यक। कारण यह कि लोग कहानी को कहानी पढने के लिए ही उठाते है कविता पढने के लिए नही। दूसरी बात यह कि लोग किसी भी बात को इतनी कम मात्रा में पढना चाहते हैं कि कहानी पढते समय कवितात्मक प्रसङ्गो को तो वे अपने ध्यानमार्ग से यो निकाल फेंकते हैं ज्यों दूध में से मक्खी को। प्रश्न है कि ऐसी अवस्था में काव्यमय प्रसङ्गो की योजना कहानी में क्यों की जाती है और क्या उन्हे आसानी से कहानी के क्षेत्र से नियमित रूप से बहिष्कृत करके नही रक्खा जा सकता ? यदि नही तो क्या उसका कोई अनुपात निश्चित हो सकता है और ऐसे प्रसङ्गों का निर्दोष रूप क्या होगा ?

कहानी अपने निर्माण में कविता के प्रति ऋणी है और वह कविता की एक विशेष विवशता से उत्पन्न हुई है। इस बात को शैली वाले प्रकरण में स्पष्ट कर दिया गया है। किन्तु इस आभार के प्रतिदान स्वरूप कविता कहानी में अपने निरन्तर प्रदर्शन की माँग करे यह समीचीन नही है। कहानी में भाव-प्रधान स्थलो की स्थिति का आग्रह करने वाले कहानी की इस दुर्बलता का उल्लेख किया भी नही करते। कभी-कभी ऐसे स्थल इतने विशिष्ट होते है कि उन्हे कम से कम उनमें आने वाले कतिपय शब्दो या शब्द-समूहो को, अलग कर के रखा जा सकता है या रखने का लोभ होता है। क्या फिर भी कविता कहानी पर इस प्रकार रौब गाँठती रहे और कहानी द्रौपदी की भाँति काव्य-रूपी कौरवो के हाथो पीडित होती रहे।

यह बात सही है कि कविता का कहानी पर कोई अधिकार नही है। फिर भी कहानी (जो बहिर्मुखी साहित्य है) कभी-कभी इतना अन्तर्मुखी हो उठता है कि उसे कविता का आश्रय लेना पडता है। उन्ही अवसरो पर कहानी की भाषा भावप्रधान या कवितात्मक हो जाती है। ऐसे अवसर तब आते हैं जब किसी पात्र के चरित्र का एक विशेष रूप या कहानी की घटना का कोई अश इतना अधिक मार्मिक हो जाता है कि लेखक उसके साथ तादात्म्य अनुभव करता हुआ भावधारा में बह जाता है। सच पूछिए तो कहानी में रस की सृष्टि ऐसे ही स्थलों पर होती है। या तो कहानी का कोई न कोई पात्र, या स्वय लेखक उस घटना से इतना अधिक प्रभावित होता है कि वह अपने आपको तत्कालीन वस्तुजगत की सीमाओ से घिरा हुआ अनुभव न करते हुए उससे मुक्त

एक विशेष भावनापन में अनुभव करता है और इस अवस्था को प्राप्त होने पर पात्र स्वयं या लेखक ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो तत्कालीन वातावरण की दृश्य वास्तविकता से परे होती है, फिर भी उसका सम्पूर्ण सार, उन परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले प्रभाव की सम्पूर्ण मार्मिकता उस भाषा में आ जाती है। स्पष्ट है कि रसानुभूति की उस अवस्था (या शास्त्रीय शब्दावली में कहें तो 'मधुमती भूमिका') में न पहुँचे हुए किसी भी पाठक को वह भाषा शेष प्रसङ्ग से कभी सर्वथा और कभी अंशतः विच्छिन्न जान पडेगी और उसमें शेष भाषा से एक प्रकार की असङ्गति जान पडेगी। किन्तु पाठक यदि धैर्यपूर्वक उस स्थल की मार्मिकता को पहचानने की चेष्टा करता है तो उसे उस भाषा की यथार्थता का अभिज्ञान तत्काल हो जायगा। इस बात की दो-तीन सीमाएँ हैं जिनका उल्लेख बाद में किया जायगा।

एक उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया जाता है। शैली वाले प्रकरण में अज्ञेयजी की एक कहानी 'इन्दु की बेटी' के एक अंश का उद्धरण दिया गया है। वहाँ इस उद्धरण की विवेचना शैली के सम्बन्ध में एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर की गई है। यह उद्धरण भावात्मक भाषा का एक अभूतपूर्व उदाहरण है। विवेच्य प्रसङ्ग से पूर्व की एकाध पंक्तियों को नीचे दिया जाता है ताकि उनसे इस प्रसङ्ग की प्रतीयमान विभिन्नता प्रकट हो जायगी।

"......इन्दु उठी और झुकी कि देखे वह सवार रह गया कि नहीं और निश्चिन्त हो जाय।"

उद्धरण इस प्रकार है—

"उसने देखा—अन्धकार—कुछ डूबता सा—एक टीस—जाँघ और कन्धे में जैसे भीषण आग—फिर एक दूसरे प्रकार का अन्धकार।"

गाडी मानो विवश क्रोध से चिचियाती हुई रुकी कि अनुभूतियों से बंधे क्षुद्र चेतन संसार को घटना के लिए किसी ने चैन खींचकर उस जड, निरीह और इसीलिए अडिग शक्ति को क्यों रोक दिया है।"

कथानक का केवल इतना सा अंश इन पंक्तियों में है कि इन्दु चलती रेल गाडी से सिर निकाल कर देखने की प्रक्रिया में गिर पडी है तथा इन्दु के गिर पड़ने के साथ किसी ने गाडी को चैन खींच कर ठहरा लिया है। ऊपर के शब्दों में ऐसा भी संकेत है कि गिरने के थोडी ही देर बाद इन्दु वहीं समाप्त होगई है।

प्रश्न यह है कि वह कौनसी बात है जिसने लेखक से यह बात केवल इतने से ही शब्दों में और इसी सरल रूप में नहीं कहलवाई प्रत्युत इसके लिए उसे एक विशेष भाषा का प्रयोग करना पड़ा जिसे हम भावात्मक भाषा कहते हैं।

लेखक यह बात निस्सन्देह रूप में जानता है कि इन्दु के मरने की घटना कहानी की सम्पूर्ण घटना का एक बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण अंश है केवल इसलिए नहीं कि मरण से भयंकर जीवन में और कोई घटना नहीं हो सकती, बल्कि इसीलिए कि इस घटना का कहानी के नायक रामलाल के जीवन पर प्रभाव ही नहीं, क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ने वाला है। इस बात का महत्व इससे और अधिक बढ़ जाता है कि इन्दु का अन्त उसके पति रामलाल के लिए बड़े अप्रत्याशित, आकस्मिक और रहस्यमत ढङ्ग से हुआ है। जिस इन्दु से उसे सारे वैवाहिक जीवन में सुख नहीं मिला, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इन्दु रामलाल की भावनाओं को या तो समझ नहीं सकी और यदि समझ सकी तो उनके अनुरूप उसने अपने व्यवहार में वाञ्छित परिवर्तन करने की उदारता नहीं दिखाई, वही इन्दु यह निश्चय करने की धुन में गाडी से गिर पडे कि रामलाल क्षेमपूर्वक गाडी पर चढ गया है कि नहीं, या उसमें इतनी सजगता भी है कि वह अपने पति की कुशलता के निश्चय के लिए अपनी जान तक को खतरे में डाल सकती है, जान में या अनजान में, रामलाल जैसे असन्तुष्ट पति को इस बात का विश्वास क्या आभास भी न हो सकता था। इसी प्रश्न का दूसरा पहलू भी है। रामलाल गाडी में चढ गया है या नहीं इस निश्चय में इन्दु का अपना हित अधिक है या रामलाल का ? इन सब अनिश्चयात्मक परिस्थितियों को गर्भ में लिए यह दृश्य उठाया गया है। जो कुछ भी हो, यह सही है कि इन्दु गिरी है और चैन खींचकर गाडी रोकी गई है। प्रस्तुत शब्दों के सहारे हम इस दृश्य का पुनरांकन करने की चेष्टा करते हैं।

अज्ञेयजी ने लिखा है—"उसने देखा ···।" दृश्य की सारी वास्तविकता क्या इन्दु नामक पात्र में केन्द्रित नहीं होगई है ? हमारे सामने अभी रामलाल का नाम भी आया है। किन्तु रामलाल हमारे दृष्टिपथ से पीछे रह गया है और लेखक नहीं चाहता कि उसका पुनः स्मरण आपको हो क्योंकि उससे उसके अभीष्ट प्रभाव की सिद्धि नहीं होगी। रामलाल गाडी पर चढा या नहीं इन्दु इसी अनिश्चय में है। सारे पाठक भी इसी अनिश्चय में हैं। इसी कारण वह उसे पीछे छोड देता है और कहानी के दूसरे प्रधान पात्र इन्दु पर आजाता है। दूसरी बात, इन्दु यह जानना चाहती है कि रामलाल चढा या नहीं (यह बात कहानी की घटना के उस अंश की शृङ्खला में है जिसे इन्दु की इस जिज्ञासा से ठीक पूर्व लेखक ने उपस्थित किया है।) और इसी के निश्चयार्थ वह लपक कर देखती है कि रामलाल चढा या नहीं। संकल्प ने कार्य का रूप ले लिया है। और

देखने के बाद दूसरी न कोई घटना ही आती है बीच में, न कोई पात्र ही, केवल इस बात को छोड कर कि वह गिर पडी है। तब यदि लेखक हमारे सामने केवल इन्दु को उपस्थित करे तो कौन सा आश्चर्य ? बाहर सिर निकाल कर देखने से पूर्व लेखक इन्दु के अन्तर्द्वन्द्व की ओर संकेत कर सकता था। किन्तु एक तो इन्दु अशिक्षित है और फलतः अधिक सोच विचार की कृत्रिम स्थिति में नही आती, और दूसरे, रामलाल उसके पास नही है इस अभाव के प्रतिक्रियात्मक ज्ञान से जिस संकल्प का उदय हो सकता था (कि यह देख लिया जाय कि वह कम से कम गाडी में तो चढ गया कि नही) उस सङ्कल्प और उसके कार्यरूप में परिणत होने, इन दोनो बातो के बीच इतना कम समय रहा है कि लेखक को और कुछ कहने की आवश्यकता क्या अवकाश ही नही रहता। तभी सब पात्रो, दृश्यो, बातो, भावनाओं को छोड़कर लेखक ने लिखा है :—
"उसने देखा ...।"

क्या देखा ?

चलती रेलगाडी से आदमियों या औरतों के गिर पडने के दृश्य कइयों ने देखे होगे, किन्तु गाडी से स्वय गिरता हुआ आदमी, और वह भी जान बूझ कर नही, प्रत्युत अचानक किसी असावधानीवश, गिर पडने वाला आदमी, अपने आपको कैसा अनुभव करता है, इस बात की कल्पना अज्ञेयजी ने की है। (इतना हम पहले से ही मान लेते है कि अज्ञेयजी को चलती रेलगाडी से असावधानी वश गिर पडने का व्यक्तिगत अनुभव नही है। हो तो भी वह अनुभव कदाचित उस अनुभव से भिन्न है जो किसी व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियो में होता है जिनमें गिर पडने से उसकी मृत्यु शत प्रतिशत (निन्नानवे प्रतिशत नही) निश्चित हो, जैसा अनुभव इन्दु को हुआ होगा।)

दृश्य इस प्रकार है कि इन्दु ने देखना चाहा तो यह था कि रामलाल गाडी पर चढ गया कि नही। किन्तु वास्तव में उसने जो देखा वह अपने निश्चय से भिन्न था। उसने देखा, अन्धकार। दृश्य में कितनी सक्षिप्त मार्मिकता आगई है। अन्धकार एक भावमात्र रह गया है। इन्दु ने जो सङ्कल्प किया उसका परिणाम उसे यही मिला कि वह गिर पडी और चलती रेलगाडी से गिर पडने में और किस दृश्य की कल्पना की जा सकती है ? उसकी आँखों की पुतलियाँ फिरगई होंगी। और फिर वह अन्धकार इस दृश्य का सर्वस्व नही—तभी कुशल कलाकार ने इस शब्द के आगे पूर्ण विराम चिह्न (।) नही, बल्कि सयोजक चिह्न (—) लगाया है। परदे मे बन्द भारतीय नारी जाति की ऐकान्तिक

विषम वेदना इस अवस्था में भी चिल्ला तक नही सकी, प्रत्युत उसके हृदय से एक टीस मात्र निकली। वह अवश्य ही रेल के पहिए के नीचे आगई होगी और उसके कन्धे और जांघ में भीषण चोट आई होगी। इस चोट की तिलमिलाहट ने निस्सन्देह आग का काम किया होगा। इसमें न कोई अतिशयोक्ति और न कोई लाक्षणिक प्रयोग, क्योकि "भीषण आग" के पहले लेखक के "जैसे" क्रिया विशेषण लगा दिया है। और तीसरे ही क्षण मे अचेतनता का वह महा-पेवत्र जिसे मर्त्य 'मृत्यु' कहते हैं उसे लील गया। यह अन्धकार उस अन्धकार से सर्वथा भिन्न था जिसे उसने गिरते ही तत्काल अनुभव किया था। इस अन्धकार ने इन्दु को इन्द्रियो के प्रभाव से मुक्त कर दिया है। तभी लेखक ने कहा है—"एक दूसरे प्रकार का अन्धकार।"

शब्दो की सक्षिप्तता, क्रियाओ का लोप, आदि सब एक विशेष बात की ओर सकेत करते हैं और वह यह कि यह प्रसङ्ग असाधारण है। यह है उस प्रसङ्ग की भूमिका जिसमें कवित्वमय या भावप्रधान भाषा का प्रयोग किया गया है और जिसका विवेचन अब किया जायगा।

प्रस्तुत परिस्थितियो में कहानी के गतिशील संसार की प्रतीक कौनसी शक्ति है? इन्दु समाप्तप्राय है, रामलाल को हम पीछे छोड़ आये हैं, लेखक अब भी कौतूहल के इस सूत्र को पकड़े हुए है कि रामलाल गाड़ी पर चढा या नही, अतः इस दृश्य में उसकी उपस्थिति का प्रश्न ही नही उठता। अतः जिस शक्ति में सारे विद्यमान जगत की कल्पना की जा सकती है वह रेलगाड़ी है। इसीसे लेखक ने गाडी को सजीव शक्ति के रूप में देखा है और उसे इस वातावरण की अधिष्ठात्री बनाया है। उसके मानवीकरण एव अग्रगण्यता का यही रहस्य है।

वातावरण की इस अधिष्ठात्री को क्रोध हुआ है क्योकि उसे बिना किसी सूचना दिए रोक दिया गया है। किसी भागते हुए व्यक्ति की कल्पना कीजिए जिसे अपने काम पर निश्चित समय पर पहुँचना है। यदि ऐसे व्यक्ति को कोई व्यक्ति बिना किसी पूर्व सूचना दिये एकदम से रोक लेता है तो उसे क्रोध आना स्वाभाविक है, विशेष रूप से जब रोकने वाला व्यक्ति अपरिचित हो। उसे क्रोध इसलिए भी हुआ कि जिस कारण से उसे रोका गया है वह उसकी दृष्टि में नगण्य है। उस घटना का सम्बन्ध एक ऐसे क्षुद्र ससार से है जिसके चारो ओर अनुभूतियों का, भावनाओ का बन्धन है—वह मुक्त नही है, स्वतन्त्र नही है, उसकी अपनी भाँति जड़ अतएव अडिग नही। यदि उसमे चेतनता होती इच्छाशक्ति होती, तो सम्भव है वह चेतन ससार की एक घटना से प्रभावित हो जाती, किन्तु इस घटना से वह अप्रभावित है, वह यह घोषणा करना चाहती

है। फिर भी न जाने उसे क्यो रोक लिया गया ? ('किसी ने' 'चैन खीचकर' और 'रोक लिया' ये शब्द यहाँ घटना के अश बनकर आए है।)

इस प्रतिरोध के प्रति उसे क्षोभ है, किन्तु उसका क्रोध 'विवश' है क्योकि रोकने पर न रुकने की सामर्थ्य उसमें नही है। उसका क्रोध इसलिए भी विवश है क्योकि एक दृष्टि से उसने अपराध किया है कि अपनी एक थाती (इन्दु) को बिना किसी को सूचना दिए अपने हाथो से गिरा दिया है। यह अपराध यद्यपि निरीह है, जान बूझ कर नही किया गया, फिर भी है अपराधी ही। इसके पश्चात्ताप स्वरूप उसमें कुछ विवशता की मात्रा आगई है।

और अन्ततोगत्वा 'चिचियाती'! अज्ञेयजी का यह शब्द बड़ा अभिव्यञ्जनशील है। भागती हुई रेलगाड़ी को चेन खीचने पर उसके पहियो मे ब्रेक लगने की जो ध्वनि होती है वह इस शब्द से बडी मिलती है। इस ध्वनि से भिन्न भी यह शब्द उस ध्वनि का द्योतक है जो भारी क्रोध में विवशता की मात्रा मिल जाने से मनुष्य के मुख से अनायास निकल पड़ती है। निस्सन्देह इस चिचियाती शब्द की व्यापकता चिचियाने वाली शक्ति की व्यापकता के अनुताप में तो होगी ही। अस्तु !

सारा विस्तृत विवेचन इस बात की सिद्धि करने के लिए है कि भावात्मक स्थलो की योजना प्रसङ्ग विशेष की मार्मिकता तथा प्रभावोत्पादकता की मात्रा के अनुकूल ही हुआ करती है और केवल इसीलिए नही हुआ करती कि लेखक को कहानी लिखते लिखते कविता लिखने की मन मे आगई! ऐसी अवस्था से उसे कविता लिखने में भावादि सञ्चयन मे जो प्रयास लगता है वह प्रयास भी नही करना पड़ता।

ऐसे स्थलो की दो तीन योग्यताएँ अनिवार्य है। इन योग्यताओं के न होने से इनमें वह मार्मिकता नही आएगी जिसकी सिद्धि के लिए इनकी योजना की जाती है। एक तो ऐसे स्थल कहानी मे कम से कम आने चाहिए, क्योकि इनमे चाहे कितनी ही यथार्थता या उपादेयता हो, आखिर ये कहानी के शेष भाग से भाषा की दृष्टि से कुछ भिन्न होते है और साधारण पाठक इतना सुखोपजीवी होता है कि उसे यदि ऐसा कोई आशङ्का भी हो जाय कि अमुक स्थल फालतू है तो वह उससे बिना किसी हिचकिचाहट के किनारा कर जायगा। उस अंश की यथार्थता का ज्ञान तो आखिर उसे पढने पर ही मिलेगा। साधारण पाठक की इस मनोवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए ऐसे भावात्मक स्थलो की न्यूनतम योजना ही विधेय है। इतने पर भी उन्हे न्यूनतम आवश्यक शब्दो में व्यक्त करना एक अतिरिक्त कला है।

ऐसे स्थलो की दूसरी और अधिक महत्त्वपूर्ण योग्यता यह है कि जिसके अनुसार ऐसे स्थलो में लेखक अपनी कहानी का कोई न कोई तत्त्व, विशेष रूप से चरित्र या कथावस्तु के किसी ऐसे अंग को कुशलतापूर्वक गूंथ दे कि उनका विभाजन कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाय। उक्त उद्धरण में, जैसा कहा जा चुका है, कथानक की दो बातें जिनमें से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, अर्थात् इन्दु का रेलगाडी पर से गिर कर मर जाना, और दूसरी, रेलगाडी का चैन खीचकर रोक लिया जाना, इन्हें इस कौशल से कहानी की भाषा में घुला मिला कर दोनो को परस्पर अन्योन्याश्रित कर दिया गया है कि भाषा के भावात्मक अंश को कथानक के अंश से अलग किया ही नहीं जा सकता।

तीसरी बात यह कि लेखक को इस बात की अच्छी तरह पहचान होनी चाहिए कि कहानी में कौन से स्थल मे ऐसी मार्मिकता है कि पाठक वहाँ क्षण भर रुकने को तैयार हो जाय ताकि वह कवितात्मक भाषा का कहानी के मूल प्रभाव से अलग हुए बिना सच्चा आनन्द ले सके। इसके लिए लेखक को उचित भूमिका बनाने की आवश्यकता पडती है।

हिन्दी में श्री जयशङ्करप्रसाद भाव प्रधान भाषा वाली कहानियो के वाल्मीकि माने जा सकते है। इनकी कहानियो में अनेकत्र कविता पढने का-सा आनन्द आता है। एक उदाहरण फिर से उद्धृत करने के लिए क्षमा चाहता हूँ।

गोधूलि थी और वही उदास रमला झील। आज उसके मन मे न जाने कहाँ का स्नेह उमडा पडता था। प्रशान्त रमला में एक चमकीला फूल हिलने लगा। साजन ने आँख उठाकर देखा पहाड़ी की चोटी पर एक तारका रमला के उदास भाल पर सौभाग्य चिह्न सी चमक उठी थी। देखते देखते रमला का वक्ष नक्षत्रो के हार से सुशोभित हो उठा। साजन ने पुकारा : रानी।" अज्ञेय का 'शेखर' इस भाषा का ओजस्वी उदाहरण है।

चित्रमय भाषा—यह भी कहानी में भाषा का एक विशेष प्रयोग है। इसका स्वरूप स्पष्ट है। जब ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाय कि आँखो के आगे प्रस्तुत प्रसङ्ग का एक चित्र-सा उतर जाय तो वहाँ भाषा चित्रमय कहलाती है। ऐसी भाषा का प्रयोग विशेष रूप से वातावरण और चरित्र-चित्रण के प्रसग में होता है। घटना ऐसे स्थलो में केवल पृष्ठभूमि का काम करती है। वातावरण और चरित्र चित्रण दोनो के सम्बन्ध में यद्यपि चित्रमय भाषा के प्रयोग समान रूप से महत्त्वपूर्ण है, फिर भी दोनो का इस सम्बन्ध में अलग-अलग स्थान है। वातावरण जिन बातो से प्रभावशाली होता है उनमें विवरणो की सजीवता का प्रमुख हाथ है। विवरणो की यह सजीवता तभी आती है जब भाषा में सारे

दृश्य को पाठक के मनःपटल पर ज्यो का त्यो अङ्कित कर देने की क्षमता हो।

उग्रजी की कहानी का वह अश जो शैली के प्रकरण मे उद्धृत किया गया है ("मेरी एक माँ थी, मसजिद की तरह बूढी, कुरानपाक की तरह पाक · ··" चित्रमय भाषा का एक सफल उदाहरण है। प्रसादजी का 'देवरथ' शीर्षक कहानी का प्रारम्भिक अश भी भाषा के द्वारा सघ में सद्यागत भिक्षुणी सुजाता का एक सम्पूर्ण चित्र खडा करता है। इस चित्र की एक और असाधारण विशेषता है। यह सुजाता के मन की तात्कालिक गहरी उहापोह, व्यग्रता, चिन्ता, सन्तोष का टोह में लगे हुए भीषण असन्तोष, समाधान के लिए आतुर उसके व्यथित मानस की क्षुब्ध अन्तर्वृत्तियाँ, सबको पाठक के मन में एक ही वाक्य के द्वारा उतार देता है। देखिए :—

"दो तीन रेखाएँ भाल पर, काली पुतलियो के समीप मोटी और काली बरौनियो का घेरा, घनी आपस में मिली रहने वाली भवें और नासापुट के नीचे हलकी हलकी हरियाली उस तापसी के गोरे मुँह पर सबल अभिव्यक्ति की प्रेरणा करती थी।

यौवन काषाय से कही छिप सकता है? संसार का दुखपूर्ण समझकर ही तो वह सघ की शरण में आई थी। ···"

चित्र साहित्य की एक इकाई है। साहित्य के तथ्य का ग्रहण पाठक चित्र प्रणाली द्वारा ही करता है। चाहे वह तथ्य चित्र भाषा मे अभिव्यक्त किया गया हो अथवा नही। इसका अर्थ यह कि साहित्यकार जो कुछ भी लिखता है उसको मस्तिष्क में भली पूरी तौर पर बैठाने के लिए प्रत्येक पाठक उसकी एक मानसिक प्रतिमा बना लेता है और उसे उसी रूप मे ग्रहण करता है।

ऐसे साहित्य बहुत कम होते है जिनमें चित्र प्रणाली का सिद्धान्त लागू न होता हो। अङ्कगणित, ज्योतिष आदि शास्त्रो के कतिपय अश इस कोटि में आ सकते है, जिनमे वस्तु ग्रहण एक भिन्न प्रणाली, जिसे तथ्य प्रणाली कह सकते हैं, से होता है। इनमें पाठक कोई तात्कालिक चित्र बनाकर मस्तिष्क में इनकी वस्तु को नही बैठाता, बल्कि उसके मन मे इनकी वस्तु के लिए पहले से ही कुछ संकेत बने हुए होते हैं जिन्हे पाठक प्रत्येक बार प्रयोग करता है। जैसे यदि यह कहा जाय कि दो और दो चार होते हैं तो इस बात को समझने के लिए साधारण पाठक मन में कोई चित्र नही बनाएगा, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा वह दो और दो के तीन होने की बात को गलत घोषित कर देगा। किन्तु यहाँ भी वस्तु ग्रहण के मूलान्त में चित्रप्रणाली ही है। कालान्तर में वह भिन्न रूप ग्रहण कर इसी रूप में रूढ़ हो गई है। आज भी जब छोटे बालक को

योग आदि का ज्ञान कराया जाता है तो उसे सीधी अर्थहीन रेखाओं द्वारा ही समझाया जाता है। वास्तव में यही चित्र है जो उसके मन में इस प्रकार से जम जाता है कि उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती।

किन्तु कथात्मक साहित्य की चित्र प्रणाली अनुकृति मूलक होती है। दो और दो को समझने के लिए चाहे चार सीधी रेखाओं के रूप में एक चित्र क्यों न उपस्थित किया जाय किन्तु अङ्कगणित की यह वस्तु बालक के मन में अन्ततोगत्वा एक चित्र के रूप में नहीं उतरती, प्रत्युत उससे जो अभिव्यक्ति होती है उसके अर्थात् चार की सम्मिलित भावना के रूप में उतरती है।

इसके विपरीत जब हम यह कहते हैं—"तब बिहारी आवेश में आकर बोला, मैं नहीं जानता ईश्वर फीश्वर को·····" तब हम बिहारी के अनुकरण में एक ऐसे व्यक्ति का चित्र अपनी कल्पना की चक्षुओं के सामने बनाते हैं जो बहस के समय एकाएक गर्म हो गया हो और आँखें लाल पीली करके ईश्वर की स्थिति को अपने पूरे आत्मिक (और कभी-कभी शारीरिक) बल के द्वारा चुनौती देने को तैयार हो। इतनी भूमिका के बाद हम उसमें आवेश की स्थिति का अभिनिवेश कराते हैं और फिर उससे हम अपने मन के प्रति वही कहलवाते हैं (जैसे कि हमें वह सुनाकर कह रहा हो) जो उसने कहानी के पात्रों के सामने कहा। यहाँ चित्र (कल्पना) और घटना (यथार्थ) दोनों इतनी एकाकार हो जाती है कि दोनों का भेद करना असम्भव हो जाता है।

पाठक जब तक साहित्य की इस सारग्राहिणी प्रणाली से समझने का कष्ट नहीं उठाता तब तक उसमें रस की उपयुक्त अनुभूति उत्पन्न नहीं हो सकती और फलतः वह उसका पूरा आनन्द नहीं ले सकता। अच्छे साहित्य में भी कभी कभी लोकप्रियता का अभाव होता है। इसका कारण साधारण पाठकों के स्तर, रुचि आदि के अतिरिक्त प्रायः उनकी वह सुखोपजीवी वृत्ति होती है जिसके कारण वे चित्रप्रणाली द्वारा सारग्रहण की अधिक श्रमसाध्य प्रक्रिया में से गुजरना स्वीकार नहीं करते।

इसके साथ यह भी सही है कि साहित्य का प्रत्येक अंश ऐसा नहीं होता जिससे समान रूप से सम्पूर्ण चित्र की उपलब्धि बिना अतिरिक्त कल्पना की सहायता के हो जाय। इस अवस्था में सम्भव है दृश्यविशेष की मार्मिकता में उसी अनुपात में कमी आजाय जिस अनुपात में अतिरिक्त कल्पना की सहायता ली जाती है क्योंकि प्रत्येक पाठक की कल्पनाशक्ति की दिशा और मात्रा में अन्तर होता है और वह सदा ही लेखक की कल्पनाशक्ति का अनुसरण नहीं करती।

इतना होते हुए भी कहानीकार चाहे घटना का संघटन कर रहा हो,

चाहे चरित्र चित्रण; दृश्यदर्शन करवा रहा हो, चाहे विचारविज्ञापन; पाठक उसका ग्रहण अधिकांश में चित्रप्रणाली द्वारा ही करता है। चित्रमय भाषा उसी प्रणाली का लेखक की ओर से दिया हुआ उभरा हुआ रूप है और इसकी विशिष्टता इसी में है। तभी अधिकांश लेखक इसे कहानी के प्रारम्भ में अधिक प्रयोग करते हैं।

इस बात का अध्ययन बड़ा रोचक होगा कि कहानी के अन्य तत्व भाषा शैली को किस प्रकार प्रभावित करते हैं और किस प्रकार भाषा शैली द्वारा शेष तत्त्व प्रभावित होते हैं।

सबसे पहले कथानक की ही चर्चा करें। यह बात स्पष्ट है कि कहानी की कथावस्तु यदि ऐतिहासिक या पौराणिक होगी तो उसकी भाषा में उसी के अनुकूल गाम्भीर्य एवं शालीनता का होना आवश्यक है। उसकी भाषा शैली से एक ऐसा वातावरण तैयार होना चाहिए कि उसमें चित्रित किए गये अतीत के सही स्वरूप की एक झाँकी सी मिल जाय। इसी प्रकार यदि कहानी की कथावस्तु आधुनिक ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध रखती है तो उसकी भाषा में मुहाविरो आदि के रूप में एक ऐसी निश्छल सरलता का प्रवाह होना चाहिए जिससे वातावरण ग्रामसुलभ ही लगे। यही बात शेष प्रकार के कथानको के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

कथानक का भाषा शैली से एक निकट सम्बन्ध एक और बात को लेकर है। वह है कथानक के वे स्थल जिनमें मार्मिकता की मात्रा दूसरे स्थलों से कुछ अधिक हो। हमारा अभिप्राय कथानक में मोड के विभिन्न स्थलो, विशेषत चरमावस्था, आदि से है। ऐसे स्थलो में भाषा रूपी तन्त्री में स्वतः एक प्रकार का ऐसा 'उन्माद', 'ज्वार' अथवा तनाव सा आजाता है जैसे कि वह थोड़ा सा स्पर्श कर देने पर ही एकदम झंकृत हो उठेगी, अपने पूरे ओज के साथ, और सारे वातावरण को अपने स्वराघात से तरङ्गित कर देगी। इसके उदाहरण पूर्ववर्ती प्रकरण में दिये जा चुके हैं।

जिन कहानियो के कथानक कुटिल अर्थात् चक्करदार होते हैं वहाँ उनके कौटिल्य की रक्षा करने का सारा उत्तरदायित्व भाषा शैली पर ही है, उसी प्रकार जिस प्रकार सरल कथानको की सरलता को बनाये रखने का काम भाषा शैली ही करती है। प्रतीक पद्धति से जो कहानियाँ लिखी जाती हैं उनका रहस्य यही है कि उनके कथानको में एक ऐसी अत्यन्त साधारण, असाधारणता होती है कि उसकी अभिव्यक्ति के लिए शेप किसी भी प्रकार की भाषा-शैली बहुत अंशो में शिथिल एवं अशक्त जान पड़ेगी। कुशल लेखको की रचनाओं में

भाषा शैली सम्बन्धी जानबूझ कर की गई आभासमान असङ्गतियाँ जहाँ उभरी देखने को मिलती हैं वहाँ उनका कारण स्थलविशेष की विशेष मनोवैज्ञानिक वक्रता या असाधारणता (कृत्रिम या सहज) ही को समझना चाहिए। रामचन्द्र तिवारी कृत 'सागर, सरिता और आकाश" नामक उत्कृष्ट कलात्मक उपन्यास का वह स्थल जहाँ जैनब अर्धजाग्रत अवस्था में अपने नेत्रों के सामने कई दृश्य देखती है, जिनमें उसके पास कई 'पुरुष' आते हैं और तृप्त या अतृप्त अवस्था में चले जाते हैं, कथानक को स्पर्श करती चली जाने वाली पात्र विशेष की क्षिप्र भावधारा की अधिक से अधिक यथार्थ प्रतिलिपि खींचने में सजग भाषा शैली का एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित करता है। ऐसे स्थलों में भाषा रूपी धारा में एक भ्रमवात सा आता है और कुछ देर रहकर अपनी छोटी सी सीमा में ही लुप्त हो जाता है। उसके चक्कर में यदि कोई भी अन्य तत्त्व आता है तो वह भी उसी के साथ एकबारगी घूम जाता है।

चरित्र चित्रण से भाषा का सम्बन्ध निश्चित करना कुछ कठिन है और इसके परिणाम बहुत अंशों में विवादास्पद। क्योंकि चरित्र-चित्रण का कोई व्यवस्थित एवं स्वतन्त्र रूप नहीं है, प्रत्युत वह अधिकांश में अन्य तत्त्वों, जैसे घटना एवं कथोपकथन के माध्यम से ही सम्पन्न होता है। चरित्र-चित्रण का विशुद्ध रूप वह है जिसमें लेखक अपनी ओर से पात्र की आकृति अथवा उसकी मनःस्थिति, विचारधारा आदि का चित्रण करता है। कथोपकथन और घटना का स्वतन्त्र तत्त्वों के रूप में भाषा तत्त्व से क्या सम्बन्ध है इसका विवेचन आगे किया जायगा। यहाँ केवल इनके माध्यम से प्रकट होने वाली चारित्रिक विशेषताओं की अभिव्यञ्जना से भाषा शैली कहाँ तक प्रभावित होती है यही देखना है। इसके अतिरिक्त चरित्र-चित्रण का उक्त विशुद्ध रूप भाषा शैली की गति एवं दिशा को किस प्रकार निर्दिष्ट कर सकता है यह भी द्रष्टव्य है।

घटना के व्याज से प्रकाशित होने वाले चरित्र-चित्रण का भाषा पर प्रभाव अल्पतम, किञ्च नगण्य है। इस तत्त्व की अधीनता में किसी पात्र का अध्ययन उसके कार्यकलापों से होता है। अमुक परिस्थिति में पात्र ने किस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित किया और उस व्यवहार के कारण उसे क्या संज्ञा दी जा सकती है, अर्थात् उससे एक तो उसका अतिमानवत्व या देवत्व, अथवा मानवत्व, अथवा दुर्मानवत्व या राक्षसत्व, परिलक्षित होता है; फिर वह पात्र किस कोटि का देव, मानव अथवा दैत्य है; और फिर उसमें किन-किन गुणों या दुर्गुणों, जैसे क्षमा, दया, सत्य, नम्रता, परोपकार आदि अथवा प्रतिहिंसा,

दम्भ, असत्य, चोरी, चारसौ बीस आदि और इनसे भी अधिक, पात्र की तात्कालिक सूक्ष्मतर मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, जैसे द्वयर्थक व्यक्तित्व, वह जो कुछ करता है उसका उसकी दृष्टि में वह उद्देश्य न हो जो ससार की दृष्टि में ही, आदि ; का प्राबल्य है कि उससे उसके एक विशिष्ट व्यक्तित्व का समारोह हो सके ; इन सब बातो से भाषा शैली का क्या विशेष सम्बन्ध हो सकता है इस मोटे सिद्धान्त को छोडकर कि कहानी के दूसरे तत्वो की अभिव्यक्ति मे उसे जितना जीजान लडाना पडता है उतना ही यहाँ ? वस्तुतः यहाँ उसका श्रम कुछ कम हो जायगा क्योकि उसका विशेष उपयोग घटनापक्ष के सम्यक् निर्माण में ही होगा। चरित्र तो उससे स्वतः यो प्रकट हो जायगा ज्यो वर्षा के अन्त में आकाश में इन्द्र धनुष उसके आयास साध्य न होने के कारण भाषा शैली पर उसका उत्तरदायित्व और बल नही पडेगा।

इसी बात का दूसरा पक्ष कदाचित वह है जिसमें कहा जा सकता है कि चरित्र-तत्व को घटना तत्व से भिन्न माना गया है और जब वह घटना-तत्व के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तब भी उस अमुक स्थल में प्रधानता चरित्रतत्व की ही होगी, घटना तत्व की नही। घटना साधन मात्र होगी, चरित्र साध्य। इस अवस्था में घटना को सवारने में लगे रहने पर भी भाषा को अधिक चिन्ता इस बात की होगी कि उससे चरित्र का भलीभाँति आकरण हुआ या नही।

इसके प्रति यही कहा जा सकता है कि तत्वों की परस्पर भिन्नता कोई मौलिक भिन्नता नही है, किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए बनाई गई एक कृत्रिम भिन्नता है, और जहाँ घटना के द्वारा चरित्र तत्व का प्रस्फुटन होता है वहाँ चरित्र तत्व को घटना से पृथक करके उसे प्रधानता देना अधिक सही रूप में या तो असम्भव होगा या अस्वाभाविक एवं असगत। फलतः भाषा शैली का उस पर कोई निजी आधिपत्य नही होगा।[1]

कथोपकथन द्वारा चरित्र चित्रण दो तीन रूप से होता है। या तो पात्र लेखक आप अपने विषय मे कुछ उद्घाटन करे। यह सत्य, कम सत्य, असत्य या सदिग्ध सत्य चारो हो सकता है। दूसरा रूप वह है जिसमें एक पात्र अपने प्रतिवक्ता अथवा अन्य किसी पात्र के बारे में कुछ कहे। यह भी उसी प्रकार पूर्ण सत्य, अश सत्य, पूर्ण असत्य या संदिग्ध सत्य हो सकता है। तीसरा रूप वह है जिसमें पात्रो की बातचीत के प्रवाह, लक्ष्य, स्तर आदि के द्वारा उनके अपने या इतर पात्रो के चरित्र के विषय में हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हो। कहानी के स्थान स्थान पर प्रकट होने वाले लेखक के सामान्य लक्ष्य

को ध्यान में रखते हुए ऐसे निष्कर्ष पूर्ण असदिग्ध भले न हो, पूर्ण असत्य नही हो सकते ।

इनमें से तीसरे का सम्बन्ध भाषा शैली से नही है, क्योकि यह केवल एक अप्रत्यक्ष निष्कर्ष मात्र है जो पाठक की विशुद्ध निर्णय बुद्धि से सम्बन्ध रखता है । इसके अतिरिक्त तीसरी प्रणाली की बातचीत मे प्रकटतया पात्रो की सम्मति के रूप में चरित्र के सूत्र उतने अनावृत्त नही होते जितने घटना के सूत्र।

पहले और दूसरे प्रकार के वार्त्तालापो के बारे मे भी वही कहा जा सकता है जो घटना के बारे में, और यदि चरित्र विशेष के कारण भाषा मे अन्तर आता है तो उसे कथोपकथन की भाषा मे ही अन्तर आया हुआ कहेगे।

चरित्र चित्रण की विशुद्ध प्रणाली का भाषा-शैली पर मात्रा मे असदिग्ध किन्तु रूप मे बहुत कुछ अस्पष्ट प्रभाव है । यहाँ लेखक अपनी ओर से पात्र की आकृति एव उसके मानसिक दर्शन का सही सही खाका खीचता है । इसमें सत्यासत्य विवेक को अवकाश बिलकुल नही रहता और प्रत्येक पंक्ति को अक्षरशः मान लेना पडता है । अतः इस प्रकार के चरित्र चित्रण मे भाषा अपना सही बाना लेकर उपस्थित हो जाती है और लेखक के सामने रण के लिए सन्नद्ध सिपाही व पश्चात् कुशल लेखक के हाथो रहकर भाषा अपने जो जोहर दिखाती है वह देखते ही बनता है । वह कम से कम शब्दो में अधिक से अधिक प्रभाव का उत्पादन करती हुई निकल जाती हे ।

वार्तालाप तत्व का भाषातत्व से एक सीधा सम्बन्ध इस बात को लेकर है कि वार्तालाप जिन पात्रो का प्रतिनिधित्व करते है वे पात्र जिस स्तर के होगे उसी स्तर की वार्तालापो की भाषा होगी । हाँ, यह तभी होता है जब लेखक या तो असावधानी का प्रदर्शन न करे और या किन्ही पूर्वधारणाओ से प्रभावित न हो । द्वितीय श्रेणी से सम्बन्ध रखने वालो में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री जयशकरप्रसाद आते है जिनकी कहानियो के वार्तालाप कदाचित ही उनके वक्ताओं के जीवन स्तर का संकेत देते हो । जैसे, उनके वे सब पात्र, जो यद्यपि कहानी के दूसरे विवरणो से प्रत्यक्ष बिना पढे लिखे सिद्ध होते हो, वार्तालापो में साक्षर ही नही, बड़े ही पण्डित प्रतीत होते हैं । ऐसे वार्तालाप किसी भी दृष्टि से आदर्श हैं या नही, और दूसरे प्रकार के वार्तालापो से ये किस सीमा पर भिन्न किए जा सकते हैं, इस प्रश्न पर यहाँ विचार न करके हम यह सीधा मान लेते है कि वे यथार्थ तो सर्वथा होते ही नही, अपितु इस कारण अनेक बार उन पात्रो को समझने में पाठको को काफी कठिनाई उठानी पडती है । इसलिए अनुकरणीय यही होगा कि जिस भाषा-शैली में पात्रो से बातचीत कराई जाय वह उन पात्रो

के शैक्षणिक व अन्य स्तर के अनुरूप हो ।

दूसरी बात यह कि वार्तालाप को जिन कुछ कतिपय सर्वथा स्पष्ट आधारो पर कहानी का एक विशिष्ट तत्व स्वीकार किया गया है उन आधारो का मूल सम्बन्ध भाषा से ही है । प्रकृत रूप में यह बडा आश्चर्यजनक है कि इस प्रकार दोनो का अत्यन्त निकट सम्बन्ध होते हुए भी दोनो में तत्वगणना की दृष्टि से मौलिक अन्तर किया जा सकता है । व्यावहारिक दृष्टि से यह सर्वथा असम्भव भी नही । वार्तालाप से आवश्यकतानुसार पात्रो के चरित्र की अभिव्यक्ति भी होती है तथा कहानी की कथावस्तु का भी उद्घाटन होता है, और इस प्रकार इन दोनो को वार्तालाप तत्व से भिन्न मानने का कोई कारण दृष्टिगोचर नही होता । इसी प्रकार शायद यह कहा जा सकता है कि वार्तालाप की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन चूंकि भाषा ही है, इसीलिए उसे भी भाषा शैली से भिन्न नही किया जा सकना है । किन्तु यह तर्क कसौटी पर खरा नही उतरता क्योकि उस आधार पर कहानी का कोई भी अन्य तत्व भाषा-शैली से भिन्न नही माना जा सकता । इस बात का समाधान इसी प्रकरण में पहले कर दिया गया है । वास्तव में वार्तालाप को एक तत्व विशेष मानने का कारण उसकी वह प्रकृति-सिद्ध विशिष्टता है जो उसे न कथानक के न चरित्र चित्रण के विशुद्ध शास्त्रीय रूप से मिलने देती है ।

इसमें भाषा-शैली से कोई सघर्ष पैदा नही होता, बल्कि जिस प्रकार शेष तत्व भाषा शैली से भिन्न होते है उसी प्रकार कथोपकथन तत्व भी । बात केवल इतनी ही है कि भिन्न होते हुए भा वार्तालाप तत्व का सम्बन्ध भाषा-शैली से विशेष है । यहाँ इस सम्भाव्य भ्रम का निवारण कर दिया जाना चाहिए कि इस सम्बन्ध की तुलना में केवल भाषा-शैली के उसी अंश को विचारार्थं लिया जा रहा है जो वार्तालापो के अश की भाषा-शैली न हो अर्थात् वार्तालापो के अतिरिक्त की भाषा शैली और न यही सोचना चाहिए कि वार्तालाप-तत्व का सम्बन्ध एक तत्व के रूप में केवल उसी अश की भाषा शैली से स्थापित किया जा रहा है । बल्कि विवेच्य विषय यह है कि वार्तालाप तत्व का भाषाशैली तत्व से क्या सम्बन्ध है, अर्थात् दोनो एक दूसरे को कहाँ तक प्रभावित करते है और इस प्रकरण में प्रयुक्त भाषा शैली शब्द सारी कहानी की भाषा शैली को अभि-निविष्ट करता है ।

वार्तालापो को एक भिन्न तत्व मानने के आधार की शास्त्रीय चर्चा कथोपकथन तत्व पर विचार करते समय की जायगी । अभी केवल इतना ही कहना है कि इसकी विशेष प्रकृति ही इसे एक स्वतन्त्र रूप देने का आग्रह करती

है। साधारण लिखाई की भाषा अथवा वर्णन की भाषा से इसकी स्वतन्त्रता स्पष्ट ही है। कहना चाहिए कि इसका रोब हो कुछ और पडता है। ऐसा लगता है कि कहानी सात से उठकर प्रदर्शन की मुद्रा में खडी हो गई है और पात्रो से स्वय बातचीत करने लगी है। इसमे न सम्पूर्ण रूप मे लेखक का व्यक्तित्व न सम्बन्धित (वक्ता) पात्र का व्यक्तित्व ही निहित रहता है बल्कि ये दोनो मिल कर कहानी को एक भिन्न व्यक्तित्व देते है जिसे कहानी का अपना व्यक्तित्व कहा जा सकता है। ऐसी दशा में कहानी की भाषा शैली पर जो अतिरिक्त बल पडता है उसकी कल्पना की जा सकती है। उसे कहानीकार के व्यक्तित्व को भी सभालना पडता है (जो कभी कभी प्रसादजी जैसा उग्र होता है और कभी कभी उग्रजी जैसा प्रसाद पूर्ण) और वक्ता के व्यक्तित्व का भी ध्यान रखना पडता है। और चूंकि प्रत्येक अवस्था में इसी की प्रकृति पारिस्थिति-परक होती है, अतः इसके लिए कोई नियम आदि निर्धारित नही किए जा सकते और कहानी की भाषा शैली का कथोपकथन की भाषा शैली से जो कुछ अन्तर है उसके स्वरूप का यथातथ्य चित्र नही खीचा जा सकता। सहृदय पाठक अथवा आलोचक कदाचित इसका आग्रह भी नही करेंगे।

वातावरण-तत्व का भाषा शैली से अभिन्न सम्बन्ध है। जैसे दोनो मे जन्म जन्मान्तर का परिचय है। जब तक दोनो एक दूसरे के प्रति भावनिष्ठ नही तब तक दोनो के, विशेष रूप से वातावरण के, व्यक्तित्व का सम्यक् प्रस्फुटन होना दुःसाध्य है। यहा कथानक और पात्र दोनो पृष्ठभूमि में रह जाते है और सामने रह जाती है भाषा शैली की एकान्त मार्मिकता जो अँधेरे के समान दर्शको अथवा पाठको के मन पर छा जाती है।

यद्यपि यह बात सही है कि जहाँ वातावरण तत्व की निष्पत्ति कहानी के सभी तत्वो के सम्मिलित प्रभाव से होती है वहाँ भाषा शैली को उतना अधिक महत्व नही दिया जा सकता जितना उन स्थितियो मे जहाँ कहानी या तो वातावरण प्रधान ही होती है या जिसका वातावरण भिन्न-भिन्न स्थलो पर अपने भिन्न भिन्न विशिष्ट प्रभाव के आधार पर स्वय अपने आप में महत्त्वपूर्ण हो, किन्तु इतना होते हुए भी यह सही है कि वातावरण की सृष्टि मे भाषाशैली एक निश्चित योगदान है।

बात बिल्कुल साफ है। आप एक भयानक वातावरण तैयार कर रहे हैं। और इसी बीच में अनेक बार अपनी आदत से लाचार होकर एक कौतूहल-वश हास्य के छींटे डालते जाते है। भला बताइये, आपके अभीष्ट रस की सृष्टि कहाँ से होगी ?

अंग्रेजी में एडगर एलेन पो और बँगला मे रवीन्द्रनाथ ने ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिनसे एक अलौकिक वातावरण की उपज होती है। इनमें से एक कहानी ऐसी है जिनमें दो आँखो को कथानक का आधार बनाया गया है। नहीं मालूम, किसकी आँखें है, उनका क्या मन्तव्य है, कहानी में उनका क्या स्थान है, आदि। कुछ नही। केवल दो आँखें। आगे चलकर यही दो आँखे आँखें न रह कर प्रकाश के दो घनीभूत पुञ्ज रह जाती है जैसे शेष दृश्य की यथार्थता को लेखक एक हिप्नोटिज्म के द्वारा हमारी आँखों में से निकाल लेता है और हम मन्त्रमुग्ध की भाँति लेखक-प्रदत्त अतिप्राकृत लोक में आश्वस्त होकर चले चलते है। जिस अतिरञ्जित लोक मे यह कहानी हमें ले जाती है वहाँ की भाषा शैली की सर्चलाइट हो मार्ग के बीहड़ अन्धकार को प्रकाशित किये रहती है और हम किसी भी स्थल पर शङ्कापद हो रुकना नही चाहते।

श्री इलाचन्द्र जोशी की "रेल की रात" का वह स्थल जहाँ रेलगाडी में बैठा महेन्द्र अपने सामने बैठी हुई अल्पपरिचित तरुणी के गुलाबी आँचल को डिब्बे के बाहर उड़ता देख कर उसमें उस पताका की कल्पना करने लगता है जो ससार के विजय के निमित्त अभियान में चल पडी हो, इसी प्रकार का सा वातावरण उपस्थित करता है। यहाँ न उत्प्रेक्षा है और न अन्य किसी प्रकार की कृत्रिम अलङ्कार योजना। यहाँ तो विशुद्ध भावात्मक सौन्दर्य है। कदाचित् इसी कारण लेखक को इस स्थल मे न भाषा शैली की दृष्टि से इतने बन्धनो की चेष्टा रही है न इच्छा ही जितनी एक साधारण अलङ्कार योजना में रहती है। फिर भी अभीष्ट प्रभाव की सिद्धि के लिये शब्दो के चयन मे विशेष कौशल बरता गया है, जिसका उद्देश्य कुछ दूसरा है।

इसी प्रकार प्रायः उन सभी जासूसी कहानियो मे जहाँ प्रकृत में अलौकिक किन्तु यथार्थतः लौकिक वातावरण बनाया जाता है। वहाँ वातावरण की आरम्भिक अलौकिकता की (जिस पर कहानी का नब्बे प्रतिशत आकर्षण केन्द्रित रहता है) रक्षा का सपूचा भार कहानी की भाषाशैली पर होता है। ऐसी कहानियो में कई दृश्य आते हैं जो सत्य होते हुए भी असत्य प्रतीत होते हैं। वहाँ लेखक को ऐसे शब्द प्रयोग करने पड़ते हैं जिनमें द्विमुखी अर्थप्रकाशन की मेधा हो। जब उन्ही दृश्यो के सवरण का समय आता है और लेखक को समझाना पड़ता है कि अयथार्थ लगते हुए भी यथार्थ था तब पाठक उसी भाषा शैली की ओर बड़ी ही लोलुप—कहना चाहिये, हिंस्र दृष्टि से देखता है इस ताक में रहते हुए कि कही भी भाषा प्रयोग में शैथिल्य अथवा प्रमाद तो नहीं आया। कहानी का कोई भी शब्द ऐसा नही होना चाहिए जिससे यह

प्रारम्भ में ही स्पष्ट हो जाय कि लौकिकता का प्रासाद एक थोथी नींव पर खड़ा है। साथ ही उसका कोई भी शब्द ऐसा नहीं होना चाहिए जिसको पढ़कर यह आभास हो सके कि अन्त में वातावरण की जो विशुद्ध यथार्थता प्रकट हुई है प्रारम्भ में उसकी जान-बूझ कर केवल अर्थकौतूहल के लिए अवैध हत्या की गई है या फिर उसमें यथार्थ में सर्वथा असङ्गत अथवा विरुद्ध प्रभाव की कल्पना पहले के अंश से की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, वातावरण लौकिक होते हुये भी पहले तो अलौकिक सा जान पड़े, पर बाद में भी उसकी लौकिकता पर उसी अंश में प्रयुक्त शब्दों को देखते हुये शङ्का प्रकट की जा सके। कल्पना की जा सकती है कि वातावरण की रक्षा के प्रति भाषा शैली का यह उत्तरदायित्व असिधाराव्रत के समान ही कितना कठिन है। उस वातावरण के सामने पात्र निष्क्रिय हो जाते हैं, कथानक पंगु, और पाठक भूला-भूला बार-बार कहानी को पढ़ने की चेष्टा करता है इस आशा में कि उपस्थित की गई जटिलता का समाधान सहज ही में कहीं न कहीं मिल जाय, और उसी प्रकार जैसे बालक धूल की ढेरी में गुम हुए सिक्के ढूँढता है, वह कहानी के शब्दों को छान डालता है, किन्तु नहीं, कलाकार ने रहस्य का जो सूत्र अपनी भाषाशैली को थमाया है वह उसे सहज ही में छोड़ देने वाली नहीं है। यह विश्वास और जिम्मेदारी का काम है और प्रत्येक अच्छी कहानी इस जिम्मेदारी को सफलता के साथ निभाती है।

अब रही उद्देश्य तत्त्व की बात। इसमें लेखक की सामान्य दर्शन प्रणाली और कहानी-विशेष में प्रकट होने वाली विचार-धारा तथा उसका प्रधान मन्तव्य आता है। किन्हीं कहानियों में लेखक का उद्देश्य चरित्रगत विशेषताओं की अभिव्यञ्जना करना, कहीं साधारण असाधारण मनःस्थितियों का दिग्दर्शन कराना और कहीं कथानक की गुत्थियों द्वारा पाठक पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव डालना होता है। अतः कहानी का उद्देश्य प्रायः कहानी के अन्य तत्त्वों के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार उसका सम्बन्ध भाषा शैली में तत्त्व विशेष के सम्बन्ध के अनुकूल ही होता है। यह तो हुई सामान्य बात।

इसके अतिरिक्त एकाध विशेष परिस्थितियाँ भी होती हैं। जैसे प्रगतिशील कहे जाने वाले साहित्य के लेखकों की यह पूर्वधारणा है कि उनके साहित्य की भाषा अत्यन्त प्रचलित एवं व्यावहारिक हो। हो सकता है कि प्रगतिवादी दृष्टिकोण वाले लेखकों की कहानियों या ऐसे दृष्टिकोण वाली कहानियों की भाषा शैली में इस प्रकार के साँचे में ढली हुई 'सरलता' होती है (यद्यपि व्यावहारिक रूप से देखने में ऐसी कोई बात नहीं आई है: प्रेमचन्द के अतिरिक्त

पहाडी, कृष्णचन्द्र, वर्मा आदि की कहानियो की भाषा शैली मे कोई अभिनन्द-नीय सरलता नही पाई जाती ।) सिद्धान्ततः प्रसादजी की समस्त कहानियो को भी ऐसे ही मापदण्ड से परीक्षित किया जा सकता है । उनकी कहानियो की भाषा शैली विशेष अर्थों में संस्कृतनिष्ठ एव गम्भीर होती है, यहाँ तक कि उन कहानियो के 'असंस्कृत' या अपेक्षाकृत सरल लगने वाले अशो को भी इस महा-नियम का अपवाद बनने का सौभाग्य प्राप्त नही होता । स्पष्ट है कि उनकी इस भाषा शैली को उनके दृष्टिकोण ने बहुत हद तक प्रभावित किया है ।

सुधारवादी कहानियो में जिनकी अधिकाश शक्ति उनमें रक्खे गये व्यंगो पर अवलम्बित रहती है, भाषा-शैली की विशेष कसरत उन व्यगो को अधिक से अधिक स्वाभाविक, सजीव तथा मार्मिक बनाने में रहती है ।

कथानक—इसे कथावस्तु या प्लाट भी कहते हैं । यह कहानी का मेरु-दण्ड है । इसका महत्त्व इसी बात से समझ लेना चाहिए कि कहानी शब्द की व्युत्पत्ति जिस शब्द से मानी जाती है, अर्थात् कथानिका, वह शब्द कदाचित् 'कथानक' का ही स्त्री वाची शब्द है । जिस शब्द के स्त्रीलिंग में इतना अधिक बल हो उसके पुल्लिग के पौरुष का तो क्या कहना ? नही कथानक आजकल कहानी का केवल एक तत्त्व विशेष ही माना जाता है । फिर भी इसका अपना महत्त्व कुछ कम नही किया जा सकता । यह वह तत्त्व है जिसके बिना कहानी की कल्पना करना आकाश कुसुमवत् है ।

इसके रूप के सम्बन्ध में कोई मतभेद नही है । साधारणतया कहानी के पात्र जो कुछ करते हैं (बातचीत के अलावा) अर्थात् उठने बैठने, सोते, खाते, पीते, आते जाते, हँसते गाते, सोचते हैं, विशुद्ध तत्त्व के अर्थ में उसी का नाम कथानक है । इसके अन्तर्गत पात्रों के अतिरिक्त होने वाली कार्य शृङ्खला को भी लिया जाता है, जैसे यदि किसी कहानी में रेलगाडियो की भिड़न्त की बात कही गई हो और उससे होने वाले परिणाम का चित्रण किया गया हो, तो ये सब अमानवीय कार्य या घटनाएँ भी कथानक में ही सम्मिलित की जायंगी । इस प्रकार सक्षेप में जो भी कार्य व्यापार कहानी की गति और दिशा को प्रभा-वित करने में समर्थ हो, उस सबका सगीकृत नाम ही कथानक है ।

क्या कथानक अनिवार्य है ?—आजकल की पाश्चात्य आलोचनाओ से प्रभावित कहानी-दर्शन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक प्रश्न यह है कि कहानी में कथानक का होना अनिवार्य है या नही । कहानी की व्याख्या करते समय इस प्रश्न पर प्रायः विचार किया जाता है । इस प्रश्न का महत्त्व

यों और भी अधिक है कि कथानक की उक्त परिभाषा के विषय में सर्वथा सह-मत होते हुए भी कई आलोचक बिना अधिक सोच विचार के इस सम्बन्ध में अपना यह एक पक्षीय निर्णय देकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं कि कहानी में कथा-नक का होना अनिवार्य नही है । यही नही, ऐसी दूषित और एकांगी आलोचनाओ से उत्तेजित होकर लिखी जाने वाली ऐसी कहानियाँ भी अक्सर देखने में आती हैं जिनमें कथानक का या तो सर्वथा अभाव होता है या उसका सम्यक् निर्वाह नही होता और निर्वाह होता भी है तो उसे अत्यन्त गौण रूप देकर रक्खा जाता है । यह स्थिति क्यो है और कहा तक स्वीकार्य है ?

इसका कारण साधारणतया कहानी-लेखन की वह मनोवृत्ति है जिसके अनुसार कहानी को केवल मूक घटनाओ की क्रम गणना नही कहा जाता, प्रत्युत उसके पात्रो को मनोजगत की हलचलो से प्रतिक्षण प्रभावित एक सजीव कार्यलोक माना जाता है । आधुनिक कहानी-लेखक यह मानता है कि उसकी कहानी के पात्रो के विचार व धारणाएँ (जिनमें ऐसी स्थिति भी शामिल हैं जिसमें पडकर पात्रो को कभी कभी अपने विचारो के प्रतिकूल कार्य करना पडता है) न केवल उसके स्वयं के कार्यकलापो को प्रभावित और निर्देशित करता है, अपितु शेष पात्रो की स्थिति और कार्यकलापो को बहुत अशो में प्रभावित करता है, दूसरे शब्दो में, पात्रों का चरित्र ही कहानी का सूत्रधार है जो कठपुतली की पतली अलक्ष्य डोर के समान कहानी की गतिविधि का सञ्चालन करता है और कहानी की घटनाओं और परिस्थितियो का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है । इसलिए अनेक आधुनिक कहानी-लेखको के (जिनका निदर्शन निश्चय ही पाश्चात्य हाथो मे है) मत में चरित्रचित्रण कहानी का सब से अधिक महत्वपूर्ण अश है और शेप तत्व कहानी के निर्माण में उतना अधिक योगदान नही रखते न केवल इस अर्थ में, किन्तु एक दूसरे अर्थ में भी कथानक की प्रधानता निश्चित रूप से हेय मानी जाने लगी है । घटनाओ का बाहुल्य, जैसा कि पुरानी कहानियो में देखने को मिलता है, न केवल पाठक के मन में एक बोझ बन कर रह जाता है, प्रत्युत उस सूक्ष्म 'एकान्वित' प्रभाव में भी बाधक होता है जो कहानी मात्र का लक्ष्य है । इस पक्ष को भली भाँति समझ लेना चाहिए ।

किन्तु ध्यान से देखने पर यह भय केवल काल्पनिक सिद्ध हो जाता है कि कहानी का कथावस्तु-तत्व शेप तत्वों पर कृत्रिम रूप से हावी हो जाना चाहता है । कथानक मे ऐसी कोई महत्वाकाक्षा नही है । वह केवल यही चाहता

है कि उसका उचित स्थान उसे प्राप्त हो। प्रश्न यही है कि वह स्थान है क्या ?

विश्लेषण की सुविधा के लिए यद्यपि कथानक को कहानी का एक तत्व ही मान लिया जाता है, किन्तु महत्व की दृष्टि से इसे केवल एक तत्व मानकर इत्यलम् नही किया जा सकता। इसकी उक्त परिभाषा से प्रकट होगा कि भाषा-शैली के समान यह तत्व भी कहानी भर को अपने जादू में ओतप्रोत किए रहता है। इसमें वह हिप्नोटिक शक्ति है जो पाठकों को कहानी के अन्त तक आत्मविस्मृत किये रखती है। पात्रो के विचारों को भी यह श्रेय नही दिया जा सकता कि वे इसे सर्वदा सञ्चालित करते हैं। कभी-कभी (और अक्सर) परि-स्थितयाँ (यानी कथानक) पात्रों की विचारधारा और मनोजगत में हलचल मचा देती हैं और वह निस्सहाय हो उन लहरो में दोलित होती रहती है। जहाँ कही पात्र घटनाओं को सञ्चालित करते हैं वहाँ भी उन्हे साधन ही माना जा सकता है, साध्य नही। स्पष्ट है कि पहले को दूसरे से अधिक महत्व नही दिया जा सकता।

जहाँ हम कथानक के महत्व की बात करते हैं वहाँ न तो घटनाओं के बाहुल्य का आग्रह करते हैं न उसे प्रत्येक अवस्था में चरित्रतत्व का अधिनाय-कत्व देने की चर्चा करते हैं। घटनाओं का बाहुल्य निश्चय ही आधुनिक कहानी-लेखन की परम्पराओ से सर्वथा असङ्गत है और उसका समय उठ गया है। पात्र भी आजकल इतने सुयोग्य व सयाने हो गए हैं कि परिस्थितियो से सर्वथा प्रभावित होने को तैयार नही रहते प्रत्युत् इसके विपरीत उनसे जूझने को सदा व्रत लिए रहते हैं। आधुनिक कहानीकार को इसका श्रेय निश्चय ही है। किन्तु इसके साथ ही यदि हम कथानक के घोषित महत्व को भुला देंगे तो मनोजगत के अन्धकूप में जा पडेंगे। आखिर जो भी कार्य होगा, जो भी हर्ष-विषाद हास्य-रुदन है, वही तो कथानक है। कथानक कोई परोपजीव्य (Parasite) नही है। वह पात्रो के साथ-साथ ही कायाछाया की भाँति चलता है। आप पात्रो का या उनकी सूक्ष्म मनोभावनाओ का महत्व जितना अधिक बढ़ाएँगे उतना ही अधिक महत्व उन मनोभावनाओ के क्रीड़ा-क्षेत्र कथानक का स्वतः बढ जायगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उक्त भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ है कि कथा-नक को केवल एक निरपेक्ष तत्व मात्र मान लिया गया है। उसका सही स्वरूप समझ लेने पर उक्त भ्रम अपदस्थ हो जायगा और बिना कथानक वाला कहा-नियो को लिखने का अहंकार तो किया ही नहीं जायगा, साथ-साथ कथानक के समुचित निर्वाह का भी ध्यान बराबर रक्खा जायगा। वस्तुतः ऐसी कतिपय द्वन्द्व कलात्मक कहानियाँ कभी-कभी देखने मे आ जाती है जिनमे पात्रो को

था उनकी अनुभूतियों को कृत्रिम महत्व न दिया जाकर। कहानी को केवल कथानक के शब्दों में, एक अभूतपूर्व सरलता के साथ, रख दिया जाता है और उनसे मानव जीवन के गहनतम सत्यों का अनायास उद्घाटन हो जाता है। जो इस तथ्य का मनोनयन कर लेते हैं उनके लिए मानसानुभूतियों की कृत्रिम चौधियाहट का कोई मूल्य नहीं है। साधारणतया किसी भी कहानी की रक्षा करने का भार यदि भविष्य पर है तो वह कथानक के द्वारा ही है। शीर्षक के बाद कहानी में कथानक ही एक ऐसा उपकरण है जो उसके प्रस्तुत (लिखित) रूप के अनुपस्थित या तिरोहित होने के बाद भी कहानी के अस्तित्व की रक्षा करता है। भारतीय साहित्य में प्राचीन धार्मिक अथवा नीति सम्बन्धी आख्यानों की जो परम्परा अनेक युगों तक अक्षुण्य रहती हुई पीढ़ियों में उतरती आई है उसका समस्त श्रेय कथानक को ही है जिसमें कहानी का रूप परिवर्तित होने के बाद भी उसकी आत्मा सुरक्षित रहती है। साधारण पाठक की दृष्टि में कहानी की उत्कृष्टता या हीनता का भी एकमात्र मापदण्ड कथानक की उत्कृष्टता अथवा हीनता ही है। इस बात को साहित्यिक गौरव के नाम पर भुलाया नहीं जाना चाहिये।

कथानक की योग्यताएँ—जो कथानक कहानी जगत में इतना अधिक महत्व रखता है उसकी कुछ विशेषताएँ और सामाएं भी होनी चाहिये। स्पष्ट है कि किसी प्रकार का कथानक कहानी को सफल नहीं बना सकता। यदि यह सही है कि सफल कथानक के भाव में कहानी प्रायः असफल हो जाती है तो यह भी कदाचित् सही है कि यदि कहानी सफल बन पड़ी है तो इसका बहुत कुछ श्रेय कथानक का ही है। कहानीकार बनने की सबसे बड़ी बाधा यही है कि संसार के इस विस्तृत फलक पर जहाँ सैकड़ों घटनाएँ अहर्निश घटती रहती हैं, उनमें से उन घटनाओं को छाँटना जिनसे कहानी बन सकती है, बड़ा कठिन है। जो ऐसा कर सकते हैं, वे ही कहानीकार हो सकते हैं। यह बात केवल कथानक के महत्व की ओर ही संकेत नहीं करती, अपितु कथानक में कतिपय मूलभूत योग्यताओं की माँग भी करती है। वे योग्यताएँ क्या हैं?

कहानी का कथानक निश्चित रूप से छोटा होना चाहिये। उपन्यास से उसके अन्तर का आधार कहानी की संवेदना या प्रभाव की एकता ही है। यह एकता कथानक के विस्तार में कठिनता से सम्पादित होती है। इस पर विस्तृत चर्चा ऊपर कर दी गई है।

कथानक की दूसरी विशेषता यह है कि वह एक असंलक्ष्य नहीं किन्तु स्पष्ट सूत्र में आबद्ध रहना चाहिए, ताकि घटना की एकतानता का आभास हो

सके। जब तक भिन्न भिन्न कार्यव्यापार या घटनाएँ एक समान सूत्र में पिरोई नही जायँगी, तब तक उसके कहानी बनने में सन्देह है। इसी का दूसरा भाग यह है कि कहानी में अनेक घटनाएँ नही होनी चाहिए। सब मिलाकर कोई एक ही घटना होनी चाहिए जिसे कथानक का नाम दिया जा सके। कार्य-व्यापार भिन्न हो सकते है पर घटना का एक होना आवश्यक है। इसका उदाहरण भी प्रथम प्रकरण मे दिया जा चुका है।

कथानक में जटिलता को जहाँ तक हो सके दूर रखना चाहिए। कथानक सीधा, सरल, सुव्यवस्थित तथा स्पष्ट होना चाहिए। अन्यथा उसके प्रभाव मे अन्तर आ जाता है। उसका रोचक होना भी एक स्वतः सिद्ध गुण है। हाँ, इन दोनो आवश्यकताओ की भी कुछ सीमाएँ हैं जिनकी विस्तृत चर्चा करना कदाचित् आवश्यक नही है।

किन्तु कथानक की सब से बडी विशेषता उसकी असाधारणता ही है। जिस प्रकार कोई भी कथानक कहानी नही बना सकता, उसी प्रकार कोई भी घटना कथानक का निर्माण नही कर सकती। वह साधारण होते हुए भी असाधारण है। इस बात पर कहानी-कला के मर्मज्ञो का पुरा ध्यान गया है और उन्होने कथानक की इस विशेषता को कहानी के मूलभुत लक्षणो में माना है। इसे कुछ विस्तार से देखना आवश्यक है।

रास्ते में चलती हुई साइकिलो की टक्कर कई बार हो जाती है, किन्तु हरेक बार कहानी का सा मजा नही आता। वही टक्कर यदि एक साइकिल चलाते हुए युवक और साइकिल चलाती हुई युवती में हो जाय तो कहानी का मसाला फौरन तैयार हो जायगा। इसी प्रकार भूख से व्याकुल माताओ के दृश्य अक्सर देखने में आते हैं, किन्तु जब कोई भूखी माँ अपनी भूख शान्त करने के लिए अपने इकलौते दुधमुँहे बच्चे को बेच देती है तब घटना में एक कहानी-जनक मार्मिकता आ जाती है। रेल में कम्पार्टमेंट मे बैठे व्यक्ति आपस मे भूत-प्रेतो के सम्बन्ध में अनेको बात करते रहते है किन्तु कहानी तभी बनती है जब उनमें एक व्यक्ति यह कहे कि मै भूतो में विश्वास नही करता और स्वयं तत्क्षण अन्तर्ध्यान हो जाय। भाई-भाइयो में अपनी-अपनी पत्नियो के कारण प्रायः कलह होता रहता है, किन्तु वही बडे घर की बेटी कहानी की प्रेरणा दे सकती है जो इस कलह के गतिशील इञ्जिन को पुल के उस टूटे हुए हिस्से पर आकर रोक ले जहाँ से आगे भयंकर गृहदाह का गहरा खड्डा तैयार हो। जिस लोमड़ी को प्रभात होते-होते अपनी लम्बी छाया के कारण ऊँट जितना कलेवा चाहिए, और जो दिन भर भोजन की तलाश में घूमे किन्तु मध्यान्ह होते-होते जिसकी छाया

इतनी छोटी हो जाय कि उसे यह विश्वास हो जाय कि पेट भरने के लिए एक ही चूहा काफी है, तो उसका घूमना कहानीकार के लिए सार्थक नही है।

तो कोई ऐसा ट्विस्ट (twist) है, अप्रत्याशित मोड है, असाधारण साधारणता है जो कथानक को कहानी के उपयुक्त बनाती है, जिसके अभाव में जनाब, कहानी नही कहानी बन सकती। आप किसी भी कहानी को यदि वह कहानी कहलाने योग्य है, चाहे वह रद्दी से रद्दी हो, इस दृष्टि से देख जाइये, आपको उसमें सफलता दिखाई देगी। आपको इस ट्विस्ट का और अधिक स्पष्ट परिचय प्राप्त करना हो तो चुटकुलो को उठा लीजिए : उनमें भी आपको प्रायः वही अप्रत्याशित चमत्कार दिखाई देगा। यह न चरमावस्था या क्लाइमेक्स है, न कहानी की सवेदना का और कोई तीव्र स्थल। यह तो सम्पूर्ण कहानी है। इसको पहचानने पर भी 'इदमत्र' नही कहा जा सकता।

ये तो हुई सामान्य योग्यताएँ। कथानक की कुछ स्थानीय, अर्थात् कहानी विशेष से सम्बन्ध रखने वाली योग्यताएँ भी होती है। जिस रस विशेष का कहानी से सम्बन्ध हो उस कहानी में वही कथानक चुना जाता है जो उस रस मे सहायक हो। जैसे हास्यरस की कहानी का कथानक गुदगुदाने वाला और चुटीला (वैसे शैली का भी इसमें बहुत महत्वपूर्ण हाथ है); करुणरस की कहानी की घटना मर्मबेधी, जैसे मृत्यु, वियोग आदि से सम्बन्धित, शृङ्गार सम्बन्धी कहानी का कथानक हृदय को रतिभाव से ओतप्रोत कर देने वाला आदि होना चाहिए। कथानक में जहाँ तक हो सके ऐतिहासिक या तथ्य सम्बन्धी असङ्गतियाँ भी नही होनी चाहिए। (वैसे यह अलग प्रश्न है कि साहित्यमात्र में ऐसी असङ्गतियो को कहाँ तक स्थान है और यथार्थ सत्य को उसमें कहाँ तक निभाया जा सकता है।)[1] कथानक की अतिमानवता, अस्वाभाविकता या अविश्वसनीयता उसका सबसे बड़ा दोष है (हाँ, इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं जिनकी चर्चा विस्तार भय से यहाँ नही की जा सकती)। इसी एक दोष ने हमारे सारे प्राचीन आख्यान साहित्य के सम्बन्ध में हमारे मन में एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। कथानक यदि वास्तविक जीवन से लिया हुआ नही हो तो भी वास्तविक जीवन के अनुकूल या उसमे घटित होने वाले जैसा होना चाहिए। इसीलिए इसे यथार्थ (रियल) न कह कर यथार्थाहं (रियलिस्टिक) कहा जाता है।

कथानक और शेष तत्व—कथानक, जैसा कि हमने ऊपर देखा, कोई स्वतन्त्र तत्व नही है। वह सारी कहानी मे एक अद्वितीय रूप में व्याप्त रहता है।

---

[1] देखिए अवन्तिका (पटना) मासिक के फरवरी १९५४ के अङ्क में प्रकाशित डा० रामअवध द्विवेदी का 'काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति' शीर्षक लेख।

फुटबाल में जिस प्रकार हवा भरी रहती है (हवा के बिना यद्यपि फुटबाल-फुटबाल तो रहेगा किन्तु वह उपयोगशून्य हो जायगा) उसी प्रकार कहानी में कथानक रहता है। इस प्रकार वह अपनी महत्वपूर्ण स्थिति से शेष सारे तत्वो को ओतप्रोत किए रहता है। इस दृष्टि से उसका नाम भाषा-शैली के ठीक बाद आना चाहिए।

कथानक और भाषाशैली—ऊपर कह दिया गया है कि कथानक भाषा शैली को अत्यधिक प्रभावित करता है। कथानक यदि ऐतिहासिक होगा तो उसकी भाषा में एक शालीनता विद्यमान होगी। हँसी मजाक के कथानक वाली कहानियो की भाषाशैली चुभती और उछलती कूदती प्रतीत होगी। ऊपर हमने देखा कि अज्ञेयजी की "इन्दु की बेटी" नामक करुण रस की कहानी की भाषाशैली कई स्थानो पर कितनी सवेदनात्मक हो गई है। इसी प्रकार अन्य रसो की कहानियो को समझना चाहिए। हाँ, भाषाशैली के कथानक को प्रभावित करने की बात अनधिकार चेष्टा होगी। भाषाशैली का निर्माण लेखक द्वारा कथानक आदि कई बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। वह स्वय शेष तत्वों को उसी सीमा तक प्रभावित कर सकती है जहाँ तक ऊपर इङ्गित कर दिया गया है।

पात्र और कथानक—कथानक द्वारा पात्रो को प्रभावित करने में कोई विशेष बाधा नही है। इस बात के अतिरिक्त कि घटनाएँ जिस सामाजिक स्तर या वातावरण से ली गई हो उसी स्तर तथा वातवरण का प्रतिनिधित्व पात्रो के द्वारा होता है और यह प्रभाव उनकी बोली, वेशभूषा, विचार आदि में स्पष्ट परिलक्षित होता है, यह नही भूलना चाहिए कि मनुष्य परिस्थितियो का ही किङ्कर है। उनकी शक्ति के विरुद्ध जूझने का अवसर प्रायः नही आता और घटनाचक्र कहानी के पात्रो को जिस दिशा में जिस गति के साथ ले जाता है उन्हे उसी दिशा में उसी गति के साथ चलना पडता है। परिस्थितियो की यह प्रचण्ड शक्ति अमोघ है। इसको न केवल शून्यवादी दार्शनिको तथा निराशावादी व्यक्तियों ने ही स्वीकार किया है, प्रत्युत् व्यवहारकुशल सज्जन भी इसकी शक्ति का महत्त्व कूतने में कजूसी नही करते। परिस्थितियो की यह स्वतन्त्रता कहानियो में अक्सर देखने को मिलती है। विशेषकर आज के यथार्थवादी साहित्य में तो एक प्रकार से इसी का दिग्घोष है। प्राचीन आख्यानो के थोपे हुये आदर्शों, असाधारण वीर पात्रो, एक कृत्रिम व्यवस्था से होती चली जाने वाली प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम वाली अवस्थाएँ उस समय कहे जाने वाले कुशल कलाकारो के हाथ की कठपुतलियाँ भले ही रह गई हो, आगे जाकर मनुष्य को सङ्घर्ष बराबर करना पड़ा है और यह एक कटु सत्य है कि

जहाँ विज्ञान के क्रमिक उत्कर्ष ने सामाजिक मानव का मूल्य बढाया और उसके लिए आशा और कार्यशीलता का एक अभूतपूर्व भाण्डार खोला, वहाँ दूसरी ओर वही मानव अपने व्यक्तिगत जीवन मे बुरी तरह पराजित हुआ और समस्याएँ उसके सामने सक्रामक रोग के कीटाणुओ की तरह कमश: वृद्धिङ्गत होती गई। कारण जो हो अन्ततोगत्वा मानव असफल रहा और क्रूर तथा कठिन यथार्थ ने भूत की छाती पर चढ कर घोषित किया कि परिस्थितियाँ मनुष्य की स्वामिनी है। कहानीकार इस सत्य को भुलाने की गलती नही कर सकता, नही कर सका। पात्र यदि वर्त्तमान को अपने अनुकूल बनाने के लिए जूझते भी हैं तो उनके जूझने में यह स्वीकारोक्ति है कि वर्त्तमान इतना सरल नही है। कथानक के पात्रो पर इस प्रभाव को अनेक लेखको ने अनेकश: व्यक्त किया है।

किन्तु जहाँ पात्र निष्क्रिय हो जाते है, वहाँ कभी-कभी कथानक भी पगु हो रहता है। यदि सङ्घर्ष असफल रहे तो इस कारण सङ्घर्ष का महत्त्व कम नहीं हो जाता। जहाँ तक यह सङ्घर्ष, अर्थात् पात्रो द्वारा कथानक को बदलने और अपने अनुकूल बनाने का प्रयास बराबर किया जा रहा हो वही तक कहानी की कथावस्तु में सजीवता रहती है। लेखक इस बात को भली भाँति जानता है कि कौन से पात्र किस दशा में कहानी की दिशा को मोडने में समर्थ हो सकते हैं। कथानक की न्यूनाधिक मात्रा लेखक के इस पूर्वज्ञान के आधार पर एक सचेष्टता द्वारा निर्धारित होती है। फिर भी प्रत्येक कहानी में इस बात का पता लग सकता है कि पात्रो ने कहानी की घटना को किस प्रकार बदला है। 'बडे घर की बेटी' नामक कहानी में आनन्दी इस बात का अच्छा उदाहरण है। अत: लेखक के पूर्वाग्रह इस सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण बाधा नहीं पहुँचाते। पाठक उन पूर्वाग्रहो के आधार पर नही किन्तु कथानक की शक्ति और पात्रो की सापेक्षिक क्षमता, जिसका परिचय कहानी के चरित्रचित्रण से लग सकता है, को देकर ही कहानी का मूल्याङ्कन करता है। इस प्रकार कथानक का पात्रों से प्रभावित होने और उन्हे प्रभावित करने का कार्य काफी स्पष्ट हो जाता है।

कथोपकथन और कथानक—कथानक द्वारा कथोपकथन को प्रभावित करने का कार्य विवादास्पद भले हो, कथोपकथन अवश्य कभी कभी घटनाओ को प्रभावित करते हैं। जहाँ ऐसा होता है वहाँ वार्त्तालापो को पात्रों के विचारों, कार्य योजनाओ आदि का अङ्ग मानकर चलने में सुविधा होती है अर्थात् उन्हे पात्रो के द्वारा प्रभावित करने के अन्तर्गत ही ले लेना चाहिए। इसी प्रसग में कथानक द्वारा कथोपकथन को प्रभावित करने की बात सरलतापूर्वक सिद्ध हो जाती है। यदि घटनाएँ पात्रो के कार्यकलापो को बदल सकने या उन्हें प्रस्तुत

रूप में कार्यान्वित करने में समर्थ हो सकती हैं तो उनकी बातचीत को क्यों नहीं, क्योंकि बातचीत आखिर उनके चरित्र का ही द्योतन करेगी। जहाँ कथोपकथन पात्रो के चरित्र का छद्मरूप अभिव्यञ्जित करते हैं, वहाँ इस छद्म के उद्घाटन न होने तक अवश्य ऐसा भले ही लगे कि दोनो का, अर्थात् कथानक और वार्त्तालाप का कोई सम्बन्ध नही है, उसके उद्घाटन होते ही किसी न किसी रूप में दोनों का परस्पर प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। ऐसी अवस्था में अधिकतर कथानक द्वारा ही कथोपकथन को प्रभावित करने की बात सिद्ध होती है, क्योकि जिस कथानक के द्वारा आतङ्कित होकर पात्र स्वयं अपने प्रति भी सत्यनिष्ठ नहीं रह सकता (दूसरो को धोखा देना भी एक डर के मारे होता है) उस कथानक में निश्चय ही पर्याप्त बल है। हाँ, प्रकट रूप में जहाँ कभी-कभी ऐसे छद्म वार्तालाप घटनाओं को बदलने में सहायक भी होते हैं, वहाँ उनकी शक्ति की अवहेलना नही करनी चाहिए।

वातावरण और कथानक—कथानक और वातावरण एक दूसरे के पूरक हैं। एक तत्व के रूप में वातावरण को केवल एक मानसिक पृष्ठभूमि मानना चाहिए जो पाठक कहानी का रस ग्रहण करने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियो के आगे रखता है। कहानी का क्रीडा क्षेत्र जो स्थान और काल है वह स्थान और काल कथानक के क्रीडाक्षेत्र से कुछ भी भिन्न नही है। वस्तुतः वह कहानी के कार्य व्यापार अर्थात् कथानक का ही कार्य क्षेत्र है। इस प्रकार वातावरण कथानक की पृष्ठभूमि है। इसी चर्चा का दूसरा रूप यह है कि अमुक देशकाल में जो घटनाएँ घटित नही हो सकती और जो दृश्य दिखाए नही जा सकते उन घटनाओ और दृश्यो को प्रस्तुत कथानक का अङ्ग नही बनाना चाहिए। कथा-वस्तु के अस्वाभाविक होने का अभिप्राय यही है कि अमुक वातावरण में अमुक घटनाओं का घटित होना सम्भव नहीं, वे घटनाएँ यदि फिर भी घटित की जायेंगी तो समझदार पाठक के लिए ग्राह्य नही होगी और उनके कारण लेखक को उपहास का पात्र बनना पडेगा।

अस्वाभाविक कथानक—इस बात की दो तीन सीमाएँ हैं जिनका उल्लेख वर्गीकरण वाले प्रकरण में भूत प्रेतो और पशु-पक्षियो की कहानियो के प्रसङ्ग में कर दिया गया है। सक्षेप में वे है : यदि लेखक किसी प्रतीक-योजना आदि द्वारा किसी अप्रस्तुत वस्तु को पाठक की संवेदना का आधार बनाना चाहता हो तो उस पर अस्वाभाविकता का, उस सीमा तक जहाँ तक लेखक उसे साध्य नही साधन बनाकर रखना चाहता है, आरोप नही लगेगा। दूसरे, जहाँ लेखक किन्ही पूर्व धारणाओ से प्रभावित होकर जान-

बूझकर आध्यात्मिकता, अतिप्राकृतिकता या अलौकिकता को दृश्य लौकिकता की भाँति ही सत्य व विश्वसनीय (या स्पृहणीय ही सही) मानता हो वहाँ भी कहानी को अस्वाभाविकता के नाते हीन कहने से पूर्व सोचना पडेगा। इस सम्बन्ध में हम हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार जैनेन्द्रजी की इन पक्तियो को उद्धृत करने का लोभ सवरण नही कर सकते।

"बार बार पूछा गया है कि मुझे अपनी कौन कहानी सबसे अच्छी लगती है और क्यो ? ... एक "नीलम देश" और दूसरी "लाल सरोवर"। शायद दोनो मुझे निकट भी हैं। मुख्य कारण यह जान पडता है कि दोनों ही असम्भव कहानियाँ हैं। कुछ भी उनमें सम्भवनीय नही है। नीलम का कोई देश नही होता, न कोई राजकन्या जिसकी लक्ष-लक्ष वर्ष आयु हो और माता पिता जिस के कोई हो ही नही। लाल सरोवर में भी एक महाशय के जहाँ पैर पडते हैं एक एक अशर्फी होती जाती है। आखिर में अशर्फियाँ महाशय की प्रार्थना पर सरोवर में लहलहाती कमलनियाँ बन जाती है। यह सब अनहोनी बात है। कही चेष्टा नहीं है कि यथार्थ का भ्रम पैदा किया जाय, मानो पहले ही डुग्गी पीटकर बता दिया जाता है कि यह गढन्त है। वस्तु तथ्य उसमें नही है। मुझे लगता है कि ऐसी कहानी जो वास्तविकता का आधार ही नही अधिक आयु पा सकती है। शरीर मरता है, आत्मा अमर है। वास्तव पर ही जो निर्भर है उस कहानी को चलते समय के साथ मर जाना चाहिए। आधार में अविनश्वर ही कहानी को (या किसी को) नाश से पहले बचाया जा सकता है। उसकी सुविधा या मजबूरी उन कहानियों के साथ है जो वास्तव का बाना पहनने को ठहरती ही नही। चित् तत्व या आत्म तत्व के प्रकाश के लिए जो भी उपकरण बना उसी को लेकर खिल पडती हैं।

ऊपर की कहानियों में सुधार का सुझाव नहीं है, न दोष की दिशा पर कोई निर्देश। सामयिकता या सामाजिकता नहीं है। इसलिए कोई कारण नहीं है कि उपयोगिता के तल पर उन्हे याद किया जाय। हवाई कहकर उन्हे आसानी से टाला जा सकता है। इस तरह वे किसी आरोप की भाँति नही आतीं। इन सब कारणो से वे मेरे लिए अप्रिय या कम प्रिय तनिक भी नही बन पातीं। बल्कि प्रेम उनके प्रति अधिक स्थायी रहता है क्योंकि उनकी ओर से उसके लिए कोई दावा नही होता।"

उक्त पंक्तियो में लेखक का यदि अहंकारजनित आग्रह न हो जिसमें वे अपनी कहानियों के दोष को छिपाने की चेष्टा कर रहे हों, तब तो इस प्रकार

कथानक और उद्देश्य—कहानी के कथानक का कहानी के उद्देश्य से सीधा सम्बन्ध है। जैसा हमने पहले संकेत किया, कहानी के आदर्श या उपदेश्य को पहचानने का साधन कथानक ही है। यदि कथानक की परिणति आदर्श में हो और कहानी के पात्र अवर कोटि के हो तो भी कहानी का प्रभाव या परिणाम शुभ होगा। इसी प्रकार पात्र चाहे किसी कोटि के हो, पाठक पर जो आदर्श या अनादर्श की छाप लगती है वह कहानी के कथानक के पर्यवसान की दिशा पर ही अवलम्बित है।

निश्चय ही पात्रो की सृष्टि कहानी के उद्देश्य की पूर्ति करने में अत्यन्त अधिक सहायक होती है, किन्तु एक तो कहानी के कलेवर सङ्कोच के कारण, जहाँ पात्रो के चरित्रो के अधिक विस्तार का अवकाश नही होता, और दूसरे, कहानी का ढाँचा ही कुछ ऐसा बन जाता है कि पात्र अक्सर कथानक के प्रेरक या बाधक अर्थात साधन बनकर ही आते है, इन दोनो कारणो से कहानी का उद्देश्य कथानक में ही सीमित हो जाता है। यदि ऐसा नही भी हो और आप पात्रो को अत्यधिक महत्त्व देना चाहे, तब भी कथानक का सक्रिय सहयोग वाछनीय ही नही, अनिवार्य होगा; यदि कथानक विभीषण का काम कर जाय तो न केवल पात्रो की सृष्टि बल्कि कहानी मात्र का निर्माण बुरी तरह असफल हो जायगा। जैसे, किसी कहानी का उद्देश्य, मान लीजिए समाज के कतिपय अङ्गो जैसे सूदखोरो, राजनीतिक नेताओ, अथवा साहित्यकारो पर व्यङ्ग करना है, तो जब तक आप इन व्यक्तियो (पात्रो) के जीवन के कुछ ऐसे उदाहरण पेश नही करेगे जिनसे उनका सही-सही चरित्र अनावृत होता हो, तब तक केवल उनके बारे में इतना कह देने से कि अमुक व्यक्ति इस प्रकार का है, काम नही चलेगा। ये उदाहरण ही कहानी में कथानक का काम करते हैं। इस प्रकार कहानी के उद्देश्य से भिन्न अथवा विपरीत कथानक की कल्पना नही की जा सकती। दोनो का साथ साथ चलना नितान्त अनिवार्य है।

कथानक की अवस्थाएँ—कथानक की अवस्थाओ के सम्बन्ध में शैली वाले प्रकरण में पर्याप्त विस्तारपूर्वक चर्चा कर दी गई है। सक्षेप में वे ये हैं, प्रारम्भ, विकास चरम और अन्त। प्रारम्भ और अन्त कैसे करने चाहिए, उन का स्वरूप और सीमाएँ क्या हैं आदि, ये प्रश्न निर्द्वन्द्व रूप से कहानी के शिल्प विधान से सम्बन्ध रखते है। कहानी के मूल भाग और उसकी चरमावस्था के अवसर भी कहानी का आकार प्रकार एक प्रकार से अपनी निजी रूपगत विशेषता लिए हुए है, जैसे भाषा की सरलता, वर्णनो की संक्षिप्तता और आत्यतिक प्रासगिकता आदि। चरमावस्था पर कहानी की संवेदना तीव्रतम हो जाती है

और उसी के अनुरूप भाषा शैली में एक प्रकार का तनाव आ जाता है। अतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए कि कहानी को इन अवस्थाओं का उसकी शैली या विधान से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है, हमने इन पर उसी प्रकरण में विचार किया है। किन्तु इसके साथ ही यह नही भूलना चाहिए कि ये अवस्थाएँ मूलतः कथानक ही से सम्बन्ध रखती है। वे कथानक के ही भिन्न-भिन्न सोपान हैं। उक्त प्रकरण में हमने यह सिद्ध किया था कि कहानी का प्रारम्भ या अन्त वास्तव में सभी बार कथानक का प्रारम्भ या अन्त नही होता। और जब हम कहानी के प्रारम्भ की चर्चा करते है तब हमे कहानी का प्रस्तुत प्रारम्भिक अंश ही अभिप्रेत होता है। और प्रारम्भ के ठीक बाद का अंश कभी-कभी कहानी के कथानक की द्वितीय अवस्था नही होती। हाँ चरमावस्था से हमारा अभिप्राय कहानी के कथानक की चरमावस्था ही से है। अन्त भी प्रायः कथानक के अन्त के साथ ही अन्तर्भुक्त हो जाता है। इस प्रकार कथानक के प्रारम्भ और विकास, इन दोनो पर विचार करने के लिए हमें दूसरा अवकाश मिल जाता है। यह भी सही है कि शैली वाले प्रकरण मे मुख्यतया रूपगत विशेषताओं की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है, वस्तुगत विशेषताओं पर नही। इसके अतिरिक्त कहानी यह भी स्वीकार नही करती कि उसके (कथानक के) प्रस्तुत उपलब्ध (लिखित) क्रम के अतिरिक्त कही भी उसका क्रम उसके स्वाभाविक एव यथार्थ क्रम से भिन्न हो। वास्तव में, कथानक की दृष्टि से उसकी अवस्थाओं पर विचार करने का तरीका ही अलग है।

इतना होते हुए भी, दोनो की सीमा-रेखाए कुछ अत्यन्त स्पष्ट हो ऐसा नही है। शैली के सम्बन्ध में विचार करते समय कथानक के प्रारम्भ की सभी विशेषताओं आदि पर विचार किया जा चुका है। सक्षेप में वे ये है :—

कथानक का प्रारम्भ—जिस प्रकार कहानी का प्रारम्भ आकस्मिक होना चाहिये उसी प्रकार उसके कथानक का प्रारम्भ होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि प्रस्तुत घटना का मूलसूत्र अन्यत्र किसी अकथित घटना मे है। जिसको जानने की इच्छा भी हो किन्तु उसी स्थल पर नही, पाठक को ऐसा लगे कि "चलो, कही स्पष्ट हो ही जायगा। और न हो तो न सही, अपने काम की चीज तो आगई।" जैसे बहती जल धारा से निकालकर जल को किसी लघुपात्र में सञ्चित कर लिया गया हो।

इस प्रकार की सारग्राहिणी प्रवृत्ति की स्वाभाविकता के विषय मे दो शब्द। ससार एक प्रवहमान सत्य है। उसका न आदि है, न अन्त। उसकी प्रत्येक घटनाएँ एक दूसरे से परस्पर अविच्छेद्य रूप मे ग्रथित हैं। केवल पात्रो

की परिस्थितियो की भिन्नता के कारण उनका चित्रण भिन्न-भिन्न हो जाता है। अतः यह दम्भ होगा यदि कहानीकार यह कहे कि अमुक घटना अमुक स्थल पर प्रारम्भ हुई और अमुक स्थल पर समाप्त। वह तो किसी भी एक घटना को उठाकर आपके सम्मुख रख देता है, जिसका अपना न आदि है न अन्त। किन्तु वह अपने में सम्पूर्ण है क्योकि जिन परिस्थितियो में वह है उनसे उसमे एक प्रभाव विशेष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। या यो कहे कि जो अश कुछ परिस्थितियो में पडकर विशेष प्रभावशील हो गया है उसी पर कहानीकार का 'कैनवस' आधारित है। उतने ही अश पर प्रकाश प्रक्षिप्त कर वह पराङ्मुख हो जाता है। स्पष्ट है कि इसके पहले भी कुछ है, और बाद में भी कुछ। तो कलाकार यह कैसे कहे कि उसकी कहानी का श्रीगणेश यह है और इतिश्री यह। वह तो पाठक को यह सन्तोष भर करवा देता है कि उसकी कहानी का प्रासङ्गिक अङ्ग यहाँ से चालू होकर यहाँ समाप्त हो जाता है। कहानी के प्रारम्भ और अन्त की आकस्मिकता का मापन इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि में होना चाहिए।

तो वह कौनसा स्थल है जिसके बारे मे पाठक आश्वस्त हो जाता है कि उसकी कहानी का प्रारम्भ यही है? क्या लेखक में यह शक्ति है कि वह अपने श्रोता को भ्रम मे डाल दे और उसके मन में यह शङ्का उत्पन्न न होने दे कि अमुक स्थल आदर्श (अर्थात् जैसा होना चाहिए वैसा) प्रारम्भ नही है? प्रश्न जटिल है। दार्शनिक पृष्ठिभूमि मे देखने पर यह और भी जटिल हो जाता है। क्या रोचकता इसका सम्पूर्ण मापदण्ड है? शायद नही। क्योकि रोचकता तो कहानी के श्रीगणेश का आदर्श उपादान है, कथानक के श्रीगणेश का नही। कथानक तो समग्रतापूर्वक रोचक होना चाहिए। कदाचित् वह स्थल ही कहानी का सही प्रारम्भ होता है जहाँ से पाठक के मन में पात्रो के प्रस्तुत कार्यकलाप और उससे प्रभावित होने वाली या उसे प्रभावित करने वाली परिस्थितियो की छाप लगनी प्रारम्भ होती है। उक्त दार्शनिक पृष्ठभूमि से इस साधारण दैनिक प्रक्रिया में कोई अन्तर नही आता। कथानक की आकस्मिकता की जाँच भी बिना उस दार्शनिकता का आश्रय लिए ही की जा सकती है। प्रस्तुत कथानक को प्रवहमान सृष्टि क्रम का अङ्ग न मानकर सम्पूर्ण कहानी के इर्द-गिर्द रहने वाले अधिक समीप के वातावरण का ही अंश मानकर चले, तब भी ऐसा ज्ञात किया जा सकता है कि कथानक आकस्मिक रूप से प्रारम्भ किया गया है या "बा अदब बा-मुलाहिजा होशियार" वाली मुगलकालीन भूपालो के दरबार में प्रवेश करने के पूर्व की घोषणा जैसा कुछ लिए हुए। ऐसा नही लगना चाहिए कि कहानी को सुनाने के लिए नानी दादी के चेवते-पोते उसके सामने 'अटैन्शन'

की मुद्रा में बैठ गए है और देखिए अब कहानी शुरू होती है'' ''''एक था राजा''''' ! बल्कि ऐसा लगना चाहिए कि नाटक तो पहले से ही आरम्भ है हम मार्ग में जा रहे है और उसकी रोचकता से प्रभावित होकर ठिठक गए हैं और उसे देखने लगे हैं। शायद तभी हिन्दी के एक बडे आचार्य ने कहा कि कहानी जीवन की एक नाटकीय अभिव्यक्ति है।

विकास और अन्त—कथानक के 'विकास' और 'अन्त' तत्वो के सम्बन्ध में शैली के प्रकरण मे काफी कहा जा चुका है और उसके विस्तार की कोई गुञ्जाइश नही है। क्योकि कहानी के 'प्रारम्भ' और 'अन्त' की भाँति ये कथानक के 'प्रारम्भ' और 'अन्त' से भिन्न नही हो सकते। प्रत्युत कहानी के विकास या 'अन्त' की चर्चा करना उसके कथानक के 'विकास' और 'अन्त' की ही चर्चा करना है। हा जिन कहानियो में बाद की (विकास की अवस्था) कोई बात पहले (प्रारम्भ अवस्था मे) या अत्यन्त बाद में (अर्थात् अन्त में) कही गई हो, वहाँ इस व्यवस्था (Ruling) मे थोड़ा सा सशोधन कर लेना चाहिए। कथानक की चरमावस्था का कहानी की चरमावस्था से सम्पूर्ण अभेद है। इस सम्बन्ध निर्धारण के प्रकरण में 'विकास' की अपेक्षा 'अन्त' अवस्था में चरमावस्था वाला अभेद अधिक है।

कथानक के भेद—कथानक कितने प्रकार का होता है यह कहानी-दर्शन का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। कहानी के वर्गीकरण वाले प्रकरण मे वर्गीकरण के जिन आधारो को स्वीकार किया गया है उनमें एक आधार वस्तु समष्टि या वातावरण (general set-up) भी है। कथानक का सीधा सम्बन्ध इसी 'वस्तु' से है। कथानक सक्षेप में प्रायः इतने प्रकार के हो सकते है। ऐतिहासिक, उपैतिहासिक, प्रागैतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, जासूसी, वैज्ञानिक, आर्थिक, जीवट सम्बन्धी, यौनात्मक, प्रकृति-परक, पशु-पक्षी-परक, अति-प्राकृतिक। इसके आधार पर बनने वालो कहानियो का नामकरण और रूपचर्चा उसी प्रकरण में कर दी गई है। उसी चर्चा के अवसर पर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि किस प्रकार की वस्तु को इनमें से किन-किन वर्गों के अन्तर्गत होना चाहिए। अतः यहाँ इनकी चर्चा करना पुनरावृत्ति होगी। हाँ इतना अवश्य कह देना चाहिए कि इस वर्गीकरण का आधार वह वातावरण है जो पाठक के मनोनभ मे कहानी के पढने से सकलित होता है और यदि पाठक को पहले से ही यह न बता दिया जाय कि कहानी किस वर्ग की है तो शायद इसका कोई विशेष उपयोग भी नही है।[1]

[1] देखिए पृष्ठ १—वर्गीकरण वाला प्रकरण (तृतीय उच्छ्वास)

कथानक के शास्त्रीय भेद—किन्तु कथानक के कुछ शास्त्रीय भेद भी हैं जिनकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। भारतीय नाटक-साहित्य में कथावस्तु के तीन भेद किए गए हैं। प्रख्यात, उत्पाद्य व मिश्र। वैसे तो नाट्य शास्त्रियो ने कथानक की पाँच विशिष्ट अवस्थाएँ भी मानी हैं। (प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति व फलागम) किन्तु विस्तार की दृष्टि से तथा साहित्य प्रणयन के दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्त्तन की दृष्टि से इनका कहानी के कथानक की अवस्थाओ के साथ मेल बैठाना अनुपयुक्त होगा। हाँ कथावस्तु के जो प्रकार बताए गए है वे अवश्य ही कालाक्रान्त (obsolete) नही हुए हैं।

इनमें से प्रख्यात कथानक वह है जिसका स्रोत पुराण इतिहास या जनश्रुति हो। उत्पाद्य कथानक मौलिक कथानक का ही दूसरा नाम है और मिश्र में दोनो प्रकार के, अर्थात् कुछ मौलिक व कुछ प्रचलित ऐतिहासिक तथ्यो का विश्वसनीय संयोग किया जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण के देखने से प्रतीत होता है कि इसमें कथानक के रूप का आग्रह इतना नही है जितना कि उसके स्रोत का। कथानक इतिहास प्रसिद्ध बातो से लिया जा सकता है और उसकी स्वतन्त्र कल्पना भी की जा सकती है। कभी कभी दोनो के मिश्रण से भी काम चलाया जा सकता है। यही दिखाना इस वर्गीकरण का उद्देश्य है। इसके मूल में चाहे जो परिस्थितियाँ रही हो (जैसे संस्कृत में इतिहास प्रसिद्ध कथानको की बहुलता आदि) यहाँ केवल इतना ही इङ्गित कर देना पर्याप्त है कि यह वर्गीकरण केवल स्रोत के (और वह भी अधूरा परिचय देने के) नाते एकागी है। कथा के जो वस्तुभेद ऊपर किए गए हैं, जैसे ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक कहानियाँ प्रख्यात वर्ग में ली जा सकती हैं। कथानक के प्रकार-निर्णय के समय चूँकि उसके रूप और आधान का विशेष महत्त्व होता है, अतः उसके उक्त वस्तु-परक भेद ही पर्याप्त माने जा सकते हैं। वैसे साधारणतया कहानी के वर्गीकरण के अन्य आधारो मे से कुछ जैसे रस आदि को भी कथानक के वर्गीकरण का भी आधार मानकर चल सकते हैं।

कथानक के स्रोत—कथानक के स्रोत की बात करें तो भी उक्त भारतीय नाट्य शास्त्रीय वर्गीकरण अधूरा है। इतना कह देने से काम नही चलेगा कि कथावस्तु इतिहास से ली गई है या लेखक की मौलिक उत्पाद्य वस्तु है। यह तो केवल उसके स्रोत का सकेत मात्र हुआ। बताना यह पडेगा कि कथानक जीवन के किन किन क्षेत्रो से, मनुष्यो के किन किन सम्बन्धो से, मानस की कौन कौन सी भावनाओ-अनुभूतियो से आते हैं। कदाचित् यह कहना अति-शयोक्ति पूर्ण होगा कि कथानक जीवन के सभी क्षेत्रो से, उसकी सभी परिस्थि-

तियो से लिये जा सकते है । हो सकता है, किन्तु इसके लिए एक महान कौशल अपेक्षित है जिसकी कल्पना प्रत्येक लेखक में नही की जा सकती । इसके विपरीत शायद कुछ लोक ऐसे हैं जिनसे कहानी का कथानक छिलकता हुआ सा प्रतीत होता है, जैसे पनघट की गगरी से जल । हाँ, पनघट । श्री सुदर्शन ने अपनी एक कहानी की भूमिका में बडे ही कलात्मक ढङ्ग से यह बताया है कि कथानक का मुख्य स्रोत पनघट ही है । तथ्यात्मक रूप में उसे यदि लिया नही जाय तो इसका रूपात्मक अर्थ कदाचित् यह है कि कथानक का स्रोतयुक्त जीवन ही है जो सुख और दुःख की दो धाराओ में सदा प्रवाहित होता आया है । प्रकट है कि इस अर्थ में कोई सङ्कोचशीलता नही है । किन्तु व्यावहारिकता के नाते कुछ ऐसी विशिष्ट दशाओ का शोध करना होगा जिनसे कथानक का समागम होता है ।

यह प्रश्न केवल कहानी के कथानक ही मे नही, अपितु शेष साहित्य मे भी सीधा सम्बन्ध रखता है । इसका निर्णय संस्कृति और देशकाल की विशेष प्रवृत्तियो पर अधिक निर्भर है । जैसे रामायण, महाभारत काल में कथावस्तु का सम्बन्ध राजकुल या उससे सम्बन्धित व्यक्तियो से अधिक रहा । संस्कृत-साहित्य में यह प्रवृत्ति बहुत दिनो बाद तक चलती रही । सस्कृत की प्रायः सभी आख्यायिकाएँ इतिहास प्रसिद्ध पात्रो के कार्यकलापों से जुडी हुई हैं । आगे चलकर बौद्ध-जातकों के आधार पर लिखे गये पञ्चतन्त्र आदि से पशुपक्षियो के व्याज से मानव-जीवन की सूक्ष्म आधारभूत मनोवृत्तियो जैसे घृणा, क्रोध, लोभ, प्रेम आदि का आकलन हुआ है । सस्कृत की 'कथा सरित्सागर' का भी प्रायः यही हाल है, यद्यपि इसकी कथाओ के पात्र अपेक्षाकृत कुछ अधिक साधारण श्रेणी के पात्र हैं । यहाँ ऐसा मालुम होता है कि कथानको का क्रीडाक्षेत्र केवल राजकुमारो तक ही सीमित नही रहा, परन्तु जनसाधारण के स्तर तक आगया था ।

गगनभेदी अट्टालिकाओं और अभ्रस्पर्शी पताकाओ का मोह भारतीय लेखक को बहुत काल तक रहा । किन्तु ऐसा लगता है कि कतिपय इतर धर्मियो ने इनके मोह को तिरोहित किया । और वैदिक और उपनिषद काल की झोंपडियो और कच्चे मार्गों की याद अवचेतन मन से ऊपर आगई । अनेक भारतीय लेखको ने इस तत्त्व को समझकर साहित्य को अधिक लोक स्पर्शी बनाने का सङ्कल्प किया । जहाँ ऊँची हवेलिया है वहाँ फूस के कच्चे छप्पर भी हैं; इन्ही छप्परो के कारण उन हवेलियो का महत्त्व है । इन्ही मटमैले कीच भरे मार्गों की ओर लेखक का ध्यान गया है ।

यह क्रम न केवल भारतीय साहित्य के निर्माण में विद्यमान रहा, अपितु शेष साहित्य में भी क्रम के अनाविल प्रवाह के दर्शन होते हैं । सबसे पहले विशुद्ध

लोक जीवन, (हमारे यहाँ के वैदिक आर्ष ग्राम्य जीवन की प्रतिच्छाया पश्चिम में चाहे उस सस्कृति का बाद में ही उद्‌भव हुआ हो, कृषि संस्कृति में गडरियों और मल्लाहो के गीतो के रूप में मिलती है ।) उसके बाद क्रमशः शीर्षोन्नत (top heavy) होने वाली, अर्थात् ऊपर से भारी व नीचे से हलकी, संकुचित सामन्त-सस्कृति और फिर पुनर्जीवित होने वाली जन सामान्य की आशा स्पन्दिनी लोक संस्कृति की विकास रेखा पर्याप्त स्पष्ट है । साहित्य की धारा ने भी इसी दिशा का अनुसरण किया है । फलतः कहानी के कथानकों का स्रोत भी क्रमशः ग्राम्य जीवन, सामन्त-संस्कृति और लोक संस्कृति ही रहा । इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की है। यद्यपि साहित्य रचना का आधार तात्कालिक सामाजिक जीवन के प्रभावो में निहित रहता है फिर भी कभी-कभी लेखक विशेष जिस स्तर का जीवन बिताता है और उसकी सहानुभूति बौद्धिक या मानसिक जिस ओर होती है उसी ओर साहित्य की रचना की दिशा में क्रान्ति हो जाती है । कभी कभी ऐसे लेखको के संख्यातिशय से तथा शैली आदि के प्रभाव से कुछ ऐसे साहित्य की बहुलता हो जाती है जिसे सच्चे अर्थों में लोक जीवन का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता । ऐसा अप्रतिनिधि साहित्य प्रायः सभी कालो में, सभी जातियों में लिखा गया है और लिखा जाता रहेगा । किन्तु इसके होते हुए भी जिस साहित्य को हम स्थायी रूप से स्मरण रखते हैं और जिसका युग युगो तक सम्मान करते हैं वह प्रतिनिधि साहित्य ही है । यदि कथा साहित्य में उत्तर भारत के लोक जीवन का प्रतिनिधित्व प्रेमचन्द और शरत्‌चन्द्र के अतिरिक्त और कोई नहीं कर पाया तो प्रेमचन्द और शरत्‌चन्द्र ही हमारे मानसाकाश में उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति दीप्तिमान रहेंगे ।

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि कहानी का प्लॉट बनाने के लिए लेखक को क्या-क्या करना चाहिए । उदाहरणार्थ—सूक्ष्म पर्यवेक्षण, अध्ययन, सवेदना शक्ति का निर्माण आदि । यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी का प्लॉट लेखक को अपने निकट के जीवन के भिन्न-भिन्न स्वरूपो से आसानी से प्राप्त हो जाता है । मानव जीवन की वे अनुभूतियाँ जो कौतूहल जाग्रत करती हैं कहानी का निर्माण करने में सहायक होती हैं। आपसी सम्बन्धो की कूटतिक्तता या मधु-माधुरी, घृणा और प्रेम के सहज-स्वाभाविक व्यापार, त्याग और प्रतिहिंसा के मानव दुर्लभ दृश्य, करुण रस में ओत-प्रोत कर देने वाले मर्मान्तिक वृत्तान्त समय-समय पर उठने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आन्दोलन, अबोध व निरीह प्राणियो पर होने वाले क्रूर सामाजिक अत्याचार

अर्थलोभ में जकडकर मेहनतकशों का रक्त शोषण करने वाले नर पिशाचों की अमानुषी लीलाएँ, दैनिक जीवन में अनायास प्रकट हो जाने वाले हास-विलास के उल्लासमय क्षरा, ये सब कहानी के लिए कथानक की सामग्री उपस्थित करते हैं। भूतपूर्व जातीय जीवन की मनोरम झाँकियाँ भी कहानी के लिए अखण्ड योगदान कर सकती हैं। इस प्रकार कथानक के उद्गम स्थलो की संख्या गणनातीत है। कदाचित इसी भय के कारण हमारे साहित्य शास्त्रियो ने कथानक के दो ही मुख्य स्रोत—इतिहास और कल्पना—माने हैं। कहानी के कथानकों के लिए हमारे उपनिषदो और पुराणों में विशेषकर, उपनिषदो में पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। इनमे मानव जीवन की मौलिक अनुभूतियों, अवस्थाओ, दशाओं, एव सम्बन्धों के भूरि-भूरि चित्र मिलेंगे। भारतीय और विदेशी लेखको को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। हाँ कथानक की जो मौलिक आवश्यकताएँ होती हैं (जिनका उल्लेख ऊपर कर दिया गया है) उनका निर्वाह सम्यक् हो, इस बात का लेखकों को बराबर ध्यान रखना पडेगा।

कथानक की अभिव्यक्ति की विधियाँ—कथानक कहानो में किन-किन मार्गों से अभिव्यक्त होता है इसे भी सक्षेप में देख लेना चाहिए। शेष तत्त्वो से इस तत्त्व के सम्बन्ध की चर्चा करते समय इस पर साकेतिक रूप से (indirectly) प्रकाश डाला जा चुका है।

कहानी के पात्र जो कुछ करते है उसे लेखक अनेक बार स्पष्टतया इसी रूप में और अनेक बार साकेतिक रूप से कहता है। इसी से कथानक का उद्घाटन होता है। पात्रों के कार्यकलाप के अतिरिक्त भी जहाँ कुछ घटना-विन्यास उपस्थित रहता है वहाँ लेखक अपनी ओर से उसका आवश्यक विवरण दे देता है। कथानक की अभिव्यक्ति का तीसरा साधन कहानी के वार्तालाप हैं। एक पात्र दूसरे से बातचीत करते समय अथवा स्वगत भाषण के रूप में कभी-कभी कहानी की घटना का उद्घाटन करते जाते हैं जैसे अमुक घटना इस प्रकार हुई या अमुक पात्र ने या स्वयं मैंने इस प्रकार किया। भविष्य-गर्भित कथानक की सूचना भी जहाँ तक सम्भव होता है, लेखक इन्ही सूत्रों से दिया करता है। इनमें जहाँ लेखक अपनी ओर से कुछ सूचित करने की स्थिति में नही होता वहाँ वह प्रायः पात्रों की विचार-धारा, सङ्कल्प या बातचीत का आश्रय लेता है।

कभी-कभी कहानी में दुहरे कथानक की उपस्थिति की भी चर्चा की जाती है। कहानी की सामान्य गतिविधि, अनिवार्य संक्षिप्तता, संवेदना की एकता आदि के दृष्टिकोण से एक कहानी में दो कथानक होना एक दोष है।

किन्तु एक विद्वान समालोचक इसमें भी एक विशेष आकर्षण देखते हैं। वे लिखते हैं—

"वस्तु-विन्यास के उक्त तीनो प्रकरणों से सर्वथा भिन्न एक और रूप भी विकसित हो चुका है और रचनात्मक चमत्कार से संयुक्त मालूम पड़ता है। कहानी मे एक दूसरी कहानी का फट पड़ना अथवा एक कथानक के भीतर उसी से सम्बद्ध दूसरे कथानक का खड़ा हो जाना भी सफलता से उपस्थित किया जा सकता है इसमे एक विशेष प्रकार का कौशल दिखाई पड़ता है। अवश्य ही इस कौशल मे बुद्धि का आधार अपेक्षित हो जाता है—रचनाकार के लिए भी और अध्येता के लिए भी। यदि पढने वाला पटु और योग्य नही है तो कहानी के उस अंश और सन्धि के आस्वादन में असमर्थ रह जायगा, जहाँ एक में से दूसरी कहानी का जन्म होता है। लेखक अपनी शक्ति भर तो उस स्थल पर पूरी सावधानी रखेगा। हो पर पढ़ने वाले सब समान योग्यता और शक्ति के नही होते, इसलिये रचना की ऐसी प्रवृत्ति, बुद्धिमूलक ही मालूम होती है। इससे संवेदनशीलता कुछ विशेष रूप से उद् बुद्ध अथवा उद्दीप्त होती हो—ऐसी बात नही है। इस मार्ग का अनुसरण प्रायः ऐसे ही लोग करते है जिनमें नूतन विधान अथवा चमत्कार प्रेम अधिक जोर मारता है। हिन्दी में इधर आकर रचना पद्धति की यह नूतन-प्रियता 'अज्ञेय' आदि लेखकों में अधिक प्रवृष्ट दिखाई पडती है, यो तो अंग्रेजी में भी दुहरे-विधान की कहानियाँ प्राप्त होती है।[1]

कुतूहल—(Suspense) या कौतूहल (?) कहानी का प्राण है। इस बात का संकेत ऊपर अनेक स्थलो पर कर दिया गया है। जोधपुर के एक विद्वान लेखक का मत है कि कौतूहल एक अवस्था विशेष है जिसकी स्थिति विकास और चरम के बीच कही होती है। ऐसा मानना न केवल कौतूहल जैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व के विषय में एक अत्यन्त संकुचित दृष्टि से विचार करने के बराबर है, अपितु कहानी कला के मर्म को भुलाना है। कौतूहल कहानी के किसी विशेष स्थल में अवस्थित नही होता बल्कि कहानी के कथानक के किसी भी अंग जैसे प्रारम्भ, विकास, चरम व अन्त तक में या सारी कहानी में अलक्ष्य रूप से व्याप्त रहता है। यहाँ तक कि शीर्षक में भी कुतूहल का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कभी-कभी कुतूहल कहानी के समाप्त होने के बाद भी बहुत काल तक बना रहता है। ('पुरस्कार'—प्रसादजी)। इसी महत्त्व को समझते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहानी और कविता के भेद का आधार ही कुतूहल को माना है।[2] एक और लेखक के मतानुसार उपन्यास और कहानी के अन्तर

[1] डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : 'कहानी का रचना-विधान'

[2] चिन्तामणि : 'कविता क्या है ?'

का एक उपयुक्त आधार भी कौतूहल ही है।

कुतूहल का द्विमुखी व्यक्तित्व : पूर्व-सूत्र विषयक कुतूहल—मोटे तौर पर इसे रहस्य का पर्यायवाची मान सकते हैं। यह रहस्य विशेषतः कहानी की घटना के सम्बन्ध में होता है (इसीलिए उस पर इस प्रकरण में विचार किया जा रहा है) और यह द्विमुखी होता है। रोमन देवता जैनस (Janus) की भाँति यह पीछे भी देखता है और आगे भी। कहानी में चूँकि विस्तार को अवकाश नही होता इसलिए उसमें घटनाओ के सभी पूर्व सूत्रो को नही कहा जा सकता। हाँ, केवल सकेत रूप में महत्त्वपूर्ण एव अनिवार्य सूत्रो का उल्लेख कही (और यह आवश्यक नही कि वह आरम्भ में ही हो) कर दिया जाता है। शेष सूत्रो के बारे में और उनके बारे में भी जिनका उल्लेख सकेत रूप में कर दिया गया हो, पाठक एक अनिश्चय में एक मधुर अनभिज्ञता में रहता है। अमुक घटना का उदय कैसे और कहाँ हुआ, अमुक पात्रो का व्यक्तित्व कैसा और पूरा परिचय क्या है, अमुक पात्र के मन में अमुक सङ्कल्प या विचार-प्रवाह जाग्रत कैसे हुआ, ये सब बातें साधारणतया कथानक के पूर्व-सूत्रो से सम्बन्ध रखती है। उदाहरण के लिए प्रसादजी की प्रसिद्ध कहानी देवरथ में सुजाता बौद्ध विहार में आने के कारण-निमित्त केवल इतना ही लिखा हुआ है कि वह 'ससार को दुःख-पूर्ण समझकर शान्ति के लिए बौद्ध धर्म में आकर भिक्षुणी बनी थी।'' हमें यह भी कहा गया है कि वह कलिङ्ग के राजवैद्य आर्यमित्र की वाग्दत्ता भावी पत्नी है। प्रत्येक सहृदय पाठक के मन में इस प्रश्न का उदय होना स्वाभाविक है कि एक उच्चकुल की किशोरी जिसके सामने जीवन के सारे स्वप्न रेतकणो में स्वर्ण-पिण्डो की भाँति चमक रहे होगे किस अप्रत्याशित वेदना के आघात से अपने आप अपेक्षाकृत एक नीरस, हृदयहीन व्यापार में दीक्षित होने के लिए न केवल उद्यत है बल्कि उसने अपने आपको उसमें होम दिया। किन्तु प्रसादजी जैसा कृती कलाकार केवल कुतूहल के लिए ही (!) कुतूहल की, जो कि कहानी का प्राण है, हत्या करना स्वीकार नही कर सकता। और इसका सिद्धान्त है। यदि कोई पूर्वसूत्र या (कोई भी सूत्र) कहानी के लिए इतना आवश्यक नही हो कि उसके बिना या तो कहानी की घटना को समझने में बाधा हो या उसके प्रभाव में व्यतिक्रम हो, तब तक उस सूत्र का उद्घाटन करना न केवल अनावश्यक होगा, किन्तु निश्चित रूप से कहानी कला के मर्म पर आघात करने वाला होगा। कहानी उन्ही विवरणो को स्वीकार करती है जो उसके तई अपरिहार्य हों, शेष विवरण उसके लिए अपदार्थ है। इस अपरिग्रही बाला को शतशः धन्यवाद। मुझे ऐसा लगता है कि देवरथ में प्रसादजी ने मानो इसी मर्म को

समझते हुए कहानी कला को सुजाता नामक पात्र के रूप में उपस्थित कर दिया है।

पूर्व-सूत्र सम्बन्धी कुतूहल का एक रूप अच्छी कहानियो में प्रायः देखने में आता है। इसका सकेत ऊपर कर भी दिया गया है। कहानी की घटना को उसके यथार्थ क्रम में न रखकर बाद की बात पहले कह दी जाती है और पहले की बात की ओर एक अत्यन्त रहस्य भरे रूप में पाठक का ध्यान आकृष्ट किया जाता है। कभी-कभी ऐसा कहानी में प्रारम्भ से बहुत दूर तक चलता है। सस्कृत में ऐसी रचना का नाम मतल्लिका है। कभी कभी पूर्ववर्ती घटना को एक साथ न कहकर उसके अशो को धीरे-धीरे अनेक स्थलो में अनावृत किया जाता है। इससे पाठक हमेशा आधारभूत घटना की ओर अपनी आँखें रखता है और यह जानना चाहता है कि क्या हुआ। 'देवरथ' में प्रसादजी ने पूर्व सूत्र का उद्घाटन न करके कहानी को और अधिक कलात्मक बना दिया है सही; वैसे कई कहानियो में पूर्व-सूत्र का उद्घाटन आगे जाकर हो जाता है। हाँ, ऐसी प्रत्येक अवस्था में उसका यह उद्घाटन उपरोक्त आधार पर आवश्यक अवश्य होता है। इसका निर्णय विज्ञ कहानी लेखक कहानी विशेष की गतिविधि को ध्यान मे रखकर स्वतः कर लेता है।

परवर्ती कुतूहल—कुतूहल का दूसरा मुख कहानी के परवर्त्ती सूत्रो की ओर रहता है। कहानी कला की दृष्टि से इसका पहले प्रकार के कुतूहल से अधिक महत्त्व है। साधारणतया जब हम कुतूहल की चर्चा करते हैं तब हमारा अभिप्राय इसी परवर्त्ती या अग्रेतर सूत्र सम्बन्धी कुतूहल से होता है। सरल भाषा में इसका अन्वय करें तो इसको यों कहेंगे, तो फिर क्या हुआ? यह अबोध शिशुओं और किशोरो की वह जिज्ञासा वृत्ति है जिसको लिए हुए वे कहानी सुनाती हुई प्रमाताओ के किसी क्षण सहसा अर्थ गम्भीर हो जाने वाले झुर्रियो से भरे मुख की ओर निर्निमेष होकर ताका करते हैं। इस जिज्ञासा का का उदय (सहृदय श्रोता अनुभव करेंगे) विशेषतः दो परिस्थितियों में होता है। या तो कहानी का कोई पात्र सकट में पड गया हो जिसमें प्रतिनायक आदि असहानुभूति-प्राप्त पात्र भी सम्मिलित हैं, या कोई ऐसी बात कह दी गई हो जिसका पूरा अर्थ या अभिप्राय तब तक समझ में नही आता जब तक उसके आगे की सम्बन्धित घटना का स्पष्टीकरण नही कर दिया जाय। प्रकट है कि पाठको की दृष्टि से पहले का सम्बन्ध 'सहानुभूति' से है और दूसरे का 'अनुभूति' से है। कहानी कला के विकास के साथ साथ पहले प्रकार के कुतूहल का प्रायः लोप होता जा रहा है। (यद्यपि सुनने में यह बात आश्चर्य जनक लगती है) और दूसरे प्रकार के कुतूहल का विकास अधिकाधिक होता जाता है।

इस दूसरे प्रकार के कुतूहल के स्वरूप के बारे में दो शब्द कहना आवश्यक है। शैली के प्रकरण मे कहा गया है कि कहानी के प्रारम्भ की सफलता में अप्रत्याशितता का एक बडा हाथ है। इस अप्रत्याशितता का सम्बन्ध कुतूहल के इसी रूप से है। जब प्रारम्भ हो मे कोई ऐसा दृश्य उपस्थित कर दिया जाय जिसको देखते ही पाठक हक्का बक्का रह जाय तो स्वाभाविकता उसकी प्रवृत्ति कुछ कुछ ऐसी रहेगी कि जो हुआ सो तो हुआ (यद्यपि क्या हुआ, यह भी वह जानना चाहेगा) किन्तु अब क्या होगा ? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी इस स्थिति की पूरी सगति सिद्ध हो जाती हैं, जब सकट में पडा हुआ कोई व्यक्ति भूतकाल की अपेक्षा भविष्य की अधिक चिन्ता करता है। अप्रत्याशित स्थिति से उत्पन्न यह कुतूहल किसी प्रारम्भ में कम और किसी प्रारम्भ में अधिक होता है। यह सही है कि जिस प्रारम्भ में यह कुतूहल जितना कम होगा उतनी ही कहानी के असफल होने की आशङ्का है।

कहानी की अवस्थाएँ और कौतूहल—किन्तु इस कौतूहल का सम्बन्ध, जैसा कि ऊपर कहा गया प्रारम्भ अथवा किसी अवस्था विशेष से नही, प्रत्युत सम्पूर्ण कहानी से हो। पाठक जहाँ तक इस बात की कल्पना भी नहीं कर सके कि आगे क्या होने वाला है वहीं तक कहानी की रोचकता रहती है। यह स्थिति प्रारम्भ के अतिरिक्त मध्य में व अन्त मे भी हो सकती है। अन्त में तो स्पष्ट ही इसका प्रभाव काफी गहरा है। सच बात तो यह है कि कहानी के अन्त को जानने के लिए ही पाठक साँस रोक कर सारी कहानी पढता है और प्रत्येक स्थल पर ज्यो-ज्यो वह आगे बढता जाता है वैसे-वैसे कहानी के कथानक आदि में क्या-क्या परिवर्तन आते हैं इसे जानने का कौतूहल उसी अन्त सम्बन्धी अभिभावी (greater) कौतूहल के सौपान है, यद्यपि उनका अलग महत्त्व भी है। पाठक को या तो लेखक ऐसे वातावरण में रक्खे जहाँ वह आगे आने वाली घटना के बारे में कोई स्वरूप निर्धारण कर ही नही सके, या वह उचित या यथातथ्य स्वरूप नही बना सके, ये कौतूहल की राशियाँ है। इनमें से पहली अधिक श्रेष्ठ है। अक्सर होता यह है कि पाठक अपने मन में बडे सूक्ष्म और अलक्ष्यरूप मे होने वाली घटना का खाका खीचता रहता है और यदि आगामी घटना कहानी में वैसी ही निकल आए जैसी कि उसने रूपरेखा बनाई हो तो उसे कहानी लेखक की क्षमता के बारे में बड़ी शङ्का हो जाती है।

प्रारम्भ, मध्य और अन्त की इसी रहस्यमयता पर शैली के प्रकरण में विभिन्न स्थलो पर चर्चा कर दी गई है। यहाँ केवल मध्य-कौतूहल के सम्बन्ध में इतना ही सकेत कर देना पर्याप्त होगा कि आजकल किसी घटना के अंश को

पूरा न कह कर उसके एक भाग को एक स्थान पर कह कर उसे वहीं रहने दिया जाता है और ठीक बाद की पङ्क्तियों में घटना के किसी दूसरे अंश को ले लिया जाता है जो कालक्रम में पहले व्यक्त की गई घटना के बाद का या पहले का हो सकता है। पहले अंश में अपूर्ण रक्खी हुई घटना की पूर्ति या तो उससे भी पहले कही गई या ठीक बाद कही जाने वाली, या उसके भी बाद कही जाने वाली या संकेत दी जाने वाली घटना से हो जाती है। इनमें से यदि किसी से भी उसकी पूर्ति न हो तो यह समझना चाहिए कि या तो कहानीकार उस पूरक घटना का उल्लेख करना किसी न किसी दृष्टि से आवश्यक नहीं है या यह कि कहानी अपूर्ण है। अच्छे लेखक जान बूझ कर दूसरी स्थिति नहीं आने देते।

कभी-कभी सम्पूर्ण कहानी बड़ी व्यर्थ और सूखी सूखी जान पड़ती है। किन्तु जब उसका अन्त देखते है तो हृदय गद्गद् हो जाता है और एक सूक्ष्म मार्मिकता मन को व्याप्त कर लेती है। यह इसी कौतूहल या सस्पेंस के कारण होता है। प्रसिद्ध अमेरिकन कहानी लेखक ओ० हेनरी और फ्रेंच लेखक मोपासा इस सस्पैंस के मास्टर हैं। अभी कल ही अखिल-भारतीय हिन्दी कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत एक कहानी पढ़ने को मिली जिसका कथानक अन्त तक बड़ा सीधा और निरर्थक सा है। उसमें ठीक अन्त तक वह मोड़ नहीं आया है जिसके कारण कहानी के कथानक का निर्माण होता है और पाठक उसे लेख समझ कर पढ़ता है। संक्षेप में उसका सारांश इस प्रकार है—एक फिल्म लेखक रात्रि के १२ बजे किसी रेलवे स्टेशन के वेटिङ्ग रूम में अकेला बैठा है और चार बजे आने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। उसी समय एक भली सी दिखने वाली युवती वेटिङ्ग रूम में सङ्कोच सहित प्रवेश करती है और लेखक उसे अपने समीप बैठने को कुर्सी दे देता है। वह अपने अनादृत विवाहित प्रेम की कहानी सुनाती है जिसके कारण वह बरबाद हो गई। वह यह भी कहती है कि अब कोई नहीं है जो उसे सम्मानपूर्वक अपने पास रख सके। लेखक के मन में बर-बस संवेदना उमड़ पड़ती है और वह यह प्रस्ताव करता है कि मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊँगा जहाँ तुम्हें फिल्म में काम मिल जायगा। और मुझे विश्वास है कि तुम्हारी काफी कद्र होगी।

यहाँ तक न तो मूल कहानी में और न उस युवती की दुखभरी उपकथा में किसी प्रकार का मोड़ है जिससे कहानी का मजा आ सके। अन्त समीप आ रहा है। पाठक यह जानना चाहता है कि इस सबका आखिर अर्थ क्या है? तभी एक दूसरी गाड़ी आती है और वह युवती यह कहती हुई कि "आपने यह प्रस्ताव दस पन्द्रह मिनट पहले रक्खा होता तो कितना अच्छा होता!" वेटिंग

रूम में से सर से निकल जाती है और गाडी की भीड में खोजाती है। अगली गाडी की प्रतीक्षा में बैठा स्वय फिल्म लेखक सोचता रहता है कि आखिर यह सब क्या है ? गाडी रवाना होगई है। लेखक सहसा अपना हाथ अपने कोट की अन्दर की जेब में डालता है। उसका बटुआ गायब है।

चरित्र-चित्रण—यद्यपि कहानी के पात्रो को नाटक के पात्रो जितना महत्व नही दिया जा सकता (क्योकि नाटक का मारा दारोमदार उसके पात्रों पर ही निर्भर करता है) फिर भी उनका कहानी में बहुत अधिक महत्व है। कहानी के लिए वे सब कुछ हैं यह कहना अतिशयोक्ति है। किन्तु यह पूर्ण स-य है कि यदि कहानी में कम से कम दो पात्र न हों तब तक कहानी बन ही नही सकती। चाहे दूसरा पात्र प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित न हो या भिन्न-योनि जैसे तिर्यक योनि आदि हो अथवा निर्जीव। बिना पात्रो की कहानी की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। मनोवैज्ञानिक विस्तार के इस युग में ज्यो-ज्यो कथानक की जटिलता कम होती जाती है वैसे-वैसे पात्रो का महत्व बढता जाता है। इस प्रकार ये कहानी में बहुत महत्व के होते हैं।

पात्र कौन ?—कहा जा चुका है कि कहानी की सारी घटना का अक्षरशः संचालन केवल पात्र ही नहीं करते। एक तत्व के रूप में पात्रों से अतिरिक्त भी घटना होती है जैसे प्रकृति वर्णन के महत्वपूर्ण प्रयोग। उदाहरणार्थ मान लीजिए किसी कहानी में अमुक साँझ को अमुक काम होने वाला है। उस कहानी में वह साँझ भी घटना का अश बनकर आएगी। यद्यपि पात्रो ने इसका थोडा भी सचालन नही किया है। नाव पर बैठ कर भाग जाने वाले प्रेमी युगल के किस्से में नाव का चलना भी घटना का अंश है यद्यपि नाव का सचालन कोई और ही 'अपात्र' कर रहा है। जहाँ पात्र घटनाओ का संचालन नही करते प्रत्युत् उनसे संचालित होते हैं वहाँ भी पात्रो की निष्क्रियता स्वतः सिद्ध हो जाती है, यद्यपि एक दूसरे रूप में।

इस प्रकार यह कहना कुछ असत्य होगा कि पात्र वे व्यक्ति होते है जो कहानी की घटना का संचालन करते हैं। ऐसी परिभाषाएँ अक्सर आलोचको के द्वारा असावधानीवश होजाती हुई देखी गई हैं। पात्र तो पात्र ही हैं। उनकी क्या परिभाषा ? उनकी परिभाषा तो स्वयं कहानी ही है। यद्यपि घटना का सर्वस्व पात्र नहीं होते फिर भी अच्छे लेखक के मनमें वे बड़े स्पष्ट रूप में रहते हैं, भले ही अमुक चरित्र का अङ्कन अधिक स्पष्ट हुआ हो और अमुक चरित्र का कम स्पष्ट। वे ये व्यक्ति होते है जिनकी अमुक परिस्थितियों में सफलता या असफलता दिखाना कहानीकार का लक्ष्य होता है। वे ये व्यक्ति होते है जो कहानी

की घटना को सञ्चालित करते और उसमे सञ्चालित होते है। कहानी एक पतले डण्डे पर खडा हुआ वह तख्त है जिसके एक ओर कथानक है और दूसरी ओर पात्र! इन दोनो के सन्तुलन मे ही कहानी खड़ा रह सकता है। पात्र वह सत्ता है, निर्जीव अथवा सजीव (प्राय: सजीव), जो घटना की सहायता से अथवा विरोध से, कहानी को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने में सक्रिय रूप से सहायक होता है।

कथावस्तु और पात्र—इसमें दो बातें विशेष लक्ष्य है। एक तो कहानी के प्रत्येक पात्र का सम्बन्ध घटना से बराबर रहता है, जैसे पात्र बराबर घटना प्रवाह के साथ साथ चलते हैं, उस प्रवाह से बहुत अधिक दूर रहकर उनका निर्वाह नही हो सकता। दूसरे यह कि प्रत्येक पात्र सक्रिय रूप से कहानी के लक्ष्य में सहायक होता है। दोनो लक्षणो की यहाँ जाँच करना आवश्यक है।

यह कहा जा सकता है (और कई बार कहा भी जाता है) कि प्रत्येक पात्र का सम्बन्ध कहानी की मूल घटना से आद्योपान्त नही रहता ऐसा मानना घटना के मर्म को नही समझने के बराबर है। कहानी की घटना एक अनाविल प्रवाह के समान है जो बीच में कही पर भी सम्पूर्णत: रुकती नही है। अत: उसके कोई सोपान नही होते। वैसे तो अच्छी कहानियो में सारे पात्र घटना के सभी स्थलो से अनुस्यूत रहते है, फिर भी किसी पात्र का घटना के अमुक स्थलों से दूर रहना भी उसकी धारा प्रवाहिकता को देखते हुए मूल घटना से च्युत होने के बराबर नही है। यह बात दूसरी है कि वह किसी परिस्थिति के प्रति सहानुभूतिशील होता है और किसी परिस्थिति के प्रति उदासीन या सङ्घर्षशील।

दूसरी बात भी इसी प्रकार की कृत्रिम आपत्ति उपस्थित करती है। यह पूछा जा सकता है कि प्रत्येक पात्र कहानी की घटना में किस प्रकार सक्रियरूप सहयोग दे सकता है जब कई पात्र ऐसे हो सकते हैं जिनको कोई विशेष पार्ट अदा नही करना होता है। यह आपत्ति सही है किन्तु प्रश्न तो यह है कि सक्रिय सहयोग घटना के प्रति है या कहानी के लक्ष्य के प्रति, जो घटना से भिन्न है। यदि कोई पात्र घटना में सक्रिय सहयोग न दे और कहानी के लक्ष्य में भी यदि उसका सक्रिय उपयोग नही हो सके तो यह निश्चय रूप से मानना चाहिये कि वह पात्र निरर्थक है। कहानी ऐसे पात्रों की Luxury सहन नही कर सकती, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार यह अनावश्यक घटनाओ का बोझ नही सह सकती।

चरित्र चित्रण क्या है?—पात्र नामक इस व्यक्ति के संक्षिप्त परिचय के बाद चरित्र चित्रण की व्याख्या की बारी आती है। किसी कहानी में उसके पात्रों का जिस किसी भी प्रकार से परिचय दिया जाय उसे चरित्र चित्रण कहते हैं।

स्पष्ट है कि यह स्वय कहानी लेखक ही करता है, आलोचक अथवा कोई अन्य बाध्य व्यक्ति नही। यह बात और है कि लेखक इसके लिए किसी पात्र विशेष को माध्यम बनाता है अथवा अन्य किसी पद्धति से अपना दायित्व पूरा करता है। पात्रो के इस परिचय में दो बातें मुख्य रूप से सम्मिलित है। एक तो पात्र के बाह्य आकार प्रकार का वर्णन, जिसमें उसके शरीर अथवा उसके किसी अंश विशेष की गठन और उसकी वेशभूषा, बोलचाल एव शिक्षा-दीक्षा आदि का परिचय आ जाता है। और दूसरे, उस पात्र के स्वभाव, उसके चरित्र की आन्तरिक विशेषताएँ उसके गुणों अथवा अवगुणो इत्यादि का लेखा-जोखा होता है। यह लेखक पर निर्भर करता है कि इन उपकरणो में से किन-किन उपकरणों को ले और किन-किन को छोड दे।

पात्र-परिचय का स्वरूप—प्रश्न हो सकता है कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार अमुक कहानी में लेखक यह निर्णय करता है कि अमुक विवरण छोडा जाय और किस विवरण को प्रकाशित किया जाय। इस बात का विनीत उत्तर यह है कि ऐसे कोई भी निश्चित सिद्धान्तो का प्रतिपादन करना असम्भव है। किन्तु मोटे तौर पर अच्छा लेखक यह जानता है कि कौनसा विवरण इतना आवश्यक है कि उसके बिना कहानी का प्रभाव यदि सम्पूर्ण रूप में नही तो अधिकांशतः नष्ट हो जायगा, कौनसा विवरण ऐसा है जिससे कहानी के प्रभाव निक्षेप में तो कुछ सहायता मिलती है, किन्तु जिसके बिना कहानी का काम चल सकता है और कौनसा विवरण ऐसा है जो बिल्कुल ही अनावश्यक है और कहानी में पाँचवे सवार (Fifth wheel in the Coach) का काम करता है, जिसके न होने से कहानी के प्रभाव में तो किसी प्रकार की कमी पडती ही नही, अपितु जिसके होने से प्रभाव में निश्चित बाधा पडती है। ऐसा विवेक धीरे-धीरे अभ्यास के बाद प्रायः प्रत्येक लेखक को हो जाता है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि चरित्र चित्रण का कहानी के प्रभाव से बहुत अधिक सम्बन्ध है।

कहानी का प्रभाव और पात्र—इस बात को थोडा स्पष्ट कर देना चाहिये। कहानी में कुछ पात्र ऐसे होते हैं जो कम महत्त्वपूर्ण होते है, कुछ पात्र अधिक महत्त्वपूर्ण। इन अधिक महत्वपूर्ण पात्रो का कहानी के कथानक से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दो में उनके कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का, गुण-दोष का, करने न करने का, कहानी मे बहुत अधिक महत्त्व है। इस प्रकार यदि भली-भाँति यह बताया नही गया कि अमुक पात्र का चरित्र किस प्रकार है तब तक उनसे सम्बद्ध कथानक के और फलतः कहानी के प्रभाव के उत्पादन में कहाँ तक

सहायता मिल सकती है ? या सीधे रूप में चरित्र का विश्लेषण न करके जब तक कथानक को योजना इस रूप मे न की जाय कि उसका एक स्पष्ट चित्र खिंच जाय, तब तक कहानी निरर्थक है। कहानी की यही योजना अधिकांशतः पात्रो के कार्य कलापो से सम्बन्ध रखती है और दूसरे शब्दो मे यही चरित्र चित्रण है। इसके उदाहरण आगे दिये जाएँगे।

पात्रगत विशेषताएँ—किन्तु कहानी के समष्टिगत प्रभाव से पहले पात्र विशेष के प्रभाव की बात अधिक निकट है। अर्थात् जिस पात्र का चित्रण किया गया है उसकी अभिप्रेत विशेषताएँ एक दम स्पष्ट रूप से पाठक के मन पर अङ्कित हुई या नही। इसलिये लेखक कुछ ऐसे विवरण देता है जिनको पढकर पाठक के मनःपटल पर पात्र का सम्पूर्ण चित्र अङ्कित हो जाता है। ये विवरण उक्त दोनों में से किसी प्रकार के अथवा दोनो प्रकार के हो सकते है। यदि पात्र की विशेषताएँ पाठक के मन में अनायास उभर नही आई तो चरित्र चित्रण निरर्थक है। सच तो यह है कि ऐसी अवस्था मे चरित्र चित्रण होगा ही क्या ? इसका अर्थ यह नही कि पात्र की सारी विशेषताएँ लेखक एक साथ व्यक्त करदे ऐसा कही-कही ही होता है। आजकल की कहानियो में तो ऐसा बहुत कम होता है और पात्र की सारी विशेषताएँ धीरे-धीरे अनावृत्त होती हैं और कहानी के अन्त में जाकर पात्र का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है। कही-कही ये विशेषताएँ लक्ष्य भी नही होती। अर्थात् पाठक को अन्य-अन्य अनेक माध्यमों जैसे कथानक आदि के द्वारा उनकी कल्पना करनी पडती है। इसकी चर्चा बाद में की जायगी। कहने का अर्थ इतना ही है कि कहानी के प्रभाव के साथ-साथ पात्र विशेष का प्रभाव भी चरित्र चित्रण के विवरण की ग्राह्यता अथवा अग्राह्यता का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस बात को हम केवल प्रसादजी की 'गुण्डा' शीर्षक रचना का प्रारम्भिक उद्धरण देकर स्पष्ट करेंगे।

"वह पचास वर्ष से ऊपर था तब भी युवको से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नही पडी थी। वर्षा की झडी में, पूस की रातो की छाया में, कडकती हुई जेठ की धूप में, नगे शरीर धूमने में वह सुख मानता था। इसकी चढी मूँछें बिच्छू के डङ्क की तरह देखने वाले की आँखो में चुभती थी। उसका साँवला रंग साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमे सीप के मूठ का बिछुआ खोसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर उसकी चोडी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कन्धे पर टिका हुआ चौड़ी धारा का गँडासा, यह थी उसकी धज। पञ्जो के

बल पर जब वह चलता उसकी नसे चटाचट बोलती थी। वह गुण्डा था।"

चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता—इस विवेचन से ऐसा लगता है कि चरित्र-चित्रण चाहे स्वय लेखक द्वारा सीधे रूप में किया जाय अथवा कथानक आदि के माध्यम से प्रकट हो, यह कहानी के लिए एक अनिवार्य उपादान है। लेकिन कुछ कहानियाँ ऐसी भी देखने को मिलती है जिनमें चरित्र-चित्रण या तो इतना सूक्ष्म होता है कि लक्ष में नही आ सके या नही के बराबर होता है। कभी-कभी अच्छे कहानीकार भी ऐसी चरित्र-चित्रण विहीन रचनाएँ करते पाए जाते हैं। यह साफ है कि ऐसी कहानियो में कम से कम पात्र होते हैं। लेखक दो या इससे भी कम मानवीय पात्रो की सहायता से, या कभी कभी किसी अमानवी पात्र को लेकर या अन्य ऐसे ही किसी तरीके से कहानी का ताना बाना बडे कौशल के साथ बुनता है। ऐसी कहानियाँ प्रभाववादी (Impressionist) कहानियाँ होती हैं जिनमें बडी बारीकी से एक लघु किन्तु मार्मिक प्रभाव की व्याप्ति का प्रयत्न होता है। ऐसा लगता है मानो लेखक केवल इसी सिद्धान्त का कि कहानी में चरित्र-चित्रण कितना अनिवार्य होता है, खण्डन करने के लिए ही अपनी कहानी लिख रहा है। इस प्रकार के कथा शिल्प का निर्माण करना उतना ही "तलवार की धार पँ धावनो" है जितना चावल के एक दाने पर गीता के एक पूरे अध्याय का लेखन। देखिए बानगी के तौर पर इसी प्रकार की एक छोटी सी कहानी "मञ्जिल", जो इन्ही पक्तियो के लेखक की है।

"मन प्रातःकाल ही से भारी हो चला था। ' को पत्र लिखवाना चाहा, किन्तु इतना ही लिख सका। न दो चिट्ठी। यदि किसी को इसी में सन्तोष है तो मैं कौन होता हूँ कहने वाला कि नही, ऐसा नही। लेकिन क्या कङ्कड़ डालने से नदी का प्रवाह रुकने वाला है?...." और इसके आगे कोई काम की बात थी।

"हम सफर" चलचित्र देखकर मन को हलका करने का उपक्रम किया। किन्तु वहाँ भी वही अवसाद। खलनायक की हत्या कर दी गई थी और नायक को इस अभियोग में बन्दी कर लिया गया था। उसकी नव प्रसविनी पत्नी उसकी आजीवन प्रतीक्षा करेगी।....

रात का दूसरा प्रहर। साईकिल पर तीन मील का लम्बा सूना रास्ता! मार्ग में मिली तीन चार बैलगाड़ियाँ जो अन्धकार की चादर में धीरे-धीरे किसी अज्ञात वेदना में जैसे सरकती जा रही थी।

मैंने रुककर पूछना चाहा, क्या तुम्हे भी आधी रात को चैन नहीं मिलता? किन्तु कहानीकार का मन नही माना।

सहसा एक हलकी सी चीख और भो भों। साइकिल किसी महानिद्रा में सो रही कुतिया पर से निकल गई थी।

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वा…… ”

कहानी का प्लाट उभर आया था।”

यहाँ पर नायिका से वियुक्त नायक की एक विशेष मानसिक दशा का ही चित्रण किया गया है जिसमें अन्य परिस्थितियो (कथानक) ने सहायता पहुँचाई है। नायक के चरित्र के विषय में हम अन्धकार में है (स्वयं कहानी भी तो अन्धकार में घटित होती है) सिवाय इस निष्कर्ष के कि वह मध्यम श्रेणी का एक अत्यन्त भावुक और (फलतः) पढालिखा युवक है और कहानीकार हे। (महानिद्रा की अवस्था में चीख और भो-भो का सयोग जान-बूझकर किया गया है।)

किन्तु खलील जिब्रान की अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें चरित्र-चित्रण इतना सूक्ष्म तो क्या, होता ही नही। वे इतनी द्रुतगति से भागती हुई नजर आती हैं कि उनमें चरित्र-चित्रण को जैसे अलग से अवकाश नही हैं। इधर दो-तीन सालो से विभिन्न महाद्वीपो के अन्तरिक्षों पर समय-समय पर कुछ रहस्यमय उडन तश्तरियाँ दिखाई पडती आ रही हैं जिनकी गति तेज से तेज चलने वाले वायुयानो मे कई गुनी अधिक है। चरित्र-चित्रण की भावना की दृष्टि से उक्त कहानियो की उपमा ऐसी ही उडन तश्तरियो से दी जा सकती है।

चरित्रचित्रण की अनिवार्यता—यहाँ प्रस्तुत प्रसग के सम्बन्ध में, कि चरित्र-चित्रण कहानी का अनिवार्य उपादान है या नही, दो प्रश्न उपस्थित किए जा सकते है—एक तो यह कि ऐसी रचनाएँ वास्तव में कहानी हैं या नहीं, और दूसरी यह कि कहानी की लम्बाई और प्रभाव के अनुपात में लेखक ने जो कुछ भी कह दिया है वह काफी चरित्र-चित्रण नही है। पहले का उत्तर यह है कि प्रथम उच्छवास में कहानी की जो परिभाषा निश्चित की गई है उसके लक्षण इन कहानियो में देखने को मिलते हैं अर्थात् स्वतःपूर्णता, एक घटनात्मक स्थिति, एक प्रभाव या लक्ष्य और इसे चुटकुलो से भिन्न करने वाला विशिष्ट गौरवमय वातावरण। इस प्रकार इन रचनाओ को कहानी मानने से इनकार नही किया जा सकता।

दूसरा प्रश्न सापेक्ष है। हमें यह नही देखना है कि जो कुछ कहानीकार ने चरित्र-चित्रण के नाम से लिखा या सकेत दिया वह काफी है या उसमें उसे और अधिक बढ़ोतरी करनी चाहिए। यह तो कहानीकार के निर्देश की बात है। यहाँ तो यह प्रश्न है कि कहानी का चरित्र-चित्रण इतना काफी है या नही कि

उसे चरित्र-चत्रिण कहा जा सके, और इस प्रकार कहानी में चरित्र-चित्रण अनिवार्यतः आवश्यक नही है इस आरोप की निवृत्ति हो जाय।

यदि हम इस कहानी पर चरित्र-चित्रण की उक्त परिभाषा को घटाएँ तो सिद्ध होगा कि लेखक ने अन्य तत्त्वो की भाँति चरित्र-चित्रण पर भी पूरा ध्यान रक्खा है। पात्र विशेष की विशेष मानसिक स्थिति और उसमें समय-समय पर किस प्रकार परिवर्तन हो जाते है यह दिखाना चरित्र-चित्रण का ही एक अङ्ग है। खलील जिब्रान ने यही किया है। लगता तो ऐसा है कि उसकी कहानियो में कथानक प्रधान है किन्तु उसके उद्देश्य को देखने पर कथानक की गौणता और चरित्र-चित्रण की प्रधानता स्पष्ट ही प्रकट हो जाती है। ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण कथानक ही चरित्र-चित्रण मे बदल गया है। जिब्रान इस शैली का तो दुर्धर्ष चक्रवर्ती है। इसी के जरिए ही वह मनुष्य समाज के विभिन्न वर्गों पर व्यग करता चलता है। यही उसकी और उसके साथ चरित्र-चित्रण की अपरिहार्यता की सफलता है।

चरित्र-चित्रण का अन्य तत्त्वों से सम्बन्ध

चरित्र-चित्रण और अन्य तत्त्व—ऊपर कथानक के प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से बता दिया गया है कि कथानक और कहानी के पात्रो के चरित्र एक-दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते है। जहाँ तक उन चरित्रो के चित्रण का सम्बन्ध है यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वह कभी-कभी कथानक के जरिए भी किया जा सकता है। इसको आगे विस्तृत रूप से देखा जायगा।

पात्रो की शैली—भाषा शैली की चर्चा करते हुए यह बताया जा चुका है कि चरित्र-चित्रण की पूर्णता में भाषा-शैली का काफी हाथ है यद्यपि प्रत्येक अवस्था में पात्रो के स्तर आदि सम्बन्धी सभी बन्दिशें भाषा-शैला पर (और विशेष रूप से उनकी बोल-चाल की भाषा पर) पूरी तरह लागू नही होती। यदि पात्रो के कथोपकथन सर्वदा उनके शैक्षणिक स्तर आदि को ध्यान में रखकर ही लिखे जाएँ तो अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ आयेगी जिनमें सबसे पहली व प्रमुख तो प्रान्तीय बोली की कठिनाइयाँ हैं। हिन्दी भाषा (खडीबोली) में लिखी जाने वाली कहानी के सारे पात्र मेरठ दिल्ली या उसके आस-पास के ही रहने वाले हो यह बिल्कुल ही आवश्यक नहीं है। वैसे हिन्दी अब सारे भारत की राष्ट्रभाषा अवश्य है। यदि इस प्रकार की एक कहानी का अमुक पात्र गुज-रात का हुआ तो निश्चय ही आप सारी कहानी में उसकी अपनी (गुजराती) भाषा का आग्रह स्वीकार नही कर सकेंगे। इसी प्रकार बँगला भाषा की कहा-नियों के पात्रो की भाषा भी साधारणतया बँगला ही होती है यद्यपि उनमें से

कई कहानियों के पात्र सदा बंगवासी नहीं होते। हाँ कई लेखको की यह आदत देखी गई है कि विशेषतः निम्नकोटि के पात्रो की भाषा जहाँ तक हो उनकी अपनी ही भाषा हो। जैसे कई बार इस प्रकार के पात्र हिन्दी की कहानियों में पूरबी, मैथिली, भोजपुरी आदि वाक्य बोलते पाये जाते हैं। किन्तु यह उन लेखक महाशयो का अनुदार आग्रह मात्र ही है। विविधता की दृष्टि से ऐसे विभाषीय प्रयोग थोडी देर के लिए भले ही अच्छे लगें पर सब मिलाकर ये कहानी के सौन्दर्य में न चमकने वाले मोतियो और हीरे जवाहरातो के बीच में तेज चमकने वाले काँच या नकली मोतियो का काम ही करेंगे। कुछ'कुछ यही कठिनाई प्रेमचन्द आदि सुधी कलाकारो के साथ में भी है। यद्यपि उन्होने इसमें एक मध्यम मार्ग का प्रतिपादन स्वतः कर लिया है। वे यद्यपि अपने ग्रामीण पात्रो से सर्वथा ग्रामीण या लौकिक भाषा प्रयोग नही करवाते, किन्तु उनकी भाषा को अधिक से अधिक सरल और कम से कम 'साहित्यिक' रखने का प्रयत्न करते हैं और उसका साधारण गेट-अप ऐसा रखते हैं कि वह उन परिस्थितियो में अधिक अस्वाभाविक न लगें। अधिक प्रचलित मुहाविरे उन्हे इस काम में बहुत सहायता पहुँचाते हैं।

दूसरी व्यावहारिक कठिनाई पात्रो के शैक्षणिक स्तर के साथ उनकी बोली की सगति की है। यह प्रकट है कि लेखक अपने ही ढङ्ग से पात्रो के कथोपकथन का निर्माण करता है और ऐसा करने में उन कथोपकथनो में पात्रो की अपेक्षा लेखक का शैक्षणिक व्यक्तित्व (चरित्र सम्बन्धी व्यक्तित्व सर्वदा नही) ध्वनित होता रहता है। यदि दोनो में—अर्थात् शैक्षणिक स्तर में और प्रयुक्त की गई भाषा-शैली में कोई व्यापक अन्तर हुआ तब तो इसे कहानी का दोष ही मानना चाहिये किन्तु थोडा बहुत अन्तर चल सकता है और सही बात तो यह है कि थोडे-बहुत अन्तर की जाँच होना भी कठिन है। यदि लेखक को सामान्य बोल-चाल में चक्करदार वाक्य पसन्द है तो वह पात्रो से भी ऐसे ही वाक्य कहलवायेगा, और यदि उसे सीधे वाक्य पसन्द हैं तो उनसे भी सीधे ही। यही हाल कठिन और सस्कृत गर्भित शब्दो का है। ऐसे शब्दो के प्रयोग के लिए ललकते रहने वाले चण्डीप्रसाद हृदयेश जैसे कहानी लेखक अपने कथोपकथनो में कोई अन्य (हलके शब्दो का प्रयोग करना हलका ही समझते हैं यद्यपि वह सर्वदा नही होता और सर्वदा श्रेयस्कर भी नही। हाँ, अवसर अपनी जान बचाने के लिए ऐसे लेखक अपने पात्रो को भी गुरुगम्भीर अध्ययन या भावुकता (!) के साँचे में ही ढला हुआ उपस्थित करते हैं, जैसे अज्ञेयजी ने अपने नायक शेखर को आरम्भ ही से अंग्रेजी की शिक्षा दिलवाई है। तभी बनारसीदासजी चतुर्वेदी

को एक इन्टरव्यू में उनके यह प्रश्न करने पर कि शेखर का विदेशी वातावरण में सोचना क्या अस्वाभाविक नही है अज्ञेयजी ने इसी कारण को उपस्थित करके नकारात्मक उत्तर दिया है।

भाषा शैली की सूक्ष्मता—कथोपकथनो की भाषा शैली के इस पहलू के अतिरिक्त इसी अंश की भाषा शैली और शेष कहानी की भाषा शैली से चरित्र चित्रण का एक अत्यन्त सूक्ष्म सम्बन्ध है। कभी कभी जहाँ पात्र के किसी गुण या अवगुण आदि को अत्यन्त स्पष्ट नही कह करके साकेतिक रूप से ही कहना होता है वहाँ भाषा शैली के साथ लेखक को विशेष समझौता करना पडता है। न तो वह कही इतना अधिक मुखर हो उठे कि सारा भण्डाफोड कर दे और न इतनी मूक कि कुछ समझ में ही न आवे। उपन्यास में तो ऐसे प्रसंग कम आते हैं क्योकि वहाँ पात्रो के विशद चरित्र चित्रण की गुञ्जायश है किन्तु कहानी में ऐसे अवसर अनेक बार आते है। कभी कभी सारी कहानी में एक दो शब्द ही ऐसे होते हैं जो पात्र विशेष के साथ रहस्य को अपने में सचित करके रखते है। कहानी में इन्ही शब्दो का महत्व है। सूक्ष्म चरित्र-चित्रण वाली कहानियों में अक्सर ऐसा होता है। ऐसी कहानिकों की उपमा आदर्श-नव वधू से ही दी जा सकती है, जहाँ लेखक को पात्र की सारी विशेषताएँ या अमुक विशेषताएँ काफी स्पष्ट करनी होनी हैं वहाँ तो भाषा शैली की स्पष्ट निर्देश नीयता आवश्यक है ही।

कथोपकथन और चरित्र-चित्रण का तीसरा सम्बन्ध—भाषा शैली की चर्चा करते हुए ऊपर कथोपकथन और चरित्राकन के द्विधा सम्बन्ध का उल्लेख अनायास ही हो गया है। कथोपकथन से चरित्रचित्रण का तीसरा महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध यह है कि कथानक की भाँति कथोपकन भी पात्रो की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करने का एक प्रभावशाली साधन है। प्रभावशाली इसलिए कि एक पात्र के द्वारा दूसरे पात्र को कही गई बात में जब उन दोनो में से किसी का या अन्य किसी पात्र के चरित्र का अनावरण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी रीति से होता है, वह स्वय लेखक द्वारा अलग रूप से चरित्र चित्रण की अपेक्षा अधिक कारगर होता है क्योकि श्रोता या पाठक को इस बात का करीब करीब निश्चय होता है कि वक्ता जो कुछ कहता है उसमें लेखक के अतिरिक्त वक्ता का विश्वास भी जुडा है। चरित्र-चित्रण की यह रीति (जिसमें कुछ महत्व-पूर्ण अपवाद भी है) जैसे धोखे से की हुई बातचीत, मिथ्या निन्दा या स्तुति आदि) अपने आप मे भी पर्याप्त सिद्ध है, क्योकि यह वक्ता श्रोता और अन्य

पुरुष या पुरुष गण के चरित्रों पर एक साथ प्रकाश डालती है। इस प्रसग पर आगे उचित विचार किया जायगा।

वातावरण और चरित्रांकन—चरित्र चित्रण और वातावरण के सम्बन्ध का चर्चा करते समय चरित्र चित्रण और कथानक के सम्बन्ध को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि अधिकांशत: वातावरण कथानक से ही बना है।

वातावरण क्या है—अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ हमें वातावरण को देश, काल और जातिगत विशेषताओं की त्रिवेणी में विभाजित कर लेना चाहिए। कहानी में जिस स्थान अर्थात् महाद्वीप प्रायद्वीप, द्वीप, प्रान्त, शहर, गाँव, मुहल्ले अथवा स्थान विशेष को कथानक का आधार बनाया जाता है अर्थात् कहानी की घटना जहाँ घटित होनी है उसे 'देश' कहते हैं। दिन अथवा रात [जिसमें साँझ और भोर भी सम्मिलित है—हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद की कहानी में साँझ का काफी महत्व है। एच० एच० मुनरो की अन्यत्र उल्लिखित एक कहानी का शीर्षक ही 'साँझ' है और वह प्रेमियों की इस प्रतीक्षा बेला में (जहाँ स्त्री पुरुषों के बजाय गाय भैंसों की प्रतीक्षा अधिक की जाती है !) बिना विशेष ध्यान में आए चलते फिरते जो गल्तियाँ साधारण मनुष्यों द्वारा ही (प्रेमियों द्वारा नहीं) हो जाती है इस पर अच्छी खासी चुटकी है]; सितम्बर अथवा ज्येष्ठ, रविवार अथवा जुम्मा, २० तारीख या पचमी, यानी काल की जिस इकाई में कहानी घटित हुई है उसे 'काल' कहते है और कहानी में पात्रों की व्यक्तिगत अथवा जातीय विशेषताओं के एक समीकृत प्रभाव को 'जाति' के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। ये तीनों, अर्थात् देश, काल और जाति की एक 'आक्षेपात्मक सहानुभूति' पाठक को कहानी पढ़ते समय होती है, इसी का नाम वातावरण है।

कालगत समन्वय—स्पष्ट है कि इन तीनों का चरित्र चित्रण पर काफी प्रभाव पड़ता है और जो लेखक इन दोनों तत्त्वों के उचित समन्वय का ध्यान नहीं रखते वे आलोचकों के भ्रू-कुञ्चन के भाजन होते है। प्रत्यक्ष पात्र की वेश-भूषा, बोलचाल (ऊपर कहे गए अपवाद के साथ) और साधारण विन्यास, उनके निवास-स्थान के अनुकूल ही होना चाहिए इसी प्रकार कड़कड़ाती सर्दियों के मौसम में कहानी के किसी पात्र का कमरे में बिजली का पंखा खोलकर बैठ जाना उसका पागलपन ही है। कहानी में ऐसी कोई भी बात नहीं होनी चाहिए जिसको पढ़कर यह आशङ्का सत्य सिद्ध होजाय कि कहीं यह बात कहानी में निर्देशित या सूचित समय के प्रतिकूल है। औरङ्गजेब के कमरे में बिजली का

खटका लगते ही प्रकाश हो जाना एक इसी प्रकार की हास्यास्पद बात है। विशेष कठिनाई प्रायः उन ऐतिहासिक कहानियों में आती है जिनका वातावरण संक्रान्ति काल का होता है, जहां परिस्थितियां और तथ्य एक विशेष सूक्ष्मता के साथ परिवर्तित होते हैं जो लक्ष्य नही होती। किन्तु जो लेखक महाशय अपने पात्रों को तेज वर्षा के समय भी खुली सडक पर हाथ में बन्द छाता लिए चल-वाते है वे दार्शनिक नही तो और क्या है ?

जातिगत विशेषताएँ—कहानी के पात्र 'जाति' गत विशेषताओ से मुक्त भी नही हो सकते। यह बात ऊपर से असत्य मालुम पडती है क्योकि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओ का युग है और मनुष्य जहाँ सस्कारो में स्वतन्त्र हुआ है वहाँ स्वभावो में भी। किन्तु जातिगत विशेषताओ का इस स्वातन्त्र्य भावना से कोई विरोध नही है। यह लक्षण केवल यही सूचित करता है कि पात्र प्रकट रूप में जिस वर्ग का एक पुर्जा है उस वर्ग से कोई सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व उस पात्र का नही हो सकता। हाँ यह बात और है कि पात्र हो तो सर्वहारा वर्ग का और भेदिया बनकर एरिस्ट्रोक्रेट लोगो में जा कर उन्ही का सा आचरण करे, या फिर, अपने वर्ग की अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषताओ से मुक्त हो, जैसे कोई राज-पूत वर्ग का होकर भी माँस मदिरा आदि से परहेज करे। संक्षेप में यह कि जब तक किसी प्रकट या अप्रकट क्रान्ति या दिशान्तर का सूत्रपात्र, अभिसूचन या दिग्घोष नही कर दिया जाता तब तक मध्यवर्ग के पात्रो को मध्यम वर्ग जैसा और अपर मध्यम वर्ग के लोगो को अपर मध्यम वर्ग जैसा व्यवहार करना चाहिए। और बेचारे पात्र क्या करें ? वे तो लेखको के हाथ की कठपुतली होते हैं। इसीलिए पात्रो की ओर से मै यह अपील लेखको से करता हूँ कि वे अपने पात्रों को अनावश्यक रूप से या अपनी अज्ञानता वश हास्यास्पद स्थिति में न डालें, नहीं तो स्वयं उन्हे मुँह की खानी पडेगी।

पात्र और वातावरण : प्रतिलोम सम्बन्ध—पात्र भी वातावरण को किसी हद तक प्रभावित करते हैं। जैसे लेखक की ओर से यह संकेत मिलते ही कि उसकी कहानी का नायक यवन विजेता अलक्षेन्द्र का प्रतिद्वन्द्वी पुरु है, पाठक के मन में कल्पना के द्वारा सहसा एक सम्पूर्ण चित्र अपनी समझ के अनुसार पुरु के समय के भारत का उतर आता है और इस प्रकार उसे अनेक अनावश्यक विवरणो को पढने से, या लेखक को ऐसे विवरणों के लेखन से मुक्ति मिल जाती है। किसी वकील की कहानी में उसका स्टडी रूम अर्थात् अध्ययन कक्ष स्वतः बाहर निकल आता है, बशर्ते कहानी का सम्पूर्ण तत्त्व वकील साहब और उनकी असन्तुष्ट धर्मपत्नी के बीच की चखचख में न विनियोग होता हो। दूसरी

और जहा लेखक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने पात्रो का चित्रण कहानी के अनुसार करे वहाँ उसका यह भी कर्त्तव्य है कि अपनी कहानी के वातावरण का चित्रण अपने पात्रो के अनुसार करे। वातावरण की 'जाति' गत विशेषताओ का इससे सीधा सम्बन्ध है। इस पर अधिक चर्चा करने की आवश्यकता नही है।

कहानी का प्रभाव और पात्र—बताया जा चुका हे कि चरित्र या पात्र कहानी के प्रभाव को आकलित करने में बहुत सहायक होते हैं। यदि थोडी देर के लिए कथानक को पात्रो से भिन्न न मानें तो पात्र ही कहानी के प्रभाव के सूत्रधार कहे जा सकते है। अन्यथा भी, पात्र कहानी का वह सजीव सोपान है जिसकी सहायता से कहानी अपने प्रभाव पर पहुँचती हे। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि यह 'प्रभाव' कहानी के सर्वव्याप्त वातावरण से सर्वथा भिन्न है। यह वह तत्व है जो कहानी के समाप्त होने के बाद में प्रस्फुटित होता हे। और यदि लेखक की असावधानी से या अन्य किसी जरिए से इसका उद्घाटन कहानी समाप्ति से पहले हो जाय तो लेखक का सारा श्रम कहल ही समझिए। यह प्रभाव, जैसा कि अनेक अग्रेजी समीक्षको ने कहा है, घटना या कथानक सम्बन्धी हो सकता है, पात्र सम्बन्धी हो सकता है, एक विशेष स्थिति या वातावरण सम्बन्धी हो सकता है या एक विशेष भाव, सिद्धान्त अथवा तथ्य सम्बन्धी हो सकता है। खलाल जिब्रान की लघु कथानिका 'लोमड़ी' तथा प्रसादजी की पुरस्कार में यह कथानक सम्बन्धी, मुनरो की डस्क' (माँझ) शीर्षक कहानी में यह गौणतः पात्र सम्बन्धी और मुख्यतः एक विशेष स्थिति सम्बन्धी है, और प्रेमचन्द की 'नशा शीर्षक कहानी में यह सिद्धान्त सम्बन्धी है। इनमे से जो कहानियाँ स्वय पात्र सम्बन्धी प्रभाव को लिए हुए होती हे उनमें तो पात्र की विशेषता लक्ष्य है ही, शेष कहानियो मे भी कहानी के 'प्रभाव' को सम्पूर्ण रूप में बनाने म पात्र की बोलचाल, वार्तालाप आदि का कभी-कभी सीधा और कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से योगदान रहता है। प्रेमचन्द की नशा' में जब नायक के मित्र को जमीदारी का नशा उतरता होता है उस परिवर्तन बेला में उसके नायक द्वारा नाक भौं सिकोड़ कर उसे 'इडियट' (बुद्धू) कहना सम्पूर्ण कहानी के प्रभाव को अपने अन्दर सञ्चित किए हुए है। प्रसादजी के 'पुरस्कार' की अनिद्य नायिका मधूलिका के प्रेमी अरुण को जब प्राणदण्ड होता है तब मधूलिका का एक गौरव की शालीनता में, बिना किसी हिचकिचाहट के अपने आप को भी प्राणदण्ड के लिए प्रस्तुत करना प्रभाव की अभिवृद्धि नही करता हे तो और क्या है ?

इसी प्रकार पात्र के अन्दर कोई ऐसी विशेषता नही बताई जानी चाहिए जिससे उस प्रभाव के विक्षेप मे बाधा पहुच और न प्रभाव की दिशा ऐसी होनी

चाहिए जिससे या तो प्रस्तुत प्रभाव या चरित्र-चित्रण मे अविश्वास होने लगे। इस प्रसङ्ग को किञ्चित् विस्तार से देखना चाहिए किन्तु अवकाश के अभाव में ऐसा करना सम्भव नही है।

चरित्र-चित्रण के साधन

(१) इतिवृत्त—कहानी मे चरित्र-चित्रण के अनेक साधन है। सबसे स्पष्ट और सरल साधन वह हे जिसके अनुसार लेखक सीधे रूप में पात्र की विशेषताओ का एक इतिवक्ता (narrator) की भाँति वर्णन करता है। यह वर्णन कहानी में अनेक स्थलो में विभाजित किया हुआ हो सकता है और केवल एक स्थल पर ही एकत्रित किया हुआ भो। यह विशेषता अन्य प्रणालियो पर भी लागू होती है। ऊपर प्रसादजी की 'गुण्डा' नामक कहानी का प्रारम्भिक स्थन इसका अच्छा उदाहरण है। इसे इतिवृत्तात्मक प्रणाली कह सकते है।

(२) वार्त्तालाप—चरित्र-चित्रण की दूसरी प्रणाली कथोपकथन है, जहाँ एक पात्र दूसरे पात्र से बातचात करता है। इसके दो भेद है —(१) या तो वक्ता पात्र स्वयं अपने विषय मे कुछ स्पष्ट रूप से कहता है या श्रोता के विषय में कहता है; और (२) जहाँ कोई किसो से स्पष्ट नही कहता बल्कि उनकी आपस की बात-चीत से किसो पात्र या पात्रो के चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है। इन दोनो ही भेदो की एक बड़ा बाधा (जो कहानी में बहुत कम लक्ष्य होती है) यह है कि यह आवश्यक नही कि एक पात्र दूसरे पात्र से बात-चीत करते समय पूर्ण सत्यनिष्ठ याने (Sincere) ही हो (यह अनजान मे ही हो सकता है) और दूसरा यह कि पात्रों की बातचीत से पाठक जो अनुमान लगाता है गलत भी हो सकता है। इस प्रणाली को चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कथोपकथन प्रणाली कहते हैं।

(३) कथावस्तु—चरित्र-चित्रण का तीसरा साधन कथानक है। कहा जा चुका है कि कथानक का अधिकाश भाग पात्रो की गतिविधि से बनता है। किन्तु पात्रो की सभी कार्यवाहियो से उनके चरित्र का उद्घाटन नही होता, यद्यपि यह सही है कि कहानी की संक्षिप्त चहारदीवारी में ऐसी कार्यवाहियों की कम ही गुञ्जायश है जिनसे किसी न किसी रूप में किन्ही सम्बन्धित पात्रों का चरित्र उद्घाटन नही होता हो। जो भी हो, कथानक चरित्र-चित्रण का एक महत्त्व-पूर्ण साधन है। इसका महत्त्व प्राचीन काल की कथानक प्रधान कहानियों में उतना ही है जितना आधुनिक काल की मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में जहाँ चरित्र चित्रण की इतिवृत्तात्मक या कथोपकथन प्रणाली अधिकांशतः कालाक्रान्त (Obsolete) हो गई है।

पात्रो का उपचेतन या अचेतन व्यक्तित्व—चरित्र-चित्रण के लिए साधारणतया इन्ही तीन माध्यमो का अलग-अलग या सम्मिलित प्रयोग होता है। किन्तु इनके अतिरिक्त एक और माध्यम है जो चरित्र-चित्रण का एक अपेक्षाकृत अधुनातन और अधिक प्रभावशाली साधन है। कभी-कभी पात्र ऐसे काम करता है, अथवा ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करता है जिससे उसके प्रकट चरित्र की सङ्गति पूरी तौर पर नही बैठती या उसके व्यवहार में एक अव्यक्त 'अकुलाहट' दिखाई देती हो जैसे वह कुछ कहना या करना चाहता हो परन्तु किन्ही कारणो से ऐसा कह या कर भी नही पा रहा हो, या कोई बात जान बूझ कर छिपाना चाहता हो। उस समय लेखक हमे उसके अन्तर्मन (sub-conscious) की एक झाँकी देना चाहता है, किन्तु साफ साफ कहने में न केवल कहानी का सस्पेंस समाप्त होता है अपितु कला के मर्म पर भी आघात पहुँचता है। इसलिए वह कुछ ऐसे सांकेतिक शब्दो का प्रयोग करता है जिससे उसका उद्देश्य—सांकेतिक रूप में पात्र के उपचेतन पर प्रकाश डालना—पूरा हो जाय। उपचेतन की यह अभिव्यक्ति जितनी सूक्ष्म हो उतनी ही अच्छी है। फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेण्ट में एक नवयुवक वकील और एक नवयौवना अज्ञात रमणी (जो बाद में चलकर वेश्या निकलती है) यात्रा कर रहे हैं। वकील साहब को मन ही मन इस बात की बडी इच्छा है कि वे किसी न किसी रूप में इस अज्ञात कुलशीला से बातें करें (यह बात कहानी मे साफ नही आई है) किन्तु बात करने का कोई अवसर नही आता है। वकील साहब जेब से निकाल कर सिगरेट पीते हैं इस आशा में कि रमणी इस पर आपत्ति करेगी किन्तु रमणी आपत्ति बिल्कुल नही करती है। तभी, कहानीकार ने लिखा है उसका सिगरेट पीना बिल्कुल व्यर्थ होगया। यह निराशा (frustration) की भावना नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उद्घाटन कर देती है।

गुलेरीजी की आवश्यकता से अधिक विख्यात कहानी 'उसने कहा था' में नायक लहनासिंह को किशोरावस्था में जब कई दिनो की लगातार पूछताछ के बाद एक दिन यह ज्ञात होता है कि उसकी किशोरी की कुडमाई होगई उस समय अनायास ही वह ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करता है जैसा कोई अत्यधिक खुशी के समय में करता है; भागा भागा किसी का दही का झावला फोड देता है, किसी कुत्ते से टकरा जाता है और किसी का खोमचा गिरा देता है, किन्तु यह सारा व्यवहार उसे मन ही मन जो भारी दुःख होता है उसकी प्रतिक्रिया का कारण है, और हिन्दी में उपचेतन की सांकेतिक अभिव्यक्ति के उज्ज्वलतम उदाहरणों

में से हैं । चरित्र चित्रण की इस प्रणाली को साकेतिक प्रणाली कह सकते हैं ।

यहा इन चारो प्रणालियो की विशेषताओ पर सक्षेप में विचार करना आवश्यक है । इतिवृत्तात्मक प्रणाली के दो मुख्य भेदो का सकेत ऊपर कर दिया गया हे अर्थात् बाह्य वर्णन एव स्वभाव विज्ञापन ।

चरित्राङ्कन की इतिवृत्तात्मक प्रणाली की विशेषताएँ—यह प्रणाली कथा साहित्य की सबसे अधिक प्राचीन और जानी हुई प्रणाली है । सस्कृत काल की आख्यायिकाओ और प्रारम्भिक हिन्दी कहानियो में इसका प्रयोग धडल्ले से होता था । इस सम्बन्ध में प्रथम उच्छ्वास में कहानी के लक्षणो के प्रकरण मे उद्धृत महाकवि दण्डी की प्रसिद्ध आख्यायिका दशकुमार चरितम्' मे राजकुमार का ज्ञानदीक्षा का परिचय उल्लेखनीय है। सच तो यह है कि इसके बिना चरित्र-चित्रण अधूरा माना जाता था । जब तक पाठक को कहानी के नायक नरेश अथवा राजकुमार की समस्त दीक्षा, उसके स्वभाव सस्कार, आचार विचार, ज्ञान और विभिन्न विषयक कौशल का परिचय नही होगा तब तक पाठक उसे कैसे समझ सकता है ? यहा तक कि लेखक के अनजान मे पात्र विशेष का चरित्र-चित्रण अन्य किसी माध्यम से (अर्थात् कथोपकथन अथवा कथानक से) भले ही ध्वनित हो जाय, जहा तक उसकी स्वय की अभ्यास प्रक्रिया का सम्बन्ध हे (अर्थात् जहाँ तक वह जान बूझ कर अपनी ओर से कुछ कहना चाहता है) वहाँ वह केवल इतिवृत्तात्मक प्रणाली का ही आश्रय लेगा । सौभाग्यवश या दुर्भाग्यवश यदि हमारे सजग लेखक को यह ज्ञात भी हो गया कि उसकी कहानी के कथोपकथन या कथानक से (इतिवृत्तात्मक के अतिरिक्त अन्य किसी प्रणाली का तो यहाँ प्रश्न ही नही उठता) उनके अपने mission के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण भी हुआ जारहा है तो वह बडी व्यग्रतापूर्वक या तो उसी के बीच में या उसे समाप्त करके इतिवृत्तात्मक प्रणाली द्वारा चरित्राङ्कन में व्यस्त हो जायगा ।

इतिवृत्तात्मक प्रणाली के प्रति यह व्यामोह बहुत दूरतक चला आया और आज से २०—२५ वर्ष पूर्व तक के हिन्दी के कथा साहित्य में इसका भरपूर प्रयोग देखने को मिलेगा । उपन्यासो में तो इसकी खपत अभी तक चली आती है, यद्यपि वहा यह अनेक बार अनिवार्य भी हो जाता है । किन्तु जहाँ तक कहानी का सम्बन्ध है, इसे आजकल उपरोक्त तीनो प्रणालियो के विरोध में भीषण सौतिया डाह हो गया है । यह स्वाभाविक भी है क्योकि शेष प्रणालियाँ अधिक आधुनिक हैं और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की मलमल को ओढे-ओढे कहानी के

साथ-साथ साहित्य के राजमार्ग मे गौरव के साथ चलने के आदर्शों का पूरा निर्वाह करती हैं।

आजकल की नई शैली की कहानियो में इस प्रणाली का उपयोग एक आदर्श के रूप में किया ही नही जाता, प्रत्युत, निर्देश यह है कि इसका जहाँ तक हो सके बहिष्कार ही किया जाय। इसका कारण मोटे रूप में स्वयं कहानी का आदर्श ही है अर्थात् लघुतम स्थान और समय मे अधिकतम वस्तु अथवा भाव सूचन करना, और व्यास रूप मे यह है कि कहानी में सूक्ष्म प्रतीकों, रूपको, अथवा सकेतो का बोलबाला होने लगा है, जिसके अनुसार सिद्धान्ततः लेखक पाठक के सामने नही आना चाहता, प्रत्युत अपनी ही कला से अपना व्यक्तित्व प्रतिफलित करना चाहता है। उसकी यह मान्यता है कि यदि स्वयं उसकी कला अभीष्ट भाव अथवा मतव्य की सूचना न दे सको तो वह प्रत्येक स्थल पर उसकी सहायता करने न आ ही सकता है और न उसे आना ही चाहिए। क्योकि ऐसा करने से कला की दुर्बलता प्रतीत होती है। अतः जहाँ तक पात्रो की जीवन व्याख्या का प्रश्न है, उनके कार्यकलाप, अथवा उनकी बात-चीत से यह व्याख्या समुचित रूप से हो सकती है—या होनी चाहिए, वहाँ कहानी की सम्पूर्ण प्रभाव क्षमता मे कसर है। इस दृष्टिकोण के अनुसार आजकल चरित्र चित्रण की इतिवृत्तात्मक प्रणाली का उपयोग कम से कम अश में होता है।

परन्तु इसका यह अर्थ नही कि चरित्र चित्रण की इतिवृत्तात्मक प्रणाली आजकल की कहानियो में उपयोग शून्य हो गई है। ठीक इसके विपरीत, यह प्रणाली सती साध्वी की भाँति तब काम आती है जब शेष प्रणालियाँ रूपी उपपत्नियाँ काम की नही रहती। टेकनीक की दृष्टि से इसके बहुल प्रयोग को भले ही दोष पूर्ण माना जाय, परन्तु यह वह ब्रह्मास्त्र है जो पाठक के मन में अतर्कित रूप से बैठे बगैर नही रह सकता। यहाँ आकर उसे न किसी प्रकार के शङ्का समाधान की आवश्यकता रहती है (जहाँ तक कि प्रस्तुत विवरण का प्रश्न है) और न किसी प्रकार की भ्रान्ति को अवकाश। जैसे लेखक अपने पात्र के सभी अभीष्ट विवरणो को आपके समक्ष खोलकर रख देता है। इसका असर यह होता है कि यदि अमुक चरित्र घृणा का पात्र है तो पाठक तत्काल उसके प्रति घृणा करने लगेगा और यदि पात्र आदर्शो का पुतला हुआ तो उसके प्रति अविलम्ब श्रद्धावनत हो जायगा। दोनो हो या अन्य किसी अवस्था में पात्र का चरित्र चित्रण अस्वाभाविकता के दोष से दूषित नही होना चाहिए। यह दोष स्वयं पात्रगत (जैसे औरङ्गजेब को संगीत प्रेमी बताना), कालगत अथवा स्थानगत हो सकता है।

साथ ही साथ यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार नीची श्रेणी की जाति में उत्पन्न मनुष्य का ऊँची श्रेणी के लोगों द्वारा यदि सत्कार हो सकता है तो तभी हो सकता है जब उसमें असाधारण गुण अथवा प्रतिभा हो, उसी प्रकार अन्यथा अनादृत इतिवृत्तात्मक प्रणाली को कहानी में तभी स्वीकृति मिल सकती है जब उसमें स्वयं चित्रण की एक अद्भुत् प्रतिभा हो। इस प्रणाली का चरित्र चित्रण असाधारण, अप्रत्याशित तथा मार्मिक होना चाहिये। यदि उसे वास्तव में उसके नाम के अनुसार 'इतिवृत्तात्मक' अर्थात् शुष्क बना दिया गया तो उसकी कद्र समाप्त हो जायगी। इसके विपरीत साधारण बात को भी एक विचित्र अथवा रोचक ढङ्ग से कहने में उसे लोकप्रियता अर्जित होगी। इस सम्बन्ध में किन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो शायद सम्भव नहीं है किन्तु इतना ही कहा जा सकता है कि जो कुछ भी कहा जाय उसमें एक निकटता की अनुभूति होनी चाहिए मानो लेखक उसका वर्णन करते समय अपने आपको भूल गया हो। यही इस प्रणाली का शेष प्रणालियों में एक 'दार्शनिक' रूपान्तर होगा।

आकृति चित्रण अथवा रूप वर्णन का मन्तव्य यह है कि उसको देखते ही पाठक के मन में पात्र का रूप हूबहू उतर आये। अतः इस प्रणाली के प्रयोग के समय लेखक को यह आदर्श हमेशा अपने सामने रखना चाहिए। बाह्य (आकृति) चित्रण के उदाहरण के रूप में प्रसादजी की गुण्डा कहानी से आवश्यक उद्धरण दिया जा चुका है। अन्तर्दर्शन के दो सफल उदाहरण देकर इस प्रसङ्ग को समाप्त किया जाता है।

"नये मुहल्ले में आये हम लोगों को प्रायः एक महीना हो गया था। पतिदेव मिलनसार प्रकृति के आदमी थे, इसलिए कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने पड़ौस के प्रायः सभी प्रतिष्ठित सज्जनों के साथ मित्रता स्थापित करली थी। पर मेरा स्वभाव अत्यन्त सङ्कोचशील होने के कारण मैं अभी तक बहुत कम स्त्रियों से हेलमेल बढ़ा पाई थी। किन्तु मैंने इस बात पर गौर किया है कि मेरी प्रकृति की इस सङ्कोचशीलता के कारण ही स्त्रियाँ (पुरुषों के सम्बन्ध में मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती) मेरे प्रति आकृष्ट होती है और मेरी विशेष इच्छा न होने पर भी मेरे साथ घनिष्ठता बढ़ाने के लिए उत्सुक रहती है।"

'अपत्नीक' इलाचन्द्र जोशी

यह उदाहरण यद्यपि प्रकट रूप में स्वय लेखक की ओर से कहे गये चरित्र-चित्रण का उदाहरण नहीं है, फिर भी इसे अपनी विशेष टैकनीक की दृष्टि से इसी कोटि के अन्तर्गत गिनना चाहिए। आत्मकथा के रूप में कही गई सभी कहानियों के नायक या नायिका यदि इसी प्रकार कुछ 'स्वगत भाषण' करें

तो इसे इतिवृत्तात्मक प्रणाली के अतिरिक्त और कुछ नही कहा जा सकता यद्यपि दोनो के सूक्ष्म अन्तर को शैली वाले प्रकरण में स्पष्ट कर दिया गया है।

विशुद्ध इतिवृत्तात्मक प्रणाली का एक उदाहरण :—

"वह महीनो से घर से बाहर नही निकला था। उसे किसी से मिलना, हँसना, बोलना कुछ भी पसन्द न था। पडौस के लोग उसके रहस्यपूर्ण जीवन की बातें समझने में असमर्थ थे। उन्हे अनेक चेष्टाओ के बाद भी यह पता नही लगा कि वह कौन है ? कहाँ से आया है ? और क्या करता है ?"

—'कल्पनाओ का राजा'—विनोदशङ्कर व्यास

प्रसादजी की 'देवरथ' कहानी के प्रारम्भिक अनुच्छेद में सुजाता का संक्षिप्त मनोविश्लेषण इस प्रणाली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

कथोपकथन प्रणाली—चरित्राङ्कन की कथोपकथन पद्धति एक बडी असाधारण (unusual) पद्धति है, विशेषतः तब जब कि उसके द्वारा अनावृत्त चरित्र-चित्रण की सफलता पर सर्वदा विश्वास नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त कथोपकथन में पात्र जो कुछ कहते हैं उसका अधिकाश प्रायः कथानक या अन्य किसी तत्व के उद्घाटन में नियोजित होता है, चरित्र-चित्रण के लिए उसमें बहुत कम अवकाश रहता है।

तीसरी बात यह कि कहानी जैसी कला के कथोपथन द्वारा प्रकट रूप में चरित्र-चित्रण की प्रणाली भी करीब-करीब उतनी ही त्याज्य समझी जाने लगी है जितनी इतिवृत्तात्मक प्रणाली, जिसका अर्थ यह है कि पात्र जो कुछ भी कहते हैं उससे पात्रो के स्वभाव आदि को जानने का काम सकेत अथवा अनुमान ही से हो सकता है। चौथी बात यह कि 'क' नामक पात्र की बातचीत से अधिकाशतः स्वय 'क' के ही चरित्र का अनावरण हो सकता है, 'ख', 'ग' आदि अन्य पात्रो का उतना नही जब तक कि स्वयं 'क' पाठको को विश्वास-पात्र मान कर ऐसा नही करे। और पाँचवी बात यह कि अक्सर लेखक बात-चीत के साथ उनकी भूमिका के रूप में हावभाव आदि का वर्णन कर देता है जिससे केवल कथोपकथन का इस पद्धति के रूप में अत्यधिक महत्व नही रहता। इन सब कठिनाइयो के होते हुए भी कथोपकथन प्रणाली चरित्र-चित्रण में अपना सतत (Steady) योगदान करती जा रही है।

उदाहरण—सुलोचना ने तस्वीर उठा कर देखी, वह उसी के पतिदेव की थी। क्रोध के मारे उसके नथुने फडक उठे, आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगी, उसका समूचा शरीर काँपने लगा। दाँत पीस कर फिर एक लात जमाती

हुई वह बोली—बताओ, तुम्हे यह तस्वीर कहाँ मिली ?

दुखिया ने रोते हुए हाथ जोड़ कर जवाब दिया—"बाबूजी के कमरे में इस तरह की कई तस्वीरें थी। वही से मैं चुपचाप इसे उठा लाई हूँ।"

'झूँठ बोलोगी तो यहाँ से जीती न जाने दूँगी।" इस पर और भी एक लात जमा कर सुलोचना ने कहा—"डायन! यह क्यो नही कहती कि बाबूजी ने अपने आप भेंट की है।"

"नही सरकार!" दुखिया बडी दीनता से रोती हुई बोली—"उन्होने नहीं दी। मैं ही उसे चुरा कर अपने कमरे में ले आई हूँ। उन्हे तो मालूम भी नही है।" —'दुखिया' (जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज')

जहाँ लेखक कथोपकथन के अतिरिक्त अपनी ओर से कुछ सकेत सूचक विवरण नही देता, वहाँ भी केवल वार्तालाप की गतिविधि से सम्बन्धित वक्ता आदि के चरित्रो का निष्कलन हो सकता है।

कथावस्तु के द्वारा चरित्रांकन—चरित्र-चित्रण की कथानक प्रणाली, जैसा कहा जा चुका है, बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रकट रूप में इसी का प्रचार अधिक है और अत्यन्त अधुनातन युग की प्रवृत्तियों को यदि दृष्टि से अगोचर रक्खा जाय तो यह चरित्र-चित्रण की पूरे अंशो में पादर्शप्रणाली है। इस सम्बन्ध में कथानक की ऊपर दी गई परिभाषा को बराबर ध्यान में रखना चाहिए, नही तो चरित्र-चित्रण में यह कैसे सहायक होता है इसका पूरा-पूरा दिग्दर्शन नही हो पायगा। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पात्रो के उन मुख्य अथवा गौण कार्यकलापो के अतिरिक्त, जो कथानक के गठन में सहायक होते है, पात्रो के वे हाव-भाव भी कथानक में सम्मिलित हैं जो पात्र बातचीत के समय अथवा अन्यथा प्रकट करते हैं। इन समस्त हावभावो से पात्र विशेष के चरित्र को समझने में बडी सहायता मिलती है।

आज का कथायुग मनोविश्लेषण का युग है। लेखक के सामने जहाँ यह दुर्निवार कर्तव्य है कि वह जीवन के रङ्गमञ्च पर कहानी के माध्यम से एक नियत काल व घटना के प्रसङ्ग से क्षण क्षण में होने वाले उसके पात्रो के मानसिक घात-प्रतिघातो का पाठक को परिचय दे वहाँ उसके लिए यह भी कठिन बन्धन है कि यह परिचय बडे कौशल और सूक्ष्मता से दिया जाना चाहिए ताकि लेखक एक उपदेष्टा या निबन्धकार नही जान पडे। इस अवस्था में लेखक के समस्त पात्रों की गतिविधि ही एक ऐसा साधन रह जाता है जिसके सफल चित्रण द्वारा वह इन दोनो आवश्यकताओ को निभा सकता है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल की इतिवृत्तात्मक कहानियो के विपरीत आज की नवीन शिल्प-

विधान की कहानियों से यह दायित्व कथानक पर ही आ पड़ा है।

चरित्र-चित्रण और कथानक एक दूसरे को कैसे प्रभावित करते हैं यह विस्तारपूर्वक कथानक के प्रकरण में देखा जा चुका है। यहाँ केवल एकाध उदाहरण इस बात के देने पर्याप्त होंगे कि कथानक से चरित्र का सूक्ष्म उद्घाटन कैसे होता है।

श्री ऋषभचरण जैन लिखित "दान" शीर्षक कहानी के एक प्रमुख पात्र रायसाहब के पास अभी-अभी एक अनाथालय का प्रतिनिधि मण्डल चन्दा लेने के लिए आया था जिसे उन्होंने यह कहकर लौटा दिया था—'आप फिर किसी वक्त मिलें। जो मुनासिब सलाह मैं दे सकता हूँ, दूँगा।' उन्हीं रायसाहब के घर कमिश्नर साहब ने एक पत्र भेजा है, यह सुनकर—

'रायसाहब नंगे पाँव उधर दौड़े। चिट्ठी खोलना दुश्वार हो गया। खूबसूरत लिफाफे में मोटे कागज पर छपा हुआ एक सर्कुलरनुमा पत्र था। नीचे चीफ कमिश्नर के हस्ताक्षर थे।

था क्या? वायसराय ने बादशाह के अच्छे होने की खुशी में "थैंक्स गिविङ्ग फण्ड" खोला है उसकी सूचना इस चिट्ठी द्वारा रायसाहब हुकूमतराय को दी गई है।

इस छपी हुई चिट्ठी को रायबहादुरी के स्टेशन का टिकट समझ कर रायसाहब उसी वक्त एक हजार रुपए का चैक "थैंक्स गिविङ्ग फण्ड" में भेजने की व्यवस्था करने लगे।"

कहानी समाप्त।

श्री सियारामशरण गुप्त की 'काकी' नामक ७०० शब्दों की करुणरस की लघुकथा का सम्पूर्ण कथानक ही स्वयं चरित्र चित्रण है। बालक श्यामू के सामने उसकी काकी (चाची) का देहान्त हो गया किन्तु उसे ऐसा बताया गया कि वह ऊपर अपने मामा के घर गई है। वह कई दिनों बाद अपने काका की जेब से रुपया चुराकर पतंग मँगाता है और उस पर एक कागज पर 'काकी' लिखकर चिपका देता है। विश्वेश्वर को चोरी का पता लगता है तो वह श्यामू को पीटता है और उसकी पतङ्ग फाड़ डालता है। लेकिन जब उसे वस्तु स्थिति का ज्ञान होता है तब······।

संकेतात्मक प्रणाली—इसके सम्बन्ध में ऊपर दो उदाहरण दिए जा चुके हैं जिनसे इसका स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है। यह एक अत्यन्त उच्चकोटि की प्रणाली है और इसके प्रयोग केवल जहाँ-तहाँ मिलते हैं। दुरूह और गूढ़ होने के कारण इसके प्रयोग में बड़े कौशल और सूक्ष्मानुभूति की आवश्यकता

होती है। इसी कारण यह इतनी लोकप्रिय नही हो पाई है यद्यपि इसका महत्व सब समझदार क्षेत्रो ने स्वीकार कर लिया है। विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से इसे कथानक प्रणाली या कथोपकथन प्रणाली (जैसा भी प्रसग हो) के अन्तर्गत ही मानना चाहिए।

चरित्र चित्रण के भेद—चरित्र चित्रण के दो मुख्य भेदो—यथा बाह्य वर्णन और अन्तर्वर्णन का ऊपर विशदीकरण कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त पात्र भेद तथा कहानी के जिस अश में चरित्र चित्रण किया जाय उस स्थान भेद से चरित्र चित्रण के और भी अनेक भेद किए जा सकते है। इनमे से पात्र भेद के आधार पर किए भेद कई एव अधिक महत्वपूर्ण हैं। जैसे आधुनिक समाज के किसी व्यक्ति का चित्रण आधुनिक समाज के अनुसार यानी वह जिस ढङ्ग से रहता है उसके अनुसार ही होगा। इसी प्रकार भाव विधायिनी कहानियो के पात्र (जो स्वय विशिष्ट भावो अथवा अनुभूतियो के प्रतीक होते हैं, जैसे 'ज्ञान' आदि) उसी रूप में चित्रित किए जाएँगे जिससे उनका एक पात्र के रूप में व्यक्तित्व तो कायम रहे हो इसके अतिरिक्त उनका भावकत्व या भावात्मक व्यक्तित्व भी बना रहे, सच तो यह है कि किसी न किसी रूप में इसी दूसरे व्यक्तित्व की पुष्टि अथवा खण्डन करने के लिए ही ऐसी कहानी की रचना होती है जिससे कि व्यक्तित्व पर स्वाभाविकतया बलाधान हो जाता है।

यही सिद्धान्त ऐतिहासिक इतिवृत्त तथा हास्यरस आदि की कहानियो पर लागू होता है। स्पष्ट है कि यह होते हुए भी इन भेदो की गणना न सम्भव ही है न उचित ही।

स्थान भेद की दृष्टि से—चरित्र-चित्रण को तीन भागो में बाँटा जा सकता है, आदि, मध्य और अन्त। चरित्र-चित्रण के लिए कहानी में कथानक जैसा कठोर बन्धन नही है कि वह धीरे धीरे खुलना चाहिए ताकि कुतूहल बना रहे। यदि कुतूहल कथानक में बना रहा तो चरित्र-चित्रण को एक साथ ही कहा जा सकता है। किन्तु ऐसा अवसर होता नही है। और यह प्रारम्भ, मध्य और अन्त में से किसी एक स्थल पर (केवल अन्त को छोड कर) या अधिक स्थलो पर मुकुलित हो सकता है। यह बात दूसरी है कि अन्त तक किसी पात्र का व्यक्तित्व समझ में न आवे और ठीक अन्त में सारा रहस्य खुल जाए। उस हालत में यह 'अन्त' का चरित्र-चित्रण माना जायगा क्योकि कुछ न कुछ पहले भी कहा जा चुका है।

कहानी में प्रकट चरित्र-चित्रण को बहुत अधिक अवकाश न होते हुए भी

यह कहानी भर में बँटा हुआ रहता है चाहे वह इतिवृत्तात्मक ही क्यो न हो शेष प्रणालियो में तो यह निश्चित रूप से बँटा हुआ रहेगा। इसके अतिरिक्त अपनी छोटी सीमा के अन्तर्गत भी घटनाओ की दिशा और प्रवाह के अनुकूल या प्रतिकूल पात्रो का स्वभाव कार्य-व्यापार आदि चलते है। प्रकट है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में एक ही पात्र की भिन्न भिन्न विशेषताएँ लक्षित होती है यद्यपि इसमें बहुत अधिक विस्तार की गुञ्जाइश नही है। यदि चरित्र में आद्योपान्त अन्तर न हो तो भी अपने सीमित चरित्र की ही झाँकी पात्र कहानी मे एक नही अनेक अवसरो पर देता है।

अर्थ-भेद—चरित्र-चित्रण के और भी भेद किए जा सकते है जैसे गूढ (उदा० इलाचन्द्र जोशी) और प्रकट (जैसे प्रेमचन्द्र) विरल या अभिभुत (कथानक या वातावरण प्रधान कहानियो में) और पुष्कल या अभिभावी (जैसे जैनेन्द्र और भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियो में) आदि-आदि।

चरित्र चित्रण की सीमाएँ और उपबन्ध—चरित्र-चित्रण कथानक आदि की भाँति स्वय एक तत्त्व है। इस कारण उसको कहानी का सर्वस्व नही माना जा सकता। जिन कहानियो में चरित्र चित्रण के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व की प्रमुखता होती है उसमें चरित्र-चित्रण की गौणता स्वतः सिद्ध है। वैसे कथानक या वातावरण प्रधान कहानियो में चरित्र-चित्रण की प्रधानता ढूँढना व्यर्थ है। सच तो यह कि कहानी के विषय में जैसे पहले कहा जा चुका है तत्त्व विशेष को लेकर सोचना ही कहानी के मूलतत्त्व के प्रति अन्याय करना है। कहानी तो एक प्रभाव मात्र है; यह प्रभाव चरित्रो की विशिष्टता के द्वारा उत्पन्न होता है या कथानक द्वारा अथवा वातावरण या उद्देश्य द्वारा, यह बात व्यापक दृष्टिकोण से सोचने पर गौण हो जाती है। इस हिसाब से चरित्र चित्रण की सीमाएँ अतर्क्य है। किन्तु जहाँ तत्त्व विशेष की दृष्टि से सोचना उसकी टेकनीक की दृष्टि से या अन्य किसी कारण से आवश्यक है वहाँ चरित्र चित्रण को भुलाया नही जा सकता। व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी आजकल कई दिनो से कहानी मात्र मानव के मनोविश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ साधन मानी जाने लगी है जो शास्त्रीय दृष्टि से चरित्र के अध्ययन का ही एक भाग है। इस प्रकार चरित्र चित्रण प्रधान कहानियो में तो इसका महत्त्व सर्वमान्य है ही, शेष कहानियो में भी एक तत्त्व के रूप में इसका प्रभाव कम नही है। इतना होते हुए भी उसकी अपनी सीमाएँ है।

एक तत्त्व की दृष्टि से चरित्र चित्रण दूसरे तत्त्वो से कहाँ तक प्रभावित होता है यह ऊपर विस्तार से देखा जा चुका है। जहाँ केवल यही कहना पर्याप्त

होगा कि ऐतिहासिक कहानियों में, जहाँ पात्रो का व्यक्तित्व पहले से ही काफी स्पष्ट होता है, चरित्र चित्रण के जौहर दिखाना कठिन हे । दूसरे शब्दो में स्वयं कथानक प्रधान या अन्य कहानियो में भी प्रख्यात कथानक की कहानियो में चरित्राङ्कन और भी सीमित हो जाता है ।

दूसरी बात जो महत्वपूर्ण है वह यह कि कहानी में न तो प्रस्तुत घटना से सम्बन्धित अधिकतम पात्रो के वर्णन का अवकाश होता है न जिन पात्रो को कहानी मे लाया भी गया हे उनमें से सबके चरित्रो का सागोपाग वर्णन और न स्वय मुख्य पात्र या पात्रो के चरित्र के सभी पहलुओ पर सम्पूर्ण प्रकाश । इस विषय में कहानी का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट निश्चित और स्वतन्त्र है । वह तो दूसरे क्षेत्रो की भाँति इस क्षेत्र में भी न्यूनतम आवश्यक विवरणो के देने के पक्ष में है । इसलिए जहाँ कहानी में फालतू पात्रो के नाम लेने तक की मनाही है वहाँ नाम लिए गए पात्रो के शेष (अर्थात् घटना से सीधे रूप में सम्बन्धित से अतिरिक्त) चरित्र के पहलू अथवा पहलुओ को विज्ञापन का भी अवकाश नही है । किसी भी कहानी के अध्ययन अथवा समालोचना में उसके इस पहलू को ध्यान में रखना पाठक अथवा आलोचक के लिए बहुत लाभदायक एव आवश्यक है ।

चरित्राङ्कन की योग्यताएँ—चरित्र चित्रण के उद्देश्य को बताते हुए यह कहा जा चुका है कि उससे पाठको के हृदय पर सम्बन्धित पात्र की पूरी-पूरी छाप बैठ जानी चाहिए । ऊपर बताई गई सीमाओ के अन्तर्गत चाहे वह छाप उसके अन्तर्जीवन के सम्बन्ध में हो चाहे बाह्य आकार प्रकार के सम्बन्ध में । अतः सफल चरित्र चित्रण वही है जो इस आदर्श को पूरा पूरा निवाह सके। चरित्र-चित्रण मे इस योग्यता का सम्पादन किस प्रकार किया जाय इसका विवेचन जोधपुर के एक विद्वान लेखक ने किया है । उनके अनुमार चरित्र-चित्रण के लिए इन चार चीजो की आवश्यकता है ।

(१) "पात्र मे जीवन की शक्तियाँ विद्यमान रहनी चाहिए ।" इसकी व्याख्या करते हुए विद्वान लेखक ने कहा है कि पात्र हमेशा आदर्श होने चाहिए । यह एक विवादास्पद सैद्धान्तिक प्रश्न है जिसके विवेचन में न पडकर हम यहाँ यही कहना पर्याप्त समझते है कि पात्र जैसा भी हो उसके चरित्र की विशेषताएँ काफी स्पष्टता से अङ्कित होनी चाहिए, चाहे इसके लिए ऊपर कही गई चार प्रणालियों में से किसी प्रणाली का उपयोग किया जाय ।

(२) "चरित्र चित्रण करते समय लेखक को अपनी वर्णन शैली पर विशेष ध्यान देना चाहिए । दृश्य वर्णन में लेखकों की पर्यवेक्षण शक्ति गजब की होनी आवश्यक है । हिन्दी में साधारण स्वाभाविक दृश्यों के वर्णन में प्रेमचन्द

और प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में जयशङ्कर प्रसाद को आशातीत सफलता मिली है। नाटक में तो पात्रों का साकार रूप हमारे समक्ष खड़ा हो जाता है लेकिन कहानी में लेखक को कल्पना के सहारे ही उसका चित्र खींचना पड़ता है। ऐसी दशा में वर्णन शैली का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। वर्णनशैली स्पष्ट हो और सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का परिचय उससे मिल जाय।"

माननीय लेखक का यह निष्कर्ष तो सामान्यतः उचित प्रतीत होता है (यद्यपि वर्णन शैली का चरित्र चित्रण के प्रसंग में विशेष क्षमताशील होना अनिवार्य नहीं है) किन्तु इसके लिए लेखक ने जिन तर्कों का सहारा लिया है वे अनुकूल नहीं जान पड़ते। यहाँ लेखक ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि दृश्य-वर्णन का चरित्र चित्रण से क्या सम्बन्ध है। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में भी 'स्वाभाविक' शब्द का प्रयोग शायद 'स्वभाव सम्बन्धी' अर्थात् 'चरित्र-सम्बन्धी' के अर्थ में हुआ है जो इसके रूढार्थ से भिन्न है। नाटक की तुलना में कहानी की कठिन स्थिति का तर्क तो यहाँ बिलकुल ही असंगत जान पड़ता है क्योंकि नाटक में लेखक के लिए अपनी ओर से चरित्र चित्रण का बिलकुल अवकाश नहीं है जबकि कहानी में इसके लिए पर्याप्त अवकाश है।

(३) 'लेखक को स्वयं अपने व्यक्तित्व के विषय में पहले जान लेना चाहिए।' माननीय लेखक की यह मान्यता समीक्षा जगत की एक सर्वथा नई मान्यता है। हमारे विनम्र मत में यह सम्पूर्ण रूप से उपयोगी हो अथवा किसी भी अंश में अनिवार्य हो इसमें सन्देह है। इसे नीचे दी हुई चौथी विशेषता के पर्याय के रूप में ही ग्रहण करना उत्तम होगा।

लेखक का पर्यवेक्षण सूक्ष्म होना चाहिए।

स्वाभाविकता—इनके अतिरिक्त चरित्र चित्रण की कुछ अन्य अन्तर्देशीय विशेषताएँ है जिनको संकेत रूप से यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। जिस प्रकार कथानक के अन्दर अस्वाभाविकता तथा अयथार्थता एक दोष है उसी प्रकार चरित्र-चित्रण भी देशकाल, जाति तथा व्यक्ति की विशेषताओं के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए चाहे वह बाह्य वर्णन हो या अन्तर्दर्शन। जहाँ लेखक को असाधारण पात्र उपस्थित करना अभीष्ट हो वहां भी शेष सब बातों को ध्यान में रखकर ही उनका ऐसा चित्रण करना चाहिए कि वे जिस स्थान के अङ्ग बनकर उपस्थित हुए हो उसमें अस्वाभाविक या सर्वथा असम्भव न जान पड़ें।

मौलिकता—दूसरी बात, जैसा कहा जा चुका है चरित्र चित्रण में एक ऐसी मौलिकता होनी चाहिए कि पढ़ने वाले का जी उसमें लगे। क्योंकि वैसे ही साधारण पाठक की मनोवृत्ति केवल कथानक के अंश को पढ़कर ही कहानी

राक्षसों के झुण्ड में पाठक की आँखें प्रह्लाद को अथवा सीता को अपने दुर्धर्ष प्रकाश पुञ्ज को विकीर्ण करता हुआ देखने को लालायित रहती हैं। और यह सच है कि उसका झूठा अहङ्कार भले ही तृप्त हो जाय किन्तु उसका अन्तर्मन उसके अभाव में अपने आपको बड़ा असहाय सा अनुभव करता है। हम यह नही कहते कि अपने घिनौने रूप में भी यथार्थ का महत्व नही है या कम है—वह तो प्रायः एक महास्त्र के रूप में पाठक की वृत्तियों को उसके प्रति सदा के लिए पराङ्मुख कर देने में काफी सहायक होता है जो कम महत्वपूर्ण नही है किन्तु कहने का अर्थ यही है कि ऐसा साहित्य स्थायी नही होता, उसका केवल तात्कालिक महत्व है। इस प्रकार यह करीब-करीब साफ है कि कहानी में पात्रों के व्यक्तित्वों के घात-प्रतिघात का लक्ष्य एक अविकल्प आदर्श की ओर रहना चाहिए। साथ ही जिस प्रकार कहानी के सारे पात्रो का व्यक्तित्व यथार्थ से कुत्सित नही होना चाहिए, उसी प्रकार वह आदर्श के अस्वाभाविक आवरण से आवृत्त नही रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में ऊपर कहानी की परिभाषा तथा वर्गीकरण वाले प्रकरणों में विवेचन किए गए प्रसङ्ग भी द्रष्टव्य हैं।

पात्रों की संख्या एवं नामकरण

पात्रों की संख्या—कहानी में पात्रो की संख्या दो बातो को ध्यान में रख कर निर्धारित की जा सकती है। एक तो यह कि कहानी का कलेवर जहाँ तक हो सके अत्यन्त संक्षिप्त होना चाहिए याने फालतू के विवरणो को उसमें अवकाश नही। इसी के अन्तर्गत पात्र आजाते हैं। दूसरे यह कि कहानी के सारे पात्रो का कहानी की घटना के साथ सीधा और आद्योपान्त सम्बन्ध रहना चाहिए। यदि इस व्यवस्था में कोई व्यावहारिक बाधा आती हो तो इसका निराकरण करने के लिये इस गुर को काम में लाना चाहिये कि विवादास्पद पात्र कहानी के लक्ष्य की प्राप्ति में किसी न किसी रूप याने विधेयात्मक, नकारात्मक, सक्रिय अथवा निष्क्रिय रूप में सहायक हुआ या नही।

जो पात्र कहानी के लक्ष्य से कही दूर बीच ही में रह गए हो उनका कहानी में कोई स्थान नही है।

उक्त दोनों व्यवस्थाओं को कहानी के मूल उद्देश्य याने एक समन्वित प्रभाव की सृष्टि के साथ मिला कर देखने से कहानी में प्रयुक्त पात्रों की आवश्यकता अथवा अनावश्यकता पर निर्णय दिया जा सकता है। हालाकि यह कठिन है कि कहानी में कितने पात्र हों इसका कोई मान स्थिर कर के रखा जाय। वैसे साधारणतया कहानी में तीन-चार पात्रों से अधिक नही होने चाहिए।

अधिकांश अच्छी कहानियाँ दो या तीन पात्रों की होती हैं ।

चरित्र चित्रण के प्रकरण के श्रीगणेश में ही कह दिया गया है कि कहानी में कम से कम दो पात्र होने आवश्यक हैं चाहे दोनों प्रस्तुत हों या नहीं, या दोनों में से कोई या दोनो तिर्यकयोनि अथवा कोई एक निर्जीव हो, किन्तु तो भी उसमें प्राणों की कल्पना किसी न किसी रूप में लेखक की ओर से हो। कम से कम दो पात्रो के सिद्धान्त का कारण स्पष्ट है कि कहानी जीवन में होने वाले घात-प्रतिघातों का चित्रण है और जब तक उसमें पाई जाने वाली क्रिया-शीलता ऐसे कथानक का निर्माण नहीं कर सकती जिसे कहानी अङ्गीकार कर ले। कहानी अथवा कथा साहित्य की यही विशेषता उसे गद्य-काव्य, मुक्तक, निबन्ध आदि कथा विहीन साहित्य से भिन्न करती है।

कहानी में पात्रों की संख्या के बारे में उक्त न्यूनतम वाला सिद्धान्त प्रायः सभी विचारकों ने स्वीकार किया है। इस प्रकार यह प्रश्न अधिकाश में केवल विवेचन की दृष्टि से ही उठाया गया सिद्ध हो जाता है, हाँ, अन्यथा एक बडा महत्वपूर्ण काम यह करता है कि अच्छी रचनाओ के स्टैण्डर्ड को सहायता देने के साथ साथ लेखकों को कहानियों में अधिक पात्रों की भीड इकट्ठा करने से रोकता है।

पात्रों का नामकरण—पात्रों की संख्या से भी कम महत्त्वपूर्ण प्रश्न पात्रों के नामकरण का प्रश्न है। किन्तु इस प्रश्न पर पर्याप्त विचार न होने के कारण इसका जितना भी महत्त्व है कायम है। इस प्रश्न का रूप पात्रो की बोल-चाल की भाषा के प्रश्न जैसा ही है। व्यावहारिक दृष्टि से यह उससे भी अधिक दुर्बल है, क्योंकि पात्रो के नामकरण का अतर्कित उत्तरदायित्व पात्रो के माता-पिता, अर्थात् लेखको पर ही है चाहे भले उनकी ये मानसी सन्तानें अर्थात् पात्र 'जन्म के अन्धे नाम नैनसुख' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं। इस प्रकार लेखक का अमुक मानसी पुत्र प्रारम्भ ही से जडमति है और उसका नाम सर-स्वतीप्रसाद है तो है, किसी की धौंस नही है कि वह उसे बदल दे। या ठेठ ग्रामीण है तो उसे कलुआ, राजिया, भौंरी, गोबर, पुत्तन, रामदास कहने की बजाय, नारायणदत्त, प्रेमशङ्कर, रविराजपाल, हरिप्रसाद, सुधीन्द्र आदि कुछ भी कहने को स्वतन्त्र है। और लेखक तो यो भी मुक्त है। वह सङ्कट काल में उन मानसीपुत्रो को गोद लेकर नाम के प्रश्न पर बदनाम क्यो होगा ? वह तो धडल्ले से कहेगा, इसमें भला मेरा क्या कसूर है इनके असली माँ-बाप जाने। (लेकिन असली माँ-बाप का कही पता नहीं है और लेखक को यह बताने की आवश्यकता भी नहीं है कि वे कहाँ है। क्योंकि यह कहानी के लिए एक अपदार्थ विवरण है।)

इस प्रकार 'वैधानिक' दृष्टि से लेखको को किसी का डर नही है। किन्तु साधारणतया लेखक इतने अपरिग्रही नहो होते। वे इस मुकदमे में पड़ना भी पसन्द नही करते, चाहे उसका फैसला उनके पक्ष में ही होने वाला हो। वे मुनिया को मुनिया और राधिकारमणप्रसादसिंह को राधिकारमणप्रसादसिंह ही कहना पसन्द करेंगे, यह बात और है कि प्रस्तुत परिस्थितियो में कौनसा पात्र मुनिया होना चाहिए और कौनसा राधिकारमणप्रसादसिंह, यह लेखक पर ही निर्भर करता है। लेखक प्रायः अपने पात्रो के नाम, वे जिस समाज वर्ग से सम्बद्ध है उसी के अनुरूप रखते हैं। हाँ, जहाँ दो वर्गो की सीमाएँ मिलती है उनके विषय मे पात्रो के नाम पर कभी कभी मतभेद की गुञ्जाइश हो सकती है।

पात्रो के भेद—पात्रो के 'आदर्श' अर्थात् निश्चित रूप से सत्-पथ-गामी होने और 'यथार्थ' अर्थात् परिस्थितियो के अनुसार सत् या असत् या सामान्य कोटि के होने की चर्चा कर दी गई है। यह वर्गीकरण पात्रो का एक महत्वपूर्ण वर्गीकरण है।

उत्पाद्य प्रख्यात—इसके उपरान्त पात्रो का कथानक की भाँति 'प्रख्यात' और 'उत्पाद्य' म भी बाटा जा सकता है, जिनमें प्रख्यात वर्ग के पात्र इतिहास, पुराण, लोक जीवन अथवा वास्तविक जीवन के अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति है, और उत्पाद्य वर्ग में शेष सभी पात्र जिनको कल्पना लेखक अपनी ओर से करता है और उन्हे अपने प्रयोजन के अनुरूप नाम चरित्र आदि का जामा पहनाता है। इस वर्गीकरण का महत्व यो है कि प्रख्यात वर्ग के पात्र पाठको की अनुभूति के अधिक निकट होते हैं अतः उनके चरित्र चित्रण को अपनी अलग विशेषताएँ है जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

जहाँ 'प्रख्यात' पात्रो का कहानी में प्रयोग इसलिए होता है कि उनसे सम्बद्ध किसी कथानक को अभिव्यक्ति द्वारा पाठक के मन में स्वय उन पात्रो के चरित्र की किसी विशेषता से पाठको को अधिक विशदता से परिचय कराया जाय अथवा कथानक से प्रकट होने वाले किसी भाव विशेष से पाठको के मन में और अधिक गहरी अनुभूति जगाई जाय, वहाँ 'उत्पाद्य' पात्रो का सृष्टि का उद्देश्य यह होता है कि पाठक द्वारा दी हुई परिस्थितियो में वह कल्पित पात्रो को प्रतिक्रिया द्वारा पाठको को मानव-जन की प्रवृत्तियो का परिचय दे या उनके सम्बन्ध में किसी भाव विशेष अथवा सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन आदि करे। 'प्रख्यात' पात्रो के प्रयोग से जहाँ लेखक के हाथ काफी हद तक बध जाते हैं वहाँ उत्पाद्य वर्ग के पात्रो की कहानियो मे लेखक को अधिक स्वतन्त्रता रहती है। इसीलिए यदि केवल कथानक की दृष्टि से ही कहानी (नही) लिखी जाय तो

ख्यात पात्रों वाली अर्थात् ऐतिहासिक इतिवृत्त वाली कहानी लिखना अधिक कठिन है और विशेष कौशल की अपेक्षा रखता है ।

उसी प्रकार, जहाँ ऐतिहासिक पात्रों की कहानियों में चरित्र का बहुत सा मसाला लेखक को पहले से मिल जाता है वहाँ उत्पाद्य पात्रो वाली कहानियो के पात्रो का निर्माण लेखक को अपनी ओर से करना पड़ता है अतः लेखक की अनुभूति अधिक गहरी होनी आवश्यक है, नही तो कहानी तो बन जायगी पर उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा कठिन होगी ।

श्रेणीगत भेद—मानव जीवन जिन वर्गो मे सदा से बँटा आया है वे वर्ग इस युग मे अनेक प्रभावो के कारण काफी स्पष्ट हो चले हैं ; शायद यही कारण है कि उन्हे समाप्त करने की माँग इसी युग में तीव्रतम है । समाजवाद की भाषा में इन वर्गों को निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग और उदात्त वर्ग कहते हैं । अधिक विवरणो के समय इन्ही तीनो का आवश्यकतानुसार मिश्रण कर लिया जाता है, जैसे निम्न मध्यम, उच्च मध्यम वर्ग आदि । आधुनिक युग मे अधिकाशतः मध्यम वर्ग की खोखलाहट का काफी चित्रण हुआ है । हम अपने विवेचन को इन्ही सीमाओ मे आबद्ध नही रखना चाहते । किन्तु वर्गीकरण के समय इस मूलभूत विषमता को आँखो से ओझल भी नही होने देना चाहते अपितु यही कहेगे कि पात्रो के वर्गीकरण का यह एक अत्यन्त मौलिक आधार है । प्रेमचन्द की 'नशा' कहानी इस वर्गीकरण की पारस्परिक विषमता का जाज्वल्यमान उदाहरण है । स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक वर्ग की विशेषताओ का चित्रण भिन्न भिन्न कहानीकारो ने काफी स्पष्टता से किया है ।

सामान्य और लोकोत्तर—पात्रो के वर्गीकरण के आधारों में से एक अन्य आधार काफी महत्त्वपूर्ण है और वह है 'सामान्य' और 'लोकोत्तर' सम्बन्धी । प्राचीन और नवीन कहानियो के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से यह भेद अत्यन्त प्रासङ्गिक है । 'आदर्श' और 'यथार्थ' वाले वर्ग के समान इसका सम्बन्ध भी जीवन के एक दृष्टिकोण से है । इस दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ-साथ यह वर्गीकरण क्रमशः अपना महत्त्व खोता जा रहा है । तत्त्वो के विचार से इसका सीधा लगाव कथानक से है ।

'लोकोत्तर' पात्र अतिमानवी पात्र होते हैं । वे या तो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि किसी कोटि मे होते हैं अथवा मानव होते हुए भी अतिमानवी गुणो या अवगुणो से सम्पन्न रहते हैं । मानवो और पशु-पक्षियों जैसे अन्य जीवधारियो के रहन सहन, आचार-विचार आदि के नियत स्टैन्डर्ड के अन्तर्गत इनका

विधान नही आता । सामान्य विचार से इनके कार्य कलापों में एक प्रकार की अविश्वमनीयता रहती है ।

इसके अतिरिक्त सभी पात्र सामान्य कोटि के होते है जिनके सुख-दुःख, हर्ष विषाद, आचार विचार, कार्य-कलाप ऐसे ही होते हैं जो मानव सुलभ या अन्य जीवधारियो के दृष्टिकोण से सम्भव या सम्भाव्य होते है ।

कभी-कभी प्रख्यात लोकोत्तर पात्रो को सामान्य पात्रो के रूप में और सामान्य पात्रो को लोकोत्तर पात्रो के व्यक्तित्व से सम्पन्न चित्रित किया जाता है । जैसे 'इन्द्र' को एक विशिष्ट अधिपति के रूप में या इस ससार में किसी पात्र को महामानव आदि के रूप में देखना । इन अवस्थाओ में इन पात्रो को उसी कोटि में गिनना चाहिये जिस कोटि में उन्हे कहानी में चित्रित किया गया है ।

लोकोत्तर पात्रों का विकास—साहित्य में लोकोत्तर पात्रों और इतिवृत्तों का विधान इस कारण हुआ कि लोगो को मनुष्य से परे ईश्वर के अवतारों, अथवा देवी देवताओ एवं भूत-प्रेतो आदि में अखण्ड विश्वास था । और 'यदा यदा हि धर्मस्य' वाले गीता के प्रसिद्ध श्लोक के अनुसार ससार के समस्त लोग अपने अपने ऊपर आई हुई विपत्तियो का, जिन पर उनका कुछ बस नही चलता, निराकरण करने के लिए किसी न किसी अति मानव का आश्रय ले लिया करते थे । इस प्रकार ऐसे लोकोत्तर पात्र प्रायः आदर्श ही बनकर आया करते थे । बाद में स्वयं ऐसे लोकोत्तर पात्रो की कल्पना भी की जाने लगी जो सकट का कारण बने, जैसे समुद्र मन्थन के दानव । ये दानव किसी न किसी रूप में बाद के कथा-साहित्य में भी अनवरत प्रवेश पागए; और सत और असत् का संघर्ष ही इन दो अति मानवी शक्तियों के बीच के सघर्ष तक ही सीमित रह गया । रायायण इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है । इसमें जहाँ राम को अतिमानव के रूप में चित्रित किया गया है वहाँ रावण को मानव दुर्लभ शक्ति के रूप में बताया गया है जिसने प्रकृति की सब शक्तियो, जिन्हे हिन्दू समाज में देवी-देवता माना गया है यथा वायु कुबेर, इन्द्र आदि को वशवद कर लिया था । मानव-तत्व इस सघर्ष मे गौण होगया, नल नील, वानर, ऋषि-मुनि, जनक, दशरथ आदि । यह प्रक्रिया ससार के समस्त साहित्यो में दृष्टिगोचर होती है ।

सामान्य पात्रों का उदय और विकास—मनुष्य में ज्यों-ज्यो भौतिक ज्ञान का आधिपत्य हुआ अलक्ष्यता की ओर से मनुष्य उदासीन होता गया । उसे ऐसी बातो पर विश्वास नही रहा जो उसकी साधारण समझ से बाहर है । इसके साथ ही साथ वैज्ञानिक विकास के द्वारा मानव में क्रमशः मानव की सत्ता पर ही अधिकाधिक विश्वास होता गया और उसके सुख-दुख भाव-अभावो पर ही

उसका ध्यान अधिक केन्द्रित होता गया। उसे अपने अन्दर विराटता के दर्शन होने लगे, उसके लिए उसने कहीं जाने की आवश्यकता नहीं समझी। इस प्रकार लोकोत्तर ह्रास तथा 'सामान्य' पात्रो का उदय और विकास हुआ।

पचतन्त्रकाल इस उदय का सक्रान्ति काल है। जहाँ प्राचीन काल के कथा-साहित्य में लोकोत्तर पात्रो की प्रमुखता तथा सामान्य पात्रो की गौणता थी, वहाँ इस युग के साहित्य में सामान्य पात्रो का अधिक विकास और लोकोत्तर पात्रो का ह्रास देखा जाता है।

इसी प्रवृत्ति के अनुसार यदि प्राचीनता के मोह के कारण लेखक अपनी कहानियो में लोकोत्तर पात्रो का प्रवेश कराता है तो वे किसी न किसी रूप में सामान्य पात्रो के अनुकूल ही होते हैं। श्री जैनेन्द्र की 'भद्रबाहु' नामक कहानी में चरमावस्था मे तपस्वी भद्रबाहु (पार्थिव) की सेवा के निमित्त स्वर्गाधिपति इन्द्र (लोकोत्तर) का स्वर्ग से प्रस्थान करना सामान्य पात्रो की इस दुर्धर्ष विनय का एक सुन्दर उदाहरण है। यह प्रवृत्ति आधुनिक साहित्य की मूलभुत प्रवृत्तियो में से है।

सामान्य पात्रों का क्षेत्र : साधारण और विशिष्टः—'सामान्य' पात्रो का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इनमे अपने आप में अनेक वर्ग, अथच सैकड़ो हजारो भेद हो सकते है, क्योकि जिस प्रकार प्रत्येक मानव की आकृति दूसरे मानव से भिन्न होती है उसी प्रकार उसका स्वभाव और चारित्रिक विशेषताएँ भी अलग होती हैं। किन्तु इस आधार पर सामान्य पात्रो का वर्गीकरण न आवश्यक ही है न सम्भव ही। हाँ इन्ही में से पात्रो के भेद किए जा सकते हैं जो काफी वैज्ञानिक प्रतीत होते है : एक तो साधारण कोटि के मनुष्य होते हैं जिनका योगक्षेम, हर्ष-विषाद, आशा आकाक्षा, आदि मनोवृत्तियाँ औसतन सभी मनुष्यो में पाई जाने वाली मनोवृत्तियो जैसी और जितनी होती हैं किन्तु सब मिलाकर ये औसत मानव से कम या अधिक नही जान पड़ते। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें यही मनोवृत्तियाँ—या इनमें से एक या अधिक मनोवृत्तियाँ विशेष मात्रा में पाई जाती हैं जिससे वे व्यक्ति अपने आप मे विशिष्ट जान पड़ते हैं। इनमें से भी कुछ मनोविकार या मनोराग की अतिशयता किसी पात्र में पाई जाती हैं जिससे ये व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट जान पड़ते हैं। इनमें से भी कुछ मनोविकार या मनोराग अत्यन्त स्थूल हैं लोभ, क्रोध, हास्य, करुणा, क्षमा, वीरता, कायरपन, औदार्य, चिड़चिड़ापन, आदि जिनमें से किसी मनोराग की अतिशयता किसी पात्र मे पाई जाती है, और इस आधार पर ये पात्र अपना विशिष्ट व्यक्तित्व बना लेते हैं, और कुछ विशेषताएँ ऐसी होती है जिन्हे

मनोराग या मनोभाव के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। पर जो पात्र विशेष की विशेषता के अन्तर्गत आती हैं और जिन्हे सनक (idiosyncracy) कहा जा सकता है, जैसे सर्दी में भी छाता लेकर घूमने जाना, पूरी सिगरेट न पीकर अधजली सिगरेट पीना, खाना खाते समय बिल्ली के बच्चे को पास में बिठाना, बोलते बोलते हकलाना या किसी सखुन-तकिए का प्रयोग करना, बोलते बोलते कान पर पेन्सिल चढा लेना या चश्मे को नाक से नीचे उतार कर एक विशेष मुद्रा से देखना आदि आदि।

इस दूसरी कोटि के पात्र, चाहे उनमें किसी मनोराग की अतिशयता हो, चाहे उनकी अपनी सनक हो, कथा साहित्य में सजीवता लाते हैं और उसमें उच्च कोटि की कला का सम्पादन करते हैं। अच्छे उपन्यासो में तो इस प्रकार के प्रोटो टाइप (prototype) पात्र प्रायः मिलते हैं और एक नही, अनेक कहानी के छोटे प्राङ्गण में भी इनका प्रवेश निषिद्ध नहीं है अपितु स्वागतार्ह है। सच तो यह कि अस्वाभाविकता के कोष से बच कर ऐसे पात्रों की सृष्टि करने में एक उच्च कोटि की भावानुभूति और पर्यवेक्षण की अपेक्षा होती है और अच्छे लेखक ही ऐसी सृष्टि कर सकते है। इस प्रकार एक ही ऐसा पात्र कहानी-कार में रोचकता लाने के लिए पर्याप्त है। विश्व की इस विशाल रङ्गस्थली पर पग पग पर प्रकृष्ट जाति की विशेषताओ वाले ऐसे 'प्रतीक' पात्र मिल सकते है जो अपने आप में ही एक कहानी या उपन्यास होते हैं। लेखकों को चाहिए कि वे आँखें खोलकर अपने आसपास देखें और ऐसे सजीव उपन्यासों का अन्वेषण करके अपने साहित्य को समृद्ध बनावें। डिकन्स, हार्डी आदि अंग्रेजी लेखकों की रचनाओ में ऐसे पात्र भूरि-भूरि मिलेंगे और ऐसे ही पात्र उन रचनाओ की अमरता का कारण बन गए हैं।

पात्रों के चरित्र का परिवर्तन या परावर्तन—कहानी में पात्रों के चरित्र के परिवर्तन या परावर्तित रूप का प्रश्न भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसके अनेक रूप है—

(१) एक या अनेक पात्रों के चरित्र का अथवा उसकी किसी एक या अधिक विशेषता का कहानी के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में बदल जाना।

(२) एक ही वस्तु के प्रसङ्ग में भिन्न-भिन्न पात्रों के भिन्न भिन्न दृष्टिकोण अथवा एक ही परिस्थिति में भिन्न-भिन्न पात्रो की भिन्न भिन्न प्रक्रिया।

(३) अनेक परिस्थितियों में एक ही पात्र का व्यक्तित्व।

(४) पात्र या पात्रों की विशेषताओ का क्रमिक उद्घाटन।

साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि कहानी के छोटे दायरे में

चरित्र के परिवर्तन की गुञ्जाइश नही है। यह कुछ हद तक सही है किन्तु यह प्रत्येक अवस्था में सही नही है। यहाँ उक्त चारो परिस्थितियो के प्रसङ्ग में इस प्रश्न की जाँच करना आवश्यक है।

(१) कहानी के पात्रो की संख्या थोडी होती है अतः उनका स्वभाव बदल जाना कुछ अधिक कठिन नही जान पडता। किन्तु कहानी का दायरा कुछ इतना सक्षिप्त होता है कि जिस प्रकार वह किसी भी पात्र की सारी विशेषताओ को भी नही दिखा सकती, उसी प्रकार उस या दो विशेषताओ में कोई मौलिक परिवर्त्तन आगया हो इसके दिखाने का भार भी स्वीकार नही कर सकती। क्योकि पात्र का चरित्र एक प्रकार से उस पात्र की नीव है। उसमें तब तक कोई परिवर्त्तन नही होता जब तक कोई ऐसी घटना घटित न हो जाय जो उस पर बहुत गहरा प्रभाव डालने वाली हो। उस घटना की सम्पूर्ण ग्राहकता, उसकी प्रभावोत्पादक शक्ति का सम्पादन करने के लिए कहानी से अधिक विशाल कैनवस की आवश्यकता है। किन्तु जो कहानियाँ इसलिए लिखी जाती है कि उनमें घटनाओ के घात-प्रतिघात से चारित्रिक विकास का भवन तैयार किया जाय उनमें इस प्रकार का नियम कठोरता पूर्वक लागू नही किया जा सकता। ऐसी अनेक कहानियाँ मिलेंगी जिनके कथानक ने उनके पात्रो के चरित्र की सम्पूर्ण गति-विधि बदल दी है। यह प्रश्न अलग है कि चरित्र का ऐसा परिवर्त्तन तात्कालिक है अथवा स्थायी। कहानी के लिए तो यह परिवर्त्तन स्थिर है, विशेष कर जबकि इसकी अवस्थिति कहानी के अन्त या उपान्त में हो। प्रेमचन्दजी की "बड़े घर की बेटी" का नाम इस प्रसङ्ग में ले सकते हैं। यद्यपि आनन्दी ने अपने चरित्र की जिस विशेषता के द्वारा डूबते घर को बचाया उस विशेषता का अंकुर उसमें पहले ही से था जैसा कि लेखक का दिया हुआ शीर्षक और अन्त में उसका यह कहाना कि "बड़े घर की बेटी ऐसी ही होती है" सिद्ध करता है। फिर भी कहानी में उसका संकेत पहले से नही मिलता (यह प्रेमचन्द की कला की उत्कृष्टता का उदाहरण है) और इस प्रकार इसका अन्त में उद्घाटन चारित्रिक परिवर्त्तन का उदाहरण ही मानना चाहिए।

विभिन्न परिस्थितियो में पड़कर एक प्रगतिवादी पात्र के विचार किस प्रकार से प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं, और फिर उसी पात्र की आँखें किस नाटकीय ढङ्ग से खुल जाती हैं, जब एक विशेष परिस्थिति उसके सामने उपस्थित हो जाती है, इसका दिग्दर्शन इसी कृती कलाकार प्रेमचन्द की 'नशा' शीर्षक कहानी में है। अपने प्यारे तोते के उडकर चले जाने पर इन्हीं प्रेमचन्द की 'आत्माराम' नामक कहानी के नायक महादेव सुनार की क्या से क्या दशा हो जाती है यह

दर्शनीय है। जिन कहानियों में कोई सामाजिक सुधार की प्रेरणा होती है उनमें यह परिवर्त्तन अक्सर देखा जाता है। यद्यपि कभी-कभी लेखक उसकी पृष्ठभूमि मात्र तैयार करता भी पाया जाता है।

ये सब कहानियाँ इस बात की द्योतक हैं कि यदि परिवर्त्तन हुआ तो वह पात्रो की अपेक्षाकृत कम संख्या में होता है और अधिक महत्वपूर्ण पात्रों के व्यक्तित्व में होता है तथा अधिकतर कथानक-प्रधान कहानियों में देखने को मिलता है।

ऊपर जिन कहानियों के उदाहरण दिए गए वे उस परिवर्तन की ओर इङ्गित करती हैं जो कहानी की घटना के फलस्वरूप होते हैं, याने कहानी के अन्त में परिलक्षित होते हैं। कुछ परिवर्त्तन ऐसे भी होते हैं जो कहानी के प्रारम्भ में ही हो जायँ या कहानी के बीच में हों। पहले का उदाहरण प्रसादजी की कहानी 'देवरथ' है जिसकी नायिका ऐश्वर्य को तिलाञ्जलि देकर जाने किस नूतन विचार-प्रवाह में पडकर शान्ति की खोज में बौद्ध सङ्घ की शरण में आई थी। लेखक नायिका के चरित्र के इस परिवर्त्तन का संकेत कहानी के प्रारम्भ होने से कुछ ही देर बाद दे देता है। इस प्रकार के परिवर्त्तन बडे असाधारण सोद्देश्य और विशेष प्रभावशाली होते हैं और अधिक भावुक कलाकारों की ही कलम के परिणाम हैं। जो व्यक्ति शान्ति की खोज में अपने अमित वैभव को छोडकर बौद्धसंघ में दीक्षित हो और उसे भी वहाँ शान्ति न मिले, ऐसी अवस्था में उसका प्रारम्भिक अवस्था का विचार परिवर्त्तन उस परिवर्तन से अधिक महत्त्व रखता है जो उसे बाद में चलकर किन्हीं अन्य परिस्थितियों से होता जिन्हे कहानी में चित्रित किया गया होता। वैसे शान्ति न मिलने पर सुजाता का विशाल धर्मरथ के पहियो के नीचे अपने आपको डाल देना स्वयं एक अन्य विचार परिवर्तन है किन्तु यह उतना महत्त्व नहीं रखता जितना उसका प्रारम्भिक विचार परिवर्त्तन क्योंकि लेखक को इस पहले के परिवर्त्तन का एक ट्रेजिक याने दुखान्त रूप दिखाना अभीष्ट रहा है; अन्त का विचार परिवर्त्तन तो एक सहज किन्तु आनुषङ्गिक परिणाम या साधन मात्र है। लेखक यह बताना चाहता है कि सुजाता ने बौद्ध संघ में आने का निर्णय लेकर जान या अनजान में जितनी बडी गलती की जिसका मूल्य उसे अपने प्राणो से देना पडा। [यहाँ यह कह देना अप्रासङ्गिक होगा किन्तु इसका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता कि प्रसादजी ऐश्वर्य के पुजारी थे, और प्रकृत ऐश्वर्य की अपेक्षा अलौकिक और अप्रत्यक्ष सुख की कल्पना में चक्कर

लगाना उनके स्वभाव के विपरीत था। यह भी 'देवरथ' कहानी के प्रस्तुत अन्त का अन्तस्थ कारण हो सकता है। इस कारण के अतिरिक्त कि वे बौद्धसघो में घुसी हुई पाखण्ड वृत्ति का पर्दाफाश करना भी चाहते थे। यद्यपि बौद्धधर्म की असलियत के प्रति उनके मन में काफी श्रद्धा थी।]

कहानी के मध्य में भी चरित्र में परिवर्तन हो सकता है। गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी में इस विकास का स्पष्ट परिचय है। जो लहनासिंह किशोरावस्था में, जान या अनजान मे अपनी आन्तरिक प्रेरणा से अथवा केवल कौतूहलवश अमृतसर की उस पापड और बरी की दुकान पर अक्सर आती हुई 'छोकरी' से 'प्यार' करता था वही लहनासिंह कर्तव्य की वेदी पर न केवल प्यार का रूप बदल देता है और 'स्व' की अपेक्षा 'पर' में निवृत्त हो जाता है किन्तु समय पडने पर उस भूतपूर्व प्रेमिका के प्रति विशुद्ध श्रद्धावश उसके पति की रक्षा में अपने प्राणों तक को होम देता है। नायक के हृदय का यह परिवर्तन लाम पर जाने से पहले ही हो गया होगा क्योकि अन्यथा वह अपनी प्रेमिका को 'सूबेदारनी' के रूप में देखकर चौकता नही प्रत्युत उसकी पूरी टोह रखता कि वह कहाँ रहती है और क्या करती है, और यह आदर्श होने के साथ-साथ स्वाभाविक भी है।

(२) चरित्रो की विविधता भी प्रस्तुत प्रसङ्ग का एक रूप है। उपन्यास की अपेक्षा कहानी में इस विविधता को अधिक अवकाश मिलता है क्योकि कहानी में दो समान चरित्रों वाले पात्रों का भार वहन करने की शक्ति नही है। वह तो छोटे से छोटे दायरे में अधिक से अधिक व्यापकता या विविधता दिखाना चाहती है। इस विविधता का परिणाम यह होता है कि एक पात्र के विचार दूसरे पात्र से नही मिलते और फलतः घटना में घात-प्रतिघात चलते हैं। जहाँ सिद्धान्तो का प्रश्न आता है वहाँ भी प्राय: दो पात्र आपस में सहमत नही होते। सिद्धान्तों और कार्यकलापों के इसी सङ्घर्ष के समीकृत रूप का नाम कहानी है। करीब-करीब सारी कहानियों में इस सङ्घर्ष या प्रतिस्पर्द्धा के किसी न किसी रूप के दर्शन मिलेंगे। यह तत्त्व इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इसका आगे अलग से विवेचन किया जा रहा है। यह दुर्योग की बात है कि कहानी कला के मनीषियों का ध्यान इस ओर बिलकुल नही गया है। यहाँ संक्षेप में केवल यही बताना अभीष्ट होगा कि किस प्रकार एक पात्र दूसरे से भिन्न होता है।

पात्रो की यह विभिन्नता, जैसा कि कहा गया है, द्विविध होती है। या तो कोई सिद्धान्त अथवा विचार हो जिस पर जो मत 'क' का हो वह 'ख' के मत से भिन्न हो, या घटना की एक परिस्थिति हो, उस परिस्थिति में जो प्रति-

क्रिया 'क' की हो, उससे 'ख' की प्रतिक्रिया कुछ दूसरी तरह की हो। जहाँ लेखक दो या अधिक विचार धाराओं की असमानता या प्रतिकूलता दिखाना चाहता है वहाँ लेखक ऐसे पात्रो की सृष्टि करता है जो आपस में मत भेद रखते हो, जैसे यदि 'क' नामक पात्र महानिषेध के पक्ष मे है तो 'ख' महानिषेध के व्यक्तिगत अधिकारो पर एक कुठाराघात मानेगा और दोनो अपने-अपने तर्क उपस्थित करेगे। विधवा विवाह की समर्थक किसी कहानी में नायक अन्य पात्रो के विरोध के बावजूद भी अपना विवाह एक विधवा से कर के इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है।

(३) जिस प्रकार एक ही परिस्थिति के प्रति विभिन्न पात्रो की प्रतिक्रिया विभिन्न होती है, उसी प्रकार विभिन्न परिस्थितियो के प्रति एक ही पात्र की प्रतिक्रिया भिन्नरूपा होती है। जैसे सौम्य प्रकृति का पुरुष साधारण अवस्थाओं में शान्त रहता है किन्तु किसी अपात्र पर अत्याचार होते देख कर उसे क्रोध आ सकता है। साधारणतया दान देने म कजूस रायसाहब अनाथालय के प्रतिनिधि मण्डल के लिए समय नही निकाल सकता, किन्तु रायबहादुरी के लोभ मे वाय-सराय से वैल्फेयर फण्ड की स्थापना की घोषणा का एक प्रकाशित सूचना प्राप्त होने पर वह एक लाख का चैक काटने को उसी समय उद्यत हो सकता है। मनुष्य की यह प्रकृति शाश्वत है और कहानी के प्रसङ्ग में इसका अध्ययन बड़ा ही रोचक है। चरित्र की अमुक विशेषता में अमुक स्थल पर अन्तर कसे होगया इस बात की समीक्षा करते समय उसकी मूलभूत परिस्थिति की भली भाँति परीक्षा कर लेनी चाहिए।

(४) चारित्रिक उत्क्रान्ति का एक हल्का रूप वह भी है जहाँ लेखक अपने पात्रो की विशेषताओं का एक साथ उद्घाटन नही करता प्रत्युत् धीरे-धीरे अनुकूल वातावरण का निश्चय करके ही करता है। तात्विक दृष्टि से इस क्रमिक अनावरण की चर्चा यथा प्रसङ्ग ऊपर कर ली गई है। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी जैसे जिस छोटे पात्र भर मे एक चरित्र की सारी विशेषताएँ साधारणतया नही समाई जा सकती, वहाँ उसके एक या दो स्थलों पर किए गए चरित्र-चित्रण को देख कर उस पात्र का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पहि-चानने की चेष्टा करना लेखक के प्रति अन्याय करना है।

नायक और नायिका—नायक कहानी का सूत्रधार और सबसे मुख्य पात्र होता है। कहानीकार का इस पात्र से कुछ विशेष प्रेम होता है इसी से कहानीकार इसकी रचना में अपना विशेष कौशल लगाता है। कहानी की संवे-दना का अधिकांश भाग इसी पर आधारित रहता है।

इस पर आगे विचार करने से पूर्व एक महत्वपूर्ण तात्विक प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए। प्रश्न यह है कि कहानी के थोड़े से अर्थात् दो या तीन पात्रो के ही बीच में एक को प्रमुखता देना क्या कहानी के शेष पात्रो के प्रति अन्याय करना नही है और क्या कहानी मे ऐसा किया जा सकता है, यदि हाँ तो कहाँ तक ? यह समझ लेना चाहिए कि कथा-साहित्य में आदि काल से एक न एक प्रमुख पात्र होता आया है चाहे उस रचना विशेष का दायरा कितना ही छोटा क्यो न हो। उसी पात्र को कथानक का आधार बनाया जाता है और उसी के इर्द गिर्द कहानी के शेष पात्र या कहानी की कथा घूमती है। ऐसी कथा या एवं पात्र नायक के कार्यकलापो, आचार-विचार आदि के अनुकूल या प्रतिकूल चलते है और नायक द्वारा किए जाने वाले मुख्य कार्य की सहायता या विरोध मे उपस्थित होकर किसी न किसी रूप में नायक के उद्देश्य की सिद्धि के साधन होते है। इस प्रकार सभी प्राचीन कथा-साहित्य की गतिविधि का मुख्य प्रयोजन या आधार नायक होता है। बड़ी परिधि के कथा-साहित्य (उदा० उपन्यास) मे आजकल भी ऐसा होता है। इसका कारण साहित्य विशेष की विवशता है अथवा यह एक निश्चित प्रयोजन लिए होता है यह प्रश्न यहाँ असङ्गत होगा। जहाँ तक कहानी का सम्बन्ध है, नायक के महत्व को पूर्णतया अपदस्थ करना तो यद्यपि असङ्गत होगा, फिर भी उसे उतना महत्व कदापि नही दिया जा सकता जो अब तक प्राप्त था। इसके दो कारण है। एक तो यह कि कहानी के छोटे से दायरे मे एक पात्र को दूसरे पात्र से काफी अधिक महत्व देने का अर्थ यह होगा कि कहानी मे कुछ ऐसे पात्रो को स्थान दिया गया है जो पूर्णांश में आवश्यक नही है या फिर कहानी के रचनाकौशल में कही गड़बडी है जिसके अनुसार सभी पात्रो को उनका उचित स्थान नही दिया जा सका है।

दूसरा कारण यह है कि कहानी का टेकनीक या शिल्प निर्माण आजकल कुछ ऐसा होने लगा है कि उसमे एक पात्र को दूसरे पात्र की अपेक्षा प्रमुखता देना आवश्यक नही रहा है। कारण यह कि कहानी के अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिये कहानीकार जिन कुछ पात्रो को चुनता है वे सभी अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं और सब मिलाकर उस उद्देश्य की सिद्धि करते है। लेखक का उद्देश्य यह नही होता कि वह एक नायक के कार्यकलापो का; उसके शौर्य-अशौर्य का अथवा उसकी उदात्तता-अनुदात्तता का विवरण दे और यह सिद्ध करे कि प्रतिकूल परिस्थितियो के होते हुए भी उसने उन पर किस प्रकार विजय पाई। लेखक तो एक वातावरण की सृष्टि करता है और उसके निमित्त कतिपय पात्रों का ही आश्रय लेता है। उनमे से कोई पात्र यदि मुख्य जान पड़े या

उसका शेष पात्रों की अपेक्षा कुछ अधिक महत्व दीख पडे तो यह आकस्मिक ही है।

इतना होते हुए भी, जैसा कहा जा चुका है जो भी पात्र आकस्मात् या लेखक की इच्छा से नायक पद का अधिष्ठान प्राप्त कर लेता है। उसका कहानी में मुख्य स्थान होता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आजकल की कहानियो में प्राचीन कहानियो की अपेक्षा एक विशेष अन्तर दृष्टिगोचर होता है। जहाँ प्राचीन आख्यानो के नायक, धीरोदात्त, धीर-ललित, धीरप्रशान्त अथवा धोरोद्धत हुआ करते थे वहाँ आज की कहानियो के नायको का स्टेण्डर्ड बिल्कुल बदल गया है और उन्हे इस श्रेणी विभाजन के अन्तर्गत रहना पसन्द नही है। प्राचीनो ने इस वर्गीकरण का प्रतिपादन करते समय काव्य या साहित्य सम्बन्धी जो दृष्टिकोण अपने सम्मुख रक्खा था वह अब कालाक्रान्त हो गया है, अतएव आजकल हमारे नायक इनमें से कुछ हो ही यह आवश्यक नही है। आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर आने पर यह हलका सा परिवर्त्तन अनिवार्य था। साधारणतया आजकल के नायक न राजकुल से सम्बन्ध रखते है, न किसी प्रख्यात् इतिवृत्त के सञ्चालक होने के नाते लोकजीवन से दूर होते है। आधुनिक कहानो लेखक उन पात्रो को भी नायक बना सकता है जो पीड़ित और पददलित हो, अशक्त और सहानुभूति के पात्र हो और उन्हे भी जो धूर्त और पाखण्डी हो, दुश्चरित्र और पातकी हो, लोभी अथवा क्रोधी हो, अथवा घृणा एवं निन्दा के पात्र हो। इस पक्ष का अधिक विवेचन करने की आवश्यकता नही है क्योकि यह यथार्थवाद के अन्तर्गत हो चुका है।

नायिका—नायक के साथ ही नायिका का स्थान है। किसी कहानी में नायक के स्थान पर नायिका होती है और नायक का अभाव होता है; किसी कहानी में नायक बिना नायिका के ही कार्य करता है। इसका निर्णय कि कहानी का मुख्य पात्र नायिका हो अथवा नायक, अथवा दोनो ही हो, लेखक अभीष्ट वातावरण तथा उद्देश्य को ध्यान में रखकर तथा कथानक के सूत्रो को भलीभाँति पकड़ लेने पर कुशलतापूर्वक कर लेता है। नायक को भाँति ही नायिका भी आजकल सस्कृत के रीति-शास्त्रीय वर्गीकरण के कटघरे में रहना पसन्द नही करती और न उसके कार्यकलापो अथवा चेष्टाओ की दिशा अनिवार्यतः नायक की ओर उन्मुख ही रहती है। एक प्रकार से वह नायक को सहायता करने के प्रयोजन से होती है। यह भी आवश्यक नही कि नायिका नायक की प्रेमिका अथवा पत्नी हो जैसा कि प्रायः समस्त प्राचीन साहित्य में है। किन्तु ऐसा होना वर्जित भी नही है। प्रेम की अधिक प्रचलित आधुनिक कहानियों में नायिका मुख्यतः नायक की प्रेमिका होती है। किन्तु इसे नियम नहीं मानना

चाहिए, यह तो एक सीमित दायरे या परम्परा या ढर्रा मात्र है। सैद्धान्तिक रूप से नायिका का सम्बन्ध नायक से यह नहीं है। वह उसकी प्रेमिका या पत्नी हो, तो वैसी बनी रह सकती है, किन्तु सिद्धान्ततः वह कहानी के मुख्य पात्रों में से है। और जहाँ नायक हो वहाँ एक प्रकार से नायक के उद्देश्य में प्रकृत या अप्रकृत, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता देने के लिए कथानक की अधिष्ठात्री के रूप में प्रतिष्ठित है। इस अर्थ में वह नायक की कोई अन्य रिश्तेदार जैसे बहिन, भाभी, बुआ मौसी आदि भी हो सकती है मित्र या परिचित भी या विरोधिनी या प्रतिद्वन्दिनी भी। इसी प्रमेय (निष्कर्ष) का प्रतिपक्ष (Corrolary) यह है कि नायका की प्रेमिका अथवा पत्नी कहानी की पात्र होते हुए भी कोई दूसरी स्त्री पात्र नायिका हो सकती है।

कहानी में कथानक के घटाटोप के अन्दर, या किसी अन्य जटिलता के अथवा असाधारण सरलता के कारण कभी-कभी यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि कहानी के पात्रो में से कौन नायक है और स्त्री पात्रो में से कौन नायिका। इस निश्चय का स्थूल आधार यही हो सकता है कि जो पात्र कहानी के उद्देश्य की सिद्धि में अधिकतम सक्रियता अथवा दृढता के साथ कथानक से आबद्ध होकर सहायक हो वही नायक अथवा नायिका के पद के योग्य है। नायक नायिका की इस परिभाषा को ऊपर दी गई 'पात्रो' की परिभाषा के साथ मिलान करने से दोनो का अन्तर प्रकट हो जायगा।

कथोपकथन—शैली वाले प्रकरण में बताया गया है कि कहानी लिखने की अनेक प्रणालियों में से कथोपकथन प्रणाली भी एक है। किन्तु साथ ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कोरे कथोपकथन से सारी कहानी का निर्माण पूर्णतया असम्भव नही तो नितान्त कठिन अवश्य है। इस प्रकार 'कथोपकथन प्रणाली' यदि कही जा सकती है तो वही जिसमें कथोपकथन का प्रयोग अधिक मात्रा में हो।

क्या कथोपकथन कहानी का एक तत्व है ?—इसी विवाद से जुडा हुआ एक प्रश्न है जिसका कहानी-दर्शन में अपना महत्व है। प्रश्न यह है कि 'कथोपकथन' को कहानी का एक तत्व माना जा सकता है या नही। पाश्चात्य समालोचना से प्रभावित आजकल की सारी समीक्षाओं में कथोपकथन को उपन्यास या कहानी का एक तत्व माना जाता है। यह मेरी विनम्र दृष्टि में भ्रामक है। तत्व वह पदार्थ या गुण है जिसके अभाव में किसी वस्तु का निर्माण असम्भव हो। कथोपकथन के लिए ऐसा कहना कि उसके बिना कहानी का निर्माण सम्भव नही है, कथोपकथन को अनावश्यक महत्व देना है। ऐसी कितनी

ही कहानियाँ हो सकती हैं और देखने में आती हैं जिनमें वार्त्तालाप नहीं होता। फिर भी वे कहानी की कसौटी पर खरी उतरती है। सच तो यह है कि ऐसी कहानियाँ अपेक्षाकृत अधिक भावुकता से भरी होती हैं, क्योंकि उनमें विचारो और भावनाओ का प्राबल्य होता है और इस नाते उनका कहानी साहित्य में अपना स्थान है। इस प्रकार यह कहना सत्यता से परे होगा कि कथोपकथन या वार्त्तालाप कहानी का एक तत्त्व होता है। कथोपकथन को तत्त्व मानने वाले विद्वानो को इतना सा सैद्धान्तिक सशोधन कर लेना चाहिए।

कथोपकथन की आवश्यकता—किन्तु इतना होते हुए भी कहानी में बातचीत का जो महत्त्व है उसे कम नही किया जा सकता। जैसा कि हमने शैली वाले प्रकरण में देखा, बातचीत ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के सक्रिय सम्पर्क में आता है। इस प्रकार कथोपकथन न केवल कहानी के सौन्दर्य में वृद्धि करता है अपितु कभी कभी नितान्त आवश्यक हो जाता है। इसके गुणो और विशेषताओ पर शीघ्र ही विचार किया जायगा; फिलहाल यह देखना चाहिए कि वे कौनसी परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण कहानी में कथोपकथन का प्रयोग अनिवार्य न हो तो भी स्पृहणीय होता है। सबसे पहली बात तो यह है कि जिस प्रकार दैनिक जीवन मे जीवित मनुष्य का पता उसके मूक रहकर काम करने से उतना नही चलता जितना उसकी बातचीत से, उसी प्रकार कहानी भी बिना कथोपकथन के जीवित होते हुए भी 'सजीव' नही जान पडती।

यह बात स्वयं कहानी में एक सत्ता का आरोप करते हुए उस पर उसी सफलता के साथ घटाई जा सकती है, जितनी उसके पात्रो पर। जिस प्रकार मूक मनुष्यो के सम्पर्क में रहकर आदमी शीघ्र ही ऊब जाता है उसी प्रकार मूक कहानियो को पढकर पाठक। कभी कभी घटनाओ, विचारो, लेखक के मतों, तथा पात्रों की मानसिक ऊहापोह के घटाटोप के बीच किसी पात्र के मुँह से कहा हुआ एक वाक्य घनमण्डल में विद्युत रेखा के समान रमणीक लगता है। इसके अतिरिक्त जिस बात को लेखक द्वारा सीधे रूप में कहे जाने पर भोडापन नजर आता है या रसभंग का दोष होता है उसे कथोपकथन द्वारा एक विशेष सौन्दर्य के साथ व्यक्त किया जा सकता है। घटनाओ और पात्रो की विशेषताओ के उद्घाटन के लिए कथोपकथन एक अच्छा साधन है। साथ ही कथोपकथन कहानी में गति का सम्पादन करता है। कथोपकथन जहाँ कहानी के जीवन का लक्षण है वहाँ उसके जीवट का भी चिह्न है। कहानी में नाटकीयता के अभाव की अधिकांश में पूर्ति यदि कोई कर सकता है तो वह कथोपकथन

हो। कहानी में कथोपकथन के आंशिक प्रयोग से इसमें दोहरा आकर्षण आजाता है, वह कथोपकथन के कारण नाटक का आनन्द प्रदान करती है और शेष अंश द्वारा उसमें कहानीपन भी रहता है। इन सब बातों के देखने हुए यह कहा जा सकता है कि कहानी में कथोपकथन का प्रयोग न केवल वांछनीय है, किन्तु कुछ हद तक आवश्यक भी है।

कथोपकथन की योग्यताएँ—किन्तु इस प्रयोग की अपनी सीमाएँ हैं। यह साफ है कि किसी भी प्रकार की बातचीत कथोपकथन का वह उद्देश्य पूरा नहीं कर सकती जिसकी उससे आशा की जाती है। सच तो यह है कि उसमें एक विशेष प्रकार के कौशल के सगुम्फन की आवश्यकता है। यदि कथोपकथन में उन बातों का ध्यान नही रक्खा गया तो वह भार स्वरूप हो जाता है।

लाघव—कथोपकथन की सब से आवश्यक विशेषता यह है कि पात्रों द्वारा प्रयुक्त वाक्य अथवा वाक्यांश अति दीर्घ नही होने चाहिए। कथोपकथन का तात्पर्य दो या दो से अधिक के बीच में हुई आपसी बातचीत से है। अतः यह उचित नही है कि एक पात्र दूसरे पात्र के समक्ष जो भी बात कहे वह भाषण जान पड़े। हाँ, यदि लेखक किसी ऐसे पात्र को जान बूझकर रक्खे जो लम्बे-लम्बे वाक्यों के बोलने में रस लेता हो, तब उक्त बन्धन को उस सीमा तक शिथिल किया जा सकता है। किन्तु यह छूट देते समय इस बात की जाँच भली भाँति कर लेनी चाहिए कि यह लेखक की किसी विवशता या असौन्दर्य के कारण है अथवा लेखक की स्वैर वृत्ति के कारण। प्रसाद और प्रेमचन्द के पात्रों की बातचीत इस गुण की पूर्ति करती है।

व्यावहारिकता—कथोपकथन की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें मानव-सुलभ व्यावहारिकता होनी चाहिए। एक पात्र दूसरे पात्र से जो कुछ कहे वह ऐसा ही हो जो उन परिस्थितियों में सम्भव हो। इसी का दूसरा पहलू वक्ता-पात्र के व्यक्तित्व से सीधा और गहरा सम्बन्ध रखता है। लेखक अपने पात्र के मुँह से जो कुछ कहलावे उसमें पात्र के व्यक्तित्व के विपरीत किसी भी प्रकार का स्पष्ट या अस्पष्ट संकेत नही मिलना चाहिए, बल्कि उससे उस पात्र का व्यक्तित्व सम्पूर्णतया झलकना चाहिए, जैसे काँच के पतले प्याले में से उसमें रक्खा पेय।

चमत्कार-पूर्णता—किन्तु जहाँ वार्तालाप में सभी प्रकार की स्वाभाविकता होनी चाहिए वहाँ यह नितान्त आवश्यक है कि उसमें कुछ चमत्कार भी हो। चमत्कार-विहीन बात स्वाभाविक होते हुए भी स्पृहणीय नही होती। उदाहरणार्थ—यदि कोई पात्र चलते-फिरते इस प्रकार की बातचीत करने लगेगा,

जो उसके दैनिक जीवन से पूर्णरूपेण सम्बद्ध हो किन्तु उसका कथानक आदि से कोई सम्बन्ध न हो (जैसे, 'मुझे प्यास लगी है') तब उसकी बातचीत में कथोपकथन का गुण न आ सकेगा। कथोपकथन की यह अन्तर्देशीय विशिष्टता द्विविध है। एक तो उससे कहानी के कथानक अथवा चरित्र चित्रण का अनिवार्य सम्बन्ध होना चाहिए, और दूसरे उसमें आत्मगत चमत्कार या कान्ति होनी चाहिए। कथानक और कथोपकथन में सम्बन्ध है या नही इस बात का पता इससे लग सकता है कि वक्ता-पात्र ने अपनी बातचीत में कोई ऐसी बात कही है अथवा नही जिससे कहानी की घटना के आगे बढ़ने में अथवा उसके उद्‌घाटन में सहायता मिलती हो।

यही बात चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में कही जा सकती है। पात्र जो कुछ कहेगा उससे उसके मस्तिष्क की गतिविधि का, उसके व्यक्तित्व का, उसके गुणों तथा अवगुणों का पता निश्चित रूप से लगेगा। सच तो यह है कि कथोपकथन की यह एक आवश्यक विशेषता है कि उससे चरित्र चित्रण में सीधे या तिरछे रूप में सहायता मिलती है। इसकी तीन चार दिशाओं का संकेत ऊपर कर दिया गया है।

स्थानीय वातावरण—इनके अतिरिक्त कपोकथन कभी २ स्थानीय वातावरण की झाकी देते चलते हैं जो सीधे रूप में कथानक या चरित्र चित्रण से सम्बन्ध नही रखता। ऐसे कथोपकथन प्रायः प्रत्येक कहानी में मिलेंगे। कहना चाहिए कि यह तो कथोपकथन की विवशता है। क्यों कि यदि बात चीत में कोई भी बात नही हो तो उपस्थित वातावरण की झाँकी तो होगी ही।

स्वाभाविकता—स्वाभाविकता के सम्बन्ध में एक बात और निवेदन करना है। पात्रो के बात चीत के सम्बन्ध में लेखक प्रायः भूल जाते हैं कि उनकी कहानियो के पात्र न केवल उस कहानी के पात्र ही हैं, अपितु उस कहानी के कथानक के अतिरिक्त शेष जगत के जीते-जागते प्राणी भी हैं। इसी तरह उनकी बातचीत केवल कहानी के साथ सम्बन्धित विशेष प्रकरण की ही बातचोत नही है प्रत्युत् वह साधारण तौर पर कही जाने वाली बातचीत का ही एक अंश है। यह बात कि वह हमारी कहानी में एक पात्र के रूप में सहायक होगया है अथवा उसकी बातचीत उसके द्वारा कही जाने वाली सैंकड़ों बातों में होते हुए भी हमारी कहानी के लिए एक विशेष महत्व की है, केवल एक आकस्मिक बात मात्र है। आपकी कहानी के लिए वह अपना शेष व्यक्तित्व अपनी शेष बातचीत का सहज और जाना-पहिचाना हुआ

सहज और कम से कम कहे तो अपने प्रस्तुत वातावरण के साथ उसका सम्बन्ध नहीं छोड सकता। इसी का नाम स्वाभाविकता है। देखिए उषादेवी मित्रा की कहानी 'समझौता' के पात्रों की बातचीत का एक अंश—

"परेश उत्तर देना न चाहता था; परन्तु फिर भी कहना पडा—यदि नग्न सत्य को तुम मुझसे सुनना चाहती हो तो सुनो। कहता था कि जब स्त्रियाँ स्वयं ही अपनी लज्जा को विवस्त्र करना चाहती हैं, अपनी नग्नता विश्व को दिखलाना चाहती हैं तो विश्व यदि सहज कौतुक से, विस्मय से उस ओर एक बार देखले, तो हम उसे अपराधी कैसे कह सकते हैं? अपना सम्मान तो अपने हाथ में है। 'भौजी—पालक का साग बडे मजे का बना है, और थोडा देना।' "

आधुनिक स्त्रियों की लज्जा हीनता के प्रसङ्ग में पालक का साग कैसा मजेदार बना है! थोडा और लीजिए, उसी कहानी में:—

"कहना केवल इतना है कि प्रकृति के राज्य में न जाने कितने अनमेल होते रहते हैं, किन्तु अपने निपुण वर से वह उन अनमेल को मेल कर देती है। करती है यह सब प्रकृति ही, पुरुष नहीं। 'अच्छा जल्दी आना बहन।'

उषादेवीजी के कथोपकथन की यह विशेषता कैसी हृदय को छूकर निकल जाती है। किन्तु यदि सारी कहानी में पालक का साग ही साग बिखर जाय तो कैसी किरकिरी होगी।

सरलता की सीमा—कथोपकथन का सरल होना अपने आप में एक बडा गुण है। यद्यपि उसे एक अनिवार्य विशेषता नहीं माना जा सकता। ऐसा मानने में दो बाधाएँ हैं। एक तो लेखक का पूर्वाग्रह जिसके कारण वह पात्र से मन में आवे जैसी अर्थात् इच्छानुसार कठिन या सरल भाषा का निरंकुशरूपेण प्रयोग कराता है और उसकी इस इच्छा शक्ति का विशिष्ट क्षेत्रों में सम्मान है जैसे जयशङ्करप्रसाद, चण्डीप्रसाद हृदयेश और इलाचन्द्र जोशी के संवाद।

दूसरी बाधा प्रसङ्ग विशेष अथवा पात्र विशेष की है, कभी-कभी प्रसङ्ग ऐसा ही आ जाता है जिसमें संवादों की भाषा सरल हो ही नही सकती, या शब्दों में सरल रहने पर भी भावो में जटिल हो जाती हैं; उसी प्रकार पात्र विशेष को सरल भाषा में कोई आनन्द नही आता। यहाँ नियम के रूप में इतना ही कहा जा सकता है कि यदि संवादो की भाषा सरल होते हुए भी चमत्कारपूर्ण बनाई जा सके तो उसे चक्करदार या जटिल बनाना कोई बुद्धिमानी नही है।

शिष्टता का प्रश्न—बात-चीत का शिष्ट होना भी एक विवादास्पद विषय है। आदर्शरूप में इसे ग्राह्य माना जा सकता है, किन्तु यथार्थवादियो का आग्रह है कि यदि कोई पात्र जान बूझकर या अनजान में स्वभाववश अशिष्ट

भाषा का प्रयोग करे तो कहानी में उसको कैसे टाला जा सकता है ?

उनके मत में ऐसा करना न केवल यथार्थ से अवाञ्छनीय पलायन करना होगा, अपितु इससे पात्र की चारित्रिक विशेषताओं के सम्यक् उद्घाटन या आवश्यक उद्घाटन में भी बाधा पड़ती है। तथ्यरूप में ये दोनो आपत्तियाँ वैध हैं, किन्तु साहित्य के सर्वमान्य आदर्श को ध्यान में रखते हुए किसी भी अवस्था में बातचीत आदि में अशिष्ट भाषा का प्रयोग वर्ज्य ही माना जायगा। इसीसे अश्क जैसे यथार्थवादी कलाकार ऐसे स्थलों पर केवल यह कहकर सन्तोष कर लेते हैं कि अमुक पात्र ने अशिष्ट भाषा का प्रयोग किया। इतना संकेत काफी है।

अन्य गुण—कथोपकथन के आनुषङ्गिक अथवा तात्कालिक गुण में बौद्धिकता की अपेक्षा भावनात्मकता का अधिक प्रयोग, मनोरञ्जकता और क्रमबद्धता को लिया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होना कि लेखक पात्र की बातचीत के ब्याज से पाठक को उपदेश दे रहा है कहानी के अधिकांश गुण को नष्ट कर देता है। अतः उपदेश वृत्ति को कथोपकथन से सदैव हटाना चाहिए। जहाँ सुधार अथवा परिहार का संकेत देना हो वहाँ यह काम बड़े कौशल और रूपकात्मक तरीके से करना श्रेयस्कर रहता है। कथोपकथन मानवी मनोभावों के उकसाने का एक अत्यन्त श्रेष्ठ साधन है। अतएव इसका उपयोग इसी रूप में करना चाहिए जिससे पात्रों की मानसिक भावनाओं का उद्वेग, विकास और प्रशमन होता चले। यह स्वाभाविक है कि दो पात्रों की बातचीत का क्रम एक दूसरे के उत्तर प्रत्युत्तर के समान चलता है। कभी-कभी इसका अपवाद भी देखने को मिलता है। इसकी दो या तीन अवस्थाएँ हैं। जब दो या अधिक पात्र अपनी-अपनी बात अलग-अलग कह रहे हैं। यद्यपि उन सबका सम्बन्ध एक ही समान सूत्र से हो; दूसरे, जब असावधानी अथवा मानसिक विकृति के कारण अथवा परिहास आदि के उद्देश्य से स्वेच्छा पूर्वक एक पात्र दूसरे पात्र से असम्बद्ध अथवा अपूर्ण बातचीत करे; और तीसरे जब बातचीत में क्रम हो तो सही, पर इतना विरल कि दीख न पड़े। इन तीनों ही अपवादों से कथोपकथन की सैद्धान्तिक क्रम बद्धता की अनिवार्यता में कोई अन्तर नहीं आता। इसीके आगे यह कहा जा सकता है कि कहानी के शेष भाग का औत्सुक्य (Suspense) गुण, कथोपकथन के एक निजी रूप में रहना चाहिए। एक पात्र की बात की प्रतिक्रिया दूसरे पात्र के मन पर क्या होती है और वह उसका क्या उत्तर देता है इसकी जिज्ञासा पाठक को बराबर रहनी चाहिए। साथ ही दूसरे पात्र का उत्तर ऐसा होना चाहिए जिसकी अधिकांश पाठक आशा न कर सकें।

यह ठीक है कि कभी कभी ऐसे अटपटे, अधूरे अथवा असम्बद्ध वाक्य खटकने लगते है क्यो कि उनमें वह प्रभाव नही होता जो साधारणतया अन्य कहानियो में अथवा दैनिक जीवन के प्रसगों में पाया जाता है। जैनेन्द्र की कहानियो के वार्त्तालापो में यह दोष प्रायः पाया जाता है यद्यपि उनकी अपनी शैली के अनुसार इसे दोष मानना चाहिए उनके साथ वैसा ही न्याय करना होगा जैसा शाइलॉक के साथ पोर्शिया ने किया था।

कथोपकथन कब और कहाँ ?—यहाँ एक व्यावहारिक प्रश्न उठ सकता कि कथोपकथन का प्रयोग कब अर्थात कहानी के किस प्रकार के स्थलो में किया जा सकता है। यह कहना तो कदाचित अनावश्यक है कि इसके लिए कहानो के अमुक-अमुक वर्गीकृत स्थलो जैसे प्रारम्भ, विकास, चरम और अन्त में से किन्ही को नियत कर देना न सम्भव है न समीचीन। किन्तु यह कहा जा सकता है कि साधारणतया प्रारम्भ एवं अन्त के स्थलो पर कथोपकथन का प्रयोग कहानी में चमत्कार ला देता है। ऐसे अवसरो पर यह बराबर ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कथोपकथन काफी सजीव हो जैसे प्रसादजी की कहानियो में, न कि शिथिल जैसे विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियो में। प्रारम्भ के स्थान पर वार्तालाप के प्रयोग के उदाहरण इससे पूर्व के प्रकरण में दिए जा चुके हैं। यहाँ देखिये, कहानी के ठीक अन्त में वार्तालापो के प्रयोग ने कहानी को कितना मार्मिक बना दिया है।

"क्या कहा था ?—थोड़ी सी ही होगी अपने लिए रख छोड़ी थी।"

"ठीक तो है। लकड़ी सब चिर गई है। केवल एक कुन्दा शेष है। के.........व.........ल।" —भगवतीप्रसाद वाजपेयी 'सूखी लकडी'

"रामू की माँ ने घबड़ा कर कहा—अरी क्या हुआ री। महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माँजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गई।"

—भगवतीचरण वर्मा 'प्रायश्चित'

"मोहन ने उठ कर नमस्कार किया। "आप यहाँ ?" शास्त्रिणीजी ने प्रश्न किया।

"जी हाँ !" मोहन ने नम्रता से उत्तर दिया—"यहाँ सहायक हूँ"। शास्त्रिणी जी उद्धत भाव से हँसी। उपदेश के स्वर में बोलीं—"आप गलत रास्ते पर थे।"

—निराला 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी'

इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि प्रारम्भ और अन्त के स्थानों पर कथोपकथन का प्रयोग किया जाना ही चाहिए। वैसे बिना इसके भी अच्छी कहानियाँ लिखी जा सकती हैं और लिखी जाती रही हैं। मन्तव्य यही है कि इन स्थलों

पर भी कथोपकथन का प्रयोग सुन्दर किया जा सकता है और शेष स्थानों की अपेक्षा इस शैली का कुछ अधिक महत्व है।

किन्तु कहानी के विकास और चरम की अवस्था के लिए यह कहना असम्भव सा है कि इनमें कथोपकथन का प्रयोग कब और किस अवस्था में किया जाय। वस्तुतः यह लेखक पर ही छोड़ देने की बात है कि वह कथोपकथन का प्रयोग कहाँ कहाँ करे ताकि उसकी रचना में सौन्दर्य सम्पादन किया जा सके। हाँ इस सम्बन्ध में चार पाँच बातें सकेत रूप में कही जा सकती हैं। जहाँ लेखक लोकभय के कारण अपने कथानक अथवा चरित्राकन को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का स्वय उत्तरदायित्व नही लेना चाहता। कहानी कला की नई मान्यताओ के अनुरूप वहाँ उसे यह काम बरबस कथोपकथन को सौप देना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि यों तो कहानी में कथोपकथनो के स्थलो की सूक्ष्म जाँच करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रयोग वही पर किया जाता है जहाँ इसकी आवश्यकता अनिवार्य रूप से अनुभव होने लगे और जब ऐतिहासिक अथवा अन्य किसी शैली से काम नही चलाया जा सके। उस समय ऐसा लगता है मानो पात्र को बोले बिना रहा नही गया हो और यदि नही बोलता तो कहानी में कुछ कमी अवश्य रह जाती। तीसरी बात यह है कि कहानी के बीच में कथोपकथन का प्रयोग वहाँ होता हैं जहाँ लेखक किसी डिटेल अर्थात् विस्तार या विशेष विवरण में जाना चाहे। चौथी बात यह कि नाट्य शास्त्र के अनुसार रस का परिपाक अधिकतर कथोपकथन के द्वारा ही हो सकता है; विशेषकर क्रोध आदि का अभिज्ञान बातचीत से ही सम्भव है, अतएव लेखक की दृष्टि में कहानी के जिस स्थल में मार्मिकता होती है वहाँ या तो वह अत्यन्त अंतर्मुख हो जाता है और साकेतिक रूपकात्मक, अथवा रहस्यमयी भाषा का प्रयोग करने लगता है, अथवा अत्यन्त बहिर्मुख हो उठता है जिसका एक मात्र प्रमाण कथोपकथन ही है। वह इस अवस्था के मध्यम मार्ग अर्थात् साधारण ऐतिहासिक आदि शैली के प्रयोग से सतुष्ट नही हो पाता। "तेरी कुड़माई होगई?" "धत्" "तेरी कुडमाई होगई ??" "देखते नही, यह रेशमी कढ़ा हुआ सालू ?" इस शैली में जो चमत्कार है वह अन्य किसी शैली में कहाँ ? तभी इस शैली के समाप्त होते ही कहानी का किशोर नायक रास्ते में कइयो से टक्कर खाए बिना घर नही पहुँचता।

इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि कथोपकथन एक नितान्त स्वाभाविक स्थिति का परिचायक हैं, अतएव जहाँ लेखक वातावरण को अत्यन्त स्वाभाविक निकटवर्ती और सहज विश्वसनीय बनाना चाहता है वहाँ वह कथोपकथन का आश्रय लेता है।

उद्देश्य और अन्य तत्वों से सम्बन्ध—कथोपकथन का उद्देश्य कथोपकथन ही है, उसी प्रकार जिस प्रकार कहानी का उद्देश्य कहानी ही। यह बात दूसरी है कि इस उद्देश्य के साथ ही साथ कथानक और चरित्र-चित्रण की अभिव्यक्ति भी हो जाती है (और होनी चाहिए) और स्वाभाविक वातावरण का निर्माण भी हो जाता है। इस प्रसङ्ग में ऊपर की पङ्क्तियों में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

कथोपकथन का कहानी के उद्देश्य तथा वातावरण के अतिरिक्त शेष तत्वों से क्या सम्बन्ध है इसकी विवेचना भी अधिकांश में भिन्न-भिन्न तत्वों के प्रकरण में की जा चुकी है। वातावरण के साथ कथोपकथन का सम्बन्ध इतना ही है कि यह वातावरण को सजीव बनाने में सहायक होता है और उसका एक हूबहू खाका खींच देता है। इस अर्थ में यह शेष किसी भी तत्व से आगे है। किन्तु यह कहना कि वातावरण के अनुकूल ही कथोपकथन का निर्माण करना चाहिए एक प्रकार से अतिशयोक्ति है, क्योंकि कभी-कभी वातावरण के विपरीत भी बातचीत होती हुई देखी जाती है और कभी-कभी पात्रों की चाल ढाल, स्तर आदि तक को कथोपकथन की भाषा आदि के गठन के समय आँखों से ओझल करना पड़ता है जैसे प्रसादजी की कहानियों में—जान बूझकर अथवा विवशता के कारण। कहानी के उद्देश्य के साथ कथोपकथन का गहरा सम्बन्ध इस अर्थ में है कि कहानीकार अन्ततोगत्वा जो कुछ कहना चाहता है उसकी अधिकांश में पूर्ति उसके पात्रों की बातचीत कर देती है। 'उसने कहा था' का सारा आधार ही एक विशेष समय की बातचीत है और यही उसके नाम से ध्वनित होता है। किन्तु इसे अविच्छेद्य नियम मानकर चलने से भ्रान्ति होने की आशङ्का है। हाँ यदि कथोपकथन हुए भी और अत्यन्त शिथिल, वहाँ कहानीकार के उद्देश्य की पूर्ति में बाधा पड़ने की सम्भावना है।

जहाँ तक कथोपकथन का भाषा से सम्बन्ध है, एक बात विशेष रूप से निवेद्य है। कथोपकथन को प्रस्तुत करते समय लेखक दो या तीन प्रणालियों का आश्रय लेता है। या तो केवल वह सम्बन्धित पात्र का नाम या संकेत देकर उसकी बातचीत रख देता है। जैसे—"कालिन्दी ने कहा—सुनन्दा, खाने वाले हम चार है। खाना हो गया?" दूसरे, लेखक केवल नाम देने से सन्तुष्ट नहीं होता, अपितु वक्ता पात्र की मानसिक भावना का हलका या गम्भीर प्रतिबिम्ब भी देता चलता है। जैसे—"कालिन्दी ने झेंपकर कहा—मेरा मतलब, काफी नहीं है।" "सुनन्दा ने धीमे से कहा—अचार लेते जाओ।" इसी प्रकार—"मैंने

कुछ खिन्न सा हो कर दूसरी ओर देखते हुए कहा—जान पडता है तुम्हे मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नही हुई। उसने एकाएक चौंक कर कहा—हूँ ?" और तीसरी प्रणाली वह है जहाँ लेखक न तो पात्र की मुद्रा आदि के विषय में कुछ कहे और न उसका नाम आदि ही तत्काल बताये। "बन्दी ?" "क्या है ?" "सोने दो।" "मुक्त होना चाहते हो ?" "अभी नही, नीद खुलने पर।" यह वार्तालाप ठीक ऐसा ही है। प्रसादजी की कहानियो में ऐसे वार्तालापो की शृङ्खलाओ पर शृङ्खलाएँ मिलती हैं और वे बडी प्रभावोत्पादक होती हैं। इनसे जहाँ वक्ता के नाम के रहस्य गर्भित होने के कारण कौतूहल की भाषा बनी रहती है वहाँ पाठक को अनावश्यक विवरणो से मुक्त रहने का सन्तोष भी रहता है।

इस विषय में यह प्रश्न हो सकता है कि कब लेखक को पात्र की मुद्रा आदि के सम्बन्ध में कहना चाहिए और कब बिना उसके कहे ही काम चल सकता है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जहाँ लेखक यह समझे कि उसके मुद्रा आदि के लिए संकेत देने के बिना उसकी बातचीत की भावना पूरी तौर पर प्रकट न हो सकेगी वहाँ ऐसे संकेतो में बातचीत का प्रभाव प्रबल हो जाता है और एक दृष्टि से ये संकेत कथोपकथन के ही अङ्ग हैं फिर भी ऐसे सकेत अनावश्यक होने पर भार स्वरूप भी जान पडते हैं। यह लेखक का आत्म-विश्वास ही है जिसने प्रसादजी की लेखनी से 'आकाशदीप' की उक्त बातचीत बिना किसी मुद्रात्मक सकेत के ही कहलवाई है।

कथोपकथन के भेद—कथोपकथन नाटक का आधार है और इस आधार पर संस्कृत के प्राचीन लक्षण साहित्य में कथोपकथन की विस्तृत व्याख्या की गई है। वहाँ पर इसके तीन मुख्य भेद माने गए हैं, यथा श्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य। श्राव्य बातचीत वह है जो नाटक के सभी श्रोताओ को सुनाई जा सके, अश्राव्य बातचीत वह है जहाँ पात्र कुछ कहता तो है किन्तु वह श्रोताओ अथवा शेष पात्रो को सुना कर नही कहता। इसमें 'स्वगत कथन' आ जाता है। नियत श्राव्य वह कथोपकथन है जिसको मञ्च पर आए हुए पात्रो में से कुछेक को अथवा सीमित पात्र-सख्या को सुनाया जाय। इनके अतिरिक्त नेपथ्य भाषण आदि भी होते हैं। प्रकट है कि इस वर्गीकरण को हूबहू कहानी पर नहीं घटाया जा सकता क्योंकि कहानी एक श्रव्य (और आजकल पाठ्य) काव्य की श्रेणी में आती है जब कि नाटक दृश्य काव्य की श्रेणी में। फिर भी इन सब भेदो को कहानी में स्वीकार करने में कोई महत्वपूर्ण बाधा नही है। आज कल की कहानियों में भी अधिकाश बातचीत श्राव्य ही होती है; पात्रो के स्वगत भाषण भी चलते है (हाँ इन्हे आधुनिक नाटक में अवश्य वर्ज्य माना गया है) और नियत

श्राव्य कथोपकथन भी होते है जहाँ एक या दो पात्रो के समक्ष अपनी बात कहे। अलौकिक कथानक वाली कहानियों में कभी-कभी नेपथ्य-भाषण भी होते ही हैं चाहे आलोचक कितना ही यथार्थवादी क्यों न बने।

कथोपकथन की विशेष अवस्थाएँ—यहाँ हम उन अवस्थाओं पर विचार करेंगे जो कथोपकथन की सामान्य विशेषताओं के अन्तर्गत नही आती किन्तु जो अपने विशिष्ट रूप के कारण विशेष महत्त्व रखती हैं। प्रश्न हो सकता है कि जिन कहानियों की शैली आत्मकथा शैली है उनमें बात चीत का क्या स्थान है ? स्वाभाविक है कि सारी कहानी के प्रथम पुरुष में कहे जाने के कारण उसमें आने वाली दो या अधिक पात्रों की बातचीत और विशेष रूप से कहानी के वक्ता "मैं" द्वारा कही गई बातचीत में एक प्रकार की विलक्षणता आने की सम्भावना रहती है। जहाँ यह वक्ता-पात्र सतर्कता से अपने चरित्र आदि के विषय में कोई ऐसी जानकारी नही देगा जिसकी आशा एक तटस्थ दर्शक अथवा लेखक से की जा सकती है वहाँ यह भी सम्भव है कि शेष पात्रों और कथानक की गतिविधि के विषय में उसका दृष्टिकोण सर्वदा निष्पक्ष न हो। इस प्रकार ऐसी कहानियों में उस गुण के अभाव की आशङ्का की जा सकती है जो ऐतिहासिक शैली की कहानियों में अनायास पाया जाता है। किन्तु यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि आत्मकथा शैली की कहानियों का नायक जिससे हमारा अभिप्राय 'मैं" से है प्रायः लेखक के अपने चरित्र अथवा प्रकृति व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब लिए नही रहता अर्थात् उसके स्थान पर लेखक की कल्पना नहीं की जा सकती। यह बात और है कि परोक्ष रूप से लेखक का व्यक्तित्व इस वक्ता पात्र में परिलक्षित होता है। और यह अन्य किसी भी पात्र के साथ हो सकता है।

कभी-कभी बात का एक विशेष रूप देखने को मिलता है। वर्गीकरण के लिए इसे अप्रकृत या 'विकृत' रूप कह सकते हैं। जैसे कोई पात्र अन्यथा कितना ही सत्यवादी क्यों न हो किसी विशेष परिस्थिति में पड़कर मिथ्याचार करता है, या कोई निर्बल पात्र मौका देखकर शूरवीरता की बातें बघारता है। बातचीत के प्रस्तुत रूप के अनुसार वक्ता पात्र का चरित्र बातचीत के अनुसार ही माना जाना चाहिए। सब मिलाकर ऐसा चरित्र चित्रण अयथार्थवादी ही माना जायगा। यही बात बातचीत के दौरान में आये हुये व्यङ्गो और हंसी—मजाक आदि के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। इसी प्रकार किसी पात्र की प्रकृत बातचीत से किसी दूसरे पात्र के विषय में भ्रम होने की काफी सम्भावना है। इसी सिद्धान्त के अनुसार कथानक के सूत्रों को पकड़ने में पाठक को काफी गलती हो सकती है। 'मुद्रा-राक्षस' नामक नाटक में चाणक्य और चन्द्रगुप्त की

कृत्रिम युद्ध-योजना से ओत प्रोत सारी बात-चीत इसका एक ऐतिहासिक प्रमाण है। कहने का अर्थ यह कि बात-चीत के जरिए पात्रों के चरित्र, वातावरण, कथानक आदि को हृदयङ्गम करते समय इस बात को दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहिये।

वातावरण—हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने लिखा है कि कहानी में न चरित्र के विकास की गुञ्जायश है न कथानक के फैलाव की, उसमें तो केवल एक ही बात अपेक्षित है और वह है वातावरण की सम्यक् अभिव्यक्ति। उन्होंने यह भी लिखा है कि कहानी का यह तत्त्व इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके होते हुए कथानक, चरित्र-चित्रण आदि में से किसी को भी कहानी का तत्त्व नहीं माना जा सकता। माननीय विद्वान का यह कथन अत्युक्तिपूर्ण होते हुए भी एक प्रकार से सही है। उनका अभिप्राय यह है कि कहानी में इसका निर्माण इस-लिए नहीं होता कि उसके द्वारा पात्रों अथवा पात्रों के वर्गों की विशेषताओं का खाका खींचा जाय, अथवा कथानक का ताना बाना बुनकर पाठक के हृदय पर तत्सम्बन्धी आतङ्क स्थापित किया जाय या उसका मनोरञ्जन किया जाय। इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' के समान उसका उद्देश्य भाषा-शैली सम्बन्धी चुलबुलाहट की बानगी पेश करना तो कतई नहीं है। कहानी तो एक संक्षिप्त किन्तु मार्मिक प्रभाव में विश्वास रखती है और उसी के प्रक्षेपण के लिए उसका जन्म होता है। यह प्रभाव वह जिस तत्त्व—और वह तत्त्व केवल एक है—के जरिए डालती है उसका नाम है वातावरण। कहानी में चाहे अमुक चरित्र अनायास उभर आया हो, चाहे कथानक का कोई सूत्र और स्वयं वह उपेक्षित प्रभाव बन गया हो: उसका क्रीड़ास्थल, पात्र अथवा रङ्गमञ्च वातावरण ही है। कहानी वह नाटक है जिसमें यह रङ्गमञ्च ही एक मुख्य विषय है; वह एक ऐसा स्थल है जहाँ से एक खास रङ्ग की अनेक छोटी पिचकारियाँ छूट रही हों और पात्र यदि अभिनय के लिए सन्नद्ध होकर वहाँ आता है तो आमूलचूल उसमें सराबोर हो जाता है। और यह रङ्ग इतना उज्ज्वल है कि उसे उसमें अधिकाधिक आनन्द आता है। "ज्यों-ज्यों बूडै स्यामरँग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय।" श्रोतागण भी इस रंगस्थली को देखकर इतने भाव विभोर हो उठते हैं कि वे इस रासलीला के अंग बन जाते हैं। यह वह मुरली की तान है जिसको सुन-कर गोकुल की किशोरियाँ अपना अपनत्व भूल जाती हैं। "अपुनपौ आपुन ही बिसरायो।" यह वह गिरधर गोपाल है जिसके लिए मीरा अपने शारीरिक धर्मों का अनुशासन उतार कर फेंक चुकी थी और कहती फिरती थी, "मेरे तो

गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।"

प्रकट है कि कहानी के प्रभाव का आधार होने के कारण वातावरण की महत्ता स्वयसिद्ध है। सच बात तो यह है कि प्रभाव के साथ वातावरण यों जुड़ा हुआ है जैसे घोघे के साथ उसका घर और कभी-कभी दोनो में भेद करने में कठिन बुद्धि परीक्षा हो जाती है। किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से दोनो को भिन्न-भिन्न मानना चाहिये।

वातावरण क्या है ?—वातावरण के लिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन कौन से उपकरण उसका निर्माण करते है; वे उपकरण सदा प्रस्तुत कहानी में निहित रहते है अथवा उनकी कल्पना कही बाहर से करनी पडती है; वे उपकरण कहानी विशेष के अनुसार बदलते रहते है अथवा कोई सर्वमान्य उपकरण निर्धारित किए जा सकते हैं; तथा ऐसे सर्वमान्य उपकरण भी सभी कहानियो में समान रूप से पाए जाते हैं अथवा वे उपकरण कहानी विशेष के साथ घटते बढते रहते हैं। यहाँ तक कि यह भी कहना कठिन है कि अमुक पदार्थ वातावरण का उपकरण है अथवा उपादान, अर्थात् उसका आधारभूत तत्व है अथवा उसका प्रस्तुत या बाह्य अङ्ग या रूप। 'प्रभाव' के साथ उसका सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है ही। इन प्रश्नो को देखते हुए वातावरण कहानी का सबसे जटिल तत्व है।

कुछ परिभाषाएँ— वातावरण की परिभाषा एक स्थल पर यो की गई है :—
"हमारा जीवन देशकाल और युग विशेष की परिस्थितियो से सम्बन्धित एवं प्रभावित होता है। पात्र भी जीवन के प्रतीक हैं, अतः वे भी इनसे अछूते नही रह सकते। कहानी में देशकाल और परिस्थितियों के सङ्कलन या समीकरण को शब्द चित्रो के सहारे मूर्त्त रूप देना ही वातावरण प्रस्तुत करना है।"

वातावरण के सम्बन्ध में एक दूसरे विद्वान लेखक ने लिखा है :—

"वातावरण वस्तु विन्यास के वर्णन से किसी कहानी में पूर्णता प्राप्त नहीं करता वह तो बडी कथा का कार्य है, परन्तु कहानी की समस्त गति की परख के लिए एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि निर्माण करना उसका प्रमुख कार्य है। सारी कहानी के अभिज्ञान के लिए उसके निर्माण की बड़ी आवश्यकता है। उसका अस्तित्व बहुत बार चिन्तना के सजग स्पन्दन से बनना है और बहुत बार भाव जगत की एकतानता से उदय होता है।"

एक 'जिज्ञासु' महाशय ने वातावरण को लेकर अपने आपको शब्दो के मकडी जाल में स्वेच्छा पूर्वक फँसा लिया है। कहानियों का वर्गीकरण करते हुए वे लिखते हैं :—

"जिस कहानी में लेखक का प्रधान उद्देश्य किसी भावना तथा अनुभूति से ओतप्रोत होकर किसी सुन्दर वातावरण की सृष्टि करना होता है उसे वातावरण प्रधान कहानी कहते हैं। वातावरण प्रधान कहानी के लिए आगे चलकर एक उचित परिपार्श्व की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की कहानियो में उस बाह्य वातावरण तथा परिपार्श्व के साथ मानव जीवन को किसी एक मुख्य भावना की प्रधानता होनी आवश्यक है। उसी मुख्य भावना को लेकर बाह्य वातावरण तथा परिपार्श्व के सहारे कहानी का विकास होता है।"

सुधी लेखक आगे कहते हैं :—

"कला की दृष्टि से इन कहानियो का स्थान ऊँचा है, क्योंकि यहाँ लेखक को अपनी कला निपुणता के प्रदर्शन के लिए अच्छा अवसर हाथ लग जाता है। लेखक कवित्वपूर्ण, लाक्षणिक सौन्दर्य से परिपूर्ण यथार्थवादी, आदर्शवादी और भावनात्मकता (भावनात्मक ?) मे से किसी भी वातावरण का चित्रण कर सकता है। उसे कहानी की व्यञ्जना में कला की कलर ब्योत की भी पूर्ण स्वतन्त्रता है।"

इन तीनो परिभाषाओ अथवा विवरणो की भाषा तो भिन्न-भिन्न है ही इनके अर्थों में भी एक विचित्र भिन्नता है। पिछले दो विवरणो की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो लेखक अपनी बात का अनुभव तो बहुत सबलता पूर्वक कर रहे हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति बहुत शिथिल एव अशक्त है, उसमे एक प्रकार की अकुलाहट सी है जैसे वे कुछ कहना चाहते हुए भी कह नही पारहे हो। इसके लिए स्वय लेखक उत्तरदायी है अथवा वे किसी बाहरी विवशता के कारण ऐसा कर रहे है, इसका परिचय आगे की समीक्षा से मिल जायगा, फिलहाल यहाँ इनके मन्तव्य को समझने की चेष्टा करनी चाहिए।

दूसरी परिभाषा के अनुसार वातावरण कहानी का कोई आन्तरिक गुण है, जबकि तीसरे लेखक के अनुसार वातावरण का आरोप ऊपर से होता है और वह बाह्य' होता है। एक के अनुसार वातावरण स्वय एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार करके पाठक को देता है, तो दूसरे के अनुसार कोई भावना अथवा अनुभूति वातावरण का निर्माण करता है। पहले के अनुसार वह मानसिक पृष्ठभूमि भावनात्मक एव चिन्तन प्रधान, दो प्रकार की होती है, जबकि दूसरे के मत से वातावरण के चार रूप होते है, कवित्वपूर्ण, भावात्मक (इन दोनो म अभीष्ट भेद की कल्पना कठिन है) यथार्थवादी और आदर्शवादी। पहले के सिद्धान्त से ऐसी ध्वनि निकलती है कि वातावरण अपने आप में एक पूर्ण, एक निरपेक्ष तत्त्व है और उसका अस्तित्व सभी कहानियो में समान रूप से होता है

(उसके रूप में अन्तर आ सकता है मात्रा में नही) जबकि दूसरे महाशय ठीक इसके विपरीत मानते हैं कि वातावरण के अतिरिक्त एक 'उचित परिपश्वं' की और अधिक अपेक्षा होती है (यह 'परिपाश्वं' शायद प्रथम लेखक के 'मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि' पद से मिलता है) जिसका वातावरण से अङ्गाङ्गी भाव का सम्बन्ध नही है, तथा इसकी मात्रा चित्रण की सफलता की दृष्टि से नही किन्तु कहानीकार के निश्चित प्रयोजन के आधार पर कहानी-विशेष के अनुसार घटती-बढती रहती है अर्थात् लेखक चाहे तो किसी में बातावरण का अश कम और किसी कहानी में अधिक डाल सकता है, यह नही कि वह किसी में कम सफल हो और किसी में अधिक। इसके अतिरिक 'जीवन की किसी एक मुख्य भावना' की भी आवश्यकता होती है।

इन परस्पर विपरीत लक्षणों के होते हुए वातावरण के बारे में किसी भी निर्णय पर पहुँचना सम्भव नही है। वातावरण क्या है इसके विषय में तो इन दोनो लेखको ने सीधे रूप में कुछ भी नही कहा है; जो कुछ कहा गया है वह यही कि वातावरण का निर्माण कैसे होता है, उसका कहानी में क्या स्थान है तथा उसके कितने प्रकार हैं। वातावरण की परिभाषा सबसे पहले वाले लेखक ने की है। वे उसके तीन उपकरण मानते हैं—(१) देश, (२) काल तथा (३) युग विशेष की परिस्थितियाँ। कहानी की भाषा द्वारा इन तीन उपकरणो का अभिज्ञान ही वातावरण है। इस मत में काफी साहसपूर्ण दृढ़ता एवं स्पष्टता है, यद्यपि दूसरे और तीसरे उपकरण का अन्तर यहाँ भी पूर्णरूप से स्पष्ट नही है। कदाचित लेखक ने 'काल' को युग विशेष की परिस्थितियों के उसी अश तक सीमित रक्खा है, जहाँ तक उसका कहानी में प्रयोग हुआ हो, अर्थात् ऋतु, वर्ष, दिन आदि, और युग विशेष की परिस्थितियों में अन्य बातें जैसे रहन सहन, आचार-विचार, संस्कृति, वेशभूषा आदि रक्खी हैं। साधारणतया इनको भी 'काल' के अन्तर्गत ले लिया जाता है।

वातावरण के उपकरण—वातावरण के सम्बन्ध में 'देशकाल' का फार्मूला काफी चलता है। किन्तु मेरी दृष्टि में वातावरण का पूरा परिचय 'देशकाल' से नही मिलता। कहानी के प्रभाव का एक मात्र आधार मेरी समझ में वातावरण ही है और पाठक के मनःपटल पर सारी कहानी केवल देश और काल के रूप में अङ्कित नही रहती, प्रत्युत अन्य कई बातो के रूप में रहती हैं, जिनमें देश और काल सब से अधिक महत्वपूर्ण बातें भी नही हैं। वातावरण कहानी भर को व्याप्त किए रहता है, जैसे कि पृथ्वी को आकाश। शाब्दिक रूप में भी वातावरण कहानी के वातावरण अर्थात् Atmosphere के अलावा न

कुछ है न हो सकता है। जिस प्रकार आकाश के पाँच गुण बताए गए है—शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध, उसी प्रकार कहानी के वातावरण के भी ये उपकरण कहे जा सकते हैं :—

शब्द = भाषा शैली व कथोपकथन।
रूप = कथानक व चरित्र चित्रण।
रस = उद्देश्य।
स्पर्श = देश।
गन्ध = काल।

कथात्मक साहित्य का वातावरण इन सब तत्वों, अर्थात् भाषा-शैली, कथोपकथन, कथानक, चरित्र-चित्रण, उद्देश्य, देश तथा काल इन सबसे मिलकर बनता है और इनके बनने बिगडने पर वातावरण का बनना बिगडना निर्भर है। ज्यो-ज्यों कहानी में इन तत्वों का विकास होता जाता है वैसे-वैसे वातावरण का विकास होता जाता है। चूँकि इसी के आधार पर कहानी के प्रभाव का निर्माण होता है और कहानी में प्रभाव की एकतानता होनी अनिवार्य है, इसी कारण इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि कहानी के कथानक में अन्तर्कथाएँ नही होनी चाहिए, तथा उसमें जटिलता नही आनी चाहिए, कहानी के पात्रों के चरित्र में अधिक परिवर्तन नही होनी चाहिए, कहानी में सङ्कलनत्रय होना चाहिए अर्थात् देश, काल तथा कार्य की एकसूत्रता होनी चाहिए, कहानी का एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए जिसमें हेर फेर की अधिक गुञ्जायश न हो (यहाँ तक कि कुछ लेखकों के अनुसार वह उद्देश्य पूर्व निर्धारित होना चाहिए।) और उसकी भाषा-शैली में एकरूपता होनी चाहिए। उपन्यास में ये सब बन्धन नही हैं। इसी कारण उसका प्रभाव भी उसके वातावरण के अनुरूप एक विस्तृत केनवस पर होता है। कहानी में न केवल ये तत्व अपनी-अपनी सीमा में रहते हैं, अपितु इन्हे कहानी के प्रभाव की सिद्धि के लिए एक दूसरे से सटा रहना पड़ता है, एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान रहना पडता है। तत्वों के परस्पर सम्बन्धों की विस्तृत व्याख्या करते समय प्रत्येक तत्व के प्रकरण में इस बात की पुष्टि की जा चुकी है। इसी से वातावरण प्रत्येक तत्व के साथ भिन्न-भिन्न रूप में जुड़ा हुआ होने पर भी एक समीकृत प्रभाव का निक्षेप करता है। यह आवश्यक नही कि सभी तत्व एक साथ प्रत्येक स्थल पर वातावरण का एक रूप निर्माण करें; तत्व विशेष के साथ-साथ वातावरण के रूप में अन्तर होता रहता है; किन्तु सब मिलाकर कहानी भर का वातावरण एकरूप होता है जिसके खण्ड नहीं किए जा सकते। उपन्यास में ऐसा नहीं

होता, और कहानी तथा उपन्यास का यह अन्तर शाश्वत अन्तर है।

वातावरण का स्वरूप—इस विवेचन से ये निष्कर्ष निकलते है—

(१) वातावरण कहानी का अतिरिक्त गुण है, बाह्य प्रकृति नही।

(२) वातावरण सभी कहानियो में अनिवार्यतः होता है और उसकी मात्रा निर्धारित नही की जा सकती। कहानी-विशेष के अनुसार उसके रूप का आकार-प्रकार में अन्तर हो सकता है। उसी तरह जिस तरह प्राण प्रत्येक जीवित पदार्थ मे होता है (और प्रत्येक प्राणी में केवल एक ही प्राण होता है) हाँ यह सम्भव है कि किसी का प्राण अधिक ओजस्वी, वीयस्व और सबल हो, किसी का प्राण निर्बल, विरल और उदासीन। सबल वातावरण वाली कहानी को वातावरण प्रधान कहानी कहना उतना ही उपहास्य है, जितना सबल प्राण वाले व्यक्ति को प्राण प्रधान या श्वास प्रधान व्यक्ति कहना। जो कहानियां वातावरण प्रधान कही जाती हैं उनके उपकरणो की जाच करने पर विदित होगा कि वहाँ विशेषता का आधार स्वयं वातावरण नही है (क्योंकि वातावरण कोई बाह्य उपकरण या तत्व नही है) किन्तु उनमे से कोई या अनेक उपकरण ही ऐसे बनाए गए है जिनका प्रभाव पाठक पर देर तक पड़ता है।

(३) वातावरण कहानी का एक महत्वपूर्ण तत्व है जो उक्त उपकरणो (अर्थात् कहानी के अन्य तत्वो तथा देशकाल के योग) से बनता है और वह 'प्रभाव' की सिद्धि करता है, अर्थात् उसके द्वारा पाठक पर 'प्रभाव' का अकुर जमता है। वातावरण कहानी के प्रभाव के अतिरिक्त और किसी तत्व अथवा साध्य का साधन नही है, वह स्वयं एक मानसिक पृष्ठभूमि है जो उक्त उपकरणो से तैयार होती है, उसका (प्रभाव को) निर्माण करना इतना अधिक लक्ष्य एवं महत्वपूर्ण नही जितना उसका स्वय का निर्मित होना, क्योकि प्रभाव तो वातावरण का एक अवितर्क्य फल है, यह नही कि वातावरण सबल होते हुए भी प्रभाव निर्बल होजाय अथवा वातावरण अशक्त होने पर भी कहानी का प्रभाव शक्तिशाली हो, वातावरण तो अपना पार्ट अदा करेगा ही, हाँ यह अवश्य देखना होता है कि उसे स्वयं भलीभाँति पालापोसा गया है या नही, उसे स्वयं उचित दीक्षा मिली है या नही।

(४) वातावरण के भेद नियत करना खतरे से खाली नही है। क्योकि वह उक्त सात तत्वो पर निर्भर करता है और उन सातों के अनेक प्रकार हो सकते हैं। इस प्रकार भाषा-शैली के आधार पर वह कवित्वपूर्ण और भावात्मक आदि-आदि भी हो सकता है, पात्रों के आधार पर चिन्तन-प्रधान और छिछला भी, उद्देश्य के आधार पर यथार्थवादी और आदर्शवादी भी, देशकाल के आधार

पर सामाजिक और ऐतिहासिक भी, आदि आदि । इस अर्थ में एक ही कहानी के वातावरण में अनेक गुणों का समावेश हो सकता है । प्रसादजी की किसी एक ही कहानी को भावात्मक, ऐतिहासिक, आदर्शवादी, वातावरण वाली कहानी कह सकते हैं ।

(५) कविता के रस की भाँति वातावरण अपने आप में पूर्ण है किन्तु उसको कहानी से पृथक नहीं किया जा सकता । इसकी सफलता अथवा असफलता का आधार इसके निर्माता तत्त्व ही हैं, कोई अन्य बाहरी पदार्थ नहीं ।

वातावरण की परिभाषा—परिभाषा के रूप में कहा जा सकता है कि कथानक की गतिविधि, पात्रों का व्यक्तित्व, कहानी का देशकाल (अर्थात् वह जिस स्थान पर और जिस समय घटित होती हुई बताई गई है), कहानी की भाषा और शैली तथा कहानीकार के उद्देश्य को पाठक तात्कालिक रूप में अर्थात् कहानी पढ़ते पढ़ते जिस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है उस प्रक्रिया का नाम वातावरण है ।

वातावरण और अन्य तत्त्व—इसी उच्छ्वास के सम्बन्धित स्थलों पर उद्देश्य तथा देश और काल के अतिरिक्त वातावरण के सभी उपकरणों पर काफी विस्तार से विचार किया जा चुका है और प्रत्येक उपकरण का वातावरण से क्या सम्बन्ध है इसकी भी जाँच की जा चुकी है । यहाँ केवल इन शेष तीनों उपकरणों के स्वरूप का ज्ञान कर लेना चाहिए । उद्देश्य स्वयं कहानी का एक तत्व है इसलिए उस पर आगे विचार किया जायगा । संक्षेप में यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि जिस सन्देश को पाठकों तक पहुँचाने के लिए कहानीकार कहानी की रचना करता है वह कहानी का उद्देश्य है । वातावरण का इससे निकट का सम्बन्ध है । लेखक सामान्यतः शेष तत्त्वों के जरिए अलक्षित रूप से अपने उद्देश्य को तो कह ही देता है, कभी कभी लक्षित रूप में भी उसे प्रकट कर देता है, जैसे शीर्षक के रूप में, प्रारम्भिक स्थल में, अन्त की पङ्क्तियों में, अथवा बीच में कहीं । कहानी का वातावरण प्रत्येक अवस्था में लेखक के इसी उद्देश्य के अनुसार बनता है । कभी कभी वातावरण की सृष्टि लेखक के प्रकृत उद्देश्य से कुछ भिन्न प्रतीत होती हैं, किन्तु या तो ऐसा वहाँ होता है जहाँ व्यंग आदि के माध्यम से अपनी बात छिपाकर कहने में या तिरछे रूप में या खलनायक आदि के प्रवेश के द्वारा कहने में अधिक सफलता समझना हो या वहाँ जहाँ रचना स्टैण्डर्ड की न हो ।

देश और काल—देश और काल वातावरण के जाने पहचाने उपकरण हैं । जिस स्थान विशेष, शहर, गाँव, प्रान्त अथवा देश में कहानी की घटना

होती है उसे देश और काल की जिस इकाई में उसका होना बताया गया हो, अर्थात् वर्ष, मास, दिन, घडी, ऋतु, समय आदि उसे काल कहते हैं। ऊपर एक परिभाषा में आई हुई युग विशेष की परिस्थितियाँ भी सामान्यतः काल के ही अन्तर्गत ले ली जाती हैं। जैसे यदि अकबर के काल से सम्बन्धित किसी कहानी में बिजली का प्रयोग दिखाया जाय तो उसे काल सम्बन्धी दोष ही माना जायगा। देश और काल में से दोनो या कोई कल्पित अथवा यथार्थ हो सकते हैं। जैसे "उसने कहा था" की घटनास्थली में अमृतसर का बाजार आदि सभी यथार्थ हैं, शेष तत्व सभी कल्पित।

ऐतिहासिक एवं उपैतिहासिक कहानियो के देशकाल प्रायः यथार्थ ही होते हैं। अन्य कहानियों में 'काल' का यथार्थ होना कोई अर्थ नही रखता क्यो कि उसमें काल का अपना महत्त्व अलग नहीं होता, उसकी अपनी माँग कुछ नही होती, लेखक ही उसे चाहे जिस रूप में रख सकता हैं। अनेक लेखक अपनी कहानी को अधिक लोक सवेद्य बनाने के लिए देश की यथार्थ रख लेते हैं जिससे पाठक के मन में उस स्थान विशेष के विषय में एक विशेष चित्र खिंच जाता है। जहाँ ऐसा नही होता वहाँ भी पाठक देश की कहानी के अनुरूप कल्पना तो करता ही है किन्तु जहाँ ऐसा ही होता है वहाँ पाठक को कहानी का वातावरण ग्रहण करने में काभी सुविधा हो जाती है। स्थानीय वातावरण की कहानियो का महत्त्व इसी कारण होता है कि पाठक जिस स्थान से साधारणतया परिचित है उस स्थान की कल्पना कोई कठिन काम नही है और पाठक कहानी की शेष घटना को उस वातावरण के अभिज्ञान से अधिक सुगमतापूर्वक हृदयङ्गम कर लेता है। ऐतिहासिक कहानियो के अधिक लोकप्रिय होने के कारण उनके देश-काल की यथार्थता ही है। कल्पित देश काल में भी वे ही अधिक सफल होते हैं, जिनको पढते ही पाठक के मन पर उसका पूरा चित्र उतर आए। यह आवश्यक नही है कि इसके लिए "उसने कहा था" अथवा चतुरसेन शास्त्री कृत 'ककडी की कीमत' की जैसी भूमिकाओं आदि के रूप में लम्बे-लम्बे विवरण दिये जायँ। किन्तु जो भी कहा जाय वह सजीव अवश्य होना चाहिए। संक्षिप्तता में वह सजीवता सोने में सोहागे का काम करती है।

देशकाल की इस विधेयात्मक महत्ता के साथ-साथ उसका एक निषेधात्मक महत्त्व भी है। जिस देशकाल का आधार कहानी में बताया गया है उसके मूलतः विरुद्ध कोई भी बात कहानी के वातावरण के अङ्गरूप में कहना कहानी के प्रभाव को क्षीण कर देता है और पाठक को लेखक के प्रति शङ्कालु बना देता है। 'उसने कहा था' में ही नायक का युद्धभूमि में जर्मन लैफ्टिनैण्ट के समक्ष

व्यङ्गपूर्वक यह कहना कि मुझे आज मालूम पडा है कि सिक्ख भी सिगरेट पीते है तथा गधे के सीग होते है, इसका एक अच्छा उदाहरण तो नही प्रमाण है। ऐतिहासिक जैसी कहानियों में इस बात का विशेष ध्यान रखना पडता है कि उनके प्रस्तुत देशकाल के विपरीत कोई बात ऐसी नही कह दी जाय जिसकी जिम्मेवारी लेखक की हो। लेखक चाहे तो ऐसी परस्पर विरोधी बात किसी माध्यम से कहलवा सकता है किन्तु वहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि लेखक स्वयं इसका भागी नही बनना चाहता अर्थात् वह जान-बूझकर कहानी के किसी विशेष मर्म के हित में ऐसा कर रहा है।

प्रकृति चित्रण—देशकाल के अन्वर्गत प्रकृतिवर्णन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकरण आता है जिसको कहानी से बडा प्रेम है। प्रकृति वर्णन थोडे बहुत अश में प्रायः प्रत्येक कहानी में होता है। कभी स्थान विशेष का वर्णन करते समय इसका सम्बन्ध 'देश' से होता है तो कभी ऋतु अथवा मौसम का वर्णन करते समय काल' से। अक्सर दोनो का एक साथ प्रयोग होता है। प्रकृति वर्णन लेखक की भावुकता का परिचायक है। कभो कभी कहानी में यह एकाध स्थल पर ही होता है कभी-कभी अनेक स्थलो पर कभी कभी यह एकाध पंक्तियो में ही समाप्त होजाता है कभी-कभी यह अधिक चलता है। यहाँ यह निर्भीकतापूर्वक कह देना चाहिए कि लम्बे-लम्बे अथवा अधिक स्थलों पर लाए गए प्रकृति चित्रण साधारणतया कहानी के पाठक को प्रिय नही होती। प्रकृति वर्णन हो तो सक्षिप्त कलात्मक और सजीव होने चाहिए। उनमें एक प्रकार की सरस लाक्षणिकता रहनी चाहिए। ऐसा जान पडे कि कहानी के वातावरण को समझने के लिए उनका प्रयोग आवश्यक है। और उनको पढ कर तत्कालीन वातावरण का एक सजीव चित्र उपस्थित होजाय। इस मामले में जो कहानो लेखक हिन्दी कहानी साहित्य के शीर्ष स्थल पर बैठा हिन्दी को गौरवान्वित कर रहा है वह है जय-शङ्कर 'प्रसाद'। वैसे सुन्दर प्रकृति-चित्रण हिन्दी में फिर कभी नही दिखाई दिए। यहाँ हम इस महान प्रकृति-भक्त की कहानियो मे से कुछ उद्धरण देने का लोभ संवरण नही कर सकते। इनमें एक साथ निश्छल रमणीयता' सूक्ष्म पर्य-वेक्षण और मानसी अनुभूतियो के साथ उसका अभूतपूर्व सयोग मिलता है—

(१) "शरदपूर्णिमा थी। कमलापुर के निकलते हुए करारे को गङ्गा-तीन ओर से घेर कर दूध की नदी के समान वह रही थी। मैं अपने मित्र ठाकुर जीवनसिंह के साथ उनके सौध पर बैठा हुआ अपनी उज्ज्वल हँसी में मस्त प्रकृति को देखने में तन्मय हो रहा था। चारों ओर का क्षितिज नक्षत्रो के वन्दन-

बार सा चमकने लगा था। धवल विधु बिम्ब के समीप ही एक छोटी सी चम-कीली तारिका भी आकाशपथ में भ्रमण कर रही थी। वह जैसे चन्द्र को छू लेना चाहती थी। पर छूने नही पाती थी।" —"ग्रामगीत"

(२) "पवन में मादक सुगन्ध और शीतलता थी। लाल पर नाचती हुई लाल-लाल किरणें वृक्षो के अन्तराल से बडी सुहावनी लगती थी। मैं परजाते के सौरभ मे अपने सिर को धीरे धीरे हिलाता हुआ कुछ गुनगुनाता चला जारहा था। —"आँधी"

(३) "सचमुच! कल्पना प्रत्यक्ष हो चली। दक्षिण का आकाश धूसर हो चला—एक दानव ताराओ को निगलने लगा। पक्षियों का कोलाहल बढ़ा अन्तरिक्ष व्याकुल हो उठा। कडकडाहट में सभी आश्रय खोजने लगे; किन्तु मैं कैसे उठता? वह सङ्गीत की ध्वनि समीप आरही थी। वज्र निर्घोष को भेदकर कोई कलेजे से गा रहा था। अन्धकार के साम्राज्य मे तृण, लता, वृक्ष सचराचर कम्पित हो रहे थे।" "आँधी"

(४) "बसन्त की चाँदनी रात अपनी मतवाली उज्ज्वलता में महल के मीनारो और गुम्बदो तथा वृक्षो की छाया में लडखड़ा रही है, अब जैसे सोना चाहती हो। चन्द्रमा पश्चिम में धीरे-धीरे झुक रहा था। रावी की ओर एक सङ्गमरमर की दालान में खाली सेज बिछी थी।" —"दासी"

(५) "आर्द्रा नक्षत्र, आकाश मे काले-काले बादलो की घुमड, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अञ्चल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर तोरण से जयघोष हुआ; भीड में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोर भरता हुआ आगे बढने लगा। प्रभात की हेम किरणो से अनुरञ्जित नन्ही-नन्ही बूँदो का एक झोका स्वर्णमल्लिका के समान बरस पडा। मङ्गल सूचना से जनता ने हर्ष ध्वनि की।" —"पुरस्कार"

संसार की समस्त साहित्य-राशि में प्रकृति ने मानव का सदा साथ दिया है। मनुष्य अपने आपको जैसा अनुभव करता है वैसा ही रूप रंग प्रकृति धारण कर लेती है। प्रकृति के इस आलम्बन रूप का प्रभाव कविता की भाँति कहानी साहित्य पर भी पड़ा है। ऊपर दिए गए प्रकृति-वर्णन के उदाहरणो में इस सिद्धान्त की पुष्टि अनायास हो जायगी।

पाठक पर आतङ्क स्थापित करने के उद्देश्य से किसी भी प्रकार के वातावरण का निर्माण किया जा सकता है किन्तु वही वातावरण स्थायी प्रभाव

वाला होगा जो स्वाभाविक, सरल और मार्मिक है। कथानक के मार्मिक स्थलों की पहचान और उनकी सम्यक अभिव्यक्ति इसका एक श्रेष्ठ साधन है।

उद्देश्य और प्रभाव—वातावरण के साथ एकदम सम्बन्धित होने के कारण उद्देश्य तत्व भी कुछ जटिलताएँ लिए हुए है जिनमें सबसे बडी जटिलता यह है कि 'प्रभाव' के साथ 'उद्देश्य' का क्या सम्बन्ध है तथा उसे तत्व माना जाय या नही। वैसे यह एक ऐसा उपकरण है जिस पर सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत कम विचार हुआ है। इसे तत्व मानने में कोई विशेष आपत्ति नही होनी चाहिए क्योंकि समस्त साहित्य की भांति प्रत्येक कहानी का भी एक उद्देश्य होता है जो मनोरञ्जन से निश्चित रूप से भिन्न होता है और दार्शनिक दृष्टि से इसका अपना महत्त्व होता है। मनोरञ्जन तो उस उद्देश्य या लक्ष्य तक पहुँचने का एक सोपान है, जैसे विकट मार्ग के पथिक के लिए मुरली की कोई मधुर धुन। 'मनोरञ्जन' मार्ग की क्लान्ति को दूर करने के लिए होता है। जिस साहित्य विशेष में यह साधन अर्थात् मनोरञ्जन इतना अनिवार्य हो जितना कहानी में, उस साहित्य के उद्देश्य की महत्ता के विषय में शङ्का नही की जा सकती। दूसरे शब्दों में, यदि कहानी कहानी के रूप मे नही लिखी जाती तो वह कहानी तो नही रहती, इसके अतिरिक्त उससे वह उद्देश्य भी पूरा नही होता जो कहानी लिखने से पूरा होता। और वह उद्देश्य क्या है? वह है किसी स्थायी अथवा आनुषंगिक सत्य की खोज। कहानीकार किसी न किसी तथ्य को या तो पहले रखकर उसे सिद्ध करता है अथवा घटनाओं के आधार पर उसे रस-रूप मे पाठकों को प्रदान करता है।

कहानी में उद्देश्य—यह उद्देश्य, तथ्य अथवा तत्व सार्वभौम अर्थात् सब देशकाल मे लागू होने वाला भी हो सकता है और सीमित अथवा किसी देशकाल व्यक्ति आदि से सम्बद्ध भी। यह तथ्य पात्र विषयक भी हो सकता है और परिस्थिति विषयक भी। जैसे कोई लेखक अपनी कहानी के पात्र के चरित्र के सम्बन्ध में अद्भुत औदार्य एवं त्याग की भावना दिखाकर यह सिद्ध कर सकता है कि मनुष्य मे इस गुण का अस्तित्व है और समय पड़ने पर प्रकट हो सकता है। इसी भाँति कोई लेखक एक ऊँचे पात्र को परिस्थितिवश कोई अकार्य करता हुआ दिखाकर यह बतला सकता है कि मनुष्य कितनी हीन अवस्था को प्राप्त हो सकता है। ऐसे तथ्य प्रायः सार्वभौम होते हैं। दूसरे प्रकार के तथ्य वे होते हैं जिनमें लेखक का उद्देश्य किन्ही विशिष्ट प्रकार के देश, काल अथवा पात्रों के व्यवहारों आदि को आलिखित किया जाय।

श्री चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'ककड़ी की कीमत' में प्राचीन दिल्ली

की शान शौकत एवं उसमें रहने वाले लोगों की रईस प्रवृत्ति का जो मनोरम चित्र खीचा है वह इसी प्रकार का तथ्य प्रदर्शन है। जिन कहानियो में सामाजिक जीवन की कुरीतियो पर व्यग आदि होते हैं वे इसी कोटि की कहानियाँ होती हैं। कभी-कभी इन दोनो प्रकार के तथ्यो में अन्तर करना कठिन हो जाता है कि अमुक तथ्य स्थायी है अथवा अस्थायी; अर्थात् लेखक यह बताना चाहता है कि ऐसे मनुष्य भी होते है और हमारे बीच मे ही साधारणतया रहते है, या यह कहना चाहता है कि इन परिस्थितियो में अमुक व्यक्ति ने अमुक कार्य किया जो इस प्रकार से महत्वपूर्ण है। किन्तु जहा तक उद्देश्य का प्रश्न है, यह कठिनाई कोई वास्तविक कठिनाई नही है, क्योकि यदि यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट न हो कि लेखक का मन्तव्य क्या है तब इसका निर्णय किन्ही पूर्व-निर्धारित मापदण्डो की अपेक्षा पाठक विशेष को ग्राहिका शक्ति पर ही अधिक अवलम्बित रहता है।

उद्देश्य : लेखक का मन्तव्य—इस प्रकार उद्देश्य वह तत्व है जिससे लेखक का कहानी लिखने का मन्तव्य प्रकट हो। बालको की कहानियो मे यह केवल मनोविनोद तथा कौतूहल तक ही सीमित रह सकता है, किन्ही कहानिय में शिक्षा भी दी जा सकती है। दूसरी कहानियो में यथार्थ अथवा आदर्श क चित्रण; पात्रो की प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियो के प्राबल्य अथवा जडता का दिग्दर्शन, समस्या का चित्रण, सामूहिक अथवा व्यक्तिगत जीवन की झाँकियाँ, प्रेम, दया, क्षमा, शौर्य, क्रूरता, क्रोध, शालीनता, तितिक्षा, त्याग, भावुकता, स्वार्थ, अहकार, वहशीपन, आलस्य, प्रमाद आदि अनेक मनोभावो में से किन्ही का चित्रण; किसी सामाजिक कुरीति पर व्यग एव उसके निवारण की चेष्टा आदि आदि उद्देश्य हो सकते हैं। किन्ही कहानियो में शिक्षा का सकेत बहुत हल्का होता है जैसे 'बड़े घर की बेटी' में; किन्ही में यह संकेत बिल्कुल अप्रकट रहता है जैसे 'उसने कहा था' में, और कही काफी स्पष्ट होता है। दूसरे शब्दो में उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनो होता है।

जयशङ्कर प्रसाद की कहानियों में उद्देश्य कही भी प्रकट नही होता, उसकी कल्पना करनी पडती है, कही-कही उसका आरोप तक करना पडता है। आदर्श रूप में, वह उद्देश्य जितना अधिक साकेतिक हो उतना ही अच्छा। श्री गुलाबराय ने दस-पाँच कहानियो के उदाहरण देकर बताया है कि आधुनिक कहानियों का उद्देश्य किसी न किसी मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करना होता है। वे लिखते हैं—

"प्रायः ऐसा होता है कि कोई घटना किसी मनोवैज्ञानिक सत्य का सुझाव उत्पन्न कर देती है और फिर कलाकार उस घटना का उन घटनावलियो को कुछ वास्तविकता और कुछ कल्पना के आधार पर साज सम्हाल कर ऐसा रूप दे देता है कि वह मनोवैज्ञानिक सत्य अपने आप व्यक्त हो जाय या झलकने लगे।"

उद्देश्य और प्रभाव एव सिद्धान्त—उद्देश्य से जुड़े हुए दो पारिभाषिक शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—(१) प्रभाव या सवेदना और (२) सिद्धान्त अथवा दृष्टिकोण। स्थूल दृष्टि से देखने पर इनमें अन्तर प्रतीत होता है किन्तु है वास्तव में ये सब एक ही शब्द के समानार्थक। कहानी की घटना, उसके पात्रो की गति-विधि, आदि वातावरण के उपकरणो द्वारा पाठक के मन पर जो छाप पड़ती है वह 'प्रभाव' है। ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होगा कि यह प्रभाव उद्देश्य से अधिक भिन्न नही है। लेखक जो चाहेगा वही तो पाठक पर प्रभाव पड़ेगा। यह बात और है कि अपनी शैली की किसी खोट के कारण उसमें वह पूरी तरह सफल नही हो पावे या इसमें कोई गलती रह जाय। दूसरे शब्दो में लेखक के दृष्टिकोण से उद्देश्य और प्रभाव एक ही हुआ। किसी मनोवैज्ञानिक सत्य के उद्-घाटन को उद्देश्य बनाकर लिखी जाने वाली कहानी का सम्पूर्ण प्रभाव पाठक पर उस मनोवैज्ञानिक सत्य के अतिरिक्त और कुछ नही पड़ सकता। इस निर्वचन मे कदाचित एक बाधा आ सकती है कि किसी-किसी कहानी के उद्देश्य एक से अधिक हो सकते है, किन्तु उसका प्रभाव तो एक ही होगा ; उस अवस्था मे दोनो की सगति कैसे बैठ सकती है ? इसका उत्तर यह है कि चाहे उद्देश्य हों, किन्तु वे उद्देश्य एक दूसरे के परस्पर विरोधी नही होगे, समपक्षी अथवा पूरक ही हो सकते ह। उदाहरणार्थ एक ही कहानी का उद्देश्य समाज सुधार भी हो सकता है, उसके किसी पात्र के चरित्र की उज्ज्वलता प्रकट करना भी, उसी में कोई मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करना आदि भी; किन्तु यह नही हो सकता कि जो सत्य लेखक ने रक्खा हो उसी को उसी कहानी में असत्य सिद्ध कर दिया जाय।

हाँ, दो पक्षो में सघर्ष, विरोध अथवा वैषम्य हो सकता हे किन्तु प्रत्येक अवस्था में उस विरोध से जो स्थिति उत्पन्न होगी वह लेखक के उद्देश्य के अनुकूल ही होगी। इस प्रकार अनेक उद्देश्यो वाली कहानी का भी एक ही प्रभाव पड़ सकना असम्भव नही, बल्कि पूर्ण सम्भव है, यहा तक कि अनिवार्य है।

यही बात 'सिद्धान्त' के विषय मे कही जा सकती है। लेखक कहानी लिखते समय चाहे यथार्थवादी दृष्टिकोण रक्खे अथवा आदर्शवादी अथवा आदर्शो-

मैं इस तत्व गणना का सूत्रपात किया उन पाश्चात्य समालोचको ने भी इसे आँखो से ओझल कर दिया है। इसी व्यापक औदास्य के भय से मुझे 'सङ्घर्ष' को कहानी का तत्व घोषित करने से पूर्व दो से भी अधिक बार सोचना पड़ा है। मैंने इस दृष्टिकोण से जो भी कहानियाँ मेरे दृष्टिपथ में आई, (जिनमें यह कहने की आवश्यता नही कि ससार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ भी है) उन सबकी एक बार फिर सूक्ष्म रूप से जाँच की और यह पाया कि उन सब में इस तत्व के बीज विद्यमान हैं। इस प्रकार मैं यह बात निस्सङ्कोच रूप से कहने की स्थिति में हूँ कि सङ्घर्ष कहानी का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

यह कहा जा सकता है कि सङ्घर्ष के अस्तित्व को यदि कहानी में स्वीकार किया भी जाय तो उसे कथानक के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह तत्व न केवल कथानक को बल्कि शेष सभी तत्वो को सीधे रूप मे प्रभावित करता है। जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट होगा, कथानक तो इसके बिना शून्य है ही, भाषा-शैली, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण तथा उद्देश्य सभी में इसकी अमिट छाप है। वास्तव में इसके बिना कहानी कहानी नही रह जाती। सङ्घर्ष से ही कहानी का कहानीपन प्रारम्भ होता है और उसके अन्त से इसकी समाप्ति। इस व्यवस्था में अत्युक्ति की रत्ती भर भी गुञ्जायश नही है।

कहानी में इसके अस्तित्व का संकेत आचार्य छविनाथ त्रिपाठी ने किया है, किन्तु डरते डरते। वे लिखते हैं—

"कथानक में तीव्रतम स्थिति (क्लाइमैक्स) की कल्पना सङ्घर्ष की उपस्थिति को अनिवार्य मानकर की गई है।"

नाटको की कथावस्तु के सोपानो का पाश्चात्य और पौर्वात्य दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करते समय इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि पाश्चात्य नाटको की रचना का मूलाधार 'सङ्घर्ष' है और यहाँ के नाटको की रचना का मूलाधार 'अभीष्ट सिद्धि'। कदाचित् यही कारण है कि भारतीय समालोचनाओ में कथा में भी सङ्घर्ष तत्व की स्थिति को स्वीकार नही किया जाता है। किन्तु एक तो कहानी का जो आधुनिक तन्त्र है उसका श्रेय पाश्चात्य साहित्य को ही प्राप्त है, और दूसरी, 'अभीष्ट सिद्धि' वाले तत्व से सञ्चालित समस्त भारतीय कथा साहित्य में भी सघर्ष तत्व की स्थिति को अस्वीकार नही किया जा सकता।

सङ्घर्ष का मौलिक स्वरूप—कहानी में सघर्ष तत्व के स्वरूप के सम्बन्ध में गलतफहमी होने की आशङ्का है। इसलिए इस पर विस्तृत रूप से विचार

करना आवश्यक है। प्रायः प्रत्येक कहानी में कथानक की भूमिका के रूप में लेखक एक प्रकार का वातावरण निर्माण करता है। इसमें लेखक जिस स्थिति का चित्रण करता है वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (डायलक्टिक मैटीरियलिस्म) के शब्दो में 'स्थिति' (थीसिस) कही जा सकती है। थोड़ी ही दूर जाने पर एक प्रकार की बाधा या रुकावट आती है और वातावरण की गति एव दिशा में परिवर्तन आता दिखाई पड़ता है। यही से सघर्ष या प्रतिस्थिति (एण्टिथीसिस) का सूत्रपात होता है। कभी-कभी 'स्थिति' का अस्तित्व बहुत सूक्ष्म होता है और प्रारम्भ ही से सघर्ष तत्व दिखाई दे जाता है। जैसे उषादेवी मित्रा की कहानी 'समझौता' के प्रारम्भ में—

"इक्कीस वर्षीया कुसुम जब जीवन से समझौता करने बैठी, तब वह घबरा उठी।"

"वह उस दिन अपने आपके सामने खड़ी थी, नहीं, वरन् यों कहिए कि निकट खडी थी, बिलकुल पास। और उस क्षुब्द, आहत, कम्पित श्वास को प्रत्येक रोम में अनुभव कर रही थी—स्वयं आप। मन के रन्ध्रो में से एक में द्वन्द्व चलने लगा—जीवन से समझौता ? उससे परिचय। किन्तु समझौता कैसा ? ......"

इसके विपरीत कही-कही 'स्थिति' बहुत लम्बी हो जाती है और सघर्ष की अवधि बहुत सूक्ष्म—

"संध्या समय उसे (मोती कुत्ते को) साथ ले कर चले। आगे-आगे अँगनू काका जा रहे थे, पीछे मोती था। एक चौराहा पार करने लगे। संयोगवश मोती चौराहे के बीचोबीच चला गया। दो ओर से मोटर आ रहे थे। अँगनू काका ने देखा कि मोती मोटरो के नीचे दबना चाहता है। झपट कर उसे उठाने चले—मोती तो कतरा कर निकल गया, परन्तु अँगनू काका को मोटर की टक्कर लगी, वे तड़ाक से गिरे। झल्ली हाथ से छूट कर दूर जा गिरी, मोटर अँगनू काका के ऊपर से निकल गई।"

'मोह'—विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

सङ्घर्ष की यह स्थिति कहानी में बहुत देर से आई है। इसमें कहानी का चरम भी आ गया है, किन्तु इस कारण दोनों को एक नही मानना चाहिए। संघर्ष तो चरम के लिए सोपान तैयार करता है। दूसरे शब्दों में चरम स्वयं संघर्ष का ही चरम है।

अन्य तत्वों में संघर्ष की उपस्थिति—किन्तु ये दोनों ही अवस्थाएँ अर्थात् 'स्थिति' की सूक्ष्मता एवं संघर्ष का एकदम से प्रवेश, और 'स्थिति' की दीर्घता

और चरम की सूक्ष्मता, असाधारण हैं। (इनमें से पहली को कला समीक्षकों ने आदर्श माना है और दूसरी को त्याज्य) साधारणतया ऐसा होता है कि 'स्थिति' थोड़ी दूर चलती है। फिर संघर्ष प्रवेश करता है और वह भी कुछ अधिक देर चलता है। फिर चरम आता है और कहानी ढल जाती है। इस प्रक्रिया में कहानी के शेष सभी तत्व सहायक होते हैं। पात्रों का आपसी अथवा निजी व्यवहार एक प्रकार से बदलने लगता है, कथानक के सूत्र अपना मार्ग परिवर्तित कर देते हैं, भाषा-शैली में एक प्रकार का खिचाव आ जाता है और वातावरण में एक प्रकार की कुण्ठा, व्यग्रता अथवा झल्लाहट सी आने लगती है (ये तीनो शब्द कितने विषम मार्गी हैं)। साधारणतया अभी तक जो कुछ हुआ उसका अब प्रतीप होने लगता है।

यहाँ हम एक प्रसिद्ध कहानी से उदाहरण देकर इस प्रकरण को स्पष्ट करेंगे। तो लीजिए फिर 'उसने कहा था' से ही लें—

स्थिति—अमृतसर का बाजार। बम्बूकार्ट वालों की बोलियों के चित्ता-कर्षक नमूने। दो सिक्ख लडकी और लडके आपस में एक दूकान पर मिलते हैं। परिचय होता है। सौदा देने के बाद कुछ दूर जा कर लड़का मुस्कराकर पूछता है—तेरी कुडमाई अर्थात् सगाई हो गई ? उत्तर मिलता है, धत्। ······ महीना भर यही हाल रहा।

संघर्ष या प्रतिस्थिति का प्रवेश—"एक दिन जब लडके ने वैसी ही हँसी में चिढाने के लिए पूछा तो लडकी लडके की सम्भावना के विरुद्ध बोली—हाँ होगई। 'कब ?' 'कल'।

दृश्य परिवर्तन—लडका फौज में जमादार हो जाता है और लडाई से छुट्टी लेकर वापिस बुला लिया जाता है। लौटते हुए उसी लडकी से फिर मुला-कात होती है जो अब सूबेदार की पत्नी है। सूबेदारनी उससे अपने पति और पुत्र की रक्षा का वचन लेती है। अविकसित प्रेम एकदम से प्रस्फुटित हो जाता है। जिस लडकी ने उसे "हाँ, होगई कल, देखते नही यह रेशम का कढा हुआ सालू" कह कर बरसों पहले निराश किया था उसी को आज अहसान से लाद कर वह जैसे उससे बदला लेगा। और उसने बदला लिया। है बडी असाधारण स्थिति, किन्तु सघर्ष का ही एक रूप है—फ्रायड के मनोविश्लेषण का ज्ञान प्रत्यक्षतः नही तो परोक्षतः गुलेरीजी को नही रहा होगा, यह कैसे कहा जा सकता है ?

दोनों बच जाते हैं। लहनासिंह आप समाप्त हो जाता है। किस प्रकार

यह सब होता है यह दर्शाना 'कथानक' का काम है, संघर्ष इस दायित्व से मुक्त है। कथानक और संघर्ष की भिन्नता का एक और प्रमाण। पाठक यह नहीं भूले कि सारी कहानी की मुख्य रङ्गस्थली ही संघर्षमयी रणभूमि है। कौन कृपण है जो कहेगा कि यह संघर्ष सारी कहानी की आत्मा नहीं बल्कि उसके कथानक का ही एक अङ्ग है ? यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि सघर्ष शब्द का उपयोग इस प्रसङ्ग में दार्शनिक अर्थ में किया जा रहा है, लौकिक या व्यावहारिक अर्थ में नही।

एक और उदाहरण।

"शतरञ्ज के खिलाडी"—श्री प्रेमचन्द।

स्थिति— वाजिदअलीशाह का समय था। लखनऊ विलासिता में डूबा हुआ था।······ संसार में क्या हो रहा था इसकी किसी को खबर नही थी········ इसलिये कि अगर मिरजा सज्जादअली और मीर रोशनअली अपना समय (शतरंज खेलकर) बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे तो किसी विचार शील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी ?

शतरंज के खेल से विकट प्रेम के तीन चार उदाहरण। मिरजा साहब की बेगम को शतरंज से चिढ : संघर्ष का सकेत। बेगम साहबा ने एक बार शतरञ्ज की बाजी उलट दी। शतरञ्ज मिरजासाहब के घर से उठकर मीरसाहब के घर जमने लगी। मीरसाहब की पत्नी "किसी अज्ञात कारण से" मीरसाहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थी—सङ्घर्ष को शह। इस कारण अब मीरसाहब की पत्नी को भी इस व्यवस्था से कष्ट होने लगा। मीर साहब के नौकरों को भी काम बढ गया, उनमें भी चखर-चखर होने लगी। मोहल्ले के लोग भी बुरी-बुरी कल्पनाएँ करने लगे। इधर लखनऊ विलासिता में सराबोर हो रहा था, उधर कम्पनी का ऋण बढता जाता था।

सङ्घर्ष की भूमिका अच्छी खासी तैयार हो चुकी है। किन्तु इस सबसे कहानी के प्रकृत अर्थात् मूल सङ्घर्ष का कोई सम्बन्ध नही है। यह सारा विवरण तो पाठक को एक भावी ज्वालामुखी विस्फोट की चेतावनी मात्र देता है।

मीरसाहब को किसी कार्यवश हुजूर में तलब किया गया। मीरसाहब की आत्मा काँप उठी। सवार को झूठे बहाने से लौटा दिया गया। शतरञ्ज अब की बार उठकर गोमती के किनारे चली गई।

सङ्घर्ष की दौर शुरू होती है। रसज्ञ पाठक अनुभव करेंगे कि कहानी का जायका यहाँ से आता है, उसका कहानीपन यहाँ से प्रारम्भ होता है।

देखिए—"एक दिन दोनो मित्र मसजिद के खण्डहर में बैठे शतरञ्ज खेल रहे थे। मिरजा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब उन्हे किश्त पर किश्त दे रहे थे। प्रेमचन्द की भावुकता का नमूना—

"इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। यह गोरो की फौज थी जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आरही थी।

मीरसाहब बोले, अँगरेजा फौज आरही है, खुदा खैर करे।

मिरजा—आने दीखिए, किश्त बचाइए, यह किश्त।"

लेखक का चरित्र अध्ययन यहाँ कितना सूक्ष्म होगया है। बाहर और भीतर सङ्घर्ष ही सङ्घर्ष मचा हुआ है। मीरसाहब हार टालना चाहते है, मिरजा जीत के जोश मे है। देखिए—

"मीर—जरा देखना चाहिये, यही आड में खडे हो जायँ।

मिरजा—देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, किश्त।"

× × × ×

फौज निकल गई। दस बजे का समय था फिर बाजी बिछ गई।.... अबकी मिरजाजी की बाजी कमजोर थी।....चार बज रहे थे....नवाब वाजिद अली पकड लिये गए थे और सेना उन्हे किसी अज्ञात स्थान को लिए जारही थी।....मिरजा ने कहा, हुजूर नवाबसाहब को जालिमो ने कैद कर लिया है।

मीर—होगा, लीजिये शाह।

मिरजा—जनाब, जरा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत नही लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आसू रो रहे होगे।...."

कथोपकथन मे सङ्घर्ष। मिरजाजी की तीसरी बार मात होगई। बाजी फिर बिछा दी गई। सङ्घर्ष और अधिक तीव्र हो रहा है। मिरजाजी झुँझलाने लगी—जनाब, चाल न बदला कीजिए।....जो कुछ चलना हो एक बार चल दीजिए।...चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।

मीर साहब का फरजी पिटता था। बोले, मैंने चाल चली ही कब थी।"

इसी बात पर तकरार बढ गई। अप्रासङ्गिक बातें होने लगी। बात खानदान तक पहुँच गई। तू तू मैं-मैं होने लगी।

सङ्घर्ष का चरम—

"दोनो दोस्तो ने कमर से तलवारें निकाल लीं।....दोनों ने पैतरे बदले, तलवारें चमकी, छपाछप की आवाजें आई। दोनो जख्म खाकर गिरे और दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जानें दे दी। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखो से

एक बूँद आँसू न निकला, उन्ही प्राणियों ने शतरञ्ज के वजीर की रक्षा में प्राण देदिए ।....''

कहानी ढल गई है । कहिए, इसमें सङ्घर्ष के अलावा और क्या है ? कहानी के प्रत्येक तत्त्व में सङ्घर्ष व्याप्त हो रहा है । सङ्घर्ष उन मित्रों में हुआ है जो एक दूसरे पर जान न्योछावर करने के लिए तैयार थे । सङ्घर्ष की एकछत्र विजय के लिए यही बात पर्याप्त है । क्या इसके बिना कहानी बन सकती थी ।

ये दोनो ही उदाहरण पात्र और पात्र के बीच के सघर्ष के है । सघर्ष का दूसरा रूप वह है जिसमें पात्र परिस्थितियो से जूझता है और सफल या असफल हो जाता है । इलाचन्द्र जोशी की 'अनाश्रित', राधाकृष्ण की 'अवलम्ब' सुदर्शन की 'एथेन्स की सत्यार्थी', पहाड़ी की 'तमाशा', जैनेन्द्र की 'पत्नी', अज्ञेय की 'रोज', उषादेवी मित्रा की 'समझौता' इत्यादि कहानियाँ ऐसी ही है जिनका साराश केवल यह है कि परिस्थितियाँ अनुकूल नही हैं, बस । शेष विस्तार की बातें हैं । इनमें भी सघर्ष का यह क्रम कहानी भर मे चलता है और चरम में जाकर समाप्त हो जाता है । अज्ञेय की 'रोज' शीर्षक कहानी के प्रारम्भ और अन्त के दर्शन करिए और इस तथ्य की अनुभूतिं करिए ।

प्रारम्भ—दोपहरिए में उस घर के सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना सा फैल रहा था ।.......''

अन्त—''तभी ग्यारह का घण्टा बजा । मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठाकर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा । ग्यारह के पहले घण्टे की खड़कन के साथ हो मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी, और घण्टा ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज में उसने कहा—ग्यारह बज गए........ !''

'ग्यारह बज गए' के बाद का विस्मयादिबोधक चिन्ह और चार-पाँच बिन्दु लेखक ही के हैं ।

स्थिति (thesis), संघर्ष (anti-thesis), संस्थिति (synthesis) साहित्य का यही तो चरम लक्ष्य है ।

षष्ठ उच्छ्वास

आधुनिक कहानी

"यथार्थ जीवन के चित्रण के साथ-साथ मन के गूढ़तम प्रच्छन्न,स्तरों मानव चरित्र के विभिन्न पहलू, उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसे द्वैत, उलझाव, विसंगतियाँ जो उनसे कराती कुछ और कहलाती कुछ है, असामान्य चिन्ताओ, आन्तरिक ऊहापोहो और अज्ञात अन्तर्व्यापारो में भी झाँकने का प्रयास किया गया है।"

—शचीरानी गुर्टू—

षष्ठ उच्छ्वास

आधुनिक कहानी

आधुनिक कहानी के स्वरूप के विषय में विषम और विरोधी मत—

डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं :—

"निरालाजी ने लिखा है—कुकुरमुत्ता उगाये नहीं उगता। अगर यह बात कुकुरमुत्ते के लिए सही है तो कहानी कला भी किताबी नुस्खो से नही सीखी जा सकती।"

भगवतीप्रसादजी वाजपेयी के अनुसार उनकी रचनाओ का जन्म उनकी 'आत्मा के रस' से हुआ है। इसी प्रकार जब भारतवर्ष के श्रेष्ठ कहानी लेखकों से पूछा गया कि उनकी श्रेष्ठतम कहानी कौन सी है और क्यों तो उन्होंने विभिन्न उत्तर दिए और सतर्क। कही कहीं परस्पर विरोधी उत्तर भी देखने को मिले जो आत्म-पुष्टि के आग्रह से स्पन्दित अधिक जान पडते है, निष्पक्ष सत्य के इङ्गित से सञ्चालित उतने नहीं, जैसे :—

"अधिक नहीं लिख सका, इसका एक और यह अर्थ लगाया जा सकता है कि मुझ में लिखने की शक्ति नही है, दूसरी ओर दर्प के साथ यह निष्कर्ष भी निकलता है कि सिंह बहुसंख्यक न हों तो हानि नहीं है।"

—सियाराम शरण गुप्त

और,

"रसाल-वृक्ष जैसे एक नहीं, शत शत अमृत फल फलता है, वैसे ही रस सिद्ध कथाकार की, एक नहीं, शत शत रचनाएँ होती है।

—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

किसी ने श्रेष्ठता का आधार 'व्यंग' शैली और प्रवाह के पूरे पूरे उपक्रम में सत्य घटनाओं का ही चित्रण' बताया (निराला) तो किसी ने यह कि उनकी उन कहानियों में केवल असम्भव ही है, सम्भवनीय कुछ भी नही (जैनेन्द्र)। एक की दृष्टि में यथार्थ का स्थान आदर्श से कहीं ऊँचा है तो दूसरा आदर्श को बिल्कुल छोडना नही चाहता क्योकि अन्यथा कहानी लिखने की आवश्यकता क्या थी? एक महाशय ने सजग कलाकार की भाँति कहा—'कहानी के लिए बोलचाल की भाषा पर जोर देने वाले सच्चे रसिक और प्रौढ़ समीक्षक नही हैं।

वे छोटी कक्षाओं के अध्यापकों को लेकर साहित्य क्षेत्र में आना चाहते हैं (श्री सद्‌गुण शरण अवस्थी) तो एक अन्य महाशय को भी अपनी दो कहानियाँ केवल शब्द जाल मालूम पड़ीं। यद्यपि वे बहुत से लोगों का चित्ताकर्षण कर चुकी हैं; किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि "रचना की उत्तमता का असली प्रमाण लोकमत ही है।"—(शिवपूजन सहाय)

कहानी के १९ गुण—साहित्य के अधिकारी विद्वानों और लेखकों की ओर से कहानी के सम्बन्ध में इन अत्यन्त विषम स्टैण्डर्डों को देखकर कहानी कला के विषय में नए अथवा प्राचीन कहानीकारों को कुछ संकेत देना मैं दुस्साहस मानता हूँ, विशेषतया तब जब कि मैं स्वयं कोई बहुत बड़ा कहानीकार नहीं हूँ। किन्तु जब मै पुनः अपने इस कथन पर विचार करता हूँ तो स्वय इस वक्तव्य को निरर्थक पाता हूँ क्योंकि मुझे कहानी कला पर जो कुछ कहना था, चाहे वह मेरा अपना मत हो चाहे किसी अन्य मत की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति मैं अपने इस ग्रन्थ में पूर्वतः कह चुका हूँ और अवशेष ही क्या रह गया? मुझे विश्वास है कि ये निर्देश प्रत्येक प्रकरण में यथास्थान आ गए हैं और उन्हें आसानी से 'इदमत्र' कहा जा सकता है, तथा उनकी यथार्थता का अभिज्ञान प्रकरण विशेष के साथ पढने से ही हो सकता है। किन्तु रचनाकारों की सुविधा के लिए उनसे कुछ अधिक महत्वपूर्ण निर्देशों को सूत्र रूप से नीचे दे रहा हूँ।

(१) कहानी का निर्माण एक ही प्रभाव को दृष्टिगत रखकर किया जाना चाहिए।

(२) कहानी का संक्षिप्त होना वाञ्छनीय है किन्तु अनिवार्य नही।

(३) कहानी आदर्श की ओर सक्रिय रूप से उन्मुख करने वाली भले ही नही हो, उससे किसी भी प्रकार से विमुख करने वाली कदापि नही होनी चाहिए।

(४) कहानी के प्रभाव की सिद्धि में अनिश्चय अथवा कुतूहल का बड़ा हाथ है। अत जहाँ तक हो सके उसकी आद्योपान्त रक्षा करनी चाहिए।

(५) आकर्षणता कहानी में कूट कूट कर भरी होनी चाहिए। रुचिभेद और विषय भेद से उस पर कोई प्रभाव नही पडना चाहिए।

(६) कहानी में कृत्रिम शैली का प्रयोग वहाँ तक नही करना चाहिए जब तक इस प्रकार की शैली में एक विशेष प्रभावात्मकता न हो।

(७) कहानी का शीर्षक असाधारणता अथवा नवीनता लिए हुए सोद्देश्य, अधिक से अधिक भाव व्यञ्जक और कहानी के सम्पूर्ण मर्म को व्यक्त करने वाला होना चाहिए। तीन से अधिक शब्दों वाला शीर्षक प्रायः अधिक आकर्षण उत्पन्न करता है। शीर्षक की सार्थकता को कहानी में स्वतः ही सिद्ध

होने देना चाहिए, जैसे मोती में से उसकी कान्ति। उसकी पुनरुक्ति आदि के द्वारा उसको सिद्ध करने की चेष्टा करना उसकी रोचकता की हत्या करने के बराबर है।

(८) कहानी का प्रारम्भ सुव्यवस्थित, अप्रत्याशित, आकस्मिक और चित्ताकर्षक होना चाहिए। उसमें जो भी कहा जाय कुतूहल उत्पन्न करने की शक्ति और कहानी के भावी वातावरण और रस की एक झाँकी होनी चाहिए। गत्यात्मकता और द्वन्द्व उसके आवश्यक गुण हैं। लम्बे चौड़े विवरणों को प्रारम्भ से सर्वथा दूर रखना चाहिए।

(९) कहानी का मूल भाग भी उतना ही रोचक और व्यवस्थित होना चाहिए। संक्षिप्तता, प्रासङ्गिकता और उद्देश्य के अनुरूप उसका सम्यक निर्माण उसके आवश्यक उपादान है। असाधारणता इसका प्राण है। इसमें सारे पात्रों की उपस्थिति, मूल कथावस्तु का सङ्कलन, वातावरण को चरमावस्था की ओर लेजाने की योग्यता और चरमावस्था के रहस्य को रक्षा की शक्ति होनी चाहिए। उसमें अत्यधिक दुरूहता और विराम स्थलों की अधिकता नहीं होनी चाहिए।

(१०) चरमावस्था में लाघव, अप्रत्याशितता और गहरी संवेदना-शक्ति अनिवार्य है, शीर्षक के बाद कहानी के मर्म की रक्षा कहानी का यही स्थल करता है। कहानी में चरमावस्था होना अनिवार्य है, चाहे वह सूक्ष्म रूप में ही हो।

(११) कहानी में चरमावस्था के बाद उसके अन्त के लिए विशेष अवकाश नहीं है। कहानी के अन्त में पाठक की कल्पनाओं को अभिभूत करने की शक्ति होनी चाहिए। अप्रत्याशित, रहस्यमय अथवा भावात्मक अन्तों का प्रभाव पाठक के मन पर बहुत देर तक रहता है।

(१२) कहानी की भाषा, शैली प्रायः सरल, स्वाभाविक, रसप्रवण, सार्थक और लोचदार होनी चाहिए। यत्र तत्र मुहाविरों और अलङ्कारों का प्रयोग उसमें जान डाल देता है। भाव प्रधान व काव्यमयी भाषा की शक्ति व गरिमा निराली ही है, किन्तु इसकी एक सीमा है। भाषा में चित्र खड़े करना प्रभाव-निक्षेप का एक अद्भुत साधन है।

(१३) कहानी में कथानक का पाया जाना अनिवार्य है। कथानक संक्षिप्त स्पष्ट, अखण्ड सूत्र में पिरोई हुई एक घटना से युक्त, रसानुकूल, सीधा, सरल और सुव्यवस्थित होना चाहिए। उसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी असाधारणता है और उसका सबसे बड़ा दोष उसकी अस्वाभाविकता है या अविश्वस

नीयता। कथानक के कुतूहल की रक्षा कहानी के रस तत्व की रक्षा करने के बराबर है।

(१४) कहानी में पात्रों की सख्या तीन चार से अधिक न होनी चाहिए अर्थात् कम से कम होनी चाहिए। और उसमें उन पात्रो के चरित्र के उन्ही पहलुओ की व्याख्या होनी चाहिए जिनसे कहानी का सीधा सम्बन्ध हो। ऐसे सारे पात्रो का कथानक से सीधा सम्बन्ध रहना चाहिए। और एक भी पात्र ऐसा नही होना चाहिये जिसके बिना कहानी के प्रभाव में किसी प्रकार की कमी नही पडे। चरित्र चित्रण के समय चित्र शैली का उपयोग श्रेयस्कर है। इसका उपयोग ऐसा होना चाहिए जिसको पढकर पाठक के मन में सम्बन्धित व्यक्ति का सम्पूर्ण या अधिक महत्वपूर्ण चित्र उभर आवे। चरित्र चित्रण का, विशेष-कर मनोवैज्ञानिक चित्रण का महत्व आज की कहानी समझने लगी है। पात्रों का जीवन वातावरण से हटकर नही होना चाहिए और कथानक की भाँति उसमें भी किसी प्रकार की ऐतिहासिक असगति नही होनी चाहिए। चरित्र-चित्रण, जहाँ तक हो सके, इतिवृत्तात्मकता प्रणाली अर्थात् सीधे तौर से न होकर, अलक्षित रूप में, कथानक कथोपकथन और पात्र की मानसिक ऊहापोह आदि के द्वारा होना चाहिए। सफल आधुनिक कहानी का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार यही है कि उसमें वर्णित परिस्थितियो के साथ पात्रों का एक प्रकार से तादात्म्य होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि पात्र उन परिस्थितियों के प्रति कितने जागरूक है। दुसरे शब्दो में, कहानी पात्रों के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों की अभिव्यक्ति की एक कसौटी है।

पात्रो का प्रभाव पाठको पर तभी पडता है जब उसमें साधारणता होते हुए भी कुछ नवीनता या असाधारणता हो। कहानी में पात्रो के व्यक्तित्व के घात-प्रतिघात का लक्ष्य एक अविकल्प आदर्श की ओर रहना चाहिए। साथ ही जिस प्रकार कहानी के सारे पात्रों का व्यक्तित्व यथार्थ से कुत्सित नहीं होना चाहिए उसी प्रकार वह आदर्श के अवास्तविक आग्रह से अनुगृहीत नही होना चाहिए। पात्रो का नामकरण उनसे सम्बद्ध समाज वर्ग के अनुसार ही होना श्रेयस्कर है। आधुनिक कहानी का रुझान इस बात की ओर काफी है कि यदि उसमें किन्ही 'लोकोत्तर' पात्रो की सृष्टि करना आवश्यक हो तो उन्हें जहाँ तक हो सके 'लोक सामान्य' पात्र के रूप में ही चित्रित करना चाहिए, हाँ, आवश्य-कतानुसार उनमें किन्ही विशेष गुणों अथवा अवगुणो का अवधान किया जा सकता है। कहानी मे प्रोटोटाइप (अपनी तरह के एक ही) पात्रो की गुञ्जाइश अधिक नहीं होते हुए भी उनका अभिनिवेश रुचिकर है। पात्रो के चरित्र में

अधिक परिवर्तन दिखाना कहानी के प्रभाव को नष्ट करने जैसा है। कहानी के कहानीपन की रक्षा करने के लिए उनके पात्रो में आपसी संघर्ष अथवा असमन्वय के बीज पाये जाना अनिवार्य है। कहानी के नायक को शेष पात्रो की अपेक्षा बहुत अधिक मान देना उसकी अनावश्यक चापलूमी करना है। नायक का धीरोदात्त अथवा राजकुलोय होना तो अनिवार्य है ही नही, यह भी अनिवार्य नही है कि वह आदर्श पात्र ही हो। नायिका के लिए यह आवश्यक नही कि वह नायक की ब्याहता अथवा प्रेमिका हो ही।

(१५) कथोपकथन कहानो के अन्दर रोचकता और जीवट ला देता है। यद्यपि वह कहानी का अनिवार्य अङ्ग नही है। उसमें अधिक से अधिक भाव-सूचन की सामर्थ्य होनो चाहिए। कथानक की अभिव्यक्ति और चरित्र-चित्रण का यह एक स्पृहणीय वाहन है। वह सक्षिप्त, व्यावहारिक, स्वाभाविक किन्तु चमत्कारपूर्ण, प्रायः सरल, पात्रानुसार, शिष्ट, भावात्मक मनोरञ्जक और क्रमबद्ध होनी चाहिए उसमें उपदेश की गन्ध न हो। कथोपकथन का उपयोग कहानी के प्रारम्भ में और अन्त में हो तो विशेष चमत्कारपूर्ण अर्थात् नाटकीय होना चाहिए। इसका उपयोग वहाँ विशेष रूप से किया जा सकता है जहाँ कोई अन्य शैलो शिथिल अथवा अशक्त प्रतीत होतो हो, जहाँ लेखक पाठको के सामने सीधा नही आना चाहता।

जब कोई ऐसा स्थल आ जाता है जहाँ बातचीत बिना गुत्थो के सुलझ नही सकती हो, जहां लेखक किसी तफसील में जाना चाहे, जहाँ रस का परिपाक करना अभीष्ट हो, और जहां लेखक को एक नितान्त स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करना हो। कही-कही बातचीत के साथ-साथ लेखक को पात्र की मुद्रा को प्रकट करने वाले सकेत भी दे देना चाहिए।

(१६) वातावरण के प्रकरण में यही कहा जा सकता है कि कहानी में देशकाल सम्बन्धो दोष नही होने चाहिए। स्थानीय वातावरण (Local colour) वालो कहानियाँ काफी लोकप्रिय होती है।

(१७) कहानो मे प्रकृति वर्णन का एक अपना स्थान है। वह सक्षिप्त, कलात्मक और सजीव होना चाहिए। उसमें एक प्रकार का सरस लाक्षणिकता होनो चाहिए। निश्छल रमणीयता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण और मानसी अनुभूतियो के साथ सयोग, ये उसकी विशेषताएँ है।

(१८) कहानी मे सङ्घर्ष होना अनिवार्य है।

(१९) कहानी का उद्देश्य मनोरञ्जन नही प्रत्युत् सत्य का अनुसन्धान करना है। मनोरञ्जन तो कहानी का एक आनुषङ्गिक गुण है। कहानी का लक्ष्य

उस सत्य की अभिव्यक्ति द्वारा जीवन को सुन्दर से सुन्दरतर और मङ्गलमय बनाना है। जो कहानी इस साधना में जितनी अधिक सफल होगी उतनी ही धन्य है।

आधुनिक कहानी की अविश्वसनीय विश्वसनीयता—ये सब कहानी के अनिवार्य या वाञ्छनीय गुण हैं, जिनसे कहानी बनती है या सुन्दर बनती है। आधुनिक कहानी प्रायः इन्ही गुणों को अपनाकर अमर होगई है। किन्तु आधुनिक कहानी के विषय में इतना जानकर सन्तोष नही किया जा सकता। उसकी गतिविधि कुछ ऐसी निरालो है कि सरलता से पकड में नही आती। यह वह साहित्य है जिसकी व्याख्या करते समय आलोचक भी भावुक हो जाता है। उसमें एक ऐसी वक्रता है जिसे अधिकारपूर्वक इङ्गित (Locate) नही किया जा सकता है। मोटे तौर पर इसे शैली सम्बन्धी वक्रता कहा जा सकता है। लगता है जैसे आपादशिख वह एक गन्धर्वलोक की अप्सरा है, जिसका हमसे परिचय नही है, पर फिर भी जो नितान्त स्पृहणीय है।

शीर्षक अजीब, प्रारम्भ अजीब, मध्य अजीब और अन्त अजीब; फिर भी कोई अजायबघर की वस्तु नही। उद्देश्य विचित्र, पात्र विचित्र, कथानक विचित्र और भाषा-शैली विचित्र, फिर भी साधारण, यथार्थ, विश्वसनीय। आधुनिक कहानीकार एक गोताखोर है जो सामने फैले हुए जीवन सागर में से अकल्पनीय रत्नराशि, अदृष्टपूर्व मणिमाला का अम्बार निकाल-निकाल कर रख रहा है। कुछ घटनाएँ, बस लघु कथानिकाएँ, प्लॉट ऐसे है जिनके विषय में आप उदासीन हैं, बस। कुछ पात्र है जो आप में खोए हुए है, बस। कुछ तथ्य हैं जिनका प्रभाव आप पर अलक्षित रूप में पडता जा रहा है, बस। कहानीकार इन्ही तथ्यों, पात्रो, घटनाओ को उस भाषा में, जो आपकी ही भाषा है किन्तु जिसके जौहर का आपको अभी तक परिचय नही मिला है, आपके सामने हस्तामलकवत् कर रहा है। मेरे सामने 'कहानी' नामक मासिक पत्रिका का अगस्त १६५५ का अङ्क है (मै ये पंक्तियाँ अगस्त १६५५ में ही लिख रहा हूँ)। कोई साजिश नही है कि मैने इसे अपने वक्तव्य की सिद्धि के लिए विशेष रूप से चुना हो। बस सभी कुछ अकस्मात् ही तो है। इसमें ११ कहानियाँ हैं, उनके शीर्षक देख जाइए :—

१. भूमिदान—(जो सद्यः प्रचलित 'भूदान यज्ञ' के प्रसङ्ग से एक पौराणिक आख्यान का आर्वाचीन रूपान्तर है।)

२. काठ का उल्लू—नायक का नाम सेठ कचरूमल—आपके चुनाव का चिह्न, 'काठ का उल्लू' है—व्यंग।

३. गीत—गीत नहीं है, कहानी है, बङ्गाली लेखक की। बड़ी भावुकता है आद्योपान्त।

४. कभी साँप सो सकता है—शीर्षक इतना ही है पर अन्त में कहा है—कभी साँप सो सकता है, जब बीन बज रही हो। सामाजिक नैतिकता के रूढिग्रस्त रूप के प्रति एक आक्रोश है।

५. प्रेम का गणित—एक लड़की है जो बम्बई के आँकड़े विभाग में काम कर रही है, पर उसे प्रेम हो गया है—उसके स्वभाव में बस जाने वाला गणित उसे कैसा छकाता है—एक मराठी व्यंग।

६. रात और दिन—एक सबल वातावरण वाली कहानी।

७. मेरी बच्ची और तसवीर—एक तसवीर है जिसमें एक भूखा है जिसे एक बच्ची खिलाने के लिए जिद करती है और एक सम्भ्रान्त कुल की मम्मी है जो उसे रोकती है।

८. मन बहादुर—एक स्कूल के चौकीदार की कहानी जो एक रोगी को अपना खून देकर जिलाता है।

९ राघव—राघव गरीब है पर उसका दिल धनी है।

१०. तीन बहुऐं—एक दम तीन बहुऐं।

११. छः लडके—कम से कम छः। एक अमर जैक लेखक की अमर कहानी।

कुछ स्थितियाँ-सबकी सब कहानियाँ जैसे मिलकर आधुनिक कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। शीर्षक की भाँति कथानक भी, पात्र भी, सभी कुछ हमारे जीवन में से ले लिए गए हैं पर भुलाये हुए महावृत्त, महा मानव हैं। आधुनिक कहानी आपको बरबस—हाँ, अनायास ही आपको उनकी ओर ले जाती है, कहती है देखो, यह जीवन देखो, यह चरित्र देखो, यह त्याग, घृणा, क्षमा, प्रेम देखो—और देखो कालेज की चहार दीवारी के बाहर बड़ी बड़ी आशका लिए निकलती हुई तितलियाँ ही सब कुछ नही हैं, कल्पित पसीने की नालियाँ बहाते हुए राज और सार्जेण्ट की गोली के लिए सीना तान देने वाले मिल मजदूर ही सब कुछ नही हैं कुछ और भी हैं जो आपके पास हैं, आपकी बगल में हैं, आपके घर में हैं जिसे आप भुला रहे हैं। आपके बगीचे का माली है जो चार कोस दूरी पर खड़ी पीली कोठी वाले रायसाहब के मरते हुए लड़के के लिए अपना जानदार खून देने के लिए तैयार है; आपके पड़ोसी की विधवा बहिन है जिसे मनुष्य मात्र से नफरत हो चुकी है; एक युवक कलाकार है जो किसी के बताये हुए साधना पथ पर अनवरत, अयाचनाशील, निरीह गति से

चल रहा है और रास्ते की गर्मी से व्याकुल हो किसी बबूल की छाँह में बैठता है और किसी ग्रामीण सुन्दरी के प्रेम का भाजन हो जाता है जैसे सूरजमुखी का मुरझाया फूल उगते सूर्य की पहली किरण के प्रेम का पात्र हो जाता है। माँ है—जो दस दिन से भूखी है। और एक दिन सूरज डूबते डूबते अपनी इकलौती बच्ची को एक वेश्यालय के एजेण्ट को बेचने को तैयार हो जाती है। एक रोटी बेचने वाला है जो दूसरे रोटी बेचने वाले को इसलिए मार देता है कि उसके मन मे हिंसा का कोई सोया हुआ भाव अनायास ही जागृत हो गया है। एक व्यक्ति है जिसे संसार भर से घृणा हो गई है और इसलिए एक दिन नदी में डूब मरने के लिए जाता है, किन्तु एक ठीक वैसा ही व्यक्ति उसे वहाँ मिलता है जो डूबने के लिए तैयार है और वह अपना इरादा बदल देता है। एक अत्यन्त ही व्यवहार कुशल बिजनैसमैन, जो डाक्टर भी है और सगीतज्ञ भी; लेखक है और अध्यापक भी, इञ्जीनियर है और पाकेटमारो के एक बड़े गिरोह का मुखिया भी; जिन्दगी भर की ऐयाशियाँ भोगने के बाद किसी कारण वश विरक्त हो जाता है और बम्बई के ताजमहल होटल में ठहरा है जहाँ वह डेढ़ घण्टे बाद पोटाशियम-साइनाइड द्वारा अपनी इहलीला समाप्त करने का निश्चय करके चाय मँगाता है, और डेढ घन्टे बाद एक लड़की उसके पास चाय लेकर आती है और वह अपना निश्चय बदल देता है। एक पत्नी है जिसने अपने भावुक पति को समझने की चेष्टा ही नही की—और एक मिनिस्टर है जो केवल भाषण देने में ही विश्वास रखता है। तो कुछ घटनाएँ, कुछ परिस्थितियाँ हैं, जो अनोखी है फिर भी शत प्रतिशत विश्वसनीय है। यही आधुनिक कहानी के प्राणदायक तत्व हैं। एक अकुलाहट है, तेजी है, गर्मी है, सर्दगी है जैसे किसी कपड़े की मिल में से मशीनो की एक रूप एक पल आवाज आरही हो, कोई अणुबम का कारखाना हो, जहाँ अजीब सी खामोशी हो और एक दूसरे के प्रति भयानक सन्देह हो, जैसे सैंकड़ो हजारो रोजनवर्ग दम्पति रोज फांसी के तख्ते पर लटका दिये जाते हो, जैसे अमन चैन से बसने वाले लोगो की जिन्दगी की किसी लम्बी दरार मे साजिश और अराजकता की बारूद भरी जा रही हो।

यही आज की कहानियों का विशेष टेकनीक है। इस सम्बन्ध में कतिपय विद्वानो के वक्तव्य बड़े विचारोत्तेजक हैं। श्री छविनाथ त्रिपाठी लिखते है—

कुछ विचार प्रेरक विचार—"आज की कहानियाँ सर्वथा आधुनिक युग की देन समझी जाती हैं—शैली के नवीनतम चमकीले आवरण ने दृष्टिभ्रम उत्पन्न कर दिया है और कहानी के अन्तःरूप का दर्शन कठिन होगया है। वीरगाथा काल से लेकर आज तक काव्य की अविच्छिन्न परम्परा गङ्गा-यमुना की

निर्मल धारा की तरह प्रवाहित होती हुई दिखाई पडती है किन्तु अन्त:सलिला सरस्वती की भाँति इस कहानी की धारा कुछ काल के लिए भू-लीन भी हो गई है। आधुनिक काल में साहित्य की यह वेगवती धारा पहाडी निर्झर की भाँति पुन: व्यक्त होकर गतिशील ही नहीं हो गई, अपितु उसने जनजीवन के लिये अपना महत्व भी प्रदर्शित कर दिया है। पाश्चात्य साहित्य के विभिन्न प्रकार मे पडे हुए प्रभावो ने न केवल उसकी दिशाओ मे मोड उत्पन्न कर दिया है, बल्कि साथ ही उसके बाह्यरूप में ऐसा परिवर्त्तन भी कर दिया है जिससे वह अपरिचित और अनजान सी लगने लगी है। किन्तु हरिद्वार की गङ्गा का रूप गङ्गासागर की सहस्रमुखी धाराओं में क्यों ढूँढा जाय ?"

डी० ए० वी० कालेज के देहरादून के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० गयाप्रसाद शुक्ल लिखते हैं—

"कहानी आज विधायक साहित्य का सबसे लोकप्रिय अङ्ग है। आज कहानी खाली बैठे का रोजगार नहीं है—वह मत प्रचार या सिद्धान्त निरूपण का साधन मात्र है—वह हृदय की तीव्र अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी है और यही सबसे अधिक है। अत: जीवन के साथ उसका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ हो गया है। आज की कहानी केवल वृत्त-विधान ही नही करती, वह मर्म को स्पर्श करने का, हृदय के तारों को झंकृत करने का भी बहुत सफल प्रयास करती है। वह कुछ क्षणों के लिए पाठक का मन बहलाव नही करती, प्रत्युत् उसके मन पर कुछ स्थायी प्रभाव भी छोडती है।"

श्री मोहनलाल 'जिज्ञासु' ने आधुनिक कहानी की १२ विशेषताएँ बतलाई हैं जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) कलात्मकता।

(२) उपदेशहीनता तथा मनोरञ्जनशीलता एवं साहित्यिकता।

(३) अति प्राकृत प्रसङ्गो का अभाव और आकस्मिक घटनाओं और संयोगो की उद्भावना।

(४) हृदयगत सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण।

(५) विषय और उपादान पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत।

(६) आरम्भ में स्पष्ट भूमिका की आवश्यकता।

(७) स्वाभाविकता।

(८) मौखिक के स्थान पर लिखित।

(९) अनेक शैलियों द्वारा अभिव्यक्त।

(१०) पाश्चात्य देशों से प्रभावित।

(११) अन्य साहित्याङ्गों की तुलना में कल्पना शक्ति का अधिक प्रयोग।

(१२) बहुत ही कम पात्रों, घटनाओं और प्रसङ्गों की सहायता से कथानक, वातावरण आदि की सृष्टि।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—

"यह तो निश्चित ही है कि उपन्यास और कहानी का साहित्य विशुद्ध आधुनिक युग की उपज है और संस्कृत में लिखे जाने वाले कथा, आख्यायिका और चम्पू श्रेणी के साथ इसका दूर का सम्बन्ध होते हुए भी उनसे भिन्न है। वह आधुनिक युग के वैयक्तितावादी विचार-धारा को आश्रय करके आगे बढ़ा था और आज भी इसके लोक-प्रिय बने रहने में वैयक्तिक मत का बडा जबर्दस्त हाथ है। जिस लेखक का अपना निजी वैयक्तिक मत नही होता वह सफल कथाकार नही हो सकता। वैयक्तिक मत अवश्य होना चाहिए और चाहिए दृढ़ता, चट्टान की सी दृढता।

प्रेमचन्द ने अच्छी कहानी की कसौटी बताते हुए लिखा है—

"सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"

और श्री गुलाबराय उनसे पूर्ण सहमत हैं।

आधुनिक कहानी के विषय में शचीरानी गुर्टू के ये शब्द बडे मर्मस्पर्शी है .—

'शनैः शनैः कहानी काफी विकसित स्थिति में पहुँच गई है। उसकी टेकनीक में भी अपेक्षाकृत आकाश-पाताल का अन्तर हुआ है। कहानी की कथन पद्धति मे पहले का सा ऊबभरा शैथिल्य नही है, वरन् विषय चयन में नूतनता और वैविध्य पाया जाता है। कहानियो में अनेक नूतन प्रयोग किए गए है। नई नई समस्याएँ और नए-नए आदर्श उनमें साकार हो उठे है और उनका उद्देश्य एकांगी और एकदेशीय न होकर बहुमुखी हो गया है। यथार्थ जीवन के चित्रण के साथ-साथ मन के गूढतम प्रच्छन्न रूपो, मानव चरित्र के विभिन्न पहलू उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसे द्वैत, उलझाव, विसङ्गतियाँ जो उनसे कराती कुछ और कहलाती कुछ है, असामान्य चिन्तनाओ, आन्तरिक ऊहापोहो और अज्ञात अन्तर्व्यापारो मे भी झाँकने का प्रयास किया गया है।

आज की कहानी सस्ते रोमांस से हटकर मनोवैज्ञानिक बारीकियो पर आ टिकी है। प्रतिदिन की बेतरतीब उलझनें, हमारे जीवन यापन की अविरत अस्थिरता, परेशानी, व्यस्तता, हाहाकार तथा मानवीय भावनाओं की मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या कथा साहित्य की जीवन्त शक्तियों को अधिकाधिक

उद्बुद्ध कर रही है, जिससे आधुनिक कहानीकारो को एक नवीन जाग्रत दिशा का सकेत मिलता है।"
—'साहित्यिकी'

लोक कथा और समस्या कहानी—कहानी-जगत् में, विशेषतः पिछले पच्चीस सालो से, कहानी की दो विशिष्ट प्रणालियो की काफी चर्चा सुनने को मिल रही है—लोक कथा और समस्या-कहानी। इनमें से समस्या कहानी साहित्यिको के मस्तिष्क की उपज है और लोक कथा सर्वथा असाहित्यिकों के दिमाग की। यह बात कुछ विचित्र है कि ज्यों ज्यो सामाजिक और आर्थिक जीवन में जटिलता का अभिनिवेश होजाता है वैसे वैसे एक ओर तो समस्या-कहानी का बाजार भाव कम होता जाता है और दूसरी ओर लोक-कथा का विकास होता जाता है। इसका कारण कदाचित यह है कि बाहरी जीवन की ऊहापोह और 'हो-हा' से तङ्ग आकर मानव साहित्य की जिस अन्त-भूंमि में प्रवेश करता है वहाँ उसके लिये एक निश्छल आर्जव और सादगी की अपेक्षा करना स्वाभाविक है। जो हो, दोनों ही विधाओं ने क्रमशः साहित्य जगत् और जनमानस को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।

लोक-कथा—लोक-कथा विशुद्ध जनता जनार्दन की मानस-सन्तान है। इसका उद्‌गम, विकास और निलय, सभी लोक जीवन की अप्रत्यक्ष मानसभूमि में अनायास होता रहता है। इसी कारण काका कालेलकर ने कहा है कि इसकी शब्द-योजना अथवा भाव-सम्पत्ति को कतिपय आधुनिक साहित्यकारो द्वारा सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति में उस मानस गङ्गा के चिरन्तन प्रवाह की दिशा और उसका स्वरूप नही समझने के लक्षण विद्यमान हैं। उनका कहना है कि यदि किसी लोक-कथा में इतनी वर्चस्वता और प्राणस्पन्दिनी शक्ति विद्यमान है कि वह लोक जीवन के विभिन्न स्तरो में से किसी का यथातथ्य चित्रण कर सकती है तो उसकी स्वयं रक्षा होती रहेगी। और यदि उसका लोकजीवन के किसी पक्ष से कोई सम्बन्ध नही रहा है तो उसकी पुस्तकों में रक्षा करने पर भी रक्षा करना कठिन है; कम से कम लोककथा के रूप में उसका मौलिक स्वरूप तो रहेगा ही नही।

इस व्यवस्था से तीन बातों पर प्रकाश पडता है। एक तो यह कि लोक-जीवन स्वयं अपने लिए ऐसी कथाओं का निर्माण कर लेता है जो उसके जीवन यापन की प्रणालियो का यथासम्भव प्रतिनिधित्व करती हों, दूसरी यह कि जिस दिशा में लोक-जीवन का विकास होता जाता है उसी दिशा में लोककथाओं का भी विकास होता रहता है और तीसरी यह कि जब किसी लोककथा में अमुक

जीवन्त शक्ति का ह्रास होने लगता है और उसका लोकजीवन के आदर्शों अथवा यथार्थ से अकिञ्चन सम्बन्ध रह जाता है तब उस लोककथा का निर्माण होजाता है। ये तीनों ही प्रक्रियाएँ जानबूझकर न की जाकर स्वतः सम्पादित होती हैं।

लोककथा का स्वरूप—इन बातो से इसका मौलिक स्वरूप समझने में भी सहायता मिलती है। लोककथा की युग युगों तक रक्षा होना तभी सम्भव है जब वह अधिक से अधिक सामान्य भाषा-शैली में अभिव्यक्त हुई हो। दूसरे शब्दो में, उसके पात्र व्यक्तिवाचक न होकर जातिवाचक होते हैं, जैसे आदमी, बालक, घोडा, चिड़िया आदि। लोककथा में इन पात्रो का कोई नामकरण नही होता। दूसरे, वे लिखित नही होती, प्रत्युत मौखिक रूप से पीढ़ी दरपीढी चलो आती हैं। तीसरे, उसमें किसी न किसो रूप में पशु-पक्षियो को भी पात्र बनाया जाता है। ये या तो सम्पूर्ण रूप से कहानी के पात्र होते हैं या मानवो के साथ आने पर इनका सम्बन्ध उनसे सहयोगात्मक अथवा विरोधात्मक होता है।

लोककथा का उदय—डा० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य का विशेष अध्ययन करके ब्रज-लोकसाहित्य के सम्बन्ध में कुछ तथ्य उद्घाटित किये हैं और रिक्त स्थानों की पूर्ति अपनी बुद्धि से की है। इस प्रकार निकाले गए निष्कर्ष सामान्य लोक-साहित्य पर भी लागू होते हैं। उनका कहना है कि लोककथा को उत्पत्ति सुदूरभूत की जनजीवन को प्रभावित करने वाली वैदिक एवं पौराणिक आख्यायिकाओं से हुई है। जिन्हे कालान्तर में लोक सहज अथवा प्रतीक रूप दे दिया गया। डा० सत्येन्द्र की इस मान्यता का आधार यह है कि अमुक वैदिक आख्यायिका में जो घटनाक्रम था, करीब-करीब वही अथवा उसका एक व्यवस्थित रूपान्तर (जिनकी तुलना पर दोनो में एक अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है) पौराणिक काल की कथा में उतर आया है और उसी क्रम से वह घटना थोडे-से हेर-फेर के साथ लोक-दन्त पर आ टिकी है।

उन्होंने उदाहरण देकर समझाया है कि किस प्रकार प्रकृति के आदिम व्यापारों सूर्य, मेघ आदि ने वैज्ञानिक-जीवन में इन्द्र-वृत्र का रूप धारण किया, इन्द्र ने वृत्र का सहार अग्नि की सहायता से किया। "पणि ने सरमा को फुसलाया, उसने इन्द्र से कर लेना चाहा, पर वह मारी गई। समय बीतने पर इन्द्र, अग्नि जैसे सीधे दिव्य पात्रों का स्थान राम-लक्ष्मण अथवा कृष्ण बलदेव ने ग्रहण किया। वृत्र रावण बना, पणि सूर्पणखा हुई और परिपक्व धर्मगाथा का पौराणिक रूपान्तर प्रस्तुत हो गया। यह शिष्ट सम्प्रदाय में हुआ, लोक की कल्पना में उपरोक्त आदिकालीन विविधि प्रकृति तत्वों की प्राणमय कल्पना ने

एक अद्भुत कहानी का ढाँचा खड़ा किया जिसमें न तो इन्द्र-वृत्र का नाम रहा न राम रावण का।"

डा० सत्येन्द्र ने आगे वह घटना भी दी है जो उन्हे लोककथाओ में उपलब्ध है और जिसका कथानक मूलतः वही है जो उक्त धर्मगाथाओ में है।

वे लिखते हैं "जर्मनी में यह 'फेदफुल जोहन' के नाम से प्रचलित है, दक्षिण में राम लक्ष्मण की कहानी का रूप लिया, बगाल में फकीरचन्द बनी, ब्रज में "चारु होइ तो ऐसो होइ" के नाम से चल रही है और भी इसके कितने अवान्तर रूप इधर-उधर के अनेक प्रदेशों में मिलते हैं।"

डॉ० सत्येन्द्र की इस मान्यता का आधार कल्पना ही है और विभिन्न कालो में वर्णित दो घटनाओ के साम्य को लेकर दोनो में जनक-जन्य भाव का आरोप करना वैज्ञानिक दृष्टि से नितान्त शुद्ध नही माना जा सकता, क्योकि ऐसे साम्य बहुधा विभिन्न साहित्यो मे देखने को मिलते है जो कभी-कभी बड़े भारी आश्चर्य का कारण होते हैं। यह माना जाना चाहिए कि इनका मूल कारण मानव-अनुभूति की प्रकृत विश्व-व्यापी समानता या एकता ही है, न कि कोई जानबूझ कर किया गया प्रयास।

लायल महोदय और भी आगे जाते हैं और कहते है कि धर्मगाथाओ का आधार लोककथा है न कि लोक कथा का आधार धर्म गाथा। वे लिखते हैं—"धर्म गाथा का जब जन्म हुआ उस समय मनुष्य इतिहास और कल्पना कथा में अन्तर करना भी नही जानता था, अतः उन कथाओ में जो धर्मगाथाओ के रूप में हमें प्राप्त हुई है इतिहास का बिन्दु भी है और लोक गाथाओ का भी।"

डॉ० सत्येन्द्र का यह तर्क कुछ विचित्र सा लगता है कि पहले धर्मगाथा का उदय हुआ और फिर लोक गाथा का। लोक साहित्य का अन्वेषण करने वाले जानते हैं कि लोक साहित्य सर्वदा लिखित साहित्य से पूर्व का होता है और लोक साहित्य ही ज्ञानार्जन के साथ-साथ लिखित साहित्य का रूप धारण कर लेता है। लोक मानस जिसके पास स्वयं अनुभूति और कल्पना का अक्षय भण्डार है, इस प्रकार शिष्ट समुदाय के साहित्य से जो तुलना में कही थोड़ा और सीमित है, प्रेरणा लेकर और पुष्पित, पल्लवित हो यह समझ में नही आती।

"साहित्य-सन्देश" के उसी कहानी विशेषाङ्क (जनवरी-फरवरी १६५३) में जिसमें डॉ० सत्येन्द्र की उक्त पङ्क्तियो वाला लेख प्रकाशित हुआ है, डॉ० भोलाशङ्कर व्यास का एक लेख छपा है जिसमें उन्होने सिद्ध कर दिया है कि वैदिक और तत्सम्बन्धी ब्राह्मण साहित्य में लोक कथाओ के बीज थे, उपनिषद् काल में लोक जीवन से यह सम्पर्क टूट गया और अभिजात्यवर्ग का साहित्य

तैयार हुआ और बाद में जो साहित्य (पुराणादि) रचा गया उसमें दोनो के बीज विद्यमान हैं। इसी तर्क शृङ्खला के अन्तर्गत तुलसी (रामचरित मानस) का सम्बन्ध लोकेतर (और लोकोत्तर भी) सूरदास का लोक-अलोक दोनो (और जायसी (पद्मावत) का सम्बन्ध विशुद्ध लोकान्तर से है। बिहारी इस लोक मानस से सर्वथा परे हैं ही।

लोक और लोकेतर साहित्य का क्रम—अलोक→अलोक+सलोक→अलोक→अलोक+सलोक→अलोक अर्थात् प्रत्येक अलोक के युग के बीच में अलोक+सलोक अर्थात् दोनो प्रकार की सम्मिलित रचनाएँ, यही क्रमवृत्त हिन्दी साहित्य में भी बराबर देखने को मिलता है। आदिकाल में अलोक; वीरगाथा और भक्तिकाल में दोनो का मिश्रण; रीतिकाल में फिर अलोक तथा आधुनिक-काल में अलोक और सलोक दोनो का मिश्रण दिखलाई पडता है। यह विचारणीय है कि किसी भी युग के साहित्य में लोक साहित्य शेष साहित्य पर पूर्णरूपेण हावी नही हो जाता, अधिक से अधिक उसका आंशिक अस्तित्व रचनाओ में आ जाता है। इसके विपरीत प्रत्येक ऐसे मिश्र-काल के अनन्तर एक युग ऐसा आता है जिसमें लोक साहित्य का शेष साहित्य से कोई सम्बन्ध नही रहता। उस समय अलोक साहित्य युग के आकाश पर धुन्ध की भाँति छा जाता है।

लोक-कथा की विशेषताएँ—लोक-कथा की मुख्य विशेषताएँ सक्षेप में इस प्रकार दी जा सकती है—

(१) उसकी भाषा सरल और कथा-प्रवाह स्वाभाविक होता है। इसका प्रभाव सीधा होता है।

(२) उसमें पात्रो का नामकरण प्रायः नही होता; पात्र जातिवाचक सज्ञाओ के रूप मे आते हैं। कभी-कभी पात्र पशु-पक्षी के रूप में भी होते हैं।

(३) उसका उद्देश्य कल्पना मिश्रित आदर्शोन्मुख यथार्थ-चित्रण करना होता है।

(४) उसका सम्बन्ध विशुद्ध जन-जीवन के दैनिक सुख हर्ष-विषाद राग-विराग से होता है। वह साहित्यिकों की नही, विशुद्ध जन-मानस की सन्तान है और जन-जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है।

(५) उसमें कहानी के सभी गुण, यथा, संक्षिप्तता, एकसूत्रता, एक संवेदना और प्रासङ्गिकता आदि पाये जाते हैं।

(६) उसमें उस जनपदीय भाषा का प्रयोग किया जाता है जिस जनपद में उसका जन्म व लालन-पालन हुआ है।

(७) इसका सच्चा रूप लिखित नही प्रत्युत मौखिक है, इसकी प्राणरक्षा

का आधार लेखनी नहीं जिह्वा है , क्योंकि लेखनी पर आने से इसमें रूप-सज्जा का आग्रह आने और फलतः इसके साहित्यिक रूप ग्रहण करने से इसके अस्तित्व के न रहने का भय है ।

लोक-कथा की ओर ध्यान—वर्तमान युग में, विशेषकर गत १५–२० सालों में हिन्दी में शेष लोक साहित्य के साथ-साथ लोक-कथा को लेकर काफी चर्चा हुई है और क्रमशः इसका प्रचार वृद्धिगत होता हुआ एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक आधार लेने लग रहा है । कतिपय साहित्यकारों ने तो केवल लोक-साहित्य को ही अपनी साहित्य-चर्चा को उपजीव्य मान लिया है । ऐसे लेखक देश के कौने-कौने में घूमकर लोक कथाओं, लोक-गीतों आदि का सीधा (first hand) परिचय प्राप्त कर उन्हे सग्रह करते, उनका प्रकाशन विज्ञापन आदि करते व उनमें जन जीवन के विभिन्न रूपों की झाँकी देखने का प्रयास करते हैं । लोक कथा-साहित्य का विशेष अनुशीलन करने वाले सुधी साहित्यकारों में देवेन्द्र सत्यार्थी, राहुल साकृत्यायन, डा० सत्येन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं । भगवानदास केला ने 'हमारी आदिम जातियाँ' में उन प्रयत्नों की चर्चा की है जो लोक-कथाओं के सग्रह और प्रकाशन की दिशा मे किये गये हैं ।

समस्या-कहानी—इसका आकार प्रकार निश्चित नहीं है । वैसे यह एक साधारण (या असाधारण !) कहानी ही है, विशेषता केवल यही है कि इसकी घटना में कोई न कोई सामाजिक जीवन की समस्या इस प्रकार रखदी जाती है कि कहानी भर में वह समस्या छा जाय । ऐसी समस्याओं में वेश्या जीवन, हरिजनोद्धार आदि उल्लेखनीय हैं । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक कहानी में जो स्वय साहित्य का एक विशिष्ट रूप है, किसी समस्या विशेष का चित्रण उसे और अधिक विशिष्ट बना देता है और कथावस्तु की दृष्टि से इसका स्तर एक भिन्न प्रकार का हो जाता है । यह भी स्पष्ट है कि इस अवस्था में उसे सफल बनाने के लिए एक विशेष कलात्मकता की आवश्यकता होती है, क्योंकि अन्यथा वह प्रचार मात्र की परिधि में रक्खी जा सकती है । यही कारण है कि सख्या में कम होते हुए भी समस्या कहानियों ने अपना एक अलग वर्ग बना लिया है ।

कहानी में समस्या का चित्रण कदाचित् प्रारम्भ ही से होता चला आया है । किन्तु सामाजिक जीवन के क्रमशः अधिकाधिक विघटित (Disorganised) होने के साथ हमारे आस-पास की वे समस्याएँ हम पहले आसानी से टाल दिया करते थे, अब मुख भाग पर आ गई हैं । कहानी इनके चित्रण का एक अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम हो सकता है और है भी ।

समस्या और निदान—यह पूछा जा सकता है कि क्या कहानी में

समस्या का चित्रण मात्र ही पर्याप्त है या उसका हल भी उस कहानी में बतलाना वाछनीय है। असल बात यह है कि कहानी कोरे प्रौपेगैण्डा से हटकर और कोई भी रूप ग्रहण करले, यह स्वीकार्य है। यदि समस्या के ज्वलन्त रूप की ओर समाज का ध्यान आकर्षित कर दिया जाय और उसे उस विषय मे सोचने समझने को प्रेरणा देदी जाय तो काफी है। किन्तु यदि कहानी समस्या का हल भी उपस्थित करदे और वह लोगों के गले उतर जाय तो कौनसी बुराई ? दोनो ही प्रयोगो में अर्थात् मूल समस्या के चित्रण एवं उसके निदान-निदर्शन मे कहानीकार को बड़ा साकेतिक कौशल से काम लेना पड़ता है, अन्यथा उसको उपदेष्टा की उपाधि से तत्काल विभूषित किया जा सकता है। प्रयत्न भी यह किया जा सकता है कि साहित्यकार समस्या के साथ उसका निदान भी प्रस्तुत करता चले, यद्यपि साकेतिक रूप में, अर्थात् घटनाक्रम के उतार-चढाव के द्वारा ही, न कि अलग से दिए गए वक्तव्यो के रूप में।

समस्या कहानी : स्वयं समस्या ?—समस्या कहानी की चर्चा करते समय कुछ आलोचको एव विद्यार्थियो के ध्यान में वे कहानियाँ होती है जो या तो चरित्र-चित्रण की दिशा में या घटना-क्रम की सङ्गति में भूलभुलैया का वातावरण उपस्थित करती है। दूसरे शब्दो मे समस्या कहानी वह कहानी है जो पाठक के मन मे स्वय समस्या का रूप धारण कर ले, अर्थात् अमुक पात्र न जाने कैसा है कि कुछ समझ में नही आता, अमुक घटना यो किस प्रकार घटित हुई, न जाने और इसके आगे या पीछे न मालूम क्या हुआ ? ऐसी कहानियाँ कई बार देखने में आती हैं।

समस्या कहानी के विषय में ऊपर कहा जा चुका है कि इसका रूप अनिश्चित है। अतः कोई आश्चर्य नही कि किसी शास्त्रीय दृष्टिकोण के अभाव में, इसके विधान के विषय मे उक्त प्रकार की अटकल पच्ची की जाय। इसे गलत भी नही कहा जा सकता। इस प्रकार कोई निर्णय देने के पूर्व इस प्रसङ्ग को विद्वानो के विचारार्थ रखना आवश्यक है। मेरी निजी राय यह है कि समस्या कहानी का यह दूसरा रूप स्वीकार करने में अनेक व्यावहारिक बाधाएँ आ जायँगी, और कही भी थोडी सी अस्पष्टता हुई कि उसे समस्या कहानी कह दिया जायगा। ऐसी अस्पष्टता लेखक द्वारा जान बूझकर की हुई और अनजाने में, या कौशल के अभाव में भी सम्पादित हो जाती है। इसके अतिरिक्त अस्पष्टता की जाँच का मापदन्ड पाठक-पाठक के लिए भिन्न हो सकता है। इस कारण से समस्या कहानी का असली रूप जो अभी कुछ-कुछ अस्पष्ट है और

अधिक अस्पष्ट और मतवाद का आधार हो जायगा। व्यवस्थित शास्त्रीय दृष्टि-कोण के निर्माण में वह स्थिति निश्चय ही बाधक बन कर आएगी। इसके विपरीत केवल उसी कहानी को समस्या-कहानी मानना जिसमें किसी समस्या का चित्रण हो अथवा उसका निदान भी हो, उसे अधिक स्पष्ट, निश्चित और व्यावहारिक आधार देता है और उसे ही समस्या कहानी मानना चाहिये।

कहानी का महत्व—कहानी जैसी छोटी सी रचना के लिए इतने सारे पृष्ठ रंग दिए गए हैं, यह उसके महत्व का कम परिचायक नही। फिर भी अन्त में स्थूल दर्शी आलोचकों की तुष्टि के लिये दो पक्तियाँ इस प्रसंग में लिख देना अनुचित नही होगा।

आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजन की चर्चा करते हुए उसके महत्व का दिग्दर्शन इन शब्दों में कराया है :—

"काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहार विदेशिवेतरक्षतये,
कान्ता-सम्मतयोपदेशयुजे········"

काव्य के इस महत्व को काव्य (साहित्य) के एक अङ्ग कहानी पर विशेष रूप से घटाया जा सकता है। आज के इस अर्थ-संकुल युग के वर्णसंकर साहित्य में कहानी उपदेश, मनोरंजन, सलाह, चेतावनी, शिक्षा, संस्कार, दिशा-सूचन सभी का कार्य करती है। रेल की यात्रा करने वाला व्यक्ति 'मनोहर कहानियाँ' पढकर ही अपनी ऊब मिटाता है न जाने कितने बडे घर की बेटियों ने प्रेमचन्द की आनन्दी से प्रेरणा लेकर अपने बिखरते हुए घर को संवारा है। जीवन के घोरतम निराशा के क्षणों में कहानी की स्फूर्ति-दायिनी शक्ति ही हमारा मार्ग-दर्शन करती है। कहानी वह झरना है जिसमें संगीतमय स्वर लहरी, मोदमयी मिठास और आह्लादमयी आकर्षण शक्ति है; आँखों, कानों, और जीभ को तृप्त करने के अपूर्व साधन के साथ साथ यह मस्तिष्क का स्थायी भोजन है। इसका आस्वादन कर व्यक्ति कभी अघाता नही। वह टूटे हुए हृदयों को जोडती और बिछुडे हुए प्रेमियों को मिलाती है। वह गिरते हुए मनुष्य को रोकती, गिरे हुए को उठाती और डूबते हुए को बचाती है। वह मनुष्य के असत् भावों का शमन करके उसके उदात्त भावो को जगाती है। "आत्म-व्यापकता की अदम्य कामना, हार्दिक भावो एवं विचारों के विनिमय का मार्ग प्रशस्त करती है, कहानी कला इसका निर्विवाद एवं विश्वसनीय साधन है। वाणी की उपलब्धि से लेकर आज तक मानव जाति ने निरन्तर इस सरल साधन को अभिव्यक्ति के लिए अपनाए रक्खा है, इसी के द्वारा इसने युग भावना को वाणी दी है, आगत का स्वागत

किया है और अतीत को सुरक्षित रक्खा है।" (श्री छविनाथ त्रिपाठी)। जीवन की निकटतम अभिव्यक्ति होने के कारण यह अत्यन्त लोक प्रिय है। आज के व्यस्त युग में मनुष्य जिस काव्य विधा को सबसे अधिक पसन्द करता है वह कहानी ही है। क्योंकि यह थोड़ी सी देर में—एक ही बैठक में—उसके सारे अभीप्सित की पूर्ति कर देती है। यदि कविता एक धनी पुरुष की सम्पत्ति है और उपन्यास एक मिल मालिक के मनोरञ्जन का साधन, तो कहानी एक मजदूर के हृदय का शृङ्गार है।

सप्तम उच्छ्वास

कहानी की कहानी

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इय विसृष्टिः
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा
को वेद यत आबभूव ।।

—ऋग्वेद १०।१२६।६

किस निमित्त, किस उपादान से हुई प्रकट नाना विधि सृष्टि,
कौन जानता, कौन बताए, किसकी वहाँ पहुँचती दृष्टि ।
पैदा हुए देवगण भी तो भूत सर्ग के ही पश्चात्,
फिर किससे सब सृष्टि हुई है, यह रहस्य किसको है ज्ञात ।।

सप्तम उच्छ्वास

कहानी की कहानी

कहानी का उद्गम—पिछले छः प्रकरणों में कहानी के स्वरूप का विस्तृत दिग्दर्शन कर चुकने के बाद हम इस प्रकरण में कहानी का इतिहास क्या है यह देखने की चेष्टा करेंगे और उसी से इस प्रबन्ध की समाप्ति करेंगे।

वैदिक कथा वाङ्मय—जो साहित्य जितना अधिक प्राचीन होता है उसका आदि-स्रोत ढूँढना उतना ही कठिन होता है। अतः भिन्न-भिन्न अटकलबाजियाँ लगाई जाती हैं और उससे अनेक मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं। कहानी या आख्यायिका के सम्बन्ध में यह बात पूरे तौर पर घटित होती है। कहानी का जन्म अलिखित रूप में मनुष्य जन्म के साथ और लिखित रूप में साहित्य के उद्भव के साथ होता है। यदि वेदों को संसार का प्राचीनतम वाङ्मय मान लिया जाय तो कहानी का जन्म उसी वाङ्मय से भिन्न नहीं माना जा सकता। वेदों की, विशेषतः ऋग्वेद की, जो वेदों में सबसे अधिक प्राचीन है, अनेक ऋचाओं में हम जिसे कथा-वस्तु (प्लॉट) या घटनाक्रम कहते हैं, और जो कहानी का मेरुदण्ड है, उसके बीज मिलते हैं। वैदिक संवादों में, जैसे—शर्मा-पणि, यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी संवादों और शुनः शेप की कथा में इसका आदि रूप देखा जा सकता है। ऋग्वेद १०।१२९।१—७ (नासदीय सूक्त) में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन एक अर्ध व्यवस्थित कहानी ही है।

ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के इन्द्रसूक्त में ऋषि गृत्समद इस बात का संकेत करते हैं कि इन्द्र ने अरि, बल आदि दोनों को मारकर गायों को छुड़ाया और सातों नदियों को प्रवाहित किया—

"यो हत्वा हि मरणात् सप्त सिन्धून्।
यो गा उदाज पयथा बलस्य।" (ऋ० २।१२।३)

ऋग्वेद १।३२।५ के "वृत्र व्यसमिन्द्रो अजेण" पद से भी इसी कथा का सूत्रपात हुआ है जिसमें वज्र की सहायता से इन्द्र द्वारा वृत्र का वध दिखाया गया है। उसी प्रथम मण्डल में "पिता दुहितुर्गर्भमाधात्" (१।१६४।३३) और तृतीय मण्डल में "पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्" (३।३१।१) पद मिलते हैं जिनके आधार पर ब्रह्मा और सरस्वती के सम्भोग का कथानक पौराणिक

आख्यायिका का रूप धारण करता है। ऋग्वेद १०।११।६ में आए हुए "जार आ भगम्" पद का आधार मानकर गौतम अहिल्या की कथा निर्मित हुई है।

वेदो में देवताओ से सम्बद्ध इन रूपक कथाओ के अतिरिक्त कुछ मानवी कथाएँ भी हैं जो आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के सप्तम मण्डल का दशराज्ञ सूक्त उस समय की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करता है। ऋषि वशिष्ठ द्वारा रचित यह सूक्त दिवोदास के पुत्र सुदास तथा दूसरे आर्य एवं अनार्य राजाओ के युद्ध का वर्णन करता है।

इसके अतिरिक्त वेदो में कतिपय ऐसे भी नाम आए हैं जो ऐतिहासिक महापुरुषो के नाम है, यथा इक्ष्वाकु, पुरुरवा, बुध, चन्द्र, अत्रि, आयु, नहुष, ययाति, यदु, पुरु, द्रह्यु, अनु, शान्तनु आदि।

एक विवाद—प्रश्न यह है कि वेद में उपलब्ध उक्त सामग्री को तथा ऐसी ही शेष सामग्री को कहानी का आधार माना जा सकता है या नहीं। इस सम्बन्ध में विद्वानो के दो परस्पर विरोधी मत हैं। दोनो का विवाद बहुत प्राचीन काल से चला आता है। एक की यह मान्यता है कि इसे कहानी का आधार निःसंकोच माना जा सकता है और दूसरे का यह कहना है कि इसे हम कहानियो अथवा इतिहास की घटनाओं का पूर्वरूप नही कह सकते।

दूसरे पक्ष की मान्यता का मुख्य आधार यह है कि वेदो में जो पद आए हैं वे सब रूपक के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे इन्द्र = सूर्य, वृत्र = मेघ, पिता = सूर्य, दुहिता = उषा, अहल्या = रात्रि, गौतम = चन्द्र, वज्र = बिजली आदि। पुराण साहित्य जो लम्बा-चौड़ा कहानियो से भरा पडा है, उसके रचयिता की भी यही राय है कि यह साहित्य (पुराण-साहित्य) भी आम्नाय अर्थात् वेद के अर्थ को प्रदर्शित करने के लिए निर्मित हुआ था। जिस प्रकार का आलङ्कारिक वर्णन वेदो म है उसी प्रकार का अपेक्षाकृत विस्तृत रूप में, पुराणो में है। प्रेमचन्द के सूरदास या मालती जिस प्रकार यथार्थ प्रतीत होते हुए भी किसी स्थान विशेष के विशिष्ट व्यक्ति नही है, उसी प्रकार वेद के इक्ष्वाकु, आयु, त्रिशंकु, नहुष आदि ऐतिहासिक न होकर प्रतीक मात्र है जो कही अन्तरिक्ष—स्थानीय नक्षत्रो की गतिविधि बतलाते है और कहीं औषधि आदि के गुणो का उल्लेख करते हैं। वेद में आए हुए कतिपय नाम भी राजाओ के नाम नही हैं। शान्तनु, अर्जुन, कृष्ण, राधा, सहदेव आदि नामों को देखकर हमें उनमें महाभारतकालीन व्यक्ति-विशेषो का आरोप नही करना चाहिए, क्योकि वेद और उनके शब्द महाभारतकालीन व्यक्तियो से भी पूर्व के है।

इस पक्ष के नेता स्वय निरुक्तकार हैं जो वेदो के इन सकेतो को कहानी अथवा इतिहास का पूर्व रूप मानने को उद्यत नही हैं।

किन्तु पहले के पक्ष का तर्क इतना अधिक उलझा हुआ नही है। वह दूसरे पक्ष द्वारा दिए गए तर्कों का खण्डन भी नही करता, प्रत्युत उन्हे शताश मे ठीक मानता है। मतभेद केवल उसके अन्तिम निष्कर्ष से है। वह वेदों के पक्षो के वास्तविक और प्रत्यक्ष अर्थों में भेद करने की आवश्यकता नही समझता। अमुक पद का अर्थ चाहे प्रतीक वाला अर्थात् वास्तविक अर्थ लिया जाय या प्रत्यक्ष अथवा शाब्दिक अर्थ, दोनो में ही कहानी का मूलतत्त्व अर्थात् कथात्मकता का स्पष्ट दर्शन होता है। सूर्य द्वारा बिजली के माध्यम से बादलो को छिन्न-भिन्न करके जल को मुक्त करने की कल्पना भी उतनी ही कथातत्वमयी है, जितनी इन्द्र द्वारा वज्र की सहायता से वृत्र का सहार गायो की मुक्ति। पिता ने अपनी दुहिता के साथ रमण किया इस उक्ति में ब्रह्मा-सरस्वती के उपाख्यान का आरोप न भी किया जाय तो भी वह कहानी ही है।

पहले अर्थ में यह भावनात्मक कहानी या लोक कथा की भाँति सामान्य या जातिवाचक है तो दूसरे अर्थ में ऐतिहासिक या पौराणिक कथा की भाँति विशिष्ट या व्यक्तिवाचक। दोनो ही अर्थो में उसम कहानीत्व का मूल गुण अर्थात् कथाभाग तिरोहित नही हो पाता; चाहे वह कितने ही सूक्ष्मरूप में उपलब्ध हो। इसलिए इन्हे कहानी नही मानकर कहानी का बीज रूप माना जाता है, और इस व्यवस्था में शङ्का करने वाला आलोचक अवश्य ही एक उदार आलोचक नहीं है।

यही यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्राचीनतम काल से बहुत बाद तक (कदाचित् ईसा की पाँचवी-छठी शती तक) कहानी और उपन्यास, इन दो भिन्न-भिन्न रूपो की कल्पना नहीं की गई थी और जहाँ इस कला मे हम कहानी के प्राचीन इतिहास की शोध करने जाते है वहाँ वही साहित्य (वेद) उपन्यास या और किसी कथात्मक साहित्य के इतिहास का भी आधार माना जायगा। इस साहित्य में यदि हमारी कहानी का कोई आधार है तो केवल उसकी कथात्मकता का ही। और यद्यपि यह सही है कि कथात्मकता कहानी का मेरुदण्ड है, फिर भी वह कहानी का सर्वस्व नही है। वही कथात्मकता नाटक, उपन्यास और इतिहास में भी पाई जाती है। अतः वैदिक साहित्य की चर्चा करके और उसकी सर्वाधिक प्राचीनता के आधार पर कहानी को अपने लिए विशेष गौरव अर्जित करने की गुञ्जायश नही है।

वैदिक कथा साहित्य की विशेषताएँ—वैदिक कथा साहित्य के सम्बन्ध में डा॰ भोलाशङ्कर व्यास का कथन है कि वह एक सन्धिकाल का साहित्य है

जब समाज का निर्माण हुआ ही था और दासत्व युग का प्रादुर्भाव हुआ ही था। वे लिखते है :—"आर्यों की वैदिक कालीन सामाजिक अवस्था एक ओर प्राक् समाजवादी युग के अन्त और दूसरी ओर दासत्व युग के सन्धिकाल की सभ्यता है। आर्यों के जन-जीवन का तत्प्रभावित प्रतिविम्ब ही इस काल की इन वैदिक कथाओ में पडा है। प्राक् समाजवादी मानव वहुदेववादी होता है, प्रकृति के प्रत्येक उपकरणो (उपकरण ?) में वह देवत्व का आरोप करता है। उसका स्वय का मानवी-जीवन युद्ध तथा सामाजिक परिवर्त्तन से मुक्त रहता है। आर्यों व दस्युओं के युद्ध के उपाख्यान पहली वस्तु हैं, यम-यमी व उर्वशी-पुरुरवा के उपाख्यान दूसरी। यम व यमी का उपाख्यान उस काल के दाम्पत्य तथा वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में आर्यों में उद्भूत वैचारिक परिवर्तन का लेखा है। उर्वशो का उपाख्यान आर्यों तथा गन्धर्वो (सम्भवतः हिन्दुकुश, काश्मीर आदि स्थानो में रहने वाली अनार्य बर्बर जाति) के सम्पर्क की एक कहानी है।"

डा० व्यास आगे लिखते है :—

इस समय के कथा-साहित्य की विशेषताएँ हैं :—

(१) रूपकात्मक, (२) जनता की वास्तविक भाषा में लिखा जाना, (३) पात्रो को अल्पता, (४) घटना की सरलता तथा अजटिलता तथा मानव-जीवन से समीपता।

डा० व्यास के उपरोक्त निष्कर्षों में से शेष निष्कर्षों पर (जिनमें से रेखांकित तर्क परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते हैं) हम केवल एक मुख्य तर्क की चर्चा करना चाहते हैं जिस पर उनकी सारी विचार-संगति निर्भर प्रतीत होती है। माननीय लेखक के मस्तिष्क में उक्त पंक्तियों को लिखते समय कदाचित राजनीति शास्त्र में प्रचलित सामाजिक अनुबन्धवाद (Social contract theory) का सिद्धान्त था। इस सिद्धान्त का मुख्य तर्क यह है कि समाज की स्थापना से पूर्व मनुष्य समुदाय एक विशेष अवस्था में रहता था जिसे नैसर्गिक अवस्था (State of nature) कहा जाता है।

सामाजिक अनुबन्धवाद के तीन प्रणेता (हॉब्स, लॉक और रूसो) इस अवस्था के स्वरूप के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। डा० व्यास इस सम्बन्ध में लॉक (१६८६ ई०) के सिद्धान्त से सहमत प्रतीत होते हैं जिसके अनुसार यह नैसर्गिक अवस्था ऐसी थी जिसमें यद्यपि लोग इतनी बुरी अवस्था में तो नहीं रहते थे जिसका चित्रण उसके पूर्ववर्ती लॉक्स, हॉब्स ने किया है, किन्तु उनमें लड़ाई झगड़े होना स्वाभाविक था। देवासुर संग्राम की कथा इस मत की पुष्टि करती है। यह अवस्था समाज के निर्माण से पूर्व की अवस्था कही जा सकती

है। सामाजिक अनुबन्धवाद का दूसरा तर्क यह है कि इस अवस्था की बुराइयों से तङ्ग आकर लोगों ने समाज की स्थापना की और राज्य का निर्माण किया जिसके प्रति आज्ञाकारी होना उन्होंने स्वीकार किया। डा० व्यास का यह तर्क कि वैदिक काल से दासत्व-युग का श्री गणेश होता है, कदाचित् इसी मान्यता की आवृत्ति है।

किन्तु इस सम्बन्ध में यह सदैव स्मरणीय है कि अनेक से जिसमें मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक तर्कशास्त्रीय कारण हैं, समाज की स्थापना के सिद्धान्त के रूप में सामाजिक अनुबन्धवाद को अब त्याग दिया गया है क्योकि यह अनुपयुक्त है। इसके प्रणेताओं ने अपने-अपने समय की परिस्थितियों को नैतिक अवस्था प्रदान करने के हेतु इस तर्क, जिसका उन्होंने कोई स्वतन्त्र आधार उपस्थित नहीं किया है, युक्ति सङ्गत नहीं जान पड़ता।

जो हो, वैदिक कथा-साहित्य की उन विशेषताओं को, जिन्हें माननीय लेखक ने उपस्थित किया है, इन्कार नही किया जा सकता। हाँ रूपकात्मकता के साथ प्रकृति पर्यवेक्षण और चित्रण की अद्‌भुत शक्ति (जिसका लोहा आज तक माना जाता है), और संवादों की प्रचुरता इनमें और जोड़ी जा सकती हैं।

ब्राह्मण और उपनिषद— वेदों के बाद ब्राह्मण व उपनिषद लिखे गए। ये दोनों वेदों के ही अङ्ग माने जाते हैं। इनमें से ब्राह्मणो में तो वेदो के गूढ़ व दुरूह अर्थ को खोलकर मुख्यतः कथाओं द्वारा समझाने की निश्चित चेष्टा की गई है। उपनिषद बाद की रचना है किन्तु इनमें भी कथाओ के द्वारा वेदो के ज्ञान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार इन दोनो प्रकार के साहित्यों में कथाओ की भरमार है। इनके विषयो में वह शङ्का करने का अवसर नही है जो वेदो के विषय में की जाती है, क्योंकि इनकी कथाएँ स्पष्ट और निश्चित हैं। यह बात दूसरी है कि हो सकता है कि विशुद्ध वैदिक अर्थ में इनके अर्थ कुछ और ही निकलते हों। 'ब्राह्मणों में सामाजिक ढङ्ग के या सामाजिक विकास के उपाख्यान पाए जाते हैं जबकि उपनिषदो में दार्शनिक तत्त्वो को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त रूपक।' ब्राह्मण कर्म काण्ड प्रधान रचना है और फलतः उसका जनजीवन से सम्बन्ध बना रहा है और उपनिषद् ज्ञान काण्ड प्रधान रचना है जिससे वह विशिष्ट जन समुदाय की रचना हो गई है। इसी कारण ब्राह्मण साहित्य की प्रकृति अपनी अग्रज वेद साहित्य की प्रकृति के अनुकूल है, जबकि उपनिषदों की प्रकृति समय-क्षेपन के कारण तथा याज्ञवल्क्य आदि मुनियो द्वारा एकेश्वरवाद के प्रचार के कारण (वेद में बहुदेववाद है) वेदों की प्रकृति से नहीं मिलती।

ब्राह्मणों में शतपथ ब्राह्मण कहानियों की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। जलप्लावन की प्रसिद्ध घटना, जो पाश्चात्य साहित्य में भी पाई जाती है, जिससे मानवता का पुनर्निर्माण हुआ, शतपथ ब्राह्मण में ही आई है। ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान, जिसके आधार पर 'चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार, पै दृढव्रत हरिचन्द्र को टरै न सत्य-विचार' की लोकदन्ती प्रसिद्ध है, जन जीवन का एक महत्त्वपूर्ण आख्यान है, जिसमें करुणा और मार्मिकता के साथ-साथ तत्त्व दर्शन के अनुपम सूत्र पिरोए हुए हैं। इस आख्यान में लोक जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।

इसी ब्राह्मण में और भी कई उपाख्यान ऐसे हैं जो उस समय के समाज में ब्राह्मणों, शूद्रों, स्त्रियों आदि की स्थिति का परिचय देते हैं। स्वयं हरिश्चन्द्रोपाख्यान एक ऐसा ही उपाख्यान है। समय पाकर इस आख्यान का रूप भी बहुत कुछ बदल गया है। मूल उपाख्यान का नायक एक ब्राह्मण है जबकि प्रचलित लोककथा का नायक हरिश्चन्द्र क्षत्रिय। ऐतरेय ब्राह्मण में एक ब्राह्मण के लड़के शुनःशेप को बलि देने की व्यवस्था और विश्वामित्र द्वारा उसको बचाने की कथा वर्णित है, जबकि, लोककथा में ईर्ष्यालु और क्रोधी ऋषि विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा लेने के लिए उससे राजपाट माँग लेना है और गुरुदक्षिणास्वरूप उसे शूद्र का काम करना पड़ता है जबकि उसके लड़के रोहिताश्व को साँप काट लेता है और माँ शैव्या अपने मृतक शिशु को लेकर अन्तिम सस्कार के लिए श्मशान रक्षक चाण्डाल हरिश्चन्द्र के पास आती है; हरिश्चन्द्र उससे शुल्क माँगता है; शैव्या विलाप करती है; एक करुणतम दृश्य उपस्थित होता है और अन्ततः ऋषि विश्वामित्र प्रकट होते हैं और हरिश्चन्द्र को ऋण-मुक्त करते हैं।

उपनिषदों में छान्दोग्य, कठ, केन, तैत्तरीय, बृहदारण्यक आदि में अनेक उपाख्यान और प्रसिद्ध संवाद मिलते हैं। इनमें यम और नचिकेता की कथा, रैंकवा गाडी वाले की कथा, सत्यकाम जाबालि की कथा, श्वेत केतु की कथा, सनतकुमार की कथा, यक्ष की कथा आदि प्रसिद्ध हैं। इन कथाओं में तत्कालीन सरल और निष्कपट जीवन की भूरि-भूरि झाँकियाँ मिलती है। साथ ही शूद्रों के साथ सवर्णों के व्यवहार के अशोभन चित्र भी इनमें मिलेंगे, यद्यपि उन्हें कभी इस दृष्टिकोण से उपस्थित नहीं किया गया। सत्यकाम की माता जाबालि ने नौकरानी की अवस्था में जिस व्यक्ति से सत्यकाम को गर्भ में धारण किया उसका नाम भी जाबालि को मालुम नहीं है, न गोत्र ही। वस्तुतः इनका दृष्टिकोण कुछ और ही अर्थात् परमज्ञान की खोज था और उपनिषदों में करीब

करीब सारे आख्यान इस एक ही उद्देश्य के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं। शहरों और गावों से दूर प्रकृति की क्रोड में ऋषि और ब्रह्मचारियो का मुक्त जिज्ञासु जीवन राजाओ और पुरोहितो की छत्रछाया में व्यतीत होता था ; इनका सम्बन्ध जन-साधारण से बिल्कुल नही था।

इस सम्बन्ध में एक विद्वान लिखते हैं—

"दार्शनिक तथ्यों के स्पष्टीकरण होने के कारण इन्हें कहानी कला की कसौटी पर कसना भूल होगा, परन्तु फिर भी इनमें कहानी के कई अनिवार्य गुण और अनपेक्षित दोष विद्यमान हैं। इनमें जगह-जगह प्रेरणा अंश, भावुकता का समावेश, और भाषा का प्रवाह भी है। संवाद शैली की प्रधानता और प्रश्नोत्तरो का जोर है। अरुचिकर और नीरस स्थलो की भी इनमें कमी नही है। ऋषियो ने गहन विचारो की अभिव्यक्ति के लिए ही इन कहानियो को अपनाया है। इन विचारों को स्पष्ट करने के लिए ही आगे चलकर पशु-पक्षी, देव-दानव, पेड पौधे, नदी सरोवर आदि प्रकृति के उपकरणों को भी पात्र बनाने में संकोच नही किया गया।"

पुराण साहित्य—उपनिषदों के बाद पुराणकाल आता है। पुराणों की रचना अनेक दशाब्दियो, किं च शताब्दियो की अवधि में हुई है और १८ प्रसिद्ध पुराणो में से किसी भी पुराण का रचना काल अभी तक निश्चित रूप से, अमुक है, ऐसा नही कहा जा सकता। सभी पुराणों में मिलाकर कथा-साहित्य के हजारों लाखो उदाहरण विद्यमान हैं, और प्रत्येक पुराण एव उपपुराण कथा-कहानियो का एक अक्षय भण्डार है। रामायण, महाभारत और श्री मद्भागवत इनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध पुराण है। इनकी विवेचना करने से पूर्व जातक और पंचतन्त्र का नाम लेना आवश्यक है। जातक बौद्ध साहित्य है जिसमें भगवान बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति से पूर्व हुए उनके अनेक जन्मो (जिनमें मानवेतर योनियो के जन्म भी सम्मिलित हैं) की कथाऐं है। इन जातको की संख्या ५०० है व भाषा पाली है। पचतत्र, जिसे आज कथा साहित्य का जनक कहा जाता है, सस्कृत भाषा में लिखा गया एक सुन्दर कथा सग्रह है जिसमें अनेक कथाऐं बडे कौशल के साथ एक दूसरे के साथ गुम्फित की गई हैं और जिन्हे स्वतन्त्र रूप से भी पढा एव समझा जा सकता है।

पुराण जातक और पंचतंत्र—एक ओर पुराणो में से रामायण महाभारत एव भागवत आदि, दूसरी ओर जातक एव, तीसरी ओर पचतन्त्र—इस त्रिकोण में कौनसा साहित्य पहले का है और कौनसा बाद का और कौनसा

सबके अन्त वा, इस प्रश्न को लेकर काफी वाद विवाद हुआ है, किन्तु कोई निष्कर्ष निकालना सम्भव नही हो सका है। इसका कारण यह है कि इनमें से किसी का भी रचनाकाल अभी तक निश्चित नही हो पाया है। जातको को इनमें से सबसे प्राचीन बताने वाले बौद्ध (अर्थात् ज्ञानवान्) समालोचको की कमी नही है। जिनकी मान्यता है कि पंचतन्त्र पर तो निश्चय ही जातको का प्रभाव है, रामायण महाभारत और भागवत में भी जातको की बातो का उल्लेख है। "सारा रामायण दशरथ जातक व देवधम्म जातक को लेकर रचा गया प्रतीत होता है।" इसी प्रकार "महाभारत की कथाओ में, सिवि, कौटिल्य (शान्ति पर्व), मन्नासुर अशोक (आदि पर्व) एडुक (बौद्ध मन्दिर) रोमक आदि के उल्लेख मिलते है ?" तथा "भागवत तो पीछे की रचना निर्विवाद रूप से है अतः उस पर जातक' का प्रभाव है ही।" आगे जातक के बक जातक, वानरिन्द जातक, कूट जातक पचतन्त्र में मिलते हैं।" पचतंत्र में जो बीच में श्लोक दिए गए हैं उनके पीछे जातक गाथाओ (Verses) की प्रेरणा है।

इसके विपरीत ऐसे भी 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह' वाले समीक्षक हैं जो रामायण महाभारतादि को उपनिषद काल के ठीक बाद की रचना मानते हैं और जातको के उन पर प्रभाव को स्वीकार नही करते। पञ्चतन्त्र भी उनकी दृष्टि में उनकी पहले से चली आती हुई परम्परा की जिसके अनुसार (उपनिषदो में ही) पशुपक्षियो को पात्र बनाना प्रारम्भ कर दिया था, एक कडी है। जातक यदि कही है तो वह एक स्वतन्त्र रचना है जिसके सम-सामयिक अथवा परवर्ती रचनाओ पर लक्षित होने वाले सामान्य प्रभाव को छोड़कर किसी विशेष प्रभाव की कल्पना नही की जा सकती।

यहाँ तक कि पौराणिक कहानियो को आधार मानकर जातक कथाएँ चली होगी, यह मान्यता भी प्रचलित है।

यह विवाद इतिहासज्ञो के लिए काफी महत्व का हो सकता है, किन्तु कहानी का मौलिक रूप जानने में इससे कोई विशेष सहायता नही मिलती। अतः इस विवाद को यही छोडकर हम पौराणिक वर्ग की आख्यायिकाओ को लेते हैं, और तत्पश्चात् जातको और पञ्चतन्त्र की कथाओ को विस्तृत चर्चा करेंगे।

रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत—रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत और अन्य पुराणो का कथा-साहित्य की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। कुछ लोग रामायण को महाभारत के बाद की रचना मानते हैं, किन्तु अधिकाश विद्वान इस बात से सहमत हैं कि रामायण आर्य जाति का आदि काव्य है। आर्य जाति के व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की सबसे पहली लिखित कथा रामायण है।

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो में "उसमें पहले पहल मानव चरित्र को काव्य का विषय बनाया गया।" रामायण का मुख्य भाग ९०० ई० पू० तथा महाभारत का मुख्य भाग ६०० ई० पू० के लगभग लिखा गया होगा।

रामायण एक सुश्रृङ्खल प्रबन्ध काव्य है और यद्यपि अन्य पुराण आदि भी प्रबन्ध का सा भ्रम उत्पन्न करते हैं किन्तु उनमे प्रबन्ध के (एक सूत्रता आदि) अनिवार्य गुण नही है। इनमें अनेक, सैकड़ो, हजारो नही लाखों, कथाएँ या उपाख्यान है जिन्हे किसी न किसी कृत्रिम सूत्र से जोड़ दिया गया हे। अनेक स्थलो पर तो वक्ता (सूत आदि) के नाम के अतिरिक्त दो या अधिक कथाओ में कोई भी समानता नही दीख पडती। इस युग की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें—और केवल इसी युग में कथा की अभिव्यक्ति का आधार केवल काव्य अर्थात् पद्य रह गया है। पद्य की शैली में कथा-काव्य बाद में भो लिखा जाता रहा और अब तक लिखा चला आता है, किन्तु इस युग के बाद गद्य में भी कथाएँ या आख्यायिकाएँ लिखी जाने लगी थी या यो कहना चाहिए कि पुनः लिखी जाने लगी थी, क्योकि वेद, ब्राह्मण और उपनिषद को विशुद्ध पद्य मानना ठीक नही होगा; वह एक प्रकार का प्राचीनतम गद्य काव्य है (और यह बात कितनी विस्मयजनक और आल्हादकारिणी है कि वह गद्य-काव्य अपनी भाषा शैली और अनास् में आजकल के गद्यकाव्य से कितना मिलता-जुलता है!) पञ्चतन्त्र, जातक हितोपदेश व बाद की रचनाओ में गद्य का ही बोल बाला रहा। दूसरे शब्दो में यो कह सकते हैं कि पुराणकाल कथा साहित्य के महासागर में न केवल रचनाओ के बाहुल्य व आभिजात्य के लिए अपितु शैली की दृष्टि से एक बडे विशिष्ट और रमणीक द्वीप के रूप में प्रतिष्ठित है।

यद्यपि यह सही है कि रामायण में मानव चरित्र का अङ्कन पहले-पहल हुआ, किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि अन्य पुराणो के साथ वह भो एक अपूर्व धार्मिक रग लिए हुए है। सच तो यह है कि रामायणकार के शब्दो में 'राम' भी उतने ही ईश्वरावतार हैं जितने महाभारत के नायक कृष्ण और अन्य पुराणो के नायक अन्य देवता। रामायण उसी शृङ्खला की पहली कड़ी है जिसमें आगे चलकर क्षत्रिय और ब्राह्मण धर्म को एक सुदृढ़ भूमिका प्रदान की गई। कदाचित इसका बीज-दर्शन भविष्य द्रष्टा बाल्मीकि ने कर लिया था, जब उन्होने एक अनाचारी और स्त्रैण शासक रावण को ब्राह्मण होने के नाते इतनी प्रतिष्ठा दी और अल्पशक्ति वाले क्षत्रिय रामचन्द्र को लङ्का विजय में जिस नल नील (शूद्र) तथा हनुमानादि (वानर) ने सहायता दी, ऐसी सहायता जिनके बिना उनका लङ्का-विजय करना असम्भव हो जाता; उन्हे कथा के पृष्ठ भाग में रक्खा गया

;है अन्य विषय बहुत से हैं। श्रीमद्भागवत में पुराणो के दस लक्षण गिनाए गए हैं जो अधिक युक्तिसगत प्रतीत होते है—

सर्गोत्स्याय विसर्गश्च वृत्ति रक्षन्तराणि च
वशो वशानुचरित सस्था हेतुरपाश्रयः ॥ (११।७।६)

अर्थात् सर्ग, विसर्ग, वृत्ति (?), रक्षा (ईश्वरावतार), मन्वन्तर, वश, वंशानुचरित, सस्था (धर्म ?), हेतु (जीव) और अपाश्रय (ब्रह्म)।

उक्त पुराणो के अतिरिक्त अन्य पुराणो—जैसे गणेश, विष्णु, शिव, देवी आदि पुराणो की प्रवृत्तियो के अनुशीलन के आधार पर श्री व्यास ने इनकी कथाओ की ये विशेषताएँ गिनाई हैं—(१) प्राचीन सभी प्रचलित कहानियो का संग्रह, (२) कुछ नई कल्पित कहानियो का मेल, (३) ब्राह्मणो की महत्ता (देवत्व) तथा राजाओ के ईश्वराश के सिद्धान्त का प्रचार, (४) सस्कृत भाषा में लिखा जाना, जो लोकभाषा न थी। (५) व्रत, उद्यापन, दानादि के महत्व को प्रचारित करने वाली कल्पित कथाओ की सृष्टि; ऐसी कथाएँ केवल कुछ निश्चित पुराणो में ही पाई जाती हैं, यद्यपि बाद में चलकर करीब-करीब सभी पुराणो का सम्बन्ध अवैध रूप से इनसे जोडा गया है।

एक अन्य विद्वान लेखक ने पौराणिक साहित्य की विशेषताएँ इन शब्दो में लिखी है—

(१) सम्पूर्ण कथानक छन्दो में लिखे गए हैं।

(२) कल्पना और ऐतिहासिक तथ्यो का अद्भुत मिश्रण किया गया है।

(३) कहानी के पात्र अभिजातवर्ग के और ऋषि-मुनि लोग ही अधिक है।

(४) चरित्र का विकास सुन्दर हुआ है और प्रासङ्गिक कथाओ का उपयोग चरित्र को निखारने के लिये ही किया गया है।

(५) तथ्य विश्लेषण और निष्कर्षण की अपेक्षा वृत्त-वर्णन की प्रधानता और श्रेय को प्रेय की अपेक्षा अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति का सूत्रपात।

जातक—जैसा कहा जा चुका है, ये भगवान बुद्ध के द्वारा बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व हुए अनेक जन्मो की कल्पित कथाएँ हैं। इनकी भाषा उस समय की लोक भाषा पाली है। इसका रचना काल स्वय बुद्ध के समय का या उसके कुछ बाद अर्थात् ईसा पूर्व ५०० वर्ष से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक का है, ऐसा अनुमान किया जाता है, किन्तु इसे इसका वर्तमान रूप ईसा की ५ वी सदी में ही दिया गया। इस प्रकार जातक का समय आज से अधिक से अधिक हजार वर्ष पूर्व का है। साथ ही समय-समय पर उपलब्ध होने वाली लोक-कथाओ, पौराणिक आख्यानो आदि को भी इनमें सुविधानुसार सम्मिलित कर

लिया गया है। मूल जातको के साथ जो संख्या में पाँचसौ से कुछ ऊपर हैं, उनके भाष्य जिन्हे जातक अट्ठकथा कहा जाता है, भी सम्मिलित किए जाते हैं। इन अट्ठकथाओ का सम्पादन कदाचित् आचार्य बुद्ध घोष ने किया है। उन्होने सिंहल के भिक्षुसङ्घ की अनुमति से पाली मे अनूदित किया। बौद्ध-साहित्य में जातको की स्थिति इस प्रकार है—
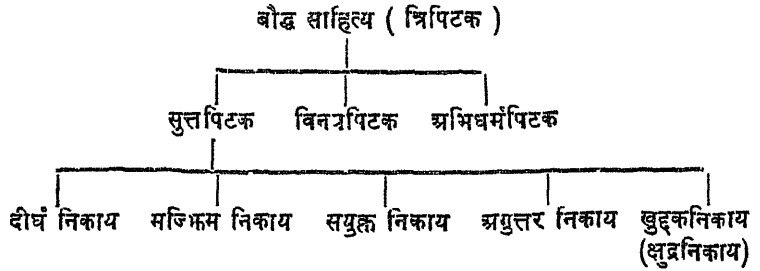
खुद्दक निकाय के १५ भागो में से जातक १० वाँ भाग है।

प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार जातक 'बुद्ध वचन' के ९ भागो में से ७ वाँ भाग है। प्राचीन जातक कथाओ में भी बुद्ध के पूर्व जन्म का वर्णन है किन्तु कही भी बुद्ध को पशु नही बनाया गया है। वे वहाँ सर्वदा आचार्य, अध्यापक या संन्यासियों के रूप में दिखाए गये हैं। जबकि तथाकथित जातक कथाओ में बुद्ध हाथी, घोड़ा, सिंह, कुत्ता, गीदड, चाण्डाल और जुआरी का भी जन्म लेते हैं।

प्रत्येक जातक कथा के पाँच भाग हैं—(१) पच्चुप्पन्न वत्थु (प्रत्युत्पन्न वस्तु), (२) अतीत वत्थु (अतीत वस्तु), (३) गाथा (४) अत्थवण्णना (अर्थ-वर्णन), और (५) समोधान (सम्बन्ध)। बुद्ध के जीवन में घटित घटना का नाम पच्चुप्पन्न-वत्थु है। इस घटना के कारण वे कोई प्राचीन कथा कहने के लिए विवश हुए। अतीतवत्थु वस्तुतः जातक का महत्वपूर्ण भाग है। इसी अतीतवत्थु के बीच में 'गाथायें' दी गई हैं जो पद्य में है और अत्यन्त प्राचीन हैं। अत्थवण्णना में गाथाओं की व्याख्या और उनका शब्दार्थ होता है, और अन्त में समोधान है जिसमें अतीत वत्थु के पात्रो से बुद्ध अपना सम्बन्ध जोडते है, यथा—'संसुमार जातक' में "उस समय संसुमार, देवदत्त और वानरराज तो मैं ही था।" इस प्रकार जातक में गाथा का भाग पद्य में और शेष भाग गद्य में है। जातक ग्रन्थ को २२ निपातो में बाँटा गया है। इन निपातो में से प्रारम्भिक १३ निपातो में गाथाओ की संख्या क्रमशः १, २, ३, ४, ५ आदि चली आती है किन्तु शेष निपातो में से प्रत्येक मे गाथाओं की संख्या बहुत

बढ़ती गई है, यहाँ तक कि अन्तिम जातक 'वेस्सन्तर' में तो गाथाओं की संख्या ७०० से भी अधिक है। ये गाथाएँ (Verses) जातकों के लिए ऊपर की सजावट का काम करती हैं और अपने मूल रूप में गद्य भाग से भी प्राचीन हैं। विण्टर निज के अनुसार जातकों की शैली पाँच प्रकार की है—

(१) गद्यात्मक वर्णन, (२) आख्यान संवादात्मक वर्णन व संवादों का मिश्रित रूप), (३) अपेक्षाकृत लम्बे विवरण जिनका प्रारम्भ गद्य से होता है किन्तु बाद में गाथाओं का भी समावेश हो जाता है, (४) किसी विषय पर कथित वचनों का संग्रह, (५) महाकाव्य व खण्ड काव्य के रूप में वर्णन। वानरिन्द जातक, मट्टी चम्पय जातक, ससुमार जातक, संभिभेद जातक बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें व्यङ्ग सुन्दर है, विदेश वार्तायें है। व्यङ्ग प्रायः मनुष्यजाति पर हैं, जैसे; पशु प्रायः मनुष्यों की कटु आलोचना करते दिखाए गए हैं।

रायस डेविड्स (Rhys Davids) के अनुसार इन जातकों की रचना भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा की गई है, किन्तु इतना होते हुए भी सम्पूर्ण जातक "संसार के किसी भी साहित्य में विद्यमान लोक कथाओं का अधिकतम विश्वसनीय, अधिकतम प्राचीन और अधिकतम पूर्ण संग्रह है।"

बुद्ध कालीन भारत का राजनैतिक, भौगोलिक लौकिक, धार्मिक चित्र स्पष्ट करने वाला साहित्य जातक साहित्य है। हीनयान व महायान बौद्ध सम्प्रदाय की इन दो शाखाओं की शृङ्खला यही साहित्य जोड़ता है। भारतीय सभ्यता के प्रसार की गाथा जातक में सुरक्षित है। उस समय के भारत के १६ जनपदों (असम्प्रदाय जातक), कुरु पांचाल वश युद्ध (चम्पेय्य जातक), मिथिला, श्रावस्ती, बनारस, पाटलिपुत्र, कोशाम्बी आदि नगरों का वर्णन, तक्षशिला आदि विद्यालयों, राजगृह उज्जयनी, मिथिला आदि को मिलाने वाले राजमार्गों, स्थानीय व्यापारों, कला, दस्तकारी, जलयानों से होने वाली यात्राओं, बन्दरगाहों आदि के विशद वर्णन मिलते हैं। लौकिक विश्वासों, समाज में स्त्रियों के स्थान, दासों, सुरापान, यज्ञ में जीव हिंसाओं, व्यापारिक संघों, डाकुओं के गिरोहों, राजवंशों, विभिन्न जातियों, जनतत्वों आदि के वर्णन तात्कालिक भारत के साङ्गोपाङ्ग चित्र उपस्थित करने में जातक कथाओं की देन प्रशंसनीय है। संक्षेप में "भारतीय जीवन का प्रत्येक पहलू यहाँ चित्रित है। राजाओं के जन्म मरण के स्थान पर जब व्यापक दृष्टि से इतिहास लिखा जायगा तब इन कथाओं का मूल्य ज्ञात होगा।"

कुछ अत्यन्त आश्चर्य जनक बातें जातकों में मिलती है—

(१) नक्षत्रों के ऊपर विश्वास रखने की प्रवृत्ति की निन्दा (नक्खत्त

जातक), (२) सत्याग्रह का वर्णन (महासलिव जातक), (३) ऋतु विज्ञान (मश्न जातक) (४) सामूहिक दण्ड (कुक्कुर जातक) ।

यदि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो भी जातक एक मनोरञ्जन और शिक्षाप्रद साहित्य के रूप में हमारे सम्मुख आता है । यह ठीक है कि उसके पीछे एक धार्मिक दृष्टिकोण है और कर्म का सिद्धान्त उसका मूल है किन्तु उसमें पशु-पक्षियो की विभिन्न चर्चाएँ, विभिन्न देश देशान्तरो के वर्णन अत्यन्त सरस व रुचिपूर्ण शैली में उपस्थित किए गए हैं । आश्चर्य यह है कि विश्व के कथा-साहित्य का आदिस्रोत होने पर भी वह अपने में पूर्ण विकसित और साहित्यिक है । दार्शनिको, पोपो तथा धार्मिकों का साहित्य जैसा एकरस और लोकरुचि-विहीन व्यक्तिगत दृष्टियो को लेकर चलता है वह जातक में नहीं मिलता । भारतीय जनता का सच्चा चित्र यहाँ हमें प्राप्त है । हाँ, उनका उपयोग 'स्थविरवाद' के प्रचारार्थ किया गया है । यही कारण है कि जातक-साहित्य इतना आकर्षक बन पडा है । कल्पना और यथार्थ का जैसा सामञ्जस्य जातक-साहित्य में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है ।

परस्पर सम्बन्ध की दृष्टि से जातको और पुराणो तथा पञ्चतन्त्र की चर्चा करदी गई है । यह भी कहा जाता है कि पञ्चतन्त्र के माध्यम से जातक-कथायें छटवी शताब्दी में पहलवी भाषा में पहुँच चुकी थीं । ईसप की कथाओ (Aesop's Fables) पर जातक और पञ्चतन्त्र दोनो के अलग-अलग प्रभाव की चर्चा की जाती है, और यदि यह सिद्ध हो जाय कि जातक पञ्चतन्त्र से पहले की रचना है तो ईसप की कथाओ को भी जातक की कथाओ ने सीधा प्रभावित किया है यह सिद्ध हो जाता है । जातक कथाओ के अनुसार भगवान बुद्ध के आखिरी जन्म का नाम बोधिसत्व (बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध) है और कोई आश्चर्य नहीं कि वही बोधिसत्व 'बारलम एण्ड जॉसेफ' नामक पुस्तक के नायक स्वयं जासेफ हो जो भाषा-विज्ञान के अनुसार बोधिसत्व से बोसत और बोसत से जोसफ और सैण्ट जोसफ[1] बन गए हो । स्वय इसी पुस्तक में जातक की अनेक कथायें विद्यमान हैं ।

सिन्दबाद जहाजी, अलिफलैला और सहस्त्ररजनी चरित (Arabian Nights) की कथाओ पर भी जातक का प्रभाव लिखा जाता है । हूणो ने पूर्वीय यूरोप में जातक कथाओ को फैलाया । श्रीमती रायस डैविड्स के अनुसार

[1] यह भी आश्चर्य नही कि यही जोसफ कालान्तर में योसप और योसप से ईसप बन गए हों । विद्वानों का ध्यान अभी तक जोसफ से ईसप बन जाने की इस प्रक्रिया की ओर नही गया है । —लेखक

शेक्सपियर के 'मर्चेण्ट आफ वैनिस' नामक नाटक में तीन डिब्बियों (Three caskets) और आधा सेर मास (a pound of flesh) के वर्णन में तथा 'ऐज यू लाइक इट' नाटक में बहुमूल्य रत्नो के विवरण में जातक का प्रभाव है। भिक्षु शीलभद्र के अनुसार दांते (Dante) की डिवाइन कॉमेडिया (Davine Comedia) पर जातक का प्रभाव है । इसके अतिरिक्त सांची व भारहुत के स्तूपो की वेष्ठनी (Vailings) पर जातको के अनेक दृश्य खुदे मिलते हैं जोकि १०५ ई० पू० के आसपास के है । लका के ५०० चित्रो, जावा के बोरोवदूर स्तूप, बर्मा के पैगोडा नामक मन्दिरो तथा स्याम के सुखोदय नामक प्राचीन नगर के चित्रो में भी इनके अनेक दृश्य अङ्कित किए गए हैं । ईसा की प्रथम या द्वितीय सदी में लिखा गया अवदान शतक बौद्धसाहित्य के कथा-ग्रन्थो में बहुत ही प्रसिद्ध है । यह गद्य और पद्य दोनो में लिखा गया है । इसमें कुछ ऐतिहासिक उपाख्यान भी हैं । उदाहरणार्थ 'श्रीमती' नामक कथा जिसमें बिम्बसार की रानी 'श्रीमती' का अजातशत्रु की आज्ञा का उल्लङ्घन करके बुद्ध के एक अवशेष की समाधि पर आरती के लिए जाने पर अजातशत्रु के सैनिकों द्वारा बध कर दिया गया, ऐसा चित्रण है। 'दिव्यावदान' भी इसी प्रकार के आख्यानो का एक सग्रह है । इसमें अशोक पुत्र कुणाल के उसकी विमाता द्वारा नेत्रोत्पाटन की करुण कथा भी संग्रहीत है ।

''वैसे तो उक्त सम्पूर्ण बौद्ध कथाओं का उद्देश्य शिक्षा देना ही है किन्तु आर्य शूर कृत 'जातकमाला' बौद्धधर्म के स्वीकृत सिद्धान्तो के प्रचार के लिए लिखी गई मालूम होती है । इसकी कहानियाँ गद्य पद्यमय मिश्रित शैली में लिखी गई हैं। प्रत्येक कहानी का आरम्भ सरल गद्य खण्ड से होता है । इन कथाओ का उद्देश्य आचारमूलक शिक्षा देना है । उनका चीनी भाषा में अनुवाद भी हुआ । इसका समय ४२४ ई० के करीब है ।

बौद्ध कथाओ की विशेषताएँ ये है—

(१) गद्य और पद्य दोनो का एक साथ प्रयोग ।

(२) आकार की सूक्ष्मता ।

(३) अभी तक के विशिष्ट पात्रों के स्थान पर सामान्य पात्रों की सृष्टि । विशेषतः पशु-पक्षियो को पात्र बनाया जाना तथा चरित्रो की सरलता ।

(४) कथानकों का क्षेत्र विस्तार ।

(५) धर्मनीति और सदाचार का प्रचार ।

(६) रूप (शरीर) और स्वरूप (आत्मा) की दृष्टि से जनजीवन की निकटता।

पञ्चतन्त्र—वेद के ऋषि की दृष्टि थी तो लौकिक, किन्तु उसमें प्रकृति के प्रति इतना निकट अनुराग था कि वह मनुष्य के व्यावहारिक जीवन की ओर विशेष ध्यान नही दे सका और सम्पूर्ण वैदिक साहित्य आप्तवाक्यों, स्तुतियो, लोकेषणाओं और आदर्शों तक ही सीमित रहा। उस समय जीवन इतना जटिल नही था। ब्राह्मणो और उपनिषदों में क्रमशः लौकिकता का लोप और अलौकिकता का विकास होता गया। पुराणो ने मनुष्य जीवन को धर्म के साथ एकाकार कर दिया, ऐसा धर्म जिसमें अभ्युदय (लौकिक विकास) गौण और निःश्रेयस (पारलौकिक उत्कर्ष) प्रमुख था। इस प्रकार जीवन धीरे-धीरे बाहरी शक्तियों के हाथ में जा रहा था। पञ्चतन्त्र हिन्दू जाति का पहला साहित्य है जिसमें धर्म को नीति से अलग किया गया और मनुष्य जीवन के व्यावहारिक पक्ष, उसके दैनिक किंच क्षण-क्षण पर होने वाले एक दूसरे के सम्बन्ध को प्रमुखता दी गई। इस प्रकार पञ्चतन्त्र ने एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की। यदि यह कहा जाय कि उसने भारतीय साहित्य की दिशा ही मोड दी तो कोई अत्युक्ति न होगी। कदाचित् यही कारण है कि इसका विश्व की सभी भाषाओ में अनुवाद हुआ और प्रत्येक सभ्य देश ने इसका बडे चाव से अनुशीलन किया।

पञ्चतन्त्र एक छोटी सी रचना है जिसके रचयिता विष्णु शर्मा ने इसका प्रणयन प्रारम्भ में कतिपय राजकुमारो की राजनीति और व्यवहार-कुशलता की शिक्षा देने की दृष्टि से किया। किन्तु बाद में समस्त वर्गों के तरुणो के लिए नीति-शिक्षा की कथाएं इसमें जोडदी गईं। इसके पाँच अध्याय हैं—(१) मित्र-भेद, जिसमें किन्ही कारणो से दो या अधिक मित्रों की मैत्री खण्डित होगई है ऐसा बताया है। (२) मित्र सम्प्राप्ति, इसमें मैत्री पुनः स्थापित हो जाती है। (३) काकोलूकीय; (शत्रु मित्र होने पर भी अविश्वसनीय है) इसमें राजनैतिक दाव पेच और भेदनीति का कथानक के जरिए विश्लेषण है। (४) लब्धप्रणाश (विपत्ति पडने पर विवेक स्थिर रखना) और (५) अपरीक्षित कारक जो सोचे समझे बिना कार्य करते हैं उसका क्या परिणाम होता है। जातको की भाँति इसके पात्र भी पशुपक्षी हैं जो मानवी सवेदनाओं से युक्त हैं। इसकी शैली मनोहर और भाषा सरल है। प्रत्येक कहानी का आरम्भ एक श्लोक से होता है, वह श्लोक पूर्वकथा के अन्त में कहा जाता है तथा उसमें ही आगे आने वाली कथा के मुख्य पात्रों का नाम आ जाता है। इस प्रकार एक कथा का निष्कर्ष दूसरी कथा को प्रोत्साहन देता है। कथाओ की शृङ्खलात्मकता का ऐसा उदाहरण

कदाचित् विश्व-साहित्य में ढूँढे नही मिलेगा। इसमें प्रत्येक कथा स्वतन्त्र भी है और पूर्वापर कथाओ से बडे स्वाभाविक ढङ्ग से जुड़ी हुई भी। इसकी प्रत्येक कथा में वे सभी गुण मिल सकते हैं जो आधुनिक कहानी में द्रष्टव्य हैं। कथाएँ पशु-पक्षियो से सम्बद्ध होते हुए भी अविश्वसनीय नही है, हाँ इन पात्रों में हमें मानवी-प्रकृति का आरोप अवश्य करना पड़ता है, जो लेखक स्वयं चाहता भी है। शुक-सप्तति की कथाएँ भी इसी शैली पर लिखी गई हैं।

पञ्चतन्त्र की परम्परा न केवल भारत में, अपितु समस्त विश्व में अनुवादो के जरिए फैली। मूल पञ्चतन्त्र सस्कृत भाषा में लिखा गया। इसका रचना-काल अनिश्चित है। इस ग्रन्थ की पाँच प्राचीन प्रतियाँ सुनने को आती हैं (सांपडल्वा), जिनमें से एक ५०० या ५५० ई० में अनूदित है। यह अनुवाद जो इस ग्रन्थ का पहला अनुवाद था, ईरानी सम्राट खुसरो के प्रमुख राजवैद्य और मन्त्री बुर्जुए द्वारा ईरान की पहलवी भाषा में कराया गया है। यह अनुवाद अप्राप्य है। इसी पहलवी भाषा के पञ्चतन्त्र का अनुवाद सन् ५७० ई० में सीरिया की प्राचोन भाषा में हुआ, जो १९वी शताब्दी के मध्य में प्रकाश मे आया। इसका सम्पादन और अनुवाद जर्मन विद्वानो ने किया है। पञ्चतन्त्र का दूसरा अनुवाद ८ वी सदी में अरबी भाषा में हुआ तथा दसवी या ग्यारहवी सदी में यूनानी भाषा में हुआ। वहाँ से रूसी व अन्य स्लाव भाषाओ में तथा लैटिन, जर्मन, इटैलियन में, डैनिश, डच आदि मे इसके अनुवाद हुए। १२७० ई० में हैब्रू से लैटिन में एक अनुवाद हुआ जो अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। १४८० ई० में हुआ इसका जर्मन भष्यान्तर भी अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। १५२१ में अरबी से स्पेनिश में इसका पुनः अनुवाद हुआ। १५५२ में इटैलियन भाषा से भी एक अनुवाद हुआ। सन् १५७० में सर टॉमस नॉर्थ द्वारा पञ्चतन्त्र का अग्रेजी भाषा में पहला अनुवाद हुआ जिसका द्वितीय सस्करण १६०१ ई० में प्रकाशित हुआ। १२ वी और १५ वी सदी में इसका अनुवाद फारसी भाषा मे हुआ और तुर्की, पश्चिमी एशिया व मध्य एशिया में इसका काफी प्रचार हुआ। सन् १६४४ में यही कहानियाँ फ्रैञ्च भाषा में पिलपिली साहब की कहानियो (Fables of Pilpay) के नाम से प्रसिद्ध हुईं। १७२४ में इनका फ्रासिसी भाषा में दूसरा सस्करण निकला। पिलपिली साहब का कहानियो का प्रथम अग्रेजी सस्करण १६९९ ई० में हुआ।

भारत में पञ्चतन्त्र की परम्परा इतनी समृद्ध न होते हुए भी काफी महत्वपूर्ण है। ईसा की दसवी सदी में एक जैन यती ने इसके आधार पर काश्मीरी भाषा, शारदा लिपि में एक ग्रन्थ तैयार किया जिसका नाम 'तन्त्रा-

ख्यायिका' है। इसमें मूलनीति कथाओ के अतिरिक्त अनेक अवान्तर कथाएँ प्रक्षिप्त करदी गई हैं। एक पञ्चतन्त्र दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र के नाम से प्रचलित हुआ जिसका कुछ भाग मौलिक है। नेपाली पञ्चतन्त्र मे केवल पद्य भाग रह गया। ईसा की दसवी सदी मे ही पश्चिम भारत मे पञ्चतन्त्र का सादा रूप प्रचारित हुआ। ई० १६६० मे मेघविजय नामक एक दूसरे जैन यती ने पञ्चाख्यानोद्धार नाम से एक ग्रन्थ तैयार किया, जिसका आधार उक्त तन्त्राख्यायिका था। एक पञ्चाख्यान पूर्णभद्र द्वारा रचित भी देखने को मिलता है जिसमे पञ्चतंत्र का आद्योपान्त पुनरावलोकन करके पुनर्सम्पादन किया गया है। डा० एजर्टन ने "पञ्चतन्त्र का पुनरुद्धार" (Panchtantra Raconstructed) नामक एक रचना लिखी है।

हितोपदेश पञ्चतंत्र के ही आधार पर तैयार किया गया एक ग्रन्थ है। सोमदेव के प्रसिद्ध कथा सरित्सागर तथा क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा मञ्जरी मे भी पञ्चतन्त्र नाम की अगभूत रचनाएँ मिलती हैं किन्तु ये सक्षिप्त, निष्प्राण पञ्चतन्त्र हैं जो बाद मे जोडी हुई प्रतीत होती हैं।

संस्कृत के अन्य कथाग्रन्थ—सस्कृत के दूसरे कथाग्रन्थों में गुणाढ्य कृत बृहत्कथा, नारायण कृत हितोपदेश, क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथामञ्जरी सोमदेव कृत कथा सरित्सागर, बुध स्वामी कृत बृहत्कथा श्लोक-सग्रह, वेताल पञ्चविंशतिका, सिंहासन द्वात्रिंशतिका, शुकसप्तति, दशकुमार चरित (दण्डी), वासवदत्ता (सुबन्धु), हर्ष चरित व कादम्बरी (बाणभट्ट) इत्यादि अत्यन्त प्रसिद्ध और उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ हैं। इन ग्रन्थो को पाकर कोई भी भाषा गौरवान्वित हो सकती है। यहाँ हम सक्षेप में इनकी चर्चा करेंगे।

बृहत्कथा—गुणाढ्यकृत बृहत्कथा या बुड्डकहा पैशाची प्राकृत में लिखी हुई एक अत्यन्त प्राचीन और विशालकाय रचना है जो अब सर्वथा अप्राप्य है। इसका रचनाकाल अनुमानतः ईसा की तीसरी और छठी सदी के बीच का है। किन्तु निश्चय रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता, हो सकता है इससे पूर्व का हो।

इसका नायक नरवाहनदत्त व नायिका मदनमजुका है। उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त वेगवती और गोमुख को साथ लेकर यात्रा करता है और बीच में ही वेगवती से अलग हो जाता है। गोमुख की सहायता से मदनमजुका को प्राप्त करके विद्याधरो के देश का राजा बनता है। मानसवेग के अधिकार में पड़ करके भी मदनमजुका अपने सतीत्व की रक्षा करती है। यह मुख्यतः एक एक साहस वृत्तान्त है। कथा मौलिक है और सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों को प्रिय लगने वाली है। पात्रो का अङ्कन बड़ा ही भव्य हुआ है। नरवाहनदत्त व.र

और न्यायी तथा गोमुख नीतिज्ञ, कुशल और चतुर है। नायिका को भी एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

इसी बृहत्कथा के आधार पर ही बुद्ध स्वामी बृहत्कथा श्लोक सग्रह, क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा मञ्जरी और सोमदेव ने कथासरित्सागर की रचना की है।

कथासरित्सागर व अन्य ग्रन्थ—बुद्धस्वामी का "बृहत्कथा श्लोक सग्रह" ईसा की आठवी सदी के आसपास का ग्रन्थ है। इसमें पञ्चतन्त्र और वेताल-पञ्चविंशतिका की कथाएँ भी कुछ अन्तर के साथ समाविष्ट हैं। इसकी भाषा अत्यन्त ही सरल और सर्वजन ग्राह्य है। क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा मञ्जरी' ई० १०६३ के आसपास लिखी गई है। यह गुणाढ्य की बृहत्कथा का सक्षेप मालूम होती है। इसमे बृहत्कथा की उत्पत्ति का भी वर्णन है। नरवाहनदत्त के पिता उदयन की कुछ कथा इसमें दी गई है। इसमें प्रासङ्गिक कथाओ की इतनी भरमार है कि मुख्यकथा उसी में उलझ गई है। ई० १०८१ के आसपास लिखी गई सोमदेव की कृति "कथासरित्सागर" से यह मिलती जुलती है। 'सरित्सागर' की कहानियाँ बड़ी ही रोचक और रमणीय है। यह विशाल ग्रन्थ है तथा अठारह खण्डो में विभक्त है। इसकी सम्पूर्ण कहानियो में सजीवता और नूतनता है। कथाओ के पात्रो म नीति कुशल, चतुर, मूर्ख, धूर्त्त, शठ सभी प्रकार के मनुष्य है। प्रेम-प्रपञ्च सम्बन्धी भो कुछ कहानियाँ है परन्तु उनका उद्देश्य चरित्र निर्माण हो है। समुद्र और स्थल सम्बन्धी यात्रा की अद्भुत घटनाओ का वर्णन भा है। कथासरित्सागर एक समुद्र की भाँति है जिसम अनेको आख्यान रूपी नदियाँ समाविष्ट होती हैं।

हितोपदेश—हितोपदेश पञ्चतन्त्र के आधार और शैली पर लिखी गई नारायण पण्डित की कथा कृति है और सस्कृत के लोकप्रिय ग्रन्थो में है। इसका उद्देश्य भी पशु-पक्षियो की कथाओ द्वारा नीति और उपदेश कथन है। इसका रचनाकाल १० वी सदी माना जाता है।

वेताल पञ्चविंशतिका—वेताल पञ्चविंशतिका में पच्चास कहानियाँ है। इनमें एक शव में बसा हुआ वेताल, राजा विक्रमसेन (विक्रमादित्य) को जादू की विद्या सिखाता है। इसके कई सस्करण है जिनमें से एक बारहवी सदी के बाद लिखी गई गद्यमय रचना शिवदास की मानी जाती है। इसकी कहानियाँ सामान्य जनता में बहुत अधिक प्रचलित हैं। इसकी भाषा सरल है। इसका अनुवाद भारत की सभी भाषाओ में किया जा चुका है। हिन्दी म यह वैताल पचीसी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उद्देश्य विशुद्ध मनोरञ्जन और बुद्धि कौशल की परीक्षा है। इस पर बौद्ध हठयोगियो का प्रभाव परिलक्षित होता है।

किन्तु इसका अन्तिम लक्ष्य पाखण्डी महात्माओं की पोल खोलना है, जो बौद्ध युग के बाद की चीज मालूम होती है।

शुकसप्तति—यह लोक प्रसिद्ध तोता मैना (काम शास्त्र) का प्राचीन सस्कृत संस्करण है। इसमें एक तोता और उसकी स्त्री मैना की सत्तर कहानियाँ हैं। एक शुक योनि का गन्धर्व किस प्रकार एक प्रवासी वणिक मदनसेन की स्त्री को अपनी कहानियों के जरिये धर्म भ्रष्ट होने से बचाता है इसका वृत्तान्त है। इसमें सरल सस्कृत गद्य के बीच बीच में कुछ पद्य प्राकृत में भी हैं। यह ११ वीं सदी का ग्रन्थ है और इसका भी अनुवाद हो चुका है। इसकी करीब तीस कहानियों का अनुवाद महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया था।

सिंहासन द्वात्रिंशिका—धारा नरेश भोज जब विक्रमादित्य के गढे हुए सिंहासन को निकालकर उसमें बैठने लगा तब उसमें लगी हुई ३२ पुतलियों ने उसे ऐसा करने से मना किया क्योंकि उसमें विक्रमादित्य के गुणों का अभाव था। यह ग्रन्थ इन्हीं पुतलियों द्वारा सुनाई गई कहानियों का संग्रह है। 'सिंहासन बत्तीसी' इसका हिन्दी रूपान्तर है।

अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ—श्री छविनाथ त्रिपाठी लिखते हैं—ये अन्तिम तीन कथा ग्रन्थ (वेताल पचविंशतिका, शुक सप्तति और सिंहासन द्वात्रिंशिका) जहाँ सस्कृत और प्राकृत साहित्य के अन्तिमकालीन कथा साहित्य की धारा की दिशा सूचित करते हैं वहाँ अपने अनुवादों द्वारा हिन्दी कथा साहित्य की नीव भी डालते हैं। वास्तव में इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी सस्कृत में कुछ महत्वपूर्ण आख्यायिका ग्रन्थ लिखे गए जिनमें दण्डीकृत दशकुमार चरित, सुबन्धुकृत वासवदत्ता और बाणभट्ट कृत हर्ष चरित और कादम्बरी विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कहा जाता है कि ये सभी ग्रन्थ आख्यायिकाएँ या गद्यकाव्य हैं जो कल्पना की उडान, भावुकता का आतिशय्य, वर्णन विस्तार का बाहुल्य और भाषा शृङ्गार की दृष्टि से उपन्यासों के अधिक समीप और 'सर्व साधारण की कहानी' से दूर हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि उपन्यास और कहानी का यह भेद जो हम आज काफी स्पष्टता से करते हैं वह संस्कृत के उस युग में जिसमें ये रचनाएँ लिखी गई हैं शायद ही किया गया हो। यह ठीक है कि आख्यायिका एक बड़ी रचना थी और कथा अपेक्षाकृत छोटी; जिसमें आख्यायिका की भाँति परिच्छेद नहीं होते थे, (यह भेद काफी पहले से माना जाना प्रारम्भ होगया था) किन्तु यह भेद केवल शास्त्रीय academic भेद ही था (और वह भी सर्वमान्य नहीं), व्यवहार में, इनमें अक्सर परस्पर घपला कर दिया जाता था। यहाँ तक कि एक आलोचक (दण्डी के टीकाकार नरसिंह देव) एक बड़ी रचना (काव-

म्बरी) के केवल एक छोटे से अंश विशेष को आख्यायिका मानते हैं, जब कि दूसरे आलोचक (वामनाचार्य एवं विश्वनाथ कविराज) उसी बडी रचना के समान ही एक दूसरी सम्पूर्ण रचना (हर्ष-चरित) को आख्यायिका मानते हैं। यही दूसरे आलोचक (विश्वनाथ कवि राज) कादम्बरी जैसी बडी रचना को भी कथा ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वासवदत्ता, हर्षचरित और कादम्बरी तथा दशकुमारचरित आदि को इस प्रसङ्ग में विस्मृति या अवहेलना का नही, प्रत्युत् गौरव का पात्र बनाया जाना चाहिए। इनमे से दशकुमारचरित में यात्रा, साहस, आश्चर्यमय क्रियाकलाप और कूट चातुरी की प्रमुखता है। कादम्बरी में विशेषतः भाषा चमत्कार की पराकाष्ठा है। इसमें एव हर्ष चरित में जो पद-लालित्य मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन्ही के स्वनामधन्य लेखक के विषय मैं कहा जाता है "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्"। हर्षचरित में इतिहास और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण है। वासवदत्ता भी इसी परम्परा की एक सुन्दर रचना है।

सामान्य दिशासूचन—विवरण से प्रतीत होगा कि युग की विचार-धाराओं और वातावरण के अनुरूप ही कहानी साहित्य के स्वरूप मे परिवर्त्तन होता रहा है। कथावस्तु, पात्र, भाषा, शैली और उद्देश्य इन सब में यह परि-वर्त्तन लक्षित होता है। वैदिककाल में यज्ञयागादि की कहानियाँ थी जिनके पात्र ऋषि, मुनि थे एवं इनका उद्देश्य सत्यनिरूपण तथा ज्ञान की पिपासा शान्त करना था। पौराणिक काल में जातीय और राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ; क्षत्रियो और ब्राह्मणो की राजदण्ड तथा धर्म की प्रमुखता स्थापित की गई और इन कहानियो में इन्ही से सम्बन्धित लोक चर्याएँ सुरक्षित की गई। बुद्ध काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार पशुपक्षियो के जरिए मनुष्यो को शिक्षा देने के प्रयत्न किए गए। अन्तिम सस्करणों में जादू टोना, साहसिक वृत्तान्तो आदि को प्रधानता दी गई। कथानक की इसी वृत्ति के अनुसार भाषा शैली में भी चम-त्कार का प्रादुर्भाव और उत्कर्ष हुआ।

इसी के साथ हमारा भारत के प्राचीन कथा साहित्य का विवरण समाप्त होता है। इसी कथा साहित्य ने योरोप मे किस प्रकार प्रवेश किया यह हम पञ्चतन्त्र आदि के विवरण में देख चुके है। अब हम उसी का कुछ विस्तृत रूप देखेगे।

योरोप का कथा-साहित्य—योरोप की कहानियो का स्रोत ग्रीक और रोम की लैटिन भाषाएँ है। यूनान में ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हैरोडोटस नामक एक लेखक हुआ है जिसने अपनी पुस्तक में अपने से १०७ वर्ष पहले के कहानीकार 'ईसाप' का उल्लेख किया है। हैरोडोटस स्वयं कहानियाँ लिखता

था। इस प्रकार यूनान के कथा साहित्य का इतिहास काफी पुराना है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इस बात के काफी प्रमाण मिलते हैं कि ईसप की कहानियो, पर जातको का प्रभाव है। अतः यह स्पष्ट है कि कला और साहित्य के अन्य क्षेत्रो की भाँति कहानी-वाङ्मय के सम्बन्ध में भी योरोप भारत का ऋणी है। जातको की रचना ईसा से कोई ५०० वर्ष पूर्व अर्थात् भगवान बुद्ध के जीवन-काल में ही प्रारम्भ हो गई थी और बौद्ध संस्कृति के उषः-काल में ही विदेशी तत्वो ने हमसे सीखना प्रारम्भ कर दिया हो, इसमें कोई आश्चर्य की बात नही। सिकन्दर (३५६—३२३ ई० पू०) के भारत-आक्रमण के बाद तो भारत और यूनान में आदान-प्रदान होने लगा था, यह इतिहास प्रसिद्ध है। प्राचीन यूरोप में 'आरिस्टीडो' द्वारा छः भागो में लिखी हुई 'मिलेसियाका' यूरोप की पहली मौलिक कथा-रचना बताई जाती है। इसका समय ईसा पूर्व दूसरी सदी है। इसमें समाज की एक प्रणय कथा विनोदपूर्ण और श्लेष-गर्भित भाषा में वर्णित है। प्राचीन ग्रीक साहित्य में छठी सदी के लेखक 'लाँगस' की 'डाफनी' और 'चलोई' नामक कहानियाँ हैं जिनमें तत्कालीन पशुपालक समाज के दृश्य दिखाए गए हैं। यूनानी भाषा के दूसरे लेखकों में थियोक्रायस लूशियन और हैलिओडॅरस उल्लेखनीय हैं।

लैटिन भाषा की सबसे पहली सुप्रसिद्ध रचना, जो अंग्रेजी में 'सुवर्ण-गर्दभ' के नाम से अनूदित हुई है, उसका रचयिता ग्रीक कथाकार एप्यूलियस बताया जाता है। अन्य रचनाकारो में 'सत्रिकन' नामक कहानी के लेखक 'पैट्रोनियस' ईसा की चौथी शताब्दी के पैलेडियस व सिनेशियस हैं। इनकी रचनाओ में तत्कालीन रीति-रिवाजो का सूक्ष्म परीक्षण किया गया है।

इटली—आधुनिक कहानी का जनकत्व उत्तरी इटली को प्राप्त है। संस्कृत के 'नव' या 'नवल' शब्द ही से लैटिन भाषा के 'नॉवेलेस' अथवा 'नॉव्स' तथा अंग्रेजी के 'नॉविल' शब्दों की उत्पत्ति हुई है। (इस सम्बन्ध में यह सूचित करना अप्रासङ्गिक न होगा कि मराठी की 'नवल कथा' भी कहानी उपन्यास परिवार की ही एक काव्य विधा है।) ई० १३ वी सदी में 'इलनैबेलिनो' नाम से एक नवल कथा पौराणिक वृत्तान्तो के आधार पर लिखी गई, जिसमें तत्कालीन पुरोहित वर्ग आदि व सामाजिक रीतिरिवाजों का चित्रण था। पहला कथाकार फ्रांसिस्को हुआ जिसकी 'डा० क्यूमैण्टिद अमूर' (१३४८) कहानी प्रसिद्ध है। करीब इसी समय इटली में जिओवैनी बोकाशियो (Boccacio) हुआ जिसने जीवनचरित श्रेणी के छोटे उपन्यासो के आकार की अनेको कथाएँ लिखी। पश्चिम में वह अर्वाचीन कथाओ का पिता माना जाता है। उसकी रच-

नाओं में आधुनिक वस्तु-विधान के अंकुर मिलते हैं, यद्यपि उसके ,डिकैमरो' (Decameron) नामक सग्रह में सग्रहीत १०० कहानियों को अत्यन्त तल स्पर्शी जाँच करने पर प्रो० बाल्डविन (Prof Baldwin) इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आजकल के अर्थों में उनमें से केवल दो कहानियाँ ही वास्तविक कहानियाँ कही जा सकती हैं। हिन्दी में, तीन-चार साल हुए बोकाशियो की कहानियों का अनुवाद श्री मधुकर ने प्रस्तुत किया है। सच्चे ही फि ओरैटिनी (जिसने ५० कहानियाँ लिखी), मॉशुसियो (जिसने व्यभिचारी स्त्रियों और पुरुषों का चित्रण किया है), कॉनंजेनो, ब्रन्हिश्रो, बैंडिली आदि अन्य प्रसिद्ध कहानीकार हुए है। इनमें से बैंडिलो सर्वश्रेष्ठ कलाकार माने जाते हैं। इनकी कहानियों का अनुवाद यूरोप की सभी भाषाओं में हो चुका है। उन्नीसवी सदी के कथाकारों में मन्झोनी (१८७३), वर्गा व सेराओ (१८५६) उल्लेखनीय हैं।

ओल्ड व न्यू टैस्टामैंट—योरोप के प्राचीन कथा साहित्य में ओल्ड टैस्टामैण्ट व न्यू टैस्टामैण्ट तथा मिस्र का साहित्य उल्लेख्य है। ओल्ड व न्यू टैस्टामैण्ट ईसाइयों के सुप्रसिद्ध धर्म ग्रन्थ हैं और कथाओं के अच्छे संग्रह हैं। इनकी मूल भाषा यहूदी (हैब्र्) है। इनमें से न्यू टैस्टामैण्ट में कहानियों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं जिनमें से "अपव्ययी पुत्र की कथा" जो ५०० शब्दों की रचना है, की चर्चा की जा सकती है। यदि इस कहानी के धार्मिक प्रसङ्ग को छोड दिया जाय तो हमें मानना पडेगा कि इसकी कथावस्तु अत्यन्त रोचक है। इसमें तीनो पात्रो का चरित्रचित्रण अत्यन्त विशद रीति से हुआ है, और इसमें मानव प्रकृति का गम्भीर ज्ञान परिलक्षित होता है। इन कहानियों की शैली की सी निश्छल सरलता अन्यत्र दुर्लभ है।

मिस्र—मिस्र की प्राचीन गाथाएँ पत्थरों पर खुदी हुई हैं। उनसे कहानी के क-ख-ग का परिचय मिलता है। 'कुछ विद्वानों का मत है कि मिस्र देश में कहानी रूपी लता सर्वप्रथम लहलहाई। आधुनिक कहानियों का सादृश्य अधिकाश में वहाँ की सुप्रसिद्ध कहानी अनपू और बाटा में देखा जा सकता है जो वहाँ के पञ्चम राजवंश के समय लिखी गई थी। उसमें दो युवक एक ही बालिका से प्रेम करते हैं और उनमें से एक के साथ उस बालिका का विवाह हो जाता है। दूसरे प्रेमी के मनोभाव एवं कार्य को लेकर इस गल्प की रचना हुई है।'

फ्रान्स—चौदहवीं सदी तक फ्रान्स में पौराणिक आख्यानों का बोलबाला

रहा। फिर इटली की कहानियो के अनुवाद प्रस्तुत किए गए। १५ वी और १६ वी सदी में काल्पनिक कहानियो का सूत्रपात हुआ। इस समय के लेखको में बोनालेचूर, बैरोआल्दे प्रसिद्ध हैं। १६१० में रोबैल प्रथम ऐतिहासिक कथाकार हुआ जिसने पहली प्रणय कथा लिखी। गौम्बरव्हिल (१६७४) व गौबेल्द स्कुदेरी (१७७०) तथा फ्रॉयेन दो स्त्री लेखिकाएँ हुई, फोतेन, फैनेलन, लैसेज (जिनोदी), मैरिव्हो (मानवी वृत्तियो के अभ्यास) वगैरह प्रसिद्ध फ्रान्सिसी लेखक रहे। १८३० से काल्पनिक कथाओ का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ। अर्वाचीन काल के सुप्रसिद्ध कथाकारो में अलक्जैण्डर ड्यूगा, फ्लॉवेर (१८५६), जोला, विक्टर ह्यूगो व मोपासाँ उल्लेखनीय है। इन आधुनिक कहानीकारो ने कहानी के तन्त्रनिर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

अंगरेजी कहानी का विकास :—अंगरेजी भाषा के समान अगरेजी साहित्य ने भी ससार के साहित्य को बहुत हद तक प्रभावित किया है। अगरेजी कहानी की छाप हिन्दी पर ही नही शेष भाषाओं की कहानियों पर भी स्पष्ट है।

अँगरेजी कहानी का इतिहास ८५ वर्षों से अधिक का नही है। इसमें भी कहानी का मुख्यतया विकास १९०० ई० के बाद हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अंगरेजी कहानी साहित्य अमरीकी साहित्य का ऋणी नही तो कम से कम परवर्त्ती अवश्य है। अंगरेजी साहित्य के एक अधुनातम समीक्षक कैंड वी० मिलैट ने यह सिद्ध करने की चेष्टा अवश्य की है कि अगरेजी कहानी में अमरीकी कहानी की भाँति उर्वरता, यान्त्रिकता एव सूझ का अभाव है, किन्तु इससे यह प्रमाणित नही होता कि अमरीका ने इंगलैण्ड की कहानी को प्रभावित नही किया है, न वे इस निष्कर्ष की सिद्धि करना चाहते है। इतना होने पर भी अन्य भाषाओ के साहित्य की भाँति कहानियो के बीज अगरेजी साहित्य में बहुत पहले से दिखाई देने लगे थे। बाइबिल के अनुवाद तो बाद में हुए थे किन्तु अङ्गरेजी में गद्य का प्रणयन १६ वीं सदी के मध्यान्तर से फिलिप सिडनी द्वारा प्रारम्भ हुआ। उसके बाद ही कथा साहित्य का, जिसमें उपन्यास आदि भी सम्मिलित हैं; प्रणयन प्रारम्भ हो गया था। जॉनलिली (१५५४–१६०६) ने १५७६ में 'यूफ्यूस' नामक प्रसिद्ध रचना लिखकर कथा साहित्य की परम्परा का प्रवर्त्तन किया। वे एलिजाबेथ युग के प्रसिद्ध नाटककार थे और यदि शेक्सपियर इनके ठीक बाद नहीं आ जाते तो सुखान्त नाटककार के रूप में ये अमर हो जाते। उन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक 'यूफ्युस एण्ड हिज इङ्गलैण्ड' प्रकाशित कराई। इन दोनों रचनाओं में कथावस्तु की न्यूनता होते हुए भी सामाजिक

आचरण; आचार विचार व नैतिक आदर्श की चर्चा भरपूर है। लिली ने अपनी यह दूसरी पुस्तक रमणी जाति को समर्पित की थी और उनमें यह बडी लोकप्रिय हुई।

दूसरे लेखक रौबर्ट ग्रीन (१५६०—९२) हुए जो नाटककार, पुस्तिकाओ के लेखक और कवि थे। इन्होने १५८५ ई० मे पैण्डोस्टो' नाम से निम्न श्रेणी के मनुष्यो से सम्बन्धित लोकप्रिय कथाओ को लेकर स्फुट रचनाएँ कीं। इनमें दुष्टो तथा लम्पटो की वञ्चकता और प्रपञ्च की कथाएँ हैं। इसी परम्परा के दूसरे लेखक टॉमस लाज (१५५८—१६२५) हुए जिनकी 'रोसलिण्ड' (१५९०) नामक कथा-रचना प्रसिद्ध है। इन्होने यथार्थवादी रचनाएँ भी की।

चौथे लेखक टॉमस डिलोनी (१५४३–१६००) हुए जिनकी रचना 'जैक ऑफ न्यू बैरी' में जुलाहाओ और 'जैंटलक्राफ्ट' में जूते बनाने वालो की कथाएँ सग्रहीत है। इन कथाओं में स्पष्टता तथा यथार्थवादिता है। टॉमस डैकर ने भी लन्दन के निम्न वर्ग का चित्रण 'गुलस हार्नबुक' में किया है। इन कथाओ में कोई समुचित विधान नही है। कहानी के विभिन्न स्थलो में सामञ्जस्य और एकसूत्रता का अभाव है।

'टॉमस परम्परा' के चौथे लेखक टॉमस नैश (१५६७–१६०१) थे जिन्होने 'जैक विल्टन' नामक सग्रह में कथाओ को सामञ्जस्य प्रदान किया। इन्होने शूरवीरो की कथाओ का सकलन किया। इस संग्रह में लेखक के निजी अनुभव भी जुड़े हुए है। यह उपन्यास शैली की प्रथम पुस्तक है। अंग्रेजी में कथाओ का जनक भी नैश को ही मानना चाहिए।

इसके उपरान्त करीब तीन सौ वर्षों तक मुख्यतः उपन्यासो का प्रणयन हुआ जिनकी चर्चा अप्रासगिक है। इस समय की प्रवृत्ति के आधार पर यह नियम बनाया जा सकता था कि सफल उपन्यासकार सफल कहानीकार नहीं हो सकता। इस नियम के अपवादस्वरूप सर वाल्टर स्कॉट, चार्ल्स डिकन्स, जार्ज इलियट का नामोल्लेख किया जा सकता है। स्कॉट (१७७१–१८३२) मुख्यतः एक उद्भट ऐतिहासिक उपन्यासकार थे (इन्हे अंग्रेजी साहित्य में वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दी में वृन्दावनलाल वर्मा को है), किन्तु उनकी 'वाण्डरिंग विलीज टेल' प्रसिद्ध कहानी है। चार्ल्स डिकन्स (१८१२–७०) ने 'ए चाइल्ड्स ड्रीम ऑफ ए स्टार' कहानी लिखी। जार्ज इलियट के उपनाम से लिखने वाली मेरी ऐन० इवान्स (१८१९–८०) का कहानी-संग्रह 'सीन्स ऑफ क्लैरिकल लाइफ' १८५७ में प्रकाशित हुआ। चार वर्ष बाद इसी लेखिका ने अपना एक लघु उप-

न्यास 'सिलास मार्नर' के नाम से प्रकाशित कराया जिसमें कहानी की भी एक सवेदना उपलब्ध होती है ।

उपन्यासो के एक सम्पूर्ण युग के पश्चात् १९ वी सदी के करीब-करीब मध्य से कहानी का विकास होना प्रारम्भ हुआ । दूसरे शब्दो में, जो कहानी प्रारम्भ में चलकर उपन्यास का रूप धारण कर चुकी थी, वही पुनः अपने मौलिक स्वरूप में आने लगी ।

कहानी कला के प्रारम्भ-कर्त्ताओ में सबसे पहले हेनरी जेम्स (१८४३-१९१६) का नाम लिया जा सकता है जिनकी ४०,००० शब्दो की लम्बी भूत की कहानी 'द टर्न ऑफ द स्क्रू' मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए प्रसिद्ध है। इनका जन्म अमरीका मे हुआ था, किन्तु ये प्रथम महायुद्ध के बाद इङ्गलैण्ड में आकर बस गये थे । इससे पहले ये अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ लिख चुके थे। इसीसे इनका उल्लेख अमरीका में कहानी के विकास वाले प्रकरण मे किया जा रहा है । उनके कहानी-सग्रहो में ए पैशनेट पिलग्रिम' (१८७५), टर्मिनेशन्स' (१८९५) और 'द टू मैजिक्स' (१८९८) उल्लेखनीय है । ये उपन्यासकार थे । ये कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक बारीकियो के सर्वप्रथम प्रयोगकर्त्ता और कहानी कला के विधायक के रूप में अमर रहेगे ।

रौबर्ट लुइ स्टीवेन्सन—(१८५०-१८९४) अभी तक चले आते हुए तीन भागो वाले उपन्यास (Three decker Novels) कम लोकप्रिय होने लगे थे और छोटी कथाओ को माग होने लगी थी । इङ्गलैण्ड मे इस माँग की पूर्ति के लिए आगे आने वाले स्टीवेन्सन थे जो उपन्यासकार भी थे। १८८२ में इन्होने 'न्यू एरेबियन नाइट्स' लिखा, जिसके बाद 'किडनैप्ड' (१८८६) 'द ब्लैक एरो' (१८८८) द मास्टर ऑफ बैलेण्ट्राय' (१८८९) और 'द रोङ्ग बॉक्स' (१८८९) प्रकाशित हुए । अपनी 'डॉ० जैकील एण्ड मि० हाइड' नामक विश्व प्रसिद्ध लम्बी कहानी म उन्होने मानव स्वभाव में एक साथ द्वैतरूप म चलते रहने वाले शिव और अशिव के सङ्घर्ष को प्रतीक कथात्मक रूप दिया है ।

आगे काल क्रम से जिन कहानी लेखको का उल्लेख किया जायगा उनमें से अधिकाश उपन्यास लेखक भी है । किन्तु यहाँ उनकी कहानियो की ही चर्चा की जायगी । जिन लेखको ने कहानियाँ नही लिखी हैं किन्तु उपन्यास लिखे है उन्हे महत्त्वपूर्ण होते हुए भी छोड़ दिया गया है ।

जौसैफ कॉनरेड—(१८५७—१९२४) मूलतः पोलैण्ड निवासी थे। इन्हे समुद्री जीवन का अच्छा अनुभव था । इनकी रचनाओं में साहस वृत्तान्त तो है ही, पात्रो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है । इस प्रकार इनमें स्टीवैन्स

और हैनरी जेम्स का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। एक आलोचक के अनुसार इनमें भाषा शैली, देशकाल और भाव, इन तीनो का रोमान्स देखने को मिलता है। वे चरित्राङ्कन और चित्रशैली के अद्वितीय और अनूठे पण्डित हैं। वे यहाँ तक बताते हैं कि क नामक पात्र किस प्रकार यह कल्पना करता है कि ख ग के बारे में क्या सोचता है।" टेल्स ऑफ अनरैस्ट" (१८९८) इनका "ए सैट आफ सिक्स" नामक कहानी संग्रह १९०८ में प्रकाशित हुआ। १९१५ में "विदिन द टाइड्स" नामक इनका अन्य कहानी संग्रह निकला। दस वर्ष बाद "टेल्स ऑफ हियरसे" नाम से इनकी कहानियाँ इनकी मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुई।

सर आर्थर कौनन डॉयल—(१८५९–१९३०) की कहानियों को लेकर एक अलग साहित्य बन गया है। इन्होंने अधिकांशतः कहानियाँ ही लिखी। वे सस्पैंस (कुतूहल) की रक्षा और चित्रण में निष्णात थे, चाहे वह व्यक्तियों का हो या स्थानों का। इनकी शर्लक होम्स (या शैलाक्ष होम) नामक प्रसिद्ध कल्पित जासूस पात्र की अद्‌भुत मेधा से ओतप्रोत जासूसी कहानियाँ जगत् विख्यात हैं।

विलियम वाइ मार्क जैकब्स (१८६३—१९४३) ने समुद्र के घाटों, रात में पहरा देने वालों और समुद्र से आने वाले मनुष्यों के साथ जो भी अविश्वसनीय घटनाएँ घटित हो सकती हैं उनके विषय में लिखा है। मैनीकार-गोज (१८९६), लाइट फ्रेटस (१९०१) आदि उनकी रचनाएँ हैं। ये डिकन्स की भाँति हास्यरस के लेखक हैं। इन्होंने 'द वैल एण्ड द मंकीज पॉ" नाम से अति-प्राकृत कथावस्तु वाली रचनाएँ भी की हैं।

क्यू के उपनाम से लिखने वाले सर आर्थर क्विलर काउच (१८६३–१९४४) ने बहुत कहानियाँ लिखी, जिनमें रोचकता और कोशल भरपूर है। इनके संग्रहों में 'डैड मैन्स रॉक" (१८८७), पाइजन आइलैण्ड, जिसे बच्चे, बूढ़े सभी रुचि से पढ़ते हैं और "द स्प्लैण्डिड स्पर" (१८८९) हैं।

आर्थर मैशेन—(१८६३—१९४७) कहानी तन्त्र की दृष्टि से कहानी के भविष्य निर्माताओं में से थे। यदि हम गलती से किसी दूसरी दुनियाँ में पहुंच जावें तो हमें क्या अनुभव होगा, आर्थर मैशेन ने इसी विषय पर अधिकतर लिखा है। उनकी रचनाएँ भयानक रस से ओतप्रोत हैं।

पुराने खेवे के कहानीकारों में रडयार्ड किपलिंग (१८६५–१९३६) का व्यक्तित्व बड़ा बलिष्ठ और उत्तेजक है। कहानी-साहित्य उनका चिर ऋणी रहेगा। अमरीका के प्रसिद्ध लेखक ओ हेनरी को कहानीकला के गुरुओं में माना जाता है। यह कहा जाता है—अमरीका के पत्रों में लिखने वाले प्रत्येक दस

कहानीकारों में से नौ कहानीकार ओ हेनरी की नकल करते हैं। वही ओ हेनरी किपलिंग की शैली का अधिकांश में ऋणी है। कहानी के आकस्मिक श्रीगणेश की शैली हेनरी ने इन्ही से ली है जो उन्होने 'प्लेन टेल्स फ्रॉम द हिल्स' और अन्य परवर्ती रचनाओ में प्रयुक्त की है। यहाँ तक कि जहाँ कहानी अन्यथा सम्पूर्ण प्रतीत होती है वहाँ भी कुछ वाक्य अनावश्यक रूप से जोड देने की जो प्रवृत्ति उनको 'प्लेन टेल्स' में काफी दिखाई पडती है, जिसे किपलिंग ने अपनी बाद की रचनाओ में त्याग दिया है, वही प्रवृत्ति हेनरी की 'द गिफ्ट ऑफ द मैजी' नामक सर्वश्रेष्ठ रचना में कायम दिखाई पडती है।

किपलिंग लाहौर म्यूजियम के अध्यक्ष का लडका था और उसका जन्म बम्बई में हुआ। डैवन शायर में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह १८८२ में भारत लौट आया। १८८८ ई० में उन्होने छः उपन्यासों के साथ 'प्लेन टेल्स' की रचना की। १८९० में लिखी गई उनकी 'द लाइट दैट फेल्ड' उनकी उपन्यास और कहानी के बीच की रचना है। १८९१ में उन्होने फिर कहानिया लिखना प्रारम्भ कर दिया और 'लाइव्स हैण्डीकैप' और 'मैनी इन्वैन्सन्स' (१८९३) उनके कहानी सग्रह निकले। उनकी अधिक प्रसिद्ध कहानियाँ जङ्गली जानवरो और शिकार से सम्बन्धित है। १८९४ में 'द जंगल बुक' और १८९५ में 'द सैकिण्ड जगलबुक' उनकी इसी वर्ग की रचनाएँ है। १८९८ में उन्होने फिर 'द डेज वर्क' नाम से कहानियाँ लिखी। १९०१ मे भारतीय जीवन के चित्रण के अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'किम' के एक वर्ष बाद उन्होने फिर 'जस्ट सो स्टोरीज' नाम से जंगल की कहानियाँ और तीन वर्ष बाद 'ट्राफिक्स एण्ड डिस्कवरीज' नाम से अन्य कहानियाँ दी। 'पक ऑफ पुक्स हिल्स' (१९०६) और 'रिवार्डस एण्ड फेयरीज' (१९१०) उनकी अन्तिम रचनाएँ हैं।

किपलिंग की शैली सरल होते हुए भी तीखी, स्पष्ट होते हुए भी प्रभावोत्पादक, मनोरञ्जक होते हुए भी विचारोत्तेजक है। उसका दृष्टिकोण सर्वथा स्वतन्त्र न होने पर भी उदार है।

हर्बर्ट जॉर्ज वेल्स—(१८६६—१९४६) अपनी वैज्ञानिक कथावृत्त वाली कहानियों के लिए प्रसिद्ध हैं। वे एक विज्ञान के विद्यार्थी थे और उन्होंने जिस ढङ्ग से अपनी विशुद्ध कल्पना के आधार पर वैज्ञानिक सम्भावनाओ को कहानियों का रूप दिया है उन पर सहज में अविश्वास नही किया जा सकता। उनकी इन रचनाओ में 'द टाइप मैशीन' (१८९५), 'द आइलैण्ड ऑव डा. मोरो' (१८९६), 'द इनविजिबल मैन' (१८९७), 'द वार ऑव द वर्ल्ड्‌स' (१८९८), 'व्हैन द स्लीपर वेक्स' (१८९९), 'द फर्स्ट मैन इन द मून'

(१९०१), 'द फूड ऑव द गौड्स (१९०४), 'इन द डेज ऑव द कॉमैट' (१९०६), 'द वार इन द एयर' (१९०८) है, जिनमे उपन्यास भी सम्मिलित है। वैल्स ने अब अपना ध्यान सामाजिक कल्याण की ओर मोड़ा। उनकी इस वर्ग की रचनाओ में 'द व्हील्स ऑफ चान्स' (१८९६), 'लव एण्ड मि. लैविशम' (१९००), 'किप्स' (१९०५) आदि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने १९२८ तक कथा-साहित्य को रचना की है। इनकी रचनाओ मे सामाजिक स्थितियाँ, समस्याओ आदि के प्रति एक नया दृष्टिकोण मिलता है; यहाँ तक कि इन्हे इस युग का रूसो भी कहा गया है। इनकी शैली में डिकन्स की लोकप्रियता भी है।

एच. एच. मुनरो 'साकी'—(१८७०—१९१६) एक कुशल लेखक थे। उनकी 'द क्रोनिकल्स ऑव क्लोविस' (१९११) में उनकी व्यंग शक्ति वाक्य-पटुता और हास्य प्रधान चरित्र-चित्रण दर्शनीय है। १९१४ में उनका दूसरा कहानी संग्रह 'बीस्ट्स एण्ड सुपर बीस्ट्स' प्रकाशित हुआ। मुनरो की लोकप्रियता युद्ध में उनकी मृत्यु के पश्चात् हुई। अभी तक कहानी न तो एक साहित्यिक रूप ही ग्रहण कर पाई थी, न प्रभाववाद का अथवा, मुनरो की कहानियो की भाँति, व्यग का एक साधन। अभी तक कहानियों के द्वारा साहस या रहस्य भरी बातें कही जाती थी जैसे कि डब्लू॰ जे॰ लॉक की 'द जॉयस एड्वैंचर ऑव एरिस्टीडी' में देखने को मिलती थी, या लियोनार्ड मैरिक की 'व्हाइट पैरिस लापड' (१९१८) की भाँति विनोद, करुणा या विदेशी यात्रा के वृत्तान्त लिखे जाते थे। किन्तु मुनरो ने चाहे कितने हो कौशल से असम्भव हास्यपूर्ण स्थितियो का चित्रण किया हो, उनकी रचनाओ में व्यवसायमान टोरी-सभ्यता की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है।

आर्थर मौरिसन—बड़े योग्य और कल्पना प्रवण लेखक थे जिन्होने लन्दन के निम्नतम श्रेणी के लोगो के जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया। उनकी "टेल्स ऑफ मीन स्ट्रीट्स" (१८९४) और ए चाइल्ड ऑफ द जागो (१८९६) जैसी सुन्दर किन्तु अनादृत रचनाएं अब पुनः प्रकाशित कराई जा रही है जिससे उनकी कलात्मकता सामने आ रही है।

गिलबर्ट कीथ चेस्टरटन—(१८७४–१९३६) मुख्यतः एक निबन्धकार थे; कौनन डॉयल की भाँति इन्होने कुछ जासूसी कहानियाँ भी लिखी है जिनका नायक डॉयल के शरलॉक होम्स की भाँति "फादर ब्राउन" एक कल्पित अनुभवी जासूस है।

पुराने खेवे की सीमा रेखा पर हम "कनिङ्हम ग्राहम" को खड़ा मान सकते हैं। इन्हे अक्सर भुला दिया जाता है किन्तु इनकी विचारधारा के समान

ही इनकी शैली अनूठी है। इनकी कहानियों में सर्वश्रेष्ठ सर्जन के बीज अवश्य विद्यमान नही है, प्रत्युत् ये कहानियाँ एक व्यापक साहसोद्यमी मानव जीवन के अंश प्रतीत होती हैं जिनमें बूर्जवापन के प्रति घृणा प्रकट की गई है और इङ्गलैण्ड के जागरण काल की खौलते हुए खून की जीवट वृत्ति के इस काल में हुए ह्रास के प्रति रोष। किन्तु उनकी रचनाएँ केवल विद्रोही विचारों और अनुभवो की अभिव्यक्ति मात्र के रूप में ही महत्वपूर्ण और रुचिकर नही हैं। उनमें विधान की शिथिलता के बावजूद भी पर्यवेक्षण का आर्जन और तीखापन है, विवरण देने का जोश है, और शैली की सजीवता, यथातथ्यता, गम्भीर लय और चित्रमयता है।

विलियम सॉमर सैट मॉमहम--(जन्म १८७४) से नए खेवे की कहानी प्रारम्भ होती है। दुर्भाग्यवश ये बहुत कम आलोचक-प्रिय हो पाये। इन्होने प्रारम्भ में लन्दन के यथार्थ जीवन को और बाद में चीन और मलाया की पृष्ठ-भूमि मानकर रचनाएँ की। १९३४ में उनका कहानी-सग्रह 'आल्टुगैदर" प्रकाशित हुआ, इसके अतिरिक्त अन्य संग्रह भी निकले। इनकी रचनाओ में एक दर्द है, जो जीवन का अविच्छिन्न अङ्ग बन गया है। जीवन-रस से हीन होने पर भी इनकी कहानियाँ कला की दृष्टि से पूर्ण है। फ्रान्स के वातावरण से प्रभावित होने के कारण इनमें भावुकता का अभाव और नग्न यौनवाद का बोलबाला है जिससे अँग्रेज पाठक चिढता है। इनका चरित्र चित्रण और दृश्यो का वर्णन उस पीढी के लिए आदर्श है।

ए० ई० कॉपर्ड—(जन्म १८७८) ने प्लाट के दृष्टिकोण से लिखा कम पर लिखा खूब। इन्हे कहानी के गम्भीर आलोचको तक की प्रशंसा मिली और इनकी रचनाओ से निरन्तर कहानी कला सम्पूर्णता को प्राप्त होती चली गई। १९२१ में प्रकाशित "आदम एण्ड ईव एण्ड पिञ्च मी", "माई हण्ड्रेड्थ स्टोरी" (१९३१) और सॅलेक्टेड टेल्स" (१९४६) इनके अनेक कहानी सग्रहो में से है।

बडे कुशल और उत्कृष्ट कोटि के उपन्यास लिखने वाले एडवर्ड मौरगन फोर्स्टर (जन्म १८७९) भी कॉपर्ड की भाँति कथावस्तु में बडे सूक्ष्म कौतूहल के पण्डित हैं। "सॅलेशियल ओम्नीबस" (१९११) और "द एटरनल मोमैण्ट" (१९२८) इनकी कहानियों के दो सग्रह है।

सैंट जॉह्न लूकास—(१८७९–१९३४) ने वैसे तो ईडन फिलपोट्स और कटक्लिफ हाइन की परम्परा में लिखा जो प्राचीन कहानीकार हैं, किन्तु उनकी कहानियों के विस्मृति के गर्भ में चले जाने का कारण यह नही है। 'सेन्ट्स, सिनर्स एण्ड द युजुअल पीपुल' (१९१२) और 'द लेडी ऑव द कन्ना-

रीज' (१६१३) में संग्रहीत इनकी कहानियो में सुप्त-व्यङ्ग है और ये रोचकता के कारण सुपाठ्य हैं। इनके साथ ही स्टेसी औमोनियर और उपरोक्त लियोनार्ड मैरिक की कहानियाँ भी, जो तत्व और रूप की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, पढने योग्य हैं।

पैलहम ग्रैनविल वोडहाउस—(जन्म १८८१) हास्यरस की बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते है, कदाचित साहित्यिक दृष्टि से इनसे आगे बढना कठिन है। 'द पोट हण्टर्स' (१६०२) से लेकर 'फुलमून' (१६४७) तक की इनकी रचनाओ में भाषा की कथावस्तु से समञ्जसता, एक साफ, सुव्यवस्थित घटनाचक्र और कौशल से गुम्फित शैली के दर्शन होते है इनकी लोकप्रियता इतनी अधिक है कि इनकी असली देन (भाषा-निर्माण और शब्दचयन) को हम भूल जाते है।

जेम्स जायस—(१८८२–१६४१) इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ मौलिक उपन्यास लेखक है। 'डब्लिनर्स' (१६१४) में इनकी प्रारम्भिक कहानियाँ सग्रहीत हैं जो मोपासाँ की भाँति सुस्पष्ट और प्रभाववादी रचनाएँ हैं। जॉयस डब्लिन का एक सङ्गीतज्ञ था और उसे भाषाओ का शौक था।

डेविड हर्बर्ट लारेन्स—(१८८५–१६३०) भी उपन्यास-लेखक और कथाकार दोनों थे। इन्होने सैक्स पर बहुत लिखा और अत्यन्त खुले भाव से। चरित्रो को प्रस्तुत करने का तरीका इनका अनूठा है। इनके पास भी शब्दो का जादू है और वर्णन करने की अद्भुत क्षमता। 'सन्स एण्ड लवर्स' (१६१३) इनकी अत्यन्त लोकप्रिय सर्वश्रेष्ठ रचना है।

एल्डस हक्सले—(जन्म १८६४) लौरेन्स के समकालीन हैं। लारैन्स की भाँति इनको कहानियो में व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है और एक आदर्शात्मक तत्त्व ऊपर उभर आता है, फिर भी व्यङ्ग का ह्रास नही होता। इन्होने भी सैक्स पर लिखा है।

स्त्री लेखिका कैथराइन मैन्सफील्ड—(१८८८–१६२३) ने १६११ में अपना कहानी संग्रह 'इन ए जर्मन पैन्शन' प्रकाशित किया। इनकी श्रेष्ठ रचनाएँ 'ब्लिस' (१६२०) और 'द गार्डन पार्टी' में संग्रहीत है। जिस प्रकार रडयार्ड किपलिंग पुराने खेवे के कहानीकारों के दुर्धर्ष नेता हैं। उसी प्रकार युद्धोत्तर काल की धारा के कहानीकारो का नेतृत्व मैन्सफील्ड करती है।

इनकी मूक किन्तु पूर्ण कलात्मकता के दर्शन कथावस्तु की अपेक्षा चरित्र-चित्रण और दृश्याङ्कन में होते है। उनके एक ही वाक्य में व्यक्तित्व या वस्तु का महत्व ऊपर आ जाता है। बालको की कहानियाँ लिखने में ये निष्णात

हैं। कहानी में इनकी शैली अपनी है और ये किसी एक ही संवेदना की, चाहे वह करुणा से सम्बद्ध हो, चाहे व्यङ्ग और चाहे निर्दयता से, प्रकाशित करने में सिद्धहस्त है। निरीक्षण की इनकी सूक्ष्मता, अद्भुत शब्द चयन और ज्ञान और प्रवृत्ति की गहरी पकड, विशेषतः बच्चो और स्त्रियो को लेकर और सबसे अधिक परम्परा के बन्धनो से हटकर उपस्थित किया हुआ प्रभाववाद और चरम सीमा की मार्मिकता इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

रायस डैवीस—(जन्म १९०३) की कहानियाँ भी जो "द ब्लैक बीनस" (१९४४), "द ट्रिप टू लण्डन" (१९४६) और "बॉय विथ ए ट्रम्पेट" (१९४९) में संग्रहीत हैं, पठनीय है।

कथावस्तु की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण कहानियाँ 'वाल्टर डिलामेअर' ने "हैनरी ब्रौकन" (१९०४) में लिखी हैं। उसके बाद भी उन्होंने अनेक कहानियाँ और लिखी हैं जिनमें अयथार्थ का यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किए जाने की उनकी कला अद्वितीय है।

एच० ई० बेट्स—बडे ही कुशल और भावुक साहित्यिक प्रयोगवादी हैं। उन्होंने अनेक उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी हैं जो "थर्टी टेल्स" (१९३४) की "शार्ट एण्ड स्वीट", "माइ अंकल सिलास", "दैं फ्लाइङ्ग गोट", "कट एण्ड कम अगेन", "थ्रू द वुड्स" और अन्य पुस्तकों में संग्रहीत हैं।

टामस बर्क और लार्ड डनसैनी—जैसे लेखकों ने कहानी के क्षेत्र में पत्रकारिता का प्रवेश कराया है। बर्क के रोमाण्टिकवाद की यथार्थ में गहरी नीव है, किन्तु अन्ततोगत्वा उनकी कहानियाँ तथ्य की अपेक्षा कल्पना की कहानियाँ अधिक जान पड़ती हैं। डनसैनी का स्वच्छन्दतावाद कटु और व्यङ्गपूर्ण है। उसमें हवाईपन भी है।

टी० एफ० पौयस—को कथावस्तु में रुचि नहीं है और वे कहानी का भिन्न भिन्न रूपों में चित्रण करते हैं। प्राकृतवाद और तितिक्षा की भूख इनके कथा साहित्य की विशेषता है।

ओ'फ्लाहर्टी—की कहानियों की भावुक यथातथ्यता, और कुशल प्रभावोत्पादकता, तथा ग्रामीण और पशु पक्षियों के जीवन के चित्रण उल्लेखनीय है। इन्हीं की भाँति हैनरी विलियमसन ने भी पशुपक्षियों के अतिरिक्त इतिहास और लोक-साहित्य के बीच की रचनाएँ दी हैं। रोमाण्टिकवादियों पर प्रकृति को लेकर जिस अतिभावुकता का आरोप लगाया जाता है उससे विलियमसन भी नहीं बच सके हैं।

अन्य कहानी लेखको में सी० ई० मौण्टेग्यू ('फ़ेयरी पार्टिकल्स' के लेखक)

मिस टैनीसन जैसी, नील लियोन्स, और प्रिंसेस बिबेस्का हैं। कॉपर्ड की भाँति बिबेस्का की रचनाओं में हीरों की सी पारदर्शिता है, किन्तु यह कोई विनोद का विषय नहीं है।

जे० मैक्वारन-रौस, विलियम सैनसम, टी० ओ० बीचक्राफ्ट, एच० ए० मैनहुड, वी० एस० प्रिचैट, हारोल्ड निकलसन (जो कभी-कभी वास्तविक व्यक्तियों को अपनी कहानी का पात्र बना लेते थे), सर ऑसवर्ट सिटवैल (ट्रियल फ्यूज, १९५४) भी उल्लेखनीय हैं। मैरी लैविन की 'टेल्स फ्रॉम द बैक्टिव ब्रिज' (१९४३) में व्यक्तियों के अन्तर्निरीक्षण की तिलमिलाने वाली शक्ति है। १९४४ में 'क्रेब एपल जैली' को लिखकर फ्रैंक ओ कॉनर भी प्रकाश में आये।

अत्यन्त कल्पना प्रधान या अतिप्राकृत कहानियाँ इंगलैण्ड में कम लोकप्रिय हुई है। इस श्रेणी के लेखकों में जे० शैरीडन ले फानु हैं। एल्गर्नन ब्लैकवुड (जन्म १८६९) की ऐसी रचनाएँ 'द एम्पटी हाउस' (१९०६), जॉन साइलेंस' (१९०८), 'द टेल्स ऑव ऐल्गर्नन ब्लैकवुड' (१९३८) तथा अन्य पुस्तकों में सकलित हैं। ले फानु की भाँति मौंटेग्यू रोड्स जेम्स (१८६२–१९३६) की कहानियाँ विश्वसनीय वातावरण की हैं। 'घोस्ट स्टोरीज आफ एण्टिक्वेरी' (१९०४), इसी प्रकार की एक और रचनावली (१९११) तथा 'ए थिन घोस्ट एण्ड अदर्स' (१९१९) इनके कहानी संग्रह हैं। ए० एन० एल० मुनबी का 'द अलाबास्टर हैण्ड' (१९४९) भी उल्लेखनीय हैं। इंगलैण्ड में और भी सैकड़ों प्रकार की कहानियाँ निकलती रहती हैं। रेडियो कहानी का क्षेत्र अभी तक करीब-करीब अधूरा है। 'ए० जे० एलैन' ने इसके एक रूप का आविष्कार किया था। इस प्रकरण में विन्स्टन क्लीवज़, टी० सी० हॉपकिन और ले लोज़ का भी नाम लिया जा सकता है।

आधुनिक कथाकारों में एक प्रकार की अराजकता है। वे संवेदना की एकता के सिद्धान्त को मानने को तैयार नहीं हैं। वे यह भी नहीं मानते कि चरित्र-चित्रण, कथावस्तु या शैली में से एक ही तत्त्व कहानी में प्रमुख होना चाहिए। कुछ लोग जो एकत्रयी के सिद्धान्त को नारा मात्र मानते हैं, संसार में फैले हुए अतिवाद की विश्रृङ्खलता के एक अङ्ग को एक मनःस्थिति के द्वारा चित्रण करने के प्रयोग कर रहे हैं। यह कहना कठिन है कि ये विद्रोही लेखक कहानी का कौनसा रूप निर्माण करने में सफल होंगे।

स्पेन—१५वीं सदी के अन्त में विभिन्न रूपों में गद्य का प्रणयन प्रारम्भ होगया था। अमेरिका में हुए अनुसन्धानों के अनुकरण पर १६वीं सदी में साहसी और विनोदी कथाएं लिखना प्रारम्भ हुआ। मॉण्टिमेर की 'डायना' और

'डान विश्वपोट' प्रसिद्ध कथा रचनाएँ हैं जो यूरोप भर में बड़ी लोकप्रिय हुईं। १८७० में सेसिला बोहल द फॉवेर नामक स्त्री लेखिका हुई। शेष लेखक सामान्य कोटि के हैं।

जर्मनी—बहुत पुराने काल में जर्मनी में कथा लेखन प्रारम्भ होगया था। १६७५ में ग्रियेल चौशेन ने सर्वप्रथम साहसी कथाएँ लिखी। १८वी सदी के लेखक प्रणय कथाएँ लिखने में प्रवीण थे। गेटे की 'तरुण वेटर के कष्ट' रचना प्रसिद्ध है। योहन पाल (१८२५) की प्रेम गाथाओ की भी यूरोप भर में छाप पडी। उसके बाद के लेखको में गैस्टॉव, फ्रेटाग, एलेक्सिस फाउन्टेन, एबर्स आदि उल्लेखनीय हैं।

रूस—रूस ने कहानी कला मे स्वतन्त्र चिन्तना का द्वार उन्मुक्त किया। गोगोव ने जो कहानियाँ लिखी उनमे स्लाव लोगो की मनोवृत्ति, और दया, दाक्षिण्य, वैराग्य आदि भावनाओ का चित्रण है। इनके अतिरिक्त गोचरोर डोस्तोवैस्की, पिसेवस्की, तुर्गनेव व लियो टालस्टॉय प्रसिद्ध हैं। इनका प्रभाव शेष साहित्य पर जोरो से पड़ा। आधुनिक काल के लेखको में मैक्सिम गोर्की प्रसिद्ध हैं।

योरोप की कहानियो में प्रथम विश्वयुद्ध के अनन्तर मानव-मन का चित्रण करना प्रारम्भ किया जिसका प्रभाव पौर्वात्य साहित्य पर भी पडा।

अमरीका में कहानी का विकास—अमरीका आधुनिक कहानियो का जन्मदाता है। यद्यपि कहानी का अस्तित्व बहुत प्रारम्भ से चला आरहा है किन्तु इसका सुव्यवस्थित विकास १९ वी सदी से ही प्रारम्भ हुआ है। जैसा कि सौफोक्लीज ने एस्काइलस के बारे में कहा था, कहानियो के इन प्रारम्भिक लेखको ने अनजाने में ही सदा सही दिशा में कदम बढाया है। सन् १८१९ ई० में वाशिङ्गटन इरविङ्ग की "स्कैच बुक" के प्रकाशित होने के बाद ही लोगो को इस बात का अभिज्ञान हुआ कि कहानी, जो अभी तक केवल लघु-कथा-साहित्य मात्र थी, एक निश्चित साहित्यिक विधा का रूप धारण कर सकती है, जिसे कुछ सीमाओ और नियमो में बाँधा जा सकता है। इस प्रकार, कुछ आर्थिक कारणो से प्रभावित हो, कुछ अपनी मनोवृत्ति वश और कुछ इस बात को लेकर कि यदि उसे यश मिल सकता है तो केवल नवीनता के फलस्वरूप, वाशिङ्गटन इरविङ्ग ने इस साहित्य का निर्माण अपने 'स्कैचो' के रूप में प्रारम्भ किया। उस समय उसमें केवल मनोविनोद का ध्येय ही निहित था, बाद में आने वाले एडीसन, स्टील, और गोल्डस्मिथ की भाँति इरविङ्ग ने उसमे नैतिकता का प्रवेश नही कराया था। उसका उद्देश्य व्यक्तियो या स्थान विशेषो का चित्रण

था और उसे किसी कथानक या नाटकीय कार्य की परवाह न होकर केवल एक 'सवेदना' एक 'वातावरण' का निर्माण भर कर देना अभीष्ट था । उसका ध्यान भी कहानी के आकार प्रकार की अपेक्षा उसमें कही गई बात को अधिक महत्व देने की ओर था, यद्यपि वह यह स्पष्ट जानता था कि वह एक नई ऐतिहासिक विधा का निर्माण कर रहा है ।

इरविङ्ग का प्रभाव बहुत व्यापक हुआ । 'स्कैचो' की भरमार हो चली । किन्तु उनके प्रकाशन का कोई उपयुक्त साधन नही था । इसी कमी की पूर्ति फिलाडैल्फिया से सन् १८२६ में निकलने वाले एक वार्षिक पत्र "द एटलाटिक सोवैनिर" ने की जिसका अनुकरण बौस्टन से निकलने वाले "द टोकन" और अन्य सैकडो पत्रो ने किया । १८३० में गोदी ने "लेडीज़ बुक" नाम से एक मासिक पत्र प्रकाशित किया जिसमें सक्षिप्त कथाएँ ही दी जाती थी । इस प्रवृत्ति का भी पत्रिकाओ के क्षेत्र में काफी प्रभाव रहा और सक्षिप्त कथाएँ अधिकाधिक सख्या में निकलने लगी ।

इन कहानियो के विकास का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण अन्तर्राष्ट्रीय कापीराइट नियमो का अभाव भी था । प्रकाशकगण इङ्गलैण्ड के तत्कालीन कथास्रोत से निर्बाध रूप से ग्रहण करते गए क्योकि उन्हे स्थानीय नवोदित कलाकारो के साहित्य की लोकप्रियता में सन्देह था ।

इरविंग के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण लेखक 'नाथेनियल हॉथॉर्न' हुआ जिसने कहानी में 'एक गहन स्थिति' (अर्थात् चरमावस्था) का प्रवेश कराया । उसने कहानी के प्रवाह को गहरा बनाया और उसे रूप सज्जा से सज्जित किया, जिसकी प्रशसा 'पो' ने भी की थी । १८४२ में पो ने इन्ही महाशय की पुन-कथित कहानियाँ (Twice told stories) अपनी कहानियो को ये इसी नाम से पुकारते थे—की समीक्षा करते समय कहानी के नियमो का निर्धारण किया जो इस क्षेत्र में किया हुआ पहला महत्त्वपूर्ण कार्य था । कहानी की उसकी परिभाषा, जो इस प्रकार है—"कहानी वह है जो एक बैठक में पढी जा सके । उसमें उद्देश्य की एकता, पहली पक्ति से वाच्यार्थ के ध्वनित होने की सामर्थ्य, मौलिकता, सकुलता, चित्रण की शक्ति और 'सत्यता' होनी चाहिए । उसमें एक भी शब्द ऐसा नहीं होना चाहिए जो उसके पूर्व निश्चित उद्देश्य की पूर्ति में सहायक न हो ।" आज भी प्रसिद्ध है ।

वस्तुतः एडगर एलेन पो का दृष्टिकोण उसका अपना था, उसकी अभीष्ट कलात्मकता एक भिन्न कोटि की थी । उसने एक ओर तात्कालिक परम्परागत

लघुकथाओं का मजाक उड़ाया और दूसरी तरफ उन्ही को एक कलात्मक रूप देने का आग्रह किया। वह १८४९ में अपनी मृत्युपर्यन्त एक पत्रिका का सम्पादक रहा और उसे पत्रिकाओ में अपेक्षित चुलबुलाहट, मौलिकता और विविधता का सदा ध्यान रहा, किन्तु उसने स्वयं न केवल अपने लेखो के द्वारा, अपितु अपनी कहानियो के द्वारा, वह चीज दी जिसे उसने "बुद्धि की हल्की मार, सकुल, एकाग्र, त्वरित ग्राह्य" कहा जिसका उसी के शब्दों में "भारी भरकम, विस्तृत, शब्दजाल संयुक्त, व अगम्य" वस्तु से विरोध था। उसने युग की माँग की पूर्ति की—उसने मौलिकता, रोमाञ्चकता, सक्षिप्तता, सम्पूर्णता और विविधता प्रदान की। हॉथॉर्न के विपरीत और कॉलरिज की भाँति उसकी कला का उद्देश्य कोई नैतिक प्रचार नही; उसकी कला कला के लिए थी, मनोरञ्जन की वस्तु मात्र थी। यह बात कुछ विस्मय-जनक है कि जिस पो को हम आधुनिक कहानी का जनक मानते हैं उसी पो की रचनाओ की वस्तु बड़ी असामान्य है। इनका मुख्य विषय आज कल की कहानियो की भाँति दैनिक जीवन की साधारण घटनाएँ नही, प्रत्युत भयानक, करुण अथवा अतीन्द्रिय लोक की अनुभूतियो जैसे असाधारण प्रसङ्ग हैं, और जहाँ उसने इनसे भिन्न प्रसङ्गो पर लिखने की चेष्टा की, वही वह असफल होगया।

पो की कहानियो का प्रभाव अत्यन्त दूरगामी था, विशेषकर फ्रान्स में। यह बात और है कि अगले चालीस वर्षों तक उसके उक्त मत को उचित सम्मान नही मिला, जब तक ब्रैण्डर मैथ्यूस ने अपना 'कहानी दर्शन' नामक सुविख्यात निबन्ध नही लिखा।

पो के मरने के दस वर्षों के अन्दर-अन्दर जिसे न्यूयार्क के बोहेमी समूह के लेखको की दशाब्दी कहा जाता है, कहानी का तन्त्र ढीला हो गया। उसमें एक प्रकार की भावुकता, रहस्य प्रेम, और करुण रस की प्रधानता होने लगी। चारो ओर चार्ल्स डिकेन्स का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। इस पक्ष के नेता थे—"फिज-जेम्स ओ ब्रायन" जिन्होंने स्वय 'डायमण्ड स्पैक्टीकल', 'ह्वाट वाज इट' आदि उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी। १८५७ में जेम्स रसैल लोवेल के, जो स्वय कहानी-लेखक नही थे, किन्तु जिन्हें इस साहित्यिकी की प्रकृति का अच्छा ज्ञान था, सम्पादकत्व में 'एटलांटिक मंथली' नामक पत्र के प्रकाशन से कहानी ने एक नया मोड लिया। कहानी को वे एक गौरव-पूर्ण कलाकृति मानते थे। वे यथार्थता के प्रेमी थे और मानव जीवन की कहानियाँ पसन्द करते थे जिसमें विभिन्न सामाजिक चरित्रो की अभिव्यक्ति हो। उनके प्रभाव से रोस टैरी कुक ने सर्वप्रथम न्यूइंग्लैण्ड (अमरीका) के ग्राम्य-जीवन के चित्रण से सम्पन्न कहा-

नियाँ लिखीं । करुण यथार्थवादी रैमेका हार्डिङ्ग और कहानियों को एक हल्का फुल्का वातावरण देने वाले एडवर्ड एवरैस्ट हेक हुए, जिनकी एक कहानी 'द मैन विदाउट कन्ट्री' अमरीका में अत्यन्त प्रसिद्ध हो चुकी है ।

भारत में जिस साल ,इतिहास प्रसिद्ध 'गदर' हुआ, उसके ठीक बाद अमरीका में गृहयुद्ध हुआ जिसके बाद यातायात के साधनों की वृद्धि हुई और दृष्टिकोण का विस्तार हुआ । इसी छठी दशाब्दी के अन्त के करीब, १८६८ में कैलिफोर्निया में कहानी के एक नए और चमत्कारी रूप की अवतारणा हुई जो दृश्य चित्रण में अत्यन्त प्रवीण, नाटकीय कौशल से ओतप्रोत, डिकन्स की पद्धति पर निर्मित चरित्रो की व्यञ्जना से सम्पन्न और नग्नतम यथार्थवाद के आवरण में स्वच्छन्दतावादी था । 'द फेट आव रोरिंग कैम्प' आदि कहानियाँ कहानी साहित्य के इतिहास में नए युग का सूत्रपात करती हैं । ऐसी ही अन्य कहानियाँ दावानल की भाँति अमरीका और तदनन्तर इङ्गलैण्ड में छागईं । इनके कारण कहानी का बड़ा भारी प्रचार हुआ । अमरीका में 'स्थानीय वातावरण' (Local colour) वाली कहानियाँ स्थान-स्थान से प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुईं । इनके लेखकों में मार्कट्वेन (नवदा), जी० वी० केबुल (न्यू आर्लियन्स), स्त्री लेखिका सी० एफ० वूलसन (लेक), एस० ओ० जीवट और एम० डब्लू० फ्रीमैन (न्यू इङ्गलैण्ड), सी० ई० क्रैडक उर्फ एम० एन० मरफी (टेनीसी) और अद्वितीय लोक-कथाकार जे० सी० हैरिस (जार्जिया) उल्लेखनीय हैं । यहाँ तक कि 'स्थानीय वातावरण' का प्रभाव कहानी की भाषा तक पहुँच गया जब आठवें दशक के मध्य मे टी० एन० पेज ने एक कहानी हब्सी-बोली में लिख कर 'सैन्चुरी मैगजीन' में प्रकाशित कराई ।

इसी बीच हेनरी जेम्स कहानी में एक नया प्रयोग कर रहे थे । वे मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से, सूक्ष्म प्रसङ्गो की सहायता से, चरित्र-चित्रण की एक नई परम्परा चला रहे थे । यद्यपि उनकी कहानियाँ लम्बी थी, और वे अपनी कहानियो को निकृष्ट मानते थे, फिर भो उन्होने इन्हो के जरिए अपनी श्रेष्ठतम प्रतिभा का परिचय दिया; जिनमें से 'द टर्न आफ द स्क्रू' नामक भयानक रस की कथा एक अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है । 'ट्रान्सफर्ड घोस्ट' और 'निगेटिव ग्रैविटी' के लेखक फ्रैङ्क स्टॉकटन ने कहानी में हलका फुल्कापन, विनोद और नितान्त असम्भाव्य घटनाओं को सम्भाव्य ही नही सम्भव और विश्वसनीय रूप देने की प्रवृत्ति का सूत्रपात किया । अद्भुत अन्तवाली उनकी 'वीमैन और टाइगर' कहानी अपने समय में अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुई । कहते हैं कि ब्रैण्डर मैथ्यूस ने इसी कहानी की प्रेरणा से अपना महत्वपूर्ण निबन्ध

'कहानी दर्शन' (Philosophy of tbe Short Story) जिसकी चर्चा की जा चुकी है, लिखा। हैनरी कायलर बनर की उच्चकोटि की कलात्मक कहानियों, जिनसे कहानी-कला के विकास की बहुत गुञ्जायश थी, के मूल में भी इसी की प्रेरणा थी।

१९वी सदी के अन्तिम दशक में कहानियो के सर्वाङ्गीण प्रचार की मात्रा बहुत बढ गई। न केवल पत्र-पत्रिकाओं में, अपितु स्कूलो, कालेजो की पाठ्य-पुस्तको में भी इन्हें स्थान मिला। कहानी-कला की चर्चा मुक्त रूप से होने लगी। गत वर्षों की श्रेष्ठ कहानियाँ सग्रहीत हुईं और नए ढङ्ग को श्रेष्ठ कहानियाँ भी लिखी गईं। इस समय के कहानी के लेखक प्रचारको में ओ'ब्रायन और ओ'सिडनी मुख्य हैं। अन्य लेखकों में जेम्स, लेन एलैंन, रिचार्ड हार्डिङ्ग डैविस, फ्रीमैंन, एलाइस ब्राउन, एम्ब्रोस बियर्स आदि हैं।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहानी की धारा को नई दिशाओं में प्रवाहित करने वाले दो मुख्य लेखक जैक लण्डन और सिडनी पोर्टर हैं। लण्डन का व्यक्तित्व बडा अनेक मुखी था। वह कैलिफोर्निया का निवासी था तथा साहसोद्यमी, स्वतन्त्र जहाजी बेडे का नाविक, निरुद्देश्य घुमक्कड, अलास्का की सोने की खानो का मजदूर, और दक्षिणी समुद्र का शोधक भी रह चुका था। उसने अलास्का के समुद्री जीवन से सम्बद्ध जीवट की कहानियाँ लिखी, जिन्हे उसने चित्रमयता, अतिशयोक्ति, काव्य सुलभ स्वच्छन्दता, निरंकुश वातावरण और गति से सम्पन्न किया। उसकी कहानियो में एक प्रकार की यथार्थता का आभास स्पष्ट है, और उन्हे पढते समय ऐसा लगता है कि कहानीकार जैसे अपने ही जीवन की घटनाओ का चित्रण कर रहा है औरयह सब कुछ जैसे उसकी उपस्थिति में हुआ हो।

ओ' हेनरी के उपनाम से लिखने वाला सिडनी पोर्टर भी एक साहसोद्यमी था। वह न्यूयार्क के एक समाचार पत्र का रिपोर्टर, आहियो स्टेट कारागार का बन्दी, दक्षिणी अमरीका से भागकर आया हुआ, टैक्सास का एक गो-पालक था। वह एक विनोदी पुरुष था जिसके पास साहित्यिक चुटकुलो का अखण्ड भण्डार था जिनका वह बड़े कौशल से उपयोग करता था। उसकी शैली कभी कभी अत्यन्त सुन्दर लगती है और उसका शब्द ज्ञान स्पृहणीय। उसकी कहानियो में अप्रचलित बातें, विस्मयो के अन्दर विस्मय, विचित्र तुलनाएँ, विरोधाभास, तथा अप्रत्याशितताएँ भरी हुई हैं। इनकी लोकप्रियता विराट थी। उसकी पुस्तकें लाखों की सख्या में बिकती थी। एक समय तो ऐसा आया था जबकि उसने जो कुछ लिखा वही चल गया। इनकी नकल सैंकड़ों लेखकों ने की।

ओ' हेनरी के बाद कहानी के क्षेत्र में एक प्रकार की अराजकता आने

लगी और लोग जान बूझकर पुरानी मान्यताओं के विपरीत विद्रोह करने लगे। १९२९ में नए समूह के लेखको की सर्जना शक्ति उच्चतम शिखर पर दिखाई पडी और वे मौलिकता, विचित्रता, और परम्परा से तुडाकर भागने की प्रवृत्ति के लिए बड़े उत्सुक जान पडे। यथार्थवाद और जागरण नए शतक का एक नारा हो चला है।

एशिया—इस महाद्वीप में कहानी लेखक का कार्य बडी अस्तव्यस्त रीति से प्रारम्भ हुआ। १३ वी सदी में चीन में सर्वप्रथम कहानी लेखक 'लो कुआन चांग' हुआ जिसने युद्ध, साहस और प्रवास की कहानियाँ लिखी। १७ वीं सदी में नीतिप्रधान कहानियो का जोर रहा। चीनी सामाजिक जीवन का चित्रण करने वाली एक सुन्दर लघुकथा 'लाल महल का स्वप्न' है। जापान में यह कला १० वी सदी से ही विकसित होनी प्रारम्भ हो गई थी। १००४ ई० में प्रथम जापानी लेखिका मुरासाकी शिकिवु हुई जिनके विषय में कहा जाता है कि भारतवर्ष को छोडकर संसार में कहानी लिखने का काम सर्वप्रथम इन्होने ही किया। १७ वी सदी में सोकाकु ने हास्यरस की कहानियाँ लिखी। जापान के दूसरे अच्छे कथाकारो में निशो व किसेकी प्रसिद्ध हैं।

भारत के प्राचीनतम कथा-साहित्य तथा योरोप और अमरीका तथा एशिया में कहानी के विकास की चर्चा कर चुकने के बाद अब हम भारत की विभिन्न भाषाओ के अर्वाचीन कहानी-साहित्य का अत्यन्त सक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

हिन्दी में कहानी का विकास—ऊपर सस्कृत काल तक की आख्यायिकाओ की चर्चा को जा चुकी है। वहाँ से प्राकृत और अपभ्र श तथा तत्पश्चात् ब्रजभाषा के माध्यम से हिन्दी कहानी के विकास को कडो जोडने के निमित्त इतना ही कहना अलम् होगा कि इन भाषाओ ने सस्कृत की परम्परा को आगे बढाने का प्रयास नही किया और पद्यमय वृत्तो की रचनाएँ ही हुईं। साथ-साथ शीरी फरहाद, लैला-मजनू, जैसी लोक-प्रेमकथाएँ और तोता मैना, किस्सा साढे तीन यार का, जैसी अश्लील कथाएँ भी निर्मित हुईं। अकबर बीरबल के विनोदपूर्ण एवं बुद्धि कौशल को व्यञ्जित करने वाले प्रसङ्ग भी गढ़े गये। सन् १५७२ ई० में गंग कवि ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' लिखकर गद्य-साहित्य और कथा साहित्य दोनों का सूत्रपात किया। करीब इसी समय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के प्रपौत्र गोकुलनाथजी ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता' नामक ब्रजभाषा गद्य में दो कथात्मक

रचनाएँ कीं। सन् १६४३ ई० में जटमल ने राजस्थानी में 'गोरा बादल की कथा लिखी। सन् १७०६ ई० मे सस्कृत की 'बैंताल पंच विंशतिका' के आधार पर सूरति मिश्र ने 'बैंताल पच्चीसी' (ब्रज) लिखी। इन पुस्तको मे हिन्दी की आदि कालीन गद्यमय कहानियो के दर्शन होते है यद्यपि इनका रूप-विधान बडा शिथिल था। १६ वी शताब्दी के प्रारम्भ में तीन नए महारथियो ने हिन्दी में प्रवेश किया और उनकी रचनाएँ करीब-करीब एक ही काल की अर्थात् सन् १८०३ ई० के आसपास की हैं। ये हैं 'प्रेमसागर' के रचयिता लल्लूलाल, 'नासिकेतोपाख्यान' के प्रणेता सदल मिश्र, और 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' के लेखक सैयद इन्शाअल्लाखाँ। इनमें से अन्तिम रचना "ठेठ हिन्दी के ठाठ" की कहानी है और इसे अनेक दृष्टियों से हिन्दी की पहली कहानी माना जा सकता है। इसकी कथावस्तु में यद्यपि अलौकिक घटनाओ का समावेश है पर इसमें सर्वप्रथम लौकिक प्रेम को कहानी का आधार बनाया गया है। इसकी मुख्य विशेषता इसकी भाषा शैली की स्थायी चुहल बाजी है जिसको पढने से ऐसा प्रतीत होता है कि कोई मैदान में घोडा कुदाता हुआ आरहा है। गदर के आस-पास राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने "राजा भोज का सपना" नामक सीधी सादी भाषा में कहानी लिखी जिसका उद्देश्य नैतिक है। भारतेन्दु की "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" इसी काल की एक हास्य रस प्रधान कहानी है।

यदि पाश्चात्य कथा साहित्य का समय उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध से प्रारम्भ होता है तो भारत का हिन्दी कथा साहित्य २०वी सदी के प्रारम्भ से। प्रारम्भ में अनुवाद हुए। १६०० में किशोरीलाल गोस्वामी ने "इन्दुमती" नामक कहानी लिखी जिसे आचार्य शुक्लजी ने हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना है यद्यपि श्री कृष्णलाल ने इस पर शेक्सपियर के "टैम्पेस्ट" की छाप ढूंढने का प्रयत्न किया है। इसी के आसपास की दो कहानियाँ ' ग्यारह वर्ष का समय" (रामचन्द्र शुक्ल) "दुलाईवाली" (बंग महिला) हैं। ये कहानियाँ सरस्वती में प्रकाशित हुईं। "इन्दु" नामक एक दूसरे पत्र में प्रकाशित होने वाली "ग्राम" कहानी के लेखक जयशङ्कर 'प्रसाद' है। करीब-करीब यही से मौलिक कहानियो का उदय होना प्रारम्भ हुआ। इस काल के लेखको में प्रसाद, जे० पी० श्रीवास्तव, विश्वम्भरनाथ जिज्जा, राजा राधिकारमणसिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि हैं। प्रेमचन्द से हिन्दी का एक नया युग प्रारम्भ होता है। प्रसाद की भाँति इनका भी हिन्दी में अमर स्थान है। इनके साथ के लेखको में पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी, रायकृष्णदास, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', गोविन्दवल्लभ पन्त

सुदर्शन, बेचन शर्मा 'उग्र', सियारामशरण गुप्त, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, विनोद-शङ्कर व्यास, जैनेन्द्रकुमार, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', वाचस्पति पाठक, गोपालराम गहमरी, इलाचन्द्र जोशी, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', श्रीराम शर्मा और वृन्दावनलाल वर्मा है। इनसे अगले लेखकों में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, पन्त, कृष्णानन्द गुप्त, शिव-पूजनसहाय, मोहनलाल महतो 'वियोगी' उषादेवी मित्रा, कमलकान्त वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, जानकीवल्लभ शास्त्री, दवादयाल चतुर्वेदी 'मस्त', सुभद्रा-कुमारी चौहान, यशपाल, देवन्द्र सत्यार्थी, सत्यजीवन वर्मा, 'भारतीय', हीमवती देवी, उषादेवीमित्रा, चन्द्रकिरण सोनारेक्सा, रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', नरेश, मधुसूदन, अन्नपूर्णानन्द, अजीमबेग चगताई, बेढब बनारसी, राधाकृष्ण, अमृतलाल नागर, विष्णुप्रभाकर, रांगेय राघव, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, प्रभा-कर माचवे, मोहनसिंह सेंगर, श्रीनाथसिंह, राहुल सांकृत्यायन, श्रीपतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, भगवतशरण उपाध्याय, ऋषभचरण जैन, व्यथित हृदय, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती, हंसराज रहबर, कृष्णचन्द्र या कृशनचन्दर, ख्वाजा अहमद अब्बास आदि उल्लेखनीय है।

नई पीढी के तरुण लेखकों में अनन्तगोपाल शेवड़े, आनन्दप्रकाश जैन, अमृतराय, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, कमल जोशी, जितेन्द्र, मोहन राकेश, रामकुमार, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, केशवगोपाल निगम, केशवप्रसाद मिश्र, अनन्तकुमार पाषाण, राजेन्द्र कुशवाहा व इस्मत चगताई आदि हैं। इनके प्रतिष्ठापन मे १९५२ में इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाला 'कहानी' नामक मासिक पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पत्रिका ने वही काम किया है जो १९०० ई० के आसपास 'सरस्वती' और 'इन्दु' नामक पत्रि-काओं ने किया था। इसके सम्पादकों मे प्रेमचन्द के सुपुत्र श्री श्रीपतराय हैं।

इच्छा रहते हुए भी स्थानाभाव से इनमें से किसी भी लेखक की थोड़े विस्तार मे भी चर्चा नहीं की जा सकती। जो लेखक अपना स्थायी स्थान बना चुके है उनकी तो वैसे भी काफी चर्चा होती आई है और लेखक अब धीरे-धीरे ऐसा कर रहे हैं। उनकी रचनाएँ ही उनकी प्रतिभा का प्रमाण है। अतः इन सबके नामोल्लेख से ही इस प्रकरण को अलं किया जाता है। इनके अतिरिक्त जिनके नाम इस सूची मे नहीं आए है वे कारण चाहे जो हो, मुझसे क्षमा याचना करवाने के अधिकारी हैं ही।

बङ्गला भाषा में कहानी—बङ्गला कहानी के प्रवर्त्तक के रूप में भूदेव (१८२५ से १८९४) का नाम लिया जाता है, जिनका कहानी संग्रह है अंगुरीय

विनिमय। इनके बाद बङ्किमचन्द्र चटर्जी का गम्भीर व्यक्तित्व आता है। इन्होंने साधारण में असाधारण की सृष्टि की है और एक रोमाण्टिक स्वप्नलोक की आभा से साहित्य को आभासित किया है। रवीन्द्रनाथ की भगिनी स्वर्णकुमारी के नामोल्लेख के बाद रवीन्द्रनाथ का ही नाम आता है जिनकी देन बङ्गला साहित्य में अमर रहेगा। टेकनीक भाव व्यञ्जना और कवित्वमय वर्णन में रवीन्द्र अद्वितीय हैं। 'अभिजात्य' कला के श्रेष्ठ प्रतिनिधि होकर भी उनमें सामान्य मानवता के तत्व अक्षुण्ण हैं। इनके बाद शरच्चन्द मजूमदार, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, व ललितकुमार बन्द्योपाध्याय का नाम लिया जा सकता है किन्तु रवीन्द्र के बाद शरद्चन्द्र चटर्जी ही टिकते हैं। उनमें सरलता, भावुकता, जागरूक नैतिकता या अनैतिकता, असाधारणता और एकरसता है। उनका सामाजिक मूल्याङ्कन उनका अपना है। किन्तु उनकी सी मार्मिकता अन्यत्र ढूंढे नहीं मिलती। उन्होंने नारी जाति को एक नवीन गौरव प्रदान किया है। गत २५ वर्षों में प्रकट होने वाले कलाकारों में अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त, "बनफूल", आशा पूर्ण देवी, ताराशङ्कर गंगोपाध्याय, नवेन्दु घोष, प्रबोधकुमार सान्याल, प्रेमेन्द्र मित्र, विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय, मनोजबसु, मानिक बनजी, सरोजकुमार राय चौधरी, सुशील जाना, ननो भौमिक आदि हैं।

मराठी कहानी—आधुनिक मराठी कहानी की आयु पचहत्तर वर्षों की है। इनमें से पहले के ३० वर्षों तक अरबी और संस्कृत से अनुवादों की प्रमुखता रही। उसके बाद एक ओर अंग्रेजी कहानियों से सम्पर्क होने के कारण उनकी शैली अपनाई गई; दूसरी ओर राष्ट्रीयता और जागरण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप अंग्रेज जाति के प्रति रोष प्रकट किया गया।

समाज सुधारक उपन्यासकार हरिनारायण आपटे ने कई छोटी कहानियाँ लिखी, किन्तु उनमें आधुनिक कहानी के गुण नहीं हैं। इन्ही की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए वि० सी० गुर्जर ने बङ्गला कथा-साहित्य की सी भावुकता के प्रयोग किए जिनकी नकल बा० गो० आपटे, द० वा० अत्रे, द० मा० कुलकर्णी, मा० कु० आगारी आदि ने की। गुर्जर से अधिक सफल कृ० के० गोखले हुए जिन्होंने अंग्रेजी भाषा के बल पर मराठी में अनूदित कथाओं को लोक प्रिय बनाने का प्रयत्न किया। इस काल के श्रेष्ठ लेखक ना० सी० फड़के हैं। अन्य लेखकों में नारायण हरि आपटे, बा० ना० देशपाण्डे, आनन्दीबाई शिर्के, और आधुनिक कहानी के निर्माता दिवाकर कृष्ण हैं। कृष्णजी की कहानियों में रवीन्द्र की कथाओं का सा काव्यमय वातावरण, भावुकता और भाव व्यञ्जना है। इनके बाद वि० स० खाण्डेकर का नाम आता है। यदि खाण्डेकर

गाधीवाद और समाजवाद के माध्यम से जीवन सुधार में प्रवृत्त हुए है तो फडके का ध्यान जीवन के साथ साथ कहानी की कलात्मकता की ओर विशेष रहा है। मराठी की कहानी मे १८३५ से १९५० तक विशेष उत्कर्ष प्राप्त किया है। अण्णाभाऊ साठे, य० जी० जोशी, अरविन्द गोखले, चि० वा० जोशी, व्यकटेश माडगूलकर, गगाधर गाडगिल, दिघे, महादेव शास्त्री, जोशी आदि इस काल के अच्छे कहानीकार है जिनमें से वामन चौरघडे, और अरविन्द गोखले विशेष उल्लेखनीय है। स्त्री लेखिकाओ मे कमला फडके, लीला देशमुख, विभावरी शिरूरकर, इन्दिरा सन्त, शान्ता ज० शेलके आदि ने कोमल भावनाओ का चित्रण किया है। पिछले पाँच वर्षो मे मराठी-कहानी भारत की विभिन्नमुखी समस्याओ को सुलझाने में व्यस्त रही है।

गुजराती कहानी—के प्रवर्तको मे गौरीशङ्कर गोवर्द्धन जोशी (धूमकेतु) उल्लेखनीय है। उनसे पूर्व पञ्चतन्त्र के अनुकरण पर सीधा उपदेश देने वाली और ग्रामीण कहानियाँ लिखी जाती थी धूमकेतु के पात्र गरीब और निम्नवर्ग के हैं, किन्तु उनका चित्रण बड़ा कलामय है। उनकी शैली सरल, आकर्षक, भावमय और विषयानुकूल है।

पन्नालाल पटेल की कहानियो में ग्राम्य जीवन का चित्रण है जो अभी तक उपेक्षित था। वास्तविक और आकर्षक शैली मे पटेल ने देहाती शब्दो और रूढि प्रयोगो का बडी उदारता से उपयोग किया है। गुलाबदास ब्रोकर ने १९३२-३३ के आन्दोलन मे जेल में रह कर लिखा। उनका विषय दैनिक जीवन के अति सामान्य प्रसङ्ग थे और उनकी शैली रसमय। जितनी सहानुभूति से सुन्दर वस्तुओ का चित्रण करते है उतनी ही कटाक्ष वृत्ति से अनिष्ट वस्तुओ पर चोट करते हैं।

रामनारायण वि० पाठक की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होने विभिन्न विषयो को लेकर कहानियाँ लिखी है, और उन्होने जो कुछ लिखा वह बड़े ही विचक्षण रूप में लिखा। ईश्वर पेटलीकर गुजरात के पाँचवे उत्कृष्ट कहानी लेखक हैं, जिनकी 'लोहिनी सगाई' विश्व कहानी प्रतियोगिता के लिए स्वीकृत हुई थी। उनकी रचनाओ में देहाती व्यक्ति और व्यक्तित्व का सम्पूर्ण चित्र चित्रित हुआ है। उन्होने रूढिवादी वर्ग और उसकी मान्यताओ पर कटाक्ष किया है।

तमिल कहानी—का श्रीगणेश १९वी सदी के प्रारम्भ में वीरम मुनिवर की 'परमार्थ गुरु कथै' से होता है जो एक हास्यरस प्रधान कहानी थी। सुब्रह्मण्यम् भारती का 'नवनन्तिर कथैकल' भी हास्यरस-प्रधान कहानियो का संग्रह है। व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर नई शैली के लेखको में अग्रगण्य है। संस्कृति की

झलक के साथ इनकी कहानियों में नए विचार भी भरपूर है। इनके द्वारा चित्रित प्रेम पवित्र है। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने मद्य निषेध, अस्पृश्यता निवारण आदि सामाजिक समस्याओं को लेकर कहानियाँ लिखी है। सुब्रह्मण्य भारती की परम्परा के लेखको मे शुद्धानन्द भारती, वैकट रमणी (ग्रामीण कहानियाँ), व रामस्वामी (समाज सुधार), रा० कृष्णमूर्ति (हास्य), आदि है। नए वर्ग के लेखको में पुदुमै पित्तम, पिचमूर्ति, रामय्या, चिदम्बर सुब्रह्मण्यम्, टी० एन० कुमारस्वामी, रावी, नाडोडी, खालूर, मुन्दररामन, बीलिनाथन, जानकी रामन तथा महिला लेखको में बहुप्रिया, कुमुदिनी, कौदैनाथ की अम्माल कु० सावित्री अम्माल, पुष्पा महादेवन, सरोजा राममूर्ति आदि का नाम गणनीय है।

तेलुगु (आन्ध्र) कहानी—इतिहास विख्यात, आन्ध्र भोज, श्रीकृष्ण देवराय के दरबार में तेनालिराम महाकवि और विदूषक थे। उनसे सम्बन्धित हास्य-कथाएँ दक्षिण और उत्तर भारत हो में नही अंग्रेजी आदि भाषाओं के माध्यम से विदेशो तक में पहुंच गई हैं। किन्तु अकबर बीरबल विनोद की भाँति ये कथाएँ भी कपोल-कल्पित हैं। इसी कोटि का एक और कथा सग्रह है। 'परमानन्द शिष्युल कथलु', मदनकाम राजुनि कथलु', 'शुक सप्तति कथलु' आदि शृङ्गारिक या प्रेम कहानियाँ भी प्रसिद्ध हैं। 'मर्यादारामन्न कथलु' और 'काशी मजली कथालु' भी इसी समय की हैं। चदुलवाड सीताराम शास्त्री ने 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' का अंग्रेजी से अनुवाद किया। सी. पी. ब्राउन ने 'ताता चार्युल कथलु' नामक कहानी सग्रह प्रस्तुत किया। वेद वेंकटराय शास्त्री ने कथा-सरित्सागर का अनुवाद किया। आन्ध्र के भारतेन्दु वीरेशलिङ्गम की समस्या प्रधान कहानियाँ विशेष कथनीय हैं। रामानुज शर्मा ने 'विनोद कथा कल्पवल्ली', 'चित्रकथा लहरी' और 'चमत्कार कथा मञ्जरी' लिखी जो आकर्षक शैली, अतुलनीय घटना कुतूहल, उत्तान शृङ्गार आदि के लिए 'कादम्बरी' की भाँति चिरस्मरणीय है।

आधुनिक कहानीकारो में 'अडिवि बापिराजु' नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ, चित्रकार और नर्त्तक की रचनाओं में कला और प्रणय के द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। इनकी शैली प्रौढ और रसमय है। इनकी कहानियो में 'वीणा', 'संध्यानृत्यमु', 'नागराजु', 'द्वेषमु', 'बसुबानुड', 'असुरकन्या', 'लच्चिमि', 'तिरुपति कोडमेट्टु' आदि हैं। मुनिमाणिक्य नरसिंहराबु, पारिवारिक तथा नारी-जीवन के चित्रण में अद्वितीय है। इनकी 'कातम् कथलु' काफी प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा चलती, हास्य व्यंगपूर्ण और चुस्त है। विश्वनाथ सत्यनारायण की कहानियाँ सामाजिक और भाषा शैली रोजमर्रा की है। नार्ल वेंकटेश्वरराव की

कथाओं में साधारण जनता के जीवन के मार्मिक चित्रण हैं।

नए कहानी लिखने वालो में 'बेलूटि शिवराम शास्त्री', 'जमदग्नि', करुण-कुमार, गोपीचन्द, चलम् आदि कथाकार अपनी यथार्थवादी रचनाओं से प्रख्यात हो चुके है। पालगुम्म पद्मराजु की विश्वकथा प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

कन्नड कहानी—जिसकी आयु पैंतालो वर्षों की है, के जनक श्री मास्ति वेंकटेश अय्यङ्गर (श्रीनिवास) हैं। आप जीवन के सामान्य अंशो को सरल भाषा में मार्मिक ढङ्ग से चित्रण करते है। आपकी कहानियाँ सामाजिक और ऐतिहासिक हैं। 'वेणुगानम्' तथा मगम्मा आपका प्रसिद्ध कहानी समुच्चय है। प्रारम्भिक कहानीकारो में वासुदेवाचार्य केरूर, पजे मगेशराव और एम० एन कामत है। आनन्द की प्रेम कहानियाँ उच्चकोटि की हैं। 'निजगल्ल की रानी', 'मोची', 'वैणिक', 'हेमकूट के आश्रम से आने पर', 'मेरा साला', 'मुझ से मारी गयी लडकी', 'जीवन' आदि इनकी कहानियों की कथावस्तु भिन्न-भिन्न वर्गों की है। आपके दो तीन कहानी संग्रहो में 'माटगाति' (जादुगरिन) प्रसिद्ध है। को० शिकारन्त तथा अ० न० कृष्णराव की व्यग्यपूर्ण कहानियाँ बडी चुभती होती हैं। कृष्णराव के दो संग्रह 'चिनगारी' और 'बिजली' हैं। 'आनन्दकन्द' की कहानियाँ कम होते हुए भी उच्चकोटि की हैं। के० बी० पुटप्पा की कहानियाँ जो 'मलेनाड के चित्र' तथा 'सन्यासी और अन्य कहानियाँ' में सग्रहीत हैं, प्रौढ भाषा और काव्यमय शैली में लिखी गई हैं। अम्बिकातनय दत्त (वेंद्रे) समाज सुधार की कहानियाँ लिखते है। अन्य लेखको में नरसिंहाचार, गोपालकृष्णराव, कृष्णकुमार कुल्लूर, राजरत्नम्, मुगली, नर-कस्तूरी, ईश्वरम्, वेंकट रामय्या, गोरूर रामस्वामी अय्यंगार और क्षीरसागर का नाम उल्लेखनीय हैं। स्त्री लेखिकाओ में जयलक्ष्मी, श्रीनिवासन्, वी० टी० जे० कृष्ण, लीला कारन्त, शामला, पद्मावती व अनुपमा प्रसिद्ध हैं। कन्नड की कहानियाँ सब मिलाकर बहुत उच्च कोटि की नही हैं।

उर्दू कहानी—अन्य भाषाओं की भाँति उर्दू में भी कहानी का श्रीगणेश अनुवादो से हुआ। सन् १८०३ के आसपास काजिमअली 'जवान' और जॉन गिल क्राइस्ट ने उर्दू में अनेक कहानी किस्से लिखे। मुन्शी धनपतराय (प्रेमचन्द) ने अच्छी कहानियो का सूत्रपात्र किया। सुदर्शन भी इनके साथ थे। उस समय के अन्य कथाकारो में मुन्शी सज्जाद हैदर, न्याज फतेहपुरी, ख्वाजा हसन निजामी, अब्बास हुसैनी, मजनूँ, एम असलम, काजी अब्दुलगफ्फार और मिसेज हिजाब इंतियाजअली साहिबा हैं। प्रेमचन्द की रचनाओं में नादरात, वारदात, ख्वाबो-

खयाल, आखिरी तोहफा, प्रेम चालीसी, दूध की कीमत आदि आदि हैं। निजामी ने डेढसौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उनकी बातें साधारण हैं और साधारण ढङ्ग से कही हुई हैं, किन्तु आकर्षक हैं। गदर दहली के अफसाने (१२ भागों में), बच्चों की कहानी, और जगबीती कहानियाँ, आपके संग्रहों में से हैं। सुदर्शन के संग्रह सोलह सिंगार, सदाबहार फूल आदि हैं। हैदरजोश की रचनाओं में हास्य का पुट है; फसाने जोश, सब की देवी इनकी कहानी पुस्तकें हैं।

काजी अब्दुलगफ्फार प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। 'उसने कहा', 'मजनू की डायरी', 'तीन पैसे की छोकरी' आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। अली अब्बास हुसैनी की लिखी 'आई० सी० एस०', 'बासी फूल' प्रसिद्ध हैं। मजनूँ गोरखपुरी आध्यात्मिक और भावप्रधान कहानियाँ लिखते हैं। 'अफसाने', 'ख्वाब-ओ-खयाल', इनकी प्रसिद्ध कहानी पुस्तकें हैं। उर्दू में हास्य रस की कहानियों के लेखक सज्जाद (सर गुजश्ता हाजी बगलूल), अहमद शाह बुखारी-पतरस, मुल्ला रमूजी और शौकत थानवी ('विदेशी रेल', 'मौजे तबस्सुम' आदि) हैं। मिर्जा अजीमबेग चगताई इस श्रेणी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं। फरहत उल्का बेग भी हास्यरस के सुन्दर लेखक हैं।

नए खेवे के लेखकों में रतननाथ सरशार, ख्वाजा अहमद अब्बास, सआदत हसन मण्टो, कृशनचन्दर, बलवन्तसिंह, देवेन्द्र इस्सर, इकबाल अहमद तथा स्त्री लेखिका इस्मत चगताई आदि हैं।

पञ्जाबी कहानी—पञ्जाबी कहानी का विकास बड़ी तेजी से हुआ है। इसके आधुनिक युग के स्वनामधन्य लेखकों और लेखिकाओं में सन्तसिंह सेखों, अमृता प्रीतम, करतारसिंह दुग्गल, कृष्णा सोबती, नवतेज आदि हैं। सन्तसिंह की कहानियों में विशुद्ध पञ्जाबी जीवन का चित्रण मिलता है। गाँवों की जिन्दगी पर अपनी अछूती शैली में लिखी इनकी कहानियाँ अमर हो चुकी हैं। अमृताप्रीतम बडी भावुक लेखिका हैं। इनकी कहानियों में शान्ति की आवाज बुलन्द की गई है। दुग्गल पञ्जाबी के जाने माने लेखकों में से हैं। इन्होंने जो कुछ दिया है सदा स्मरण रहेगा। कृष्णा सोबती की कहानियों में एक अजीब दर्द है। 'बादलों के घेरे' इनकी प्रसिद्ध रचना हैं। नवतेज की रचनाओं में प्रतीकवादी कला का परिचय मिलता है।

उपसंहार

प्रत्येक अन्य साहित्य की भाँति कहानी भी एक निरन्तर विकासशील साहित्य है। सबसे पहले वैदिक साहित्य में पुरुरवा उर्वशी, दिवोदास लोपामुद्रा आदि के जो आख्यान मिलते हैं, उनमें कहानियो के बीज अवश्य मिलते हैं किन्तु उन्हे कहानियाँ नही कह सकते। इसी काल में प्रकृति के व्यापारों को आधार मानकर कुछ रूपक भी लिखे गए, जैसे इन्द्र-वृत्रासुर आख्यान, किन्तु उनमें कहानी की सी परिपक्वता नही है। उपनिषदों में सत्यकाम जाबालि जैसे वृत्तान्त मिलते हैं, किन्तु उनका आकार-प्रकार वैदिक आख्यानो से कुछ थोड़ा ही बडा है अतः उनमें भी कहानी का समुचित विकास नही हो पाया है। उनका उद्देश्य भी एक रूप है—वृहत्तर ज्ञान की उपलब्धि, जिसमें ये कहानियाँ निमित्त मात्र बनकर आई हैं। पुराण-काल की कहानी कोई स्वतन्त्र कहानी न रहकर एक बडे साहित्य का अङ्ग बनकर आई है। इसी परम्परा ने आगे चलकर जातक, पञ्चतन्त्र, कथासरित्सागर आदि का रूप लिया जिनका उद्देश्य नीति-कथन मात्र रह गया। विशुद्ध रोचकता को लेकर लिखी गई साहस कथायें व चित्र विचित्र प्रसङ्गो, जादू टोना, यात्रा आदि की कहानियाँ भी आईं। दूसरी ओर भाषा-शैली को प्रधानता देकर लिखी गई वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्ष-चरित आदि उल्लेखनीय है जो लम्बी-लम्बी कहानियाँ और जो कहानी की अपेक्षा उपन्यास के अधिक समीप हैं। इसी काल में शूद्रक, इन्दुमती आदि-आदि अपेक्षाकृत छोटी कथाएँ भी लिखी गईं, किन्तु उन्हे अनेक कारणों से महत्त्व नही दिया गया।

जहाँ तक पश्चिम का सम्बन्ध है, वहाँ भी हमारे पुराणों की भाँति बाइबिल में अनेक कथाएँ संग्रहीत है जैसे 'पैरेबल ऑव द प्रोडिगल सन (अपव्ययी पुत्र की कथा) आदि, जिनका उद्देश्य विशुद्ध धार्मिक-नैतिक है। हमारे यहाँ के रामायण, महाभारत आदि की भाँति ग्रीस के इलियड आदि महाकाव्य कहानियो के भण्डार है। अग्रेजी साहित्य में १६ वी सदी में जब से गद्य का प्रवर्त्तन हुआ, 'यूफ्यूस' जैसी उपन्यासाकार कथा लिखी गई जिनका उद्देश्य निम्न वर्ग के मनुष्यो के जीवन का चित्रण करना था। साहस और जीवट की कहानियाँ भी देखने को आईं जिनमें 'टॉमस नैश' और 'रोबिन्सन क्रूसो' के लेखक डैनियल डिफो की रचनाएँ आती हैं। अमरीका में १९ वी सदी तक स्फुट कथाएँ

चर्चा की है कि भविष्य में कहानी का क्या स्वरूप होगा। उन्होंने जो अनुभूति-जनित निष्कर्ष दिए हैं वे सहज में अस्वीकार्य नहीं हैं। उनके निष्कर्षों का साराश यह है—

(१) कहानी लोक-जीवन के और निकट होगी। जब कहानीकार को मानव के मन तथा उसके समाज की संस्कृति को आज की अपेक्षा अधिक निकट से देखना पडेगा और जो कहानीकार ऐसा नही कर सकेगा वह समाप्त हो जायगा। सक्षेप में कहानीकार सास्कृतिक नेता के पद का अधिकारी होगा।

(२) भविष्य में कहानी का प्रचार-प्रसार बढ़ता जायगा। इससे उसका दायित्व भी अधिक बढ़ जायगा।

(३) कहानी की रूप रचना में जो अनावश्यक कौशल और कोरा चमत्कार आया है वह कहानी से चला जायगा और उसकी रचना में एक सादगी और सरलता आयगी। इस सम्बन्ध में जैनेन्द्र की कुछ कहानियाँ, जो लोक साहित्य के निकट है, आदर्श हैं।

परिशिष्ट १

संस्कृत गद्यकाव्यों, कथाओं तथा आख्यायिकाओं की तालिका[1]

लेखक	गद्य काव्य	रचनाकाल (ईसवी सन्)
दण्डी	दशकुमार चरितम्	६०० के लगभग
सुबन्धु	वासवदत्ता	६००
बाणभट्ट	१ कादम्बरी	६४०
	२ हर्षचरित	
धनपाल	तिलक मञ्जरी	१००० के लगभग
वादीभसिंह	गद्य चिन्तामणि	१००० के लगभग
वामन भट्ट बाण	वेमभूपालचरित्र	१५ वी सदी
	कथा व आख्यायिकाएं	
अज्ञात	ललितविस्तर	७० के पूर्व
गुणाढ्य	बृहत्कथा (पैशाची भाषा)	७८ (अप्राप्य)
विष्णु शर्मा	पचतन्त्र	द्वितीय शतक
आर्यशूर	जातकमाला	तृतीय शतक
दण्डी	अवन्तिसुन्दरी कथा	६०० के लगभग
सिद्धर्षि	उपमितिभवप्रपचकथा	९०५
नारायण	हितोपदेश	दसवी सदी
धनपाल (धणवाल)	भविसयत्तकहा (प्राकृत)	दसवी सदी
सोड्ढल	उदयसुन्दरी कथा	१०२६ – १०५०
क्षेमेन्द्र	बृहत्कथामञ्जरी	१०५० के लगभग
सोमदेव	कथा सरित्सागर	१०६३ के लगभग
अज्ञात जैन कवि	शुकसप्तति	बारहवी सदी
पूर्णभद्र	जैनतन्त्राख्यायिका	११९९

[1] संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—लेखक पं० सीताराम जयराम जोशी एम० ए० तथा पं० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज एम० ए० (१९४३) से साभार उद्धृत ।

शिवदास	१ शालिवाहनकथा २ वेताल पचविंशति ३ कथार्णव	बारहवीं सदी के बाद
मेरुतु ग	प्रबन्ध चिन्तामणि	१३०६
माधवाचार्य	शङ्कर दिग्विजय	चौदहवी सदी के मध्य
राजशेखर सूरि	प्रबन्धकोप या चतुर्विन्शति प्रबन्ध	१३४८
विद्यापति	पुरुष परीक्षा	पन्द्रहवी सदी
जिनकीर्त्ति	१ चम्पक श्रेष्ठिकथानक २ पालगोपाल कथानक	पन्दहवी सदी का पूर्वार्द्ध
अज्ञात	द्वात्रिशत्पुत्तलिका या सिंहासनद्वात्रिंशिका	पन्द्रहवी सदी
बल्लाल कवि	भोजप्रबन्ध	सोलहवी सदी

परिशिष्ट २

कहानी की परिभाषा

कहानी की परिभाषा के सम्बन्ध में कोई व्यापक मतभेद हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। किन्तु आलोचना के क्षेत्रो को एक सूक्ष्म नापजोख करने पर मुझे ऐसा लगता है कि उनमें से कुछ क्षेत्रों में, जिनमें कुछ प्रामाणिक भी हैं; कहानी से सही-सही स्वरूप पर दूरगामी भ्रान्तियाँ है। उदाहरण के लिए मैने कल ही एक लब्धप्रतिष्ठ लेखक की लेखनी से जो कुछ पढ़ा उसका भाव कुछ ऐसा था कि बेचारी हिन्दी में ऐसी कहानियाँ अभी हैं ही कहाँ जिनमें कथानक सूक्ष्म से सूक्ष्म हो। मै यह मानने को तैयार नही हूँ कि यह कोई ऐसा निर्णय है जिसके प्रति विवाद की गुञ्जाइश नही हो। इसके विपरीत इस प्रकार बिना किसी डर के, धड़ल्ले से ऐसे मत व्यक्त कर देना, कम से कम शब्दो में कहूँ तो दुस्साहस है। कहानी के सम्बन्ध में कितनी ही बातें ऐसी हैं जिन पर अन्तिम निर्णय अभी तक नही लिया गया है और कहानी के एक सजग पाठक के नाते मैं यह समझता हूँ कि इनका त्वरित स्पष्टीकरण आवश्यक है। यहाँ मै कहानी की परिभाषा विषय की संक्षिप्त चर्चा करने की चेष्टा करूँगा।

सबसे पहले मैं एडगर एलेन पो को लूँ जो आधुनिक कहानी के प्रवर्त्तकों में से हैं। कहानी की परिभाषा देते हुए उन्होने कहा है कि कहानी का एक भी वाक्य फालतू नही होना चाहिए। कुछ आलोचक व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए इसका अर्थ इस रूप में करते हैं कि पो का यह मत कहानी की अनिवार्य संक्षिप्तता तथा प्रासङ्गिकता की ओर सकेत करने का एक प्रभावशाली रूप मात्र है। साधारणतया इस निर्वचन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिये, किन्तु इसमें जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह यह कि पो ने अपने इस लक्षण को बारबार और अनेक प्रसङ्गों में बलपूर्वक दुहराया है कि कहानी में एक भी वाक्य इधर का उधर हुआ कि कहानी प्रभावहीन और निष्प्रभ हुई। अतः जहाँ तक पो का प्रश्न है, इस लक्षण को भावनात्मक रूप में नही, शाब्दिक रूप में ही ग्रहण करना उचित होगा। अब प्रश्न यह है कि इसे कहाँ तक स्वीकार किया जा सकता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि यह निर्णय करना सर्वथा कठिन है कि किसी कहानी का अमुक वाक्य अनावश्यक है या नहीं। इसका निर्णय अधिकांश

में एक और लेखक विशेष के और दूसरी ओर आलोचक विशेष के आग्रह, रुचि और पर्यवेक्षण पद्धति पर निर्भर है कि अमुक वाक्य कहानी में किस सीमा तक उपयोगी है। इसके लिए कोई सर्वाङ्गीण नियम पहले से निर्धारित नही किए जा सकते। यदि यह मान भी लिया जाय कि कहानी का एक भी वाक्य अनावश्यक नही हो तो प्रश्न यह होता है कि क्या कहानी का ठेका है कि उसी के लिए इस प्रकार का लक्षण निर्धारित किया जाय। दूसरे शब्दो में, क्या पो साहब यह मानते हैं कि कहानी को छोडकर शेष साहित्य में अनावश्यक निरर्थक या फालतू वाक्यो की गुञ्जायश है ? ऐसा मानना कदाचित उपहास्य होगा। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि एक आलोचक के रूप में पो के मत या निर्णय साधारणतया अभी तक प्रतिष्ठित क्षेत्रो में मान्य होते आ रहे हैं और कालाक्रान्त नही हुए हैं।

यही पो साहब हैं जिन्होने कहानी की सीमा शब्दो में बाँधी है और कहा है कि वह एक बैठक में पढी जा सके, उसका यह एक अनिवार्य लक्षण है। ऐसा ही मत हडसन साहब का है। यही पर कहानी की संक्षिप्तता का प्रसङ्ग आता है। विज्ञ आलोचक जानते हैं कि इस प्रसङ्ग पर आवश्यकता से कही कम ही विचार-विमर्श हुआ है। इस सम्बन्ध में यह अभिज्ञप्ति रोचक है कि संक्षिप्तता को लेकर जिन-जिन वरिष्ठ विद्वानो के मत हैं वे मत काफी स्पष्ट और निर्भीक हैं। आधुनिक युग के यशः प्राण लेखक और आलोचक एच. जी. वेल्स की यह मान्यता है कि कहानी और चाहे जो कुछ हो, किन्तु इतना तो हो ही कि वह १५ मिनटो से लेकर ५० मिनटो तक में, और अधिक से अधिक एक घण्टे के अन्दर पढी जा सके। पहली बात तो यह कि क्या कहानी की लम्बाई की न्यूनतम सीमा भी रक्खी जा सकती है, और यदि हाँ तो क्या १५ मिनटो से कम में कोई कहानी नही पढी जा सकती ? हर कोई जानता है कि दोनो प्रश्नो का उत्तर ऊपर दिए गए लक्षण के अनुरूप नही है। दूसरी बात यह कि क्या एक घण्टे तक पढी जा सके, कहानी की इतनी अधिक लम्बाई वर्ज्य नही है ? दूसरी ओर, यदि कोई कहानी ऐसी हो जो एक घण्टे के भीतर न पढ़ी जा सके तो क्या उसे इसी कारण कि वह एक टैक्निकल लक्षण के भीतर नही आती, उसके कहानी होने से इन्कार किया जा सकता है चाहे उसमें कहानी के शेष गुण मौजूद हो ? रडयार्ड किपिलिङ्ग की कहानी 'द मैन हू वाज' प्रसादजी की कहानी 'गुण्डा' और विशेष रूप से स्टीवेन्सन की क्लासिकल कहानी 'डाक्टर जैकिल एण्ड मि. हाइड' इस लक्षण को एक बड़ी चुनौती देती हुई प्रतीत होती है। तब क्या इन्हे कहानी मानने से इन्कार कर दिया जाय ?

दूसरी बात यह कि यह मान भी लिया जाय कि कहानी पन्द्रह मिनट से लेकर पचास मिनट तक पढी जा सकनी चाहिए तब स्वाभाविक प्रश्न यह है कि पढने की गति का क्या मापदण्ड है ? मेरा विश्वास है कि यह प्रत्येक पाठक के साथ इतनी भिन्न भिन्न है कि इस सम्बन्ध में किसी भी औसत का उपयोग हानिकर हो सकता है और सम्भव है स्वय लेखक के मत के विपरीत पडता हो। तब प्रश्न यह है कि इन शङ्काओं को ध्यान में रखते हुए क्या कहानी के लक्षणो में से संक्षेप गुण को सर्वथा हटाया जा सकता है ? और नही तो क्या परिभाषा के लिए ही ऐसा किया जा सकता है ? यदि नही तो इसे कहाँ तक स्वीकार किया जाय ?

ऊपर जिन शङ्काओं का उल्लेख किया गया है वे सब शंकाएँ पाश्चात्य समालोचको के ध्यान में थी। इसी से उनमें से अनेको ने, जिनमें से ब्रैण्डरमैथ्यू, जोन फोस्टर, माहम, अलब्राइट, बुलेट और स्वय पो हैं, स्पष्ट कहा है कि कहानी की मूलभूत आवश्यकता उसके प्रभाव या संवेदना की इकाई है। इसी बात को भिन्न भिन्न समालोचको ने भिन्न-भिन्न शब्दो में कहा है। ठीक इसी मूलभूत लक्षण की पुनरावृत्ति करते हुए हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखको एवं आलोचकों ने कहानी की परिभाषाएँ देने की चेष्टा की है। अंग्रेजी या हिन्दी के प्रायः सभी आलोचको ने लम्बाई को छोड़ कर उपन्यास और कहानी के अन्तर का मूल आधार भी यही बताया है कि कहानी में प्रभाव की एकता होती है जो उपन्यास में नही होती। सक्षेप में आधुनिक कहानी का यह एक विशिष्ट लक्षण है जो उसका सही सही स्वरूप बताता है। प्रश्न यह है कि यह प्रभाव या संवेदना की इकाई क्या है ? अधिकाश आलोचक इसे इतना सरल समझते है, मानो यह अलादीन का चिराग हो जो उनकी सारी समस्याओ का एक साथ अनायास निपटारा कर देता हो। और इसके समुचित विश्लेषण में प्रवृत्त नही होते किन्तु कहानी जगत का यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अतः इसकी जाँच करना आवश्यक है।

इस लक्षण के स्पष्टीकरण में विशिष्ट समालोचको एव लेखको द्वारा जो-जो शब्द काम में लाये गये हैं वे इस प्रकार है—

(१) एक भाव या एक ही घटनात्मक स्थिति में अनेक भाव

(२) प्रभाव का ऐक्य।

(३) प्रभाव की एकता।

(४) एक पूर्व-निर्धारित प्रभाव या विचार को प्रतिफलित करने वाले जीवन के एक छोटे से अङ्ग का चित्रण।

(५) एक चमत्कारपूर्ण क्षण की सिद्धि।

(६) चरित्र का एक अङ्ग ।
(७) सौन्दर्य की झलक ।
(८) घटनात्मक इकहरा चित्रण ।
(९) जीवन चक्र की कोई विशेष परिस्थिति ।
(१०) सर्वाङ्गपूर्ण और साधारण से भिन्न किसी महान घटना का संक्षिप्त वर्णन ।

(११) जीवन के किसी एक तत्व, किसी एक मर्म और लक्ष्य की झलक।

(१२) कम से कम पात्रों और चरित्रों के द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवाञ्छित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि ।

(१३) एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव ।

(१४) एक तथ्य या प्रभावशाली स्वतः पूर्ण रचना ।

प्रायः इन सब व्याख्यानों में 'एक' शब्द समान है जो महत्वपूर्ण है किन्तु इस विशेषण के विशेष्य समान या समानार्थक नहीं है । ध्यान से देखने पर कुछ विशेषणों में एक तात्विक भिन्नता भी मिलेगी । ऐसे परस्पर भिन्न तत्व वाले विषय ये हैं—(१) पात्र, (२) घटनात्मक स्थिति, घटना या परिस्थिति, (३) प्रभाव, (४) विचार अथवा तथ्य, (५) क्षण, (६) चरित्र का अंग, (७) सौन्दर्य की झलक, (८) जीवन का तत्व, मर्म या लक्ष्य ।

इन भिन्न तथ्यों वाले उपादानों के सम्बन्ध में कोई समान बात कहकर किसी सर्वमान्य लक्षण का निर्धारण करना बडा कठिन है । ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार संस्कृत में लक्षण शास्त्र के ७०० वर्ष के लम्बे इतिहास में आख्यायिका और कथा के सम्बन्ध में कुछ मौलिक बातों का वैसा का वैसा रहने दिया जाकर भी उसके शेष विवरणों में प्रायः प्रत्येक आचार्य द्वारा कमी बेसी कर दी गई, उसी प्रकार अंग्रेजी और हिन्दी में भी हुआ । किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि एक मूलभूत बात को लेकर इतना मतभेद हुआ और अपेक्षाकृत बहुत थोडे समय में यानी दो सौ सालो में । यह दोनो परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं और हमें यह जाँचने को बाध्य करती हैं कि इन सब लक्षणो में वस्तुतः कोई मतभेद है भी या नहीं ।

इस दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि कहानी के इन लक्षणो में कोई मौलिक मतभेद नही है । भिन्न-भिन्न लेखको ने एक ही लक्ष्य को ध्यान में रख कर अपने-अपने दृष्टिकोण से उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है । सही बात ता यह है कि सभी दृष्टिकोण अधूरे है और कहानी में एक प्रभाव की अभिव्यक्ति

कितने सारे माध्यमों से हो सकती है इस सब की कल्पना करना सम्भव नहीं है। और उनमें से ये उक्त चौदह लक्षण कुछ ही हैं। हो सकता कि भविष्य में इस विषय के अन्य लक्षण देते हुए लेखकों में किसी प्रकार की असावधानी बरती जाय। इसलिए सब लेखकों एवं आलोचकों का ध्यान इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर दिलाना आवश्यक है।

इन चौदह लक्षणों में से दूसरा तीसरा व चौदहवां लक्षण प्रस्तुत प्रश्न की पुनरावृत्ति मात्र है तथा पांचवां और सातवां लक्षण परिभाषा के अनुकूल स्पष्ट नही है। चौथा, बारहवां और तेरहवां लक्षण करीब करीब एक सा है। उनका बल पूर्व नियोजित या मनोवांछित प्रभाव 'आदि' पर अधिक है, जिस पर कहानी का एकाधिकार स्वीकार नही किया जा सकता और न इसे सर्वदा सत्य माना जा सकता है। जहाँ तक कम से कम पात्रों घटनाओं आदि का एव 'जीवन के एक छोटे से अग' का सम्बन्ध है, यह दोनों ही लक्षण सापेक्षिक होने के कारण अस्वीकार्य है। ऊपर एक में दिये लक्षण में से एक पात्र वाली बात पूर्णतया अग्राह्य है, क्योंकि केवल एक पात्र से कोई कहानी नही बन सकती और 'अनेक भावों' की उपस्थिति भी अनिवार्य नही है। दसवें लक्षण में जिस संक्षिप्तता की ओर विशेष आग्रह है वह कितनी बाधक है यह देखा जा चुका है। छठा लक्षण स्पष्ट ही एकांगी और अपूर्ण है। ८वें लक्षण में कथातत्व के अभाव के कारण अव्याप्ति दोष है। इस प्रकार हमारे सामने 'एक सवेदना' की अभिव्यक्ति के लिए निम्नलिखित लक्षण रह जाते है--

(अ) एक ही घटनात्मक स्थिति।

(आ) घटनात्मक इकहरा चित्रण।

(इ) जीवन के किसी एक तत्व, किसी एक धर्म और लक्ष्य की झलक।

(ई) एक तथ्य वाली स्वतः पूर्ण रचना।

हर कोई जानता है कि कहानी क्या है, किन्तु व्यवहार में यह प्रश्न जितना ही सरल है, सिद्धान्त में उतना ही कठिन। इसीलिए इन सब परिभाषाओं में जहाँ कहानी के मर्म तक किसी न किसी प्रकार पहुचने की चेष्टा की गई है, वहाँ इसकी दुर्गमता के कारण सफलता भी कम ही मिली है। यदि उक्त चार लक्षणों को मिलाकर एक परिभाषा निर्धारित की जाय तो सम्भव है कि इस समस्या का कोई हल निकल आवे। क्या हिन्दी के समालोचक कहानी की इस परिभाषा को स्वीकार करेंगे ?

"कहानी वह स्वतःपूर्ण रचना है जिसमें जीवन के किसी एक तत्व, मर्म अथवा लक्ष्य की एक ही घटनात्मक स्थिति में अभिव्यक्ति हो।"

परिशिष्ट ३

बच्चों की कहानियाँ : मानस और शिल्प

[प्रकाशचन्द्र गोस्वामी, 'पारमल]

'एक था राजा' जैसे विश्वस्त वातावरण से प्रारम्भ होकर बच्चों की कहानियो को जादुई लडकी के उड़ने वाले घोडे पर चढ़ने देर नही लगती और उनकी मन पसन्द सुन्दरी के शैतान के चगुल से मुक्त होने तथा नायक के साथ राजकुमारी की शादी हो जाने के प्रसङ्ग तक आते आते समाप्त होने मे भी। इन कहानियो मे सरल कल्पना व बार बार नए रूप में उभरने वाले कोतूहल का समावेश होता है। रात के समय सुन्दरी राजकुमारी के समक्ष सोते हुए बीमार राजकुमार के मुख से सांप का निकलना या राजकुमार के हठ करने पर अन्त मे राजकुमारी का नागिन बन जाना इन कहानियो के शाश्वत कौतूहल है।

बच्चो को खिलौनो से प्रेम होता है, गुड्डे-गुड्डियाँ उन्हे प्रिय होती है और लकडी और कचकडे के बने हाथी घोड़े हवाई जहाज विमान आदि तो बहुत ही प्रिय। ये सब उसकी कल्पनात्मक सृष्टि का सृजन करते है। कहानी में उन्हे अपनी इन्ही से साम्य रखने वाली कल्पनाएँ साकार होती हुई दिखाई पडती है। बच्चे जिज्ञासु होते हैं। इसलिए इन कहानियों मे भूत प्रेतो के बारे में, परियो के बारे में; चन्द्र और पाताल लोक के बारे मे जानकारी प्राप्त कर वे अपनी पूर्व निर्मित धारणाओं की तृप्ति करते है। बच्चे उत्साही होते है, वे कहानी के नायक में स्वय अपने को देखने लगते हैं और इसीलिए बच्चो की कहानियो के नायक को कभी असफल होते नही देखा गया क्योंकि यह उनके अहम को उभारता है। यदाकदा उसका पतन भी हो जाता है किन्तु अन्त में अवश्य ही किसी विचित्र संयोग द्वारा उसका आकस्मिक उद्धार भी होता है।

इन कहानियो का नायक हमेशा अपने अतुल पराक्रम बुद्धि और चातुर्य से अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है। ये कहानियाँ एक आदर्श से ओतप्रोत रहती हैं जो है असत् पर सत् की विजय। इनमे यथार्थ की जञ्जीरें नही होती, कल्पना मन चाहे मार्ग पर स्वच्छन्द विचरण करती है।

"जादूगर की राख माथे पर रखते ही राजकुमार सात सर्प मुखो वाले राक्षस के महल में पहुँच गया। उसने उसे शीशे मे खुद उसी की परछाई दिखाई और उसकी सारी शक्ति नष्ट हो गई। राजकुमार ने तलवार से उसका भयङ्कर सर उतार लिया।" इस प्रकार की अनेक कल्पनाएं उसमे समाहित रहती है और इसीलिए उसमे सत्य की सी कटुता न होकर कल्पना की सी सरसता बनी रहती है।

अपने अनेको सञ्चारी भावो सहित ये कहानियाँ अद्भुत और वीर रस से ओत-प्रोत रहती हैं, शेष सब रस इन्ही रसो को उभारने वाले भी होते हैं।

इन कहानियों में प्रायः सबसे छोटे लडके या राजकुमार को ही नायक होते देखा गया है। इसके कुछ कारण है—

सबसे छोटा राजकुमार—अर्थात् उन्ही के जैसा कोई नन्हा सा वीर अनहोने कार्य करता है और अतुल शक्ति रखता है। वह निडर है वीर है। बच्चो के उत्साह की तत्काल वृद्धि होती है। वे मन में आत्मविश्वास का अनुभव करने लगते है। उनकी भावनाएँ अपने अनुरूप वातावरण में अधिकाधिक दिलचस्पी लेती हैं। और इसीलिए सबसे छोटा राजकुमार उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल खाता है। 'छोटे' शब्द से तो जैसे उनकी सहज सहानुभूति है। बच्चे यदि कहानी के नायक मे अपना व्यक्तित्व देखेगे तो उस नायक से कही अधिक प्रभावित होगे जो उनके व्यक्तित्व से अलग दाढी मूँछो वाला कोई आदमी हो।

सबसे छोटा राजकुमार बच्चो के मानसिक जीवन का स्थायी सहयोगी सा हो जाता है और उसके आदर्शो का उनके मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। किन्तु यहाँ यह प्रश्न भी सम्भव है कि क्या बड़े राजकुमार के आदर्श का उन पर कोई असर नही पड़ सकता? पड़ता है अवश्य किन्तु इतना नही। प्रायः यह भी देखा जाता है कि जहाँ बड़ा राजकुमार (या जहाँ अधिक हो तो बड़े सारे राजकुमार) क्रमशः असफल हो जाते है वहाँ छोटे से छोटा राजकुमार अपने कौशल चातुर्य अथवा वीरता से उद्देश्य की सिद्धि करता है। इस कथा-वृत्ति में भी छोटे बच्चो की आत्मतुष्टि के बीज निहित है। यह कभी नही भूलना चाहिए कि अन्य व्यक्तियो की भाँति बच्चे मे भी स्पर्द्धा ही नही ईर्ष्या की भावना प्रतिपल काम करती है किन्तु सामाजिक व्यवस्था में उस भावना का कोई आदर न होने के कारण वह ईर्ष्या की भावना अपनी अभिव्यक्ति के अन्य मार्ग ढूँढती है। सबसे छोटे राजकुमार की अविश्वसनीय विजय की घटना में इसी अभिव्यक्ति का एक रूप है। और वह गुड़िया जैसी सुन्दर तितलियो जैसी रङ्गीन, फूलो सी कोमल एक कुमारी भी राक्षस के खौफनाक चंगुल से अपने से नन्हे राजकुमार की नन्ही सी तलवार के सहारे से निकल कर कितनी खुश होती है!

क्या आज का जीवन इन कहानियो की रचना के लिए सूखा है? यह सब जानते हैं कि आज राजकुमारो का जमाना नही रहा, किन्तु क्या स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र बालक अपनी मानसिक धार्मिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का बीड़ा नही उठा सकते? आधुनिक सभी साहित्यो की भाँति बच्चो के साहित्य का नायक भी अपवर्ग का एक छोटा सा बालक हो सकता है जो अपनी लगन और बुद्धि बल से एक ऐसी सृष्टि का निर्माण कर सकता है जिसमें कल्पनात्मक आदर्श का पूर्ण समावेश हो।

परिशिष्ट ४

अध्ययन सामग्री

[जिन ग्रन्थो से विशेष सहायता अथवा उद्धरण लिए गए है उनको पार्श्व में नक्षत्राकित कर दिया गया है ।]

संस्कृत

ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम
* अग्नि पुराण	(सम्पादक—पचानन तर्करत्न)
* अमरकोष	अमरसिंह (सम्पादक—हरगोविन्द शास्त्री)
* काव्यप्रकाश	मम्मट (टीका—वामनाचार्य)
* काव्यमीमासा	राजशेखर (सम्पादक—सी० डी० दलाल व रामकृष्ण शास्त्री)
* काव्यादर्श	दण्डी (टीका—नृसिंहदेव)
* काव्यानुशासन	वाग्भट द्वितीय (१८९४ संस्करण)
* काव्यानुशासन	हेमचन्द्र (सम्पादक—शिवदत्त)
* काव्यालङ्कार	भामह
* काव्यालङ्कार	रुद्रट
* काव्यालङ्कार सूत्र	वामन (सम्पादक—दुर्गाप्रसाद)
* दशकुमार चरितम्	दण्डी (टीका—जीवनराम शर्मा)
* ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धनाचार्य (सम्पादक—दुर्गाप्रसाद)
* ध्वन्यालोकलोचन	अभिनवपादगुप्ताचार्य (सम्पादक—दुर्गाप्रसाद)
* साहित्यदर्पण	विश्वनाथ कविराज (टीका—रामचरण तर्कवागीश)
* साहित्यमीमासा	राजानक रुय्यक

मराठी

ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम
* सुलभ विश्वकोश	यशवन्त रामकृष्ण दाते व चिन्तामण गणेश कर्वे

अंग्रेजी

ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम
* A History of Sanskrit Poetics	P. V. Kane
An Outline History of English Literature.	

A Short History of English Literature. — B. Ifar Evans
* Encyclopaedia Britanica — Short Story portion
* Contemporary British Literature — Fred B. Millett
* Four Stevenson Stories. — R. L. Stevenson.
Modern Stories. — Ed Guy N. Pocock
Short Stories, How to write them
The teach your self History of English Literature, Vol VI. — Peter Westland
* World's Greatest Short Stories — Odhams Press Ltd.

हिन्दी

आलोचना के सिद्धान्त — कृष्णानन्द पन्त व यज्ञदत्त शर्मा
* इक्कीस कहानियाँ — रायकृष्णदास (सम्पादक)
उर्दू साहित्य का इतिहास — रामबाबू सक्सेना
अंग्रेजी साहित्य का इतिहास — एस. पी. खत्री
कथानिका : एक अध्ययन — वासुदेवशरण
कला और सौन्दर्य — रामकृष्ण शुक्ल (शिलीमुख)
* कहानियाँ — सम्पादित
कहानी : एक कला — गिरिधारीलाल शर्मा गर्ग
* कहानी और कहानीकार — मोहनलाल जिज्ञासु
कहानी कला — प्रेमचन्द
* कहानी कला — रामनारायण यादवेन्दु
* कहानी कला — विनोदशङ्कर व्यास व ज्ञानचन्द्र जैन
* कहानी कला और उसका विकास — छविनाथ त्रिपाठी
कहानी कला और प्रेमचन्द — श्रीपति
* कहानी का रचना-विधान — डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा डी. लिट्.
कहानी कैसे लिखना चाहिए — मुन्शी कन्हैयालाल
काव्यकला और अन्य निबन्ध — जयशङ्करप्रसाद
* काव्य के रूप — गुलाबराय
कुछ विचार — प्रेमचन्द
जातक कथा — राहुल सांकृत्यायन

* जातक कथा	आनन्द कौशल्यायन व सुशीलकुमार
* जीवन विहार	काका कालेलकर
* जैनेन्द्र की कहानियाँ	जैनेन्द्र
* निबन्धिनी	गङ्गाप्रसाद पाण्डेय
* पागल	खलील जिब्रान
पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र	लीलाधर जोशी
* पञ्चतन्त्र	वासुदेवशरण अग्रवाल (भूमिका)
* प्रतिनिधि कहानियाँ	रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी
प्रेमचन्द्र : उनकी कहानी कला	सत्येन्द्र
* व्रजलोक साहित्य का अध्ययन	सत्येन्द्र
* मराठी साहित्य का इतिहास	नारायण वासुदेव गोडबोले
* मानसरोवर (आठ भाग)	प्रेमचन्द
विश्व साहित्य	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
साहित्य मीमांसा	सूर्यकान्त शास्त्री
साहित्य-विवेचन	क्षेमचन्द्र सुमन व योगेन्द्रकुमार मल्लिक
* साहित्यिकी	शचीरानी गुर्टू
* साहित्यालोचन	श्यामसुन्दरदास
* साहित्यालोचन के सिद्धान्त	रामनारायण यादवेन्दु
* सिद्धान्त और अध्ययन	गुलाबराय
* संस्कृत साहित्य का इतिहास	कन्हैयालाल पोद्दार
* सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास	सीताराम जयराम जोशी, विश्वनाथ शास्त्री
* हमारी आदिम जातियाँ	भगवानदास केला
हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्रीवास्तव
हिन्दी कथा शिल्प का विकास	लक्ष्मीनारायणलाल
हिन्दी कथा साहित्य	गङ्गाप्रसाद पाडेय
* हिन्दी कहानियाँ	भगवतीप्रसाद वाजपेयी (सम्पादक)
हिन्दी कहानी और कहानीकार	वासुदेवनन्दनप्रसाद
* हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ	भगवतीप्रसाद वाजपेयी (सम्पादक)
* हिन्दी गीतिकाव्य	ओमप्रकाश
* हिन्दी नाट्य विमर्श	गुलाबराय
हिन्दी विश्वकोश	
* हिन्दी शब्द सागर	श्यामसुन्दरदास (सम्पादक)

हिन्दी साहित्य का आलो० इतिहास रामकुमार वर्मा
* हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास गुलाबराय
हिन्दी साहित्य की कहानी रामरतन भटनागर

अन्य

अपभ्रंश शब्दकोश
पाली शब्दकोश

पत्र-पत्रिकाएँ आदि *

अवन्तिका, आजकल (लोककथा विशेषांक), आलोचना (उपन्यास अङ्क), कल्याण (हिन्दू संस्कृति अङ्क), कहानी (विशेषाक, १९५५ व १९५६ तथा अन्य अङ्क), साहित्य-सन्देश (उपन्यास अङ्क व कहानी अङ्क), तथा धर्मयुग, नवनीत, मनोहर कहानियाँ, माया, सरस्वती, सरिता, सुमित्रा, हिन्दुस्तान, द टाइम्स (लिटरेरी सप्लिमेंट) लन्दन आदि व अनेक स्फुट कहानियाँ।

मुकुर (Index)

[स० = समाहार]

लेखक

अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त, ३८८
अजीमबेग चगतई, ३८७, ३९२
अण्णाभाऊ साठे, ३८९
अनन्तकुमार 'पाषाण', ३८७
अनन्तगोपल शेवडे, ३८७
अनुपमा, ३९१
अन्नपूर्णानन्द, १३३, ३८७
अप्पय दीक्षित, २
अब्बासहुसेनी, ३९१, ३९२
अभिनवगुप्त, २, ३, १०, १८–२१, २३, २७
अमृतराय, ३८७
अमृतलाल नागर, ९५, ३८७
अमृता प्रीतम, ३९२
अम्बिकातनय दत्त, ३९१
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', १०१
अरविन्द गोखले, ३८९
असलम, एम०, ३९१
अहमदशाह, ३९२
अत्रे, द. बा., ३८८
अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन स० (३), ६६, १५३, १६६, १९३, २१३, २१६-३१, २३८, २५१, २६३-४, ३२४, ३८७।

आगाशे, ना. कु., ३८८
आडिवि वापिराजु, ३९०
आनन्द, ३९१
आनन्दकन्द, ३९१
आनन्दप्रकाश जैन, ३८७
आनन्द वर्धन, २, ४, २१-२३
आनन्दीबाई शिर्के, ३८८

आपटे, नारायणहरि, ३८८
आपटे, वा. गो. ३८८
आर्यशूर, ३९१
आशापूर्णा ची, ३८८

इकबालअहमद, ३९२
इन्दिरा सन्त, ३८९
इन्शाअल्लाखाँ, सैयद, १०२, २१४, ३०५, ३८६
इरविङ्ग, वाशिङ्गटन, स० (३-४), ३८०–१, ३९३
इलाचन्द्र जोशी, ४०, १६६, २३०, २७२, २७७, २९८, ३२४, ३८७
इलियट, जार्ज, ३७१,
इवान्स, मैरी, एन, ३७१
इस्मत चगतई, ३८७, ३९२

ईश्वर पेटलीकर, ३८९
ईश्वरम्, ३९१
ईसप, ३६०, ३६६-८

उग्र, पाण्डेय बेचन शर्मा, १७८-९, २२२, २२९, ३२७, ३८७
उपेन्द्रनाथ 'अश्क' १६६, १९७, ३८७,
उषादेवी मित्रा, २९८, ३२०, ३२४, ३८७

ऋषभचरण जैन, २७५, ३८८

एजर्टन, डॉ. ३६४
एडीसन, ३८०
एप्यूलियस, ३६८

एबर्स, ३८०
एलब्राइट, ३६, ३८
एलैन, ए. जे. ३७६
एलैन, लेन, ३८४
एसेप, ४७, १४३, ३६०
एस्काइलह्, ३८०
ओ' कानर, फ्रैंक, ३७६
ओ' फ्लाहर्टी, ३७८
ओ' ब्रायन, ३५, ३६, ३८, ३८२, ३८४
ओमप्रकाश श्रीवास्तव, ३८७
ओ' सिडनी, ३८४
ओ' हैनरी, २०३, २५५, ३७३ ४, ३८४
ओंकारनाथ श्रीवास्तव, ३८७

ओमेनियर, स्टेसी, ३७७

अचल, २१३

कमल जोशी, ३८७
कमलाकान्त वर्मा, ३८७
कमला फड़के, ३८६
कमलेश्वर, ३८७
करतारसिंह दुग्गल, ३६२
करुणाकुमार, ३६१
कर्क, हैन्स, स. (२)
काका कालेलकर, ३३७
काजिम अली 'जवान', ३६१
काजी अब्दुल गफ्फार, ३६१-२
काणे, पी. वी., प्रो., ३, ११, २७
कामत, एम. एन., ३६१
कारन्त, के., शि., ३६१
कार्नजैनो, ३८६
किपलिंग, रुडयार्ड, ४३, ३७३-४
किशोरीलाल गोस्वामी, ३८६
कुआन चाग, ली, ३८५
कुक, रौसटैरी, ३८२
कुमारस्वामी, टी. एन., ३६०
कुमुदिनी, ३६८
कुलकर्णी, ३८८
कृष्णकान्त मालवीय, ६५
कृष्णकुमार कुल्लूर, ३६१
कृष्णमुर्ति, रा., ३६०
कृष्णराव, अ न., ३६१
कृष्ण, वी. टी जे, ३६१
कृष्णानन्द गुप्त, ३८७
कृष्णा सोवती, ३६२
कृशनचन्दर (कृष्णचन्द्र), स. (३), १६२, २३१, ३८७, ३६२
केबुल, जी. बी. ३८३
केशवगोपाल निगम, ३८७
केशवप्रसाद मिश्र, ३८७
कोहैनाथ की अभाल, ३६०
कौनरैड, जोसेफ, ३७२
कॉपर्ड, ए. ई., ३७६, ३७६
कॉलरिज, ३८२
कौशिक (देखिए विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक)
क्रैडिक, सी. ई. (मरफी. एम. एन.), ३८३
क्रीव्ज, विस्टन, ३७६
क्विलर काउच, सर आर्थर, ३७३

खलील जिब्रान, ७६, १३१ २, १५२, १७२, १८४, १६६, २६१, ३६७
खाण्डेकर, वि. स., ३८८-६
ख्वाजा अहमद अब्बास, ३८७
ख्वाजा हसन निजामी, ३६१-२

गयाप्रसाद शुक्ल, प्रो., ३३५
गिलक्राइस्ट, जॉन, ३६१
गुणाढ्य ३६४-५
गुलाबदास ब्रोकर, ३८६
गुलाबराय, ४१, ३१६, ३३६
गुर्जर, वि, सी., ३८८
गेटे, ३८०
गोकुलनाथ, ३८५
गोखले, कु. के. ३८८
गोगोल, ३८०
गोदी, ३८१
गोपालकृष्णराव, ३६१
गोपालराम गहमरी, ३८७

गोपीचन्द, ३९१
गोबैल्द, ३७०
गोरूर रामस्वामी ग्रायङ्गर, ३९१
गोर्की, मैक्सिम, ३८०, ३९३
गोल्डस्मिथ, ३८०
गोविन्दबल्लभ पन्त, ३८६
गौम्बरहिल, ३७०
गौरीशङ्करगोवर्द्धन जोशी, 'धूमकेतु'३८९
गङ्गकवि, ३८५
गङ्गाधर गाडगिल, ३८९
ग्राहम कनिङ्गहम, ३७५
ग्रीन, रौबर्ट, ३७१

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', १५३, १८६, २६३, २९८, ३८६
चतुरसेन शास्त्री, ग्राचार्य, १३३, ३१२, ३१५, ३८६
चदुलवाड सीताराम शास्त्री, ३९०
चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, ३८७
चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, ४०, ३८७
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, २६९, २९०, ३८६
चलम्, ३९१
चिदम्बर सुब्रह्मण्यम्, ३९०
चैखव, एण्टन, स. (३), ३९३
चैस्टरटन, गिलवर्टकीथ, ३७५
चौशेन, ग्रियेल, ३८०

छविनाथ त्रिपाठी, ९, १०, १८३, ३१९ ३३४, ३४४, ३६६

जगन्नाथ, पण्डितराज, २, २८
जगन्नाथप्रसाद शर्मा डॉ. २५१
जटमल, ३८५
जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', २७४ ३८६
जयदेव, २
जयलक्ष्मी श्रीनिवासन् ३९१
जयशङ्करप्रसाद (देखिए 'प्रसाद')
जानकी बल्लभ शास्त्री, ३८७
जानकीरामन्, ३९०
जायसी, ३४०

जितेन्द्र, ३८७
जीवट, एस. ग्रो. ३८६
जे. पी. श्रीवास्तव, ३८३
जेम्स, ३८४
जेम्स, मौण्टैग्यू रोड्स, ३७९
जेम्स, हैनरी, ३७२, ३७३, ३८३, ३९३
जैकब्स, विलियम बाईमार्क ३७३
जैक विल्टन, ३७१
जैनेन्द्रकुमार, १३४, १६१, १८९, २१३ २४१, २७७, २८६, ३००, ३२४, ३२७, ३८७, ३९५
जैसी, मिस टैनीसन, ३७९
जोला, एमिल, ३७०, ३९३
जोशी, चिवा, ३८९
जोशी, य. गो., ३८९
जौयस, जेम्स, ३७७
ज्वालादत्त शर्मा १८५, ३८६
ज्विग, स्टीफैन, १७९, १८०, १८४

टैगोर (देखिए, रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
टॉल्टाय, काउण्ट लिग्रो, १४२, २११, ३८०, ३९३
ट्वेन, मार्क, ३८३
डनसेनी, लार्ड, ३७८
डिकन्स, चार्ल्स, २८७, ३७१, ३७३, ३८३
डिफो, डैनियल, ३९३
डिला मेग्रर, वाल्टर, ३७८
डिलोनी, टॉमस,३७१
डैविड्स, रायस, ३५९, ३७८
डैविड्स रायस, श्रीमती, ३६०
डॉयल, सर ग्रार्थर कौनन, ३७३, ३७५
ड्यूमा, एलैक्जैण्डर, ३७०

ताराशङ्कर गङ्गोपाध्याय, ३८८
तुर्गनेव, ३८०, ३९३
तुलसीदास, ५३, १५५, ३४०
तेनालिराम, ३९०

थियोक्रायस, ३६८

दण्डी आचार्य, २-१४, १८, २०, २४
२५, १२७, २७०, ३६४, ३६६-७
दाँते, ३६१
दिवाकर कृष्ण, ३८८
देवेन्द्र इस्सर, ३६२
देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ५०
देवेन्द्र सत्यार्थी, ३४१, ३८७
देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', ३८७
देशपाँडे, बा. ना., ३८८
द्विजेन्द्रलाल राय, १५७

धनञ्जय, २
धनपतराय, मुन्शी (प्रेमचन्द), ३६१
धर्मवीर, ३८७
धर्मवीर भारती, ३८७

ननी भौमिक, ३८८
नरसिंहाचार, ३६१
नरेश, ३८७
नरोत्तम नागर, १६६
नवतेज, ३६२
नवेन्दु घोष, ३८८
ना कस्तुरी, ३६१
नाजडी, ३६०
नारायण, ३६४-५
नारायणहरि आप्टे (देखिए आप्टे)
नार्थ, सर टॉमस, ३६३
नार्ल वेंकटेश्वर राव, ३६०
निकल्सन, हारोल्ड, ३७६
निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, ३००,
३२७, ३८६
नृसिंहदेव, ८, १८, २४, ३६६
नैश, टॉमस, ३७१, ३६३
न्याज फतहपुरी, ३६१

पतञ्जलि, ५
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, ३८६
पन्त, ६६, ३८७
पन्नालाल पटेल, ३८६
पहाड़ी, रमाप्रसाद घिल्डियाल, ६५,
३३२, ३३४
पाणिनि, ५
पालगुम्मि पद्मराजु, ३६१
पाल, योहन, ३८०
पिच्चमूर्ति, ३६०
पिसैंबस्की, ३८०
पुटप्पा, क. वी., ३६१
पदुमै पित्तम्, ३६०
पुष्या महादेवन्, ३६०,
पूर्णभद्र, ३६४
पूवालूर सुन्दररामन्, ३६०
पेज, टी. एन., ३८३
पैट्रोनियस, ३६८
पैण्डोस्टो, ३७१
पैलेडियस, ३७८
पो, एडगर एलैन, स. (३), ३७, ३६,
१०७, १४३, १४७, १६६, २३०,
३८१-२, ३६३-४
पोकाक, गाई. एन., ३७, ३६
पोर्टर, सिडनी (ओ. हैनरी), ३८४,
३६३
पॉयस, टी. एफ., ३७८
पजे, मगेशराव, ३६१
प्रखर, ८६, ११०, ११६, १३१, १५४,
१८५, २६०
प्रबोधकुमार सान्याल, ३८८
प्रभाकर माचवे, ३८७
प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, ३८८
प्रसाद, जयशङ्कर, ४०, ४३-४६, १११,
१४५, १५३, १७८, १८४, १६७,
२०१—२, २११, २२१-२, २२६,
२३१, २५१-३, २५६, २६७-८,
२७२, २८६, २६८, ३००, ३०२-
३, ३१३, ३१६, ३८६
प्रिचैट, वी. एस., ३७६
प्रेमचन्द, स. (३), ४०, ४८, ४६,
८७, ८८, १०७, १२८, १४२,
१४६, १५७, २११-२, २३१,
२६३, २६७, २७७, २७६, २८४,
२८८, ३२२-३, ३३६, ३४०,
३८६-७, ३६१

प्रेमन्द्र मित्र, ३८८

फडके, ना. सि., ३८८
फरहत उत्का बग, ३६२
फाउण्टेन, एलेविसस, ३८०
फिग्रोरटिनी, सच्चे ही, ३६६
फिल पाट्स, ईडन, ३७६
फनेलेन, ३७०
फोतेन, ३७०
फौर्सर, ई. एम., १०२, ३७६
फॉवेर, सेसिला बोहल द, ३८०
फॉस्टर, जॉन, ३४, ३८
फ्लॉबेर, ३७०
फ्रायड, एस., १४५
फ्रासिस्को, ३६८
फ्रीमैन, एम. डब्लू., ३८३
फ्रेटॉग, ३८०
फ्रोयेन, ३७०

बनफूल, ३८८
बनर, हैनरी, कायलर, ३८४
बनारसीदास चतुर्वेदी, २६३
बर्क, टॉमस, ३७८
बलवन्तसिंह, ३६२
बहुप्रिया, ३६०
बाणभट्ट, ५, ३६४, ३६६–७
बाल्डविन, प्रो., ३६६
बिबेस्को, प्रिसेस, ३७६
बिहारी, १७६, २०६, ३४०
बीचक्राफ्ट, टी. ओ., ३७६
बुद्ध घोष, आचार्य, ३५८
बुधस्वामी, ३६४–५
बुलैट, १, १७, १८, ३६, ३६
बेट्स एच. ई., ३५, ३८, ३७८
बेढब बनारसी, ३८७
बेलूरि शिवराम शास्त्री 'जमदग्नि', ३६१
बैंडिलो, ३६६
बैरो आल्दे, ३७०
बैबिन, मेरी,
बोकासिओ, जिएवेनो, ३६८–६
बोनालैंचूर, ३७०
बग महिला, ३८६
ब्राउन, एलाइस, ३८४
ब्राउन, सी. पी. ३६०
ब्रोकन, हैनरी, ३७८
ब्लेकवुड एल्गर्नन, ३७६

भगवतशरण उपाध्याय, ३८७
भगवतीचरण वर्मा, १६६, २३१, ३००
  ३८७
भगवतीप्रसाद बाजपेयी, ४१, १५४,
  १८७, २७७, ३००, ३२७, ३८७
भगवानदास केला, ३४१
भट्टो, २
भदन्त आनन्द कोसल्यायन, ३८७
भरतमुनि, २–४, २३, ६४
भानुदत्त, २
भामह, २, ४–८, १०, ११, १३, १४,
  १८, २४, २५
भारतीय, सत्यजीवन वर्मा, ४१, ३८७
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ३८६
भारवि, ७
भिक्षु शीलभद्र, ३६१
भीष्म साहनी, ३८७
भूदेव, ३८७
भैरवप्रसाद गुप्त, ३८७
भोज, ४
भोलाशङ्कर व्यास, डॉ. ३३६, ३४६-
  ५१, ३५६-७

मजनूँ गोरखपुरी, ३६२
मजलूँ, ३६१
मण्टो, सहादतहसन, स० (३), ३६२
मधुकर, ३६६
मधुसूदन, ३८७
मनोजवसु, ३८८
मन्फ्रोनी, ३६६
मम्मट, आचार्य, २, १२, २२–२३,
  २७, ३४३
मरफी एम. एन. (देखिए कैंडक सी. ई.)

महादेवशास्त्री जोशी, ३८६
महादेवी वर्मा, ७४, १६६
महावीरप्रसाद द्विवेदी, ३६६
महिम भट्ट, २
माघ, ७
मानिक बनर्जी, ३८८
मार्कण्डेय, स० (३), ३८७
मार्क्स, कार्ल, १४४
मशुसिग्रो, ३६६
मिलैट, फ्रैड बी, ३७०
मुगली, ३६१
मुणिमाणिक्य नरसिंह राव, ३६०
मुनरो, एच. एच., (साकी), २०३, २६५, २६७, ३७५
मुनवी, ए. एल. एन., ३७६
मुल्ला रमूजी, ३६२
मेघ विजय, ३६४
मैक्लारन रौस, जे०, ३७६
मैथ्यूल, ब्रैण्डर, स० (१), ३३, ३४, ३७, ३८२, ३८३
मैनहुड, एच. ए., ३७६
मैन्सफील्ड, कैथराइन, ३७७
मैरिक, लियोनार्ड, ३७५, ३७७
मैरिव्हो, ३७०
मैशेन, आर्थर, ३७३
मोपासाँ, गाई. डी., स० (३), २५५, ३७०, ३७७, ३६३
मोहन राकेश, ३८७
मोहनलाल जिज्ञासु, २५१, २७८,२०६, ३३५
मोहनलाल महतो 'वियोगी', ३८७
मोहनसिंह सेंगर, ३८७
मौगहैम, विलियम सोमरसैट, ३५, ३७६
मौण्टिमेर, ३७६
मौण्टेग्यू, सी. ई., ३७८
मौरिसन, आर्थर, ३७५

यमुनादत्त वैष्णव., ६०
यशपाल, ६५, ११०, ३८७
रतननाथ सरशाद, ३६२
रवीन्द्रनाथ ठाकुर, ५०, १०७, २३०, ३८८
राजगोपालाचारी, चक्रवर्त्ती, ३६०
राजरत्नम्, ३६१
राजशेखर, २, ६, २३
राधाकृष्ण- १६३, १६६, २०२, ३२४, ३८७
राधिकारमणसिंह, राजा, ३८६
राम अवध द्विवेदी, डा., २३७
रामकुमार, ३८७
रामकुमार वर्मा, डा., ६६
रामचन्द्र तिवारी, २१५
रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य, स (१), २५१, ३८६
रामनारायण वि० पाठक, ३८६
रामय्या, ३६०
रामविलास शर्मा, डा., ३२७, ३५५
रामवृक्ष बेनीपुरी, ३८७
रामस्वामी, व०, ३६०
रामानुज शर्मा, ३६०
रायकृष्णदास, ४१, ८५, ८६, ३८६
रावी, ३६०
राहुल सांकृत्यायन, ३४१, ३८७
रांगेय राघव, ३८७
रुद्रट, २, १६
रुद्रभट्ट २
रुय्यक, २, २७
रूसो, ३५०
रौबोल, ३७०

लण्डन, जैक, ३८४, ३६३
ललितकुमार बन्द्योपाध्याय, ३८८
लल्लूलाल, २१३, ३८६
लक्ष्मीनारायण मिश्र, १५६
लायल, ३३६
लिन, जेम्स डब्लू., ४२
लियौन्स, नील, ३७६
लिली, जौन, ३७०-१.
लीला कारन्त, ३६१
लीला देशमुख ३८६

लीला मधुकर, ६४
लूकास, सैण्ट जौन, ३७६
लूशियन, ३६८
लैं फानु, जे० शैनीडम, ३७६
लैसेज, ३७०
लौक, ३५०
लौक् डब्लू० जे., ३७५
लौज, टॉमस, ३७१
लौज, ले., ३७६
लॉरेन्स, डेविड हर्वर्ट, ३७७
लौवेल, जेम्स रसैल' ३८२

वर्गों, ३६६
वल्लभाचार्य, ३८५
वसु वालुड, ३६०
वाकर, ह्यू, ३७, ३६
वाग्भट, २, २८, २६
वाचस्पति पाठक, ३८७
वामन चौरधडे, ३८६
वामनाचार्य, २, २२, २३, २७, ३६७
वासुदेवाचार्य केरूर, ३६१
विण्टरनित्ज, ३५६
विद्यानाथ, २
विनोदशङ्कर व्यास, ४१, १७७, २१३, २७३, ३८७
विभावरी शिकरकर, ३८६
विभूतिभूषण बन्धोपाध्याय, ३८८
वियस, एम्ब्रौस, ३८४
विलियमसन, हेनरी, ३७८
विष्णुप्रभाकर, ३८७
विष्णु शर्मा, ३६२
विश्वनाथ कविराज, २, २८-३०, ३६७
विश्वनाथ सत्यनारायण, ३६०
विश्वम्भरनाथ जिज्जा, ३८६
विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक', १७८, ३००, ३२०, ३८६
वीरम मुनिवर, ३८६
वीरेशलिङ्गम्, ३६०
वीलिनाथन्, ३६०
वुलसन, सी. एफ, ३८३
वृन्दावनलाल वर्मा, ३७१, ३८७
वेरिणक, ३६१
वेदव्यास, ३५६, ३६७
वेद वैङ्कटराय शास्त्री, ३६०
वैङ्कटरमणी, ३६०
वैङ्कटरमण्या, ३६१
वैल्स, हर्वर्ट जॉर्ज, ३४, ३८, ४२, ६१, ६०, १४२, ३७४-५
वोडहाग्स, पी. जी., ३७७
'व्यथित हृदय', ३८७
व्यङ्कटेश माडगूलकर, ३८६
व्यास, द्वैपायन, ४७

शचीरानी गुर्टू, ३२५, ३३६
शरच्चन्द्र चटर्जी, ३८८
शरच्चन्द्र मजूमदार, ३८८
शाता ज. शेलके, ३८६
शामला पद्मावती, ३६१
शिकिनु, मुरासाकी, ३८५
शिवदास,
शिवनाथ, प्रो, ३६४
शिवपूजनसहाय, ३२८, ३८७
शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', राजा, ३८६
शुद्धानन्द भारती, ३६०
शेक्सपियर, बिलियम, १३७-८, १५५, ३६१, ३८६
शौकत थानवी, ३६२
श्यामसुन्दरदास, आचार्य, स० (१), २६, ४१, ४२, २४६
श्रीकृष्णलाल, डा., ४१, ३८६
श्रीनाथसिंह, ३८७
श्रीपतराय, ३८७
श्रीमास्ति वैङ्कटेश आयङ्कर (श्रीनिवास) ३६१
श्रीराम शर्मा, ३८७

सज्जादहैदर, मुन्शी, ३६१
सत्यजीवन वर्मा भारतीय (देखिए भारतीय)
सत्येन्द्र, डा. ३३८-४१

सदल मिश्र, ३८६
सद्गुरुशरण अवस्थी, प्रो., १६, १७, ३२८
सन्तसिंह सैखो, ३९२
सर ग्रुजस्ता हाजी बगलूल ३९२
सरोजकुमारराय चोधरी, ३८८
सरोज रामगूर्ति, ३९०
साइलेन्स, जॉन, ३७९
सावित्री अग्माल, कु०, ३९०
सिटवैल, सर ऑसबर्ट, ३७९
सिडनी, फिलिप, ३७०
सिनैंगियस, ३६८
सियारामशरण गुप्त, ९५, २७५, ३२७, ३८७
सुदर्शन, १८९, २४८, ३२८, ३८६, ३९१, ३९२
सुबन्धु, ५, ३६४–३६६–७
सुब्रह्मण्यम्, अय्यर, व. वे., ३८९
सुब्रह्मण्यम् भारती, ३८९, ३९०
सुभद्राकुमारी चोहान, १३३, १८४, ३८७
सुमित्रानन्दन पन्त (देखिए 'पन्त')
सुशील जाना, ३८८
सूरति मिश्र, ३८६
सूरदास, ३४०
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (देखिये 'निराला')
सेराओ, ३६९
सैन्सम, विलियम, ३७९
सोकाकु, ३८५
सोमदेव, ३६४–५
सौफोक्लीज, ३८०
स्कुहैरी, ३७०
स्कॉट, सर वाल्टर, ३७१
स्टील, ३८०
स्टीवेन्सन, रॉबर्ट लुई, १४७, ३७२
स्टॉन्टन फ्रेंक, ३८३
स्ट्राग, एल ए. जी., ३६, ३७, ३९
स्वर्णकुमारी, ३८८

हक्सले, एल्डस, ३७७
हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा. ३३६
हडसन, हैनरी, ४२
हरिनारायण ग्राप्टे, ३८८
हाइन कटविजफ, ३८६
हार्डिङ्ग रैबेका, ३८३
हार्डी, टामस, २८७
हिजाब इम्त्याज अली साहिबा, ३९१
हेक, एडवर्डस्वरैंष्ट, ३८२
हेमचन्द्र, २, ३, १८, २३–२९
हेदरजोश, ३९२
हेरिस, जे. सी., ३८३
हैरोडोटस, ३६७
हैलियोडोरस, ३६८
होमवतीदेवी, ३८७
हॉथार्न, नाथेनियल, ३८१–२, ३९३
हॉपकिन, टी. सी., ३७९
हॉब्स, ३५०
हॉरोवेस्की, गोचरोर, ३८०
हंसराज रहबर, ३८७
ह्यूगो, विक्टर, ३७०

क्षीरसागर, ३९१
क्षेमेन्द्र, ३६४, ३६५

रचनाएँ

अकबर-बीरबल विनोद, ३८५, ३६०,
अग्निपुराण, १, ५, ११, १६, २१, २२, २४, २६, ३०, ३१
अजन्ता का भिखारी, १५६
अतीत के चलचित्र, ७४
अनपू ओर बाटा, ३६६
अनाथ बालिका, १८५
अनाश्रित, ३२४
अनुष्ठान, १८६
अनङ्गवती, २५, २६
अन्धकार, ६६
अपत्नीक, २७२
अपना अपना भाग्य, १३४, २०२
अफसाने, ३६२
अभिधर्म पिटक, ३५८
अभिनव भारती, २
अभ्युदय (पत्रिका), ६५
अमरकोश, ४, ५, ३५६
अरेबियन नाइट्स, ३६०
अलग्योझा, २१२
अलिफ लैला, ३६०
अलङ्कार सर्वस्व, २
अवदान शतक, ३६१
अवलम्ब, ३२४
असम्प्रदान जातक, ३५६
असुर कन्या, ३६०
अस्थि पिञ्जर, ६०

आई. सी. एस., ३६२
आकाश दीप, १११, १८४, ३०३
आखिरी तोहफा, ३६२
आँडम एण्ड ईव एण्ड पिंचमी, ३७६
आत्मा के आँसू, १५६
आत्माराम, २८८
आरिस्टीडी, ३६८

आल्टुगेदर, ३७६
आँधी, १६५, ३१४

इक्कीस कहानियाँ, ६५
इन ए जर्मन पेन्शन, ३७७
इन दी डेज आँव दी कॉमेट, ३७५
इन्दु की बेटी, १६३–५, १६६, २१६–२०, २३८
इन्दु (पत्रिका), ३८६, ३८७
इन्दुमती (सस्कृत), २५, २६, ३०, ३६३
इन्दुमन्ती (हिन्दी), ३८६
इलनैवेल्लिनो, ३६८
इलियड, स० ३६३

ईदगाह, १६५

उदयभानु-चरित्र, ३८६
उपनिषद, स० (३), २५०, ३३६, ३५१, ३६२, ३६२
उसकी डायरी, ११६
उसने कहा, ३६२
उसने कहा था, १६६, २०२, २६६, २६०, ३०१, ३०२, ३१२, ३१६ ३२१

ऋग्वेद, ३४५, ३४६–८

एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न, ३८६
ए चाइल्ड आफ दी जागो, ३७५
ए चाइल्ड्स ड्रीम आव दी स्टार, ३७१
एज यू लाइक, ३८, ३६१
एटलाण्टिक मन्थली (पत्रिका), ३८२
ए थिन घोस्ट एण्ड अदर्स, ३७६
ए पैशनट्र पिलग्रिम, ३७२

ए सेट ऑव सिक्स, ३७३

अगुत्तर निकाय, ३५८
अगुरीय विनिमय, ३८७

ककडी की कीमत, ३१२, ३१५
कट एण्ड कम अगेन, ३७८
कथा सरित्सागर, ५, १०, २४६,
    ३६४, ३६५, ३६०, ३६२
कभी साँप सो सकता है, ३३३
कर्पूर चरितम् ६४
कल्पनाओ का राजा, २७३
कविता क्या है ? २५१
कहानी (पत्रिका), ३३२, ३८७
कहानी का रचना विधान, २५१
कहानी-दर्शन, ३८२, ३८४
कार्क्सी, २७५
काठ का उल्लू, ३३२
कादम्बरी, स० (३) ५, ८, २५, २८
    ३०, १२७, १७३, ३६३, ३६६-
    ६७, ३७०, ३६३
कान्तम कथलु, ३६०
काव्य प्रकाश २, १२, २२, २३, २७, २८
काव्य मीमासा, २, ६, २३, २८
काव्य मे सत्य की अभिव्यक्ति, २३७
काव्यादर्श, २, ४, ५, ६ १३, १८, १२७
कव्यानुशासन (वाग्भट), २, २८, २६
काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) २, १८, २३–
    २७, २८
काव्यालङ्कार (भामह), २, ७, १०
काव्यालङ्कार सूत्र (स्फुट), २, १२
काव्यालङ्कार-सूत्र, २, २२
काशी मजली कथलु, ३६०
किडनैप्ड, ३७२
किप्स, ३७५
किम्, ३७४
किरातार्जुनीय, ७, ६४
किस्मत, १३३, १८४
किस्सा साढ़े तीन यार का, ३८५
क्रीड़ाणुओं की चोरी, १४२, ३८५

कुक्कुर जातक, ३६०
कुवलयानन्द, २
कोलाहल का शून्य, १३१

खजाची बाबू, १६३
खुदा की याद, १६७
खुद्दक निकाय, ३५८
खूनी, १३३
ख्वाब ओ-खयाल, ३६२
ख्वाबो-खयाल, ३६१

गदर देहली के अफसाने, ३६२
गली की चाँदनी, १७६
गिरगिट, १६४
गिरती दीवारे, १६६
गीत, ३३३
गुण्डा, ४२, १८५, २५६, २६८, २७२
गुलाम, स० (२)
गुल्स हार्नबुक, ३७१
गृहदाह, १६५
गोरा बादल की कथा, ३८६
गोविन्दाख्यान, २५, २६
ग्यारह वर्ष का समय, ३८६
ग्राम, ३८६
ग्रामगीत, ३१८
ग्रिम्स फेअरी टेल्स, ३६०

घोस्ट स्टोरीज आफ एण्टिक्वेरी, ३७६

चन्द छन्द वरनन की महिमा, ३८५
चन्द्रालोक, २
चमत्कार कथा मंजरी, ३६०
चम्पेट्य जातक, ३५६
चलोई, ३६८,
चिनगारी, ३६१
चिन्तामणि, २५१
चित्रकथा-लहरी, ३६०
चित्र मीमासा, २
चित्र लेखा, ३०
चेटक, २५, २६
चौरासी वैष्णवन की वार्ता, ३८५

छोर का पछी, १५६
छः लडके, ३३३

जगबीती कहानियाँ, ३६२
जब नक्षत्र टूटा, १५६
जस्ट शो स्टोरीज, ३७४
जातक, स० (३) ३४८, ३५३, ३५७
३६२, ३६८, ३६३
जातक अट्ठकथा, ३५८
जातकमाला, ३६१
जीवन, ३६१
जैक ऑफ न्यू बैरी, ३६१
जैण्टलक्राफ्ट, ३७१
जौक, १६४
ज्योत्स्ना, ६६

झूँठ-सच, ६५

टर्मिनेशन्स, ३७२
टेडे-मेढे रास्ते, १६६
टेल्स आफ अनरैस्ट, ३७३
टेल्स आफ मीन स्ट्रीट्स, ३७५
टेल्स आफ हियर से, ३७३
टेल्स फ्राम द वैक्टिव ब्रिज, ३७६
टैम्पैस्ट, ३८६
टैस्टामैण्ट, ३६६
ट्रासफर्ड घोस्ट, ३८३
ट्रिपल फ्यू जू, ३७६
ट्रू फिक्स एण्ड डिस्कवरीज, ३७४
ट्वाइस टोल्ड स्टोरीज, ३८१

डब्लिनर्स, २७७
डस्क (साँझ), २०३, २६७
डा. क्यूमैण्टिद अमूर, ३६८
डा. जैकील एण्ड मि. हाइड, ३७२
डाफनी, ३६८
डायना, ३७६
डायमण्ड स्पैक्टेकल, ३८२
डिकैमरो, ३६६
डिवाइन कौमेडिया, ३६१

डेड मैन्स रौक, ३७३
डौन क्विकसोट, ३८०

तमाशा, ३२४
तरुण वेटर के कष्ट, ३८०
ताताचार्यलु कथलु, ३६०
तिरुपति कोडमेट्टु, ३६०
तीन पैसे की छोकरी, ३६२
तीन बहुएँ, ३३३
'३०२', १६६, १७७
तोता मैना, ३६६, ३८५
तन्त्राख्यायिका, ३६३-४

थर्टी टेल्स, ३७८
थ्रू द वुड्स, ३७८

द अलाबास्टर हैड, ३७६
द आइलेण्ड आव डा० मोरो, ३७४
द इटरनल मोमैण्ट, ३७६
द इनविजिवल मैन, ३७४
द एटलाँटिक सोवेनिर (पत्रिका), ३८१
द एम्पटी हाउस, ३७६
द क्रॉनिकल्स ऑफ क्लोविस, ३७५
द गार्डन पार्टी, ३७७
द गिफ्ट ऑफ द मैगी, ३७४
द जॉयस एडवेंचर आफ एरिस्टीडी,
३७५
द जगल बुक, ३७४
द टर्न आव द स्क्रू, ३७२, ३८३
द टाइम मैशीन, ३७४
द टू मजिक्स, ३७२
द टेल्स ऑव एल्गर्नन ब्लकवुड, ३७६
द टोक्स (पत्रिका), ३८१
द ट्रिप टु लण्डन, ३७८
द डेज वर्क, ३७४
द पॉट हुण्टर्स, ३७७
द फर्स्ट मैन इन द मून, ३७४
द फ्लूड ऑव द गौड्स, ३७५
द फेट ऑव द रोरिंग कैम्प, ३८३
द फ्लाइङ्ग गोट, ३७८

द ब्लैक एरो, ३७२
द ब्लैक वीनस, ३७८
द मास्टर ऑव बैलैण्ट्राय, ३७२
द मैन विदाउट कण्ट्री, स० (४), ३८३
द मैन हू वाज, ४३
द रौग बोक्स, ३७२
द लाइट दैट फेल्ड, ३७४
द लेडी ग्राव द कनारीज, ३७६
द वार ऑव द वर्लड्स, ३७४
द वार इन द एयर, ३७५
द वैल एण्ड द मक्कीज पाँ, ३७३
द व्हील्स ऑव चान्स, ३७५
दशकुमार चरितम्, ८–१०, २०, २७०, ३६४, ३६६–७
दशरूप, २
द सैकिण्ड जङ्गल बुक, ३७४
द सैलेशियल ओम्गोबस, १०२, ३७६
द स्टोलन बैसीलस (कीटाणुओ की चोरी), ६०, १४२
द स्प्लैण्डिड स्पर, ३७३
दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र, ३६४
दान, २७५
दासी, ३१४
दिन के तारे, १६६
दिव्यवदान, ३६१
दीघ निकाय, ३५८
दीवान, १५६
दुखवा कासे कहूं मोरी सजनी, १६५
दुखिया, २७४
दुलाई वाली, ३८६
दूध की कीमत, ३६२
देवदासी, ८६
देवरथ, ४५, ४६, २२२, २५२–३, २७३, २८६, २६०
दो पैर, १५६
दो सौ वैष्णवन की वार्त्ता, ३८५
द्वेषमु, ३६०

धनञ्जय विजय, ६४
धरती का चक्र, १५६

ध्वन्यालोक, २, ४, १६, २१, २३
ध्वन्यालोक लोचन, २, १०, १६, २७

नक्खत जातक, ३५६
नदी के द्वीप, १६६
नरवाहनदत्त चरित, २५, २६
नर्त्तकी, ५४
नलोपाख्यान, २५, २६
नवनन्तिर कथैकल, ३८६
नशा, ८८, १०७, २६७, २८४, २८८
नाई श्रमजीवी सङ्घ, १६७
नागराजु, ३६२
नाट्यशास्त्र, २–४, ६४
नादरात, ३६१
नासिकेतोपाख्यान, ३८६
नास्तिक प्रोफेसर, १७८
निगेटिव ग्रैविटी, ३८३
निजगल्ल की रानी, ३६१
नीलमदेश, २४१
न्यू अरेबियन नाइट्स, ३७२

पक ऑव पुक्स हिल्स, ३७४
पत्नी, ३०२, ३२४
पत्नीव्रत, १६७, २०२
पद्मावत, ३४०
पनघट, २४६
परमानन्द शिष्बुल कथलु, ३६०
परमार्थ पुरुकर्म, ३८६
परित्राण, १८४
पर्दे की मर्यादा, ११०
पुरस्कार, १६७–८, २००–२, २५१, २६७, ३१४
पुराण, स० (३), २५०, ३४०, ३४६, ३५३, ३६०, ३६२, ३६७, ३६३
पैरेबल ऑव द प्रौडिगलसन (अपव्ययी पुत्र की कथा) ३६६, ३६३
पॉइजन आइलैंड, ३७३
पचतन्त्र, स. (३), ५, २५, २६, ३२, ४७, १३२, १७३, २४६, २८६, ३५३–५४, ३६०, ३६२–४,

३६५, ३६७, ३८६, ३६३
पचतन्त्र रिकॉन्स्ट्रक्टेड, ३६४
पचाख्यान, ३६४
पचाख्यानोद्धार, ३६४
प्रतापरुद्रयशोभूषण, २
प्रायश्चित, ३००
प्रियप्रवास, १०१
प्रेत और छाया, १६६
प्रेम का गणित, ३३३
प्रेगचालीसी, ३६२
प्रेमसागर, २१३, ३८३
प्लेन टेल्स फ्राम द हिल्स, ३७४

फसाने जोश, ३६२
फिलोसोफी आव द शार्ट स्टोरी, २८४
फुल मून, ३७७
फेबुल्स ऑफ पिलपिली, २६३
फेयरी पार्टिकल्स, ३७८
बच्चो की कहानी, ३६२
बड़े घर की बेटी, १६७, २३६, २८८, ३१६
बाइबिल, स. (३), १४३, ३७०
बादलो के घेरे, ३६२
बारलय एण्ड जोसेफ, ३६०
बासी फूल, ३६२
बिजली, ३६१
बिसाती, २०३
बीस्ट्स एण्ड सुपर बीस्ट्स, ३७५
बुड्डकहा (बृहत्कथा) ३६४
बुढापा, १६५
बुद्ध वचन, ३५८
बैताल पच्चीसी, ३६५, ३८६
बॉय विद ए ट्रम्पैट, ३७८
ब्राह्मण, ३४७, ३५०, ३६२
ब्लिस, ३६७

भट्टिकाव्य, २
भद्रबाहु, २८६
भागवत् (देखिए श्रीमद्भागवत)
भूमिदान, ३३२
मजनूँ की डायरी, ३६२
मज्झिम निकाय, ३५८
मत्स्य हसित, २५, २६
मदनकामराजुनिकथलु, ३६०
मन बहादुर, ३३३
मनोरमा के पत्र, ६५
मन्दिर की सीढियो पर, १३२
मरुत जातक, ३६०
मर्चण्ट ऑव वैनिस, ३६१
मर्यादा रामन्नकथलु, ३६०
मलेनाड के चित्र, ३६१
महाभारत, ५, १०, ३४०, ३४७ ३५३, ३६३
महाभाष्य, ५
महासलिव जातक, ३६०
माइ अंकिल सिलास, ३७८
माइ हड्रेड्थ स्टोरी, ३७६
माटगानि, ३६१
मिठाई वाला, १८७
मुक्ति का रहस्य, १५७
मुगलो ने सल्तनत बख्श दी, १६७
मुझसे मारी गई लडकी, ३६१
मुद्राराक्षस, ३०४
मृत्युराग १५६
मेरा साला, ३६१
मेरी बच्ची और तसवीर, ३३३
मैनी इन्वैन्शन्स, ३७५
मैनी कारगोज, ३७३
मोची ३६१
मोह, ३२०
मौजे तवस्सुम, ३६२
मौत के बाद, १६१
मजिल २३०

यह किसकी तस्वीर है ? १६५
यूफ्यूस, ३७०, ३६३
यूफ्यूस एण्ड हिज इङ्गलैड ३७०

रजिया की समस्या, ६५
रमणी का रहस्य, ८६

द ब्लैक एरो, ३७२
द ब्लैक वीनस, ३७८
द मास्टर ऑव बैलेण्ट्राय, ३७२
द मैन विदाउट कण्ट्री, स० (४), ३८३
द मैन हू वाज, ४३
द रौग बौक्स, ३७२
द लाइट दैट फेल्ड, ३७४
द लेडी आव द कनारीज, ३७६
द वार ऑव द वर्ल्ड्स, ३७४
द वार इन द एयर, ३७५
द वैल एण्ड द मङ्क्रीज पॉ, ३७३
द व्हील्स ऑव चान्स, ३७५
दशकुमार चरितम्, ८–१०, २०, २७०, ३६४, ३६६–७
दशरूप, २
द सैकिण्ड जङ्गल बुक, ३७४
द सैलेशियल ओम्गोबस, १०२, ३७६
द स्टोलन बैसीलस (कीटाणुओं की चोरी), ६०, १४२
द स्प्लैण्डिड स्पर, ३७३
दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र, ३६४
दान, २७५
दासी, ३१४
दिन के तारे, १६६
दिव्यवदान, ३६१
दीघ निकाय, ३५८
दीवान, १५६
दुखवा कासे कहूं मोरी सजनी, १६५
दुखिया, २७४
दुलाई वाली, ३८६
दूध की कीमत, ३६२
देवदासी, ८६
देवरथ, ४५, ४६, २२२, २५२–३, २७३, २८६, २६०
दो पैर, १५६
दो सौ वैष्णवन की वार्त्ता, ३८५
द्वेषमु, ३६०

धनञ्जय विजय, ६४
धरती का वक्ष, १५६
ध्वन्यालोक, २, ४, १६, २१, २३
ध्वन्यालोक लोचन, २, १०, १६, २७

नक्खत जातक, ३५६
नदी के द्वीप, १६६
नरवाहनदत्त चरित, २५, २६
नर्त्तकी, ५४
नलोपाख्यान, २५, २६
नवनन्तिर कथैकल, ३८६
नशा, ८८, १०७, २६७, २८४, २८८
नाई श्रमजीवी सङ्घ, १६७
नागराजु, ३६२
नाट्यशास्त्र, २–४, ६४
नादरात, ३६१
नासिकेतोपाख्यान, ३८६
नास्तिक प्रोफेसर, १७८
निगेटिव ग्रैविटी, ३८३
निजगल्ल की रानी, ३६१
नीलमदेश, २४१
न्यू अरेबियन नाइट्स, ३७२

पक ऑव पुक्स हिल्स, ३७४
पत्नी, ३०२, ३२४
पत्नीव्रत, १६७, २०२
पद्मावत, ३४०
पनघट, २४६
परमानन्द शिब्बुल कथलु, ३६०
परमार्थ पुरुकर्म, ३८६
परित्राण, १८४
पर्दे की मर्यादा, ११०
पुरस्कार, १६७–८, २००–२, २५१, २६७, ३१४
पुराण, स० (३), २५०, ३४०, ३४६, ३५३, ३६०, ३६२, ३६७, ३६३
पैरेबल ऑव द प्रौडिगलसन (अपव्ययी पुत्र की कथा) ३६६, ३६३
पॉइजन आइलैण्ड, ३७३
पचतन्त्र, स. (३), ५, २५, २६, ३२, ४७, १३२, १७३, २४६, २८६, ३५३–५४, ३६०, ३६२–४,

३६५, ३६७, ३८६, ३६३
पचतन्त्र रिकॉन्स्ट्रक्टेड, ३६४
पचाख्यान, ३६४
पचाख्यानोद्धार, ३६४
प्रतापरुद्रयशोभूपण, २
प्रायश्चित, ३००
प्रियप्रवास, १०१
प्रेत और छाया, १६६
प्रेम का गणित, ३३३
प्रेमचालीसी, ३६२
प्रेमसागर, २१३, ३८३
प्लेन टेल्स फ्राम द हिल्स, ३७४

फसाने जोश, ३६२
फिलोसोफी ग्राव द शार्ट स्टोरी, २८४
फुल मून, ३७७
फेबुल्स ऑफ पिलपिली, २६३
फेयरी पार्टिकल्स, ३७८
बच्चो की कहानी, ३६२
बडे घर की बेटी, १६७, २३६, २८८, ३१६
बाइबिल, स. (३), १४३, ३७०
बादलो के घेरे, ३६२
बारलय एण्ड जोसेफ, ३६०
बासी फूल, ३६२
बिजली, ३६१
बिसाती, २०३
बीस्ट्स एण्ड सुपर बीस्ट्स, ३७५
बुड्डकहा (बृहत्कथा) ३६४
बुढापा, १६५
बुद्ध वचन, ३५८
बैताल पच्चीसी, ३६५, ३८६
बॉय विद ए ट्रम्पैट, ३७८
ब्राह्मण, ३४७, ३५०, ३६२
ब्लिस, ३६७

भट्टिकाव्य, २
भद्रबाहु, २८६
भागवत् (देखिए श्रीमद्भागवत)
भूमिदान, ३३२

मजनूँ की डायरी, ३६२
मज्झिम निकाय, ३५८
मत्स्य हसित, २५, २६
मदनकामराजुनिकथलु, ३६०
मन बहादुर, ३३३
मनोरमा के पत्र, ६५
मन्दिर की सीढियो पर, १३२
मरुत जातक, ३६०
मर्चेण्ट ऑव वैनिस, ३६१
मर्यादा रामन्नकथलु, ३६०
मलेनाड के चित्र, ३६१
महाभारत, ५, १०, ३४०, ३४७ ३५३, ३६३
महाभाष्य, ५
महासलिव जातक, ३६०
माइ अकिल सिलास, ३७८
माइ हड्रेड्थ स्टोरी, ३७६
माटगानि, ३६१
मिठाई वाला, १८७
मुक्ति का रहस्य, १५७
मुगलो ने सल्तनत बख्श दी, १६७
मुझसे मारी गई लडकी, ३६१
मुद्राराक्षस, ३०४
मृत्युराग १५६
मेरा साला, ३६१
मेरी बच्ची और तसवीर, ३३३
मैनी इन्वैन्शन्स, ३७५
मैनी कारगोज, ३७३
मोची ३६१
मोह, ३२०
मौजे तवस्सुम, ३६२
मौत के बाद, १६१
मजिल २३०

यह किसकी तस्वीर है ? १६५
यूफ्यूस, ३७०, ३६३
यूफ्यूस एण्ड हिज इङ्गलैंड ३७०

रजिया की समस्या, ६५
रमणी का रहस्य, ८६

रमला, २०३
रसगगाधर, २, ३, २८
रस तरगिणी, १
रस मञ्जरी, २
राघव, ३३३
राजा भोज का सपना, ३८६
रात और दिन, ३३३
रानी केतकी की कहानी, १०२, २१४, ३०५, ३७६
रामचरित मानस, १४०, ३४०
रामलीला, १६३, १६६, २०२
रामायण, ५, ४७, २४७, ३५३, ३६३
रिवार्ड्स एण्ड फेयरीज, ३७४
रेखाएं ओर वर्ग, वर्ग और वृत्त, १५६
रेल की रात, २३०
रोज, ३२४
रौबिन्सन क्रूसो, ३६३
रौसालिण्ड, ३७१

लच्छिमि, ३६०
लव एण्ड मि. लैविशम, ३७५
लाइट फ्रेट्स, ३७३
लाइफ्स हैण्डीकैप, ३७४
लाल महल का स्वप्न, ३८५
लाल सरोवर, २४१
लीलावती, १५, २६
लुहार की एक, १३३
लेडीज बुक, ३८०
लैला मजनूं, ३८५
लोहिनी सगाई, ३८६
लौमड़ी, १३१, २६७

वाग्भटालङ्कार, २
वाण्डरिङ्ग विलीज टेल, ३७१
वानरिन्द जातक, ३५६
वारदात, ३६१
वासवदत्ता, ५, ३६४, ३६६-७, ३६३
विदिन द टाइडस, ३७३
विदेशी रेत, ३६२
विनय पिटक, ३५८
विनोद कथा कल्प वल्ली, ३६०
विष्णुधर्मोत्तर पुराण, २
विष्णुपुराण, ३५६
वीणा, ३६०
वीमैन ऑर टाइगर, ३६३
वृहत्कथा, ३६४–५
वृहत्कथा मञ्जरी, ५, १०, ३६४–५
वृहत्कथा श्लोक सग्रह, ३६४–५
वेणुगानम् तथा मगभा, ३६१
वेताल पञ्च विशतिका, ३६४–६, ३८६
वेद, स. (३), ३३६, ३४७, ३६५, ३६२,
वेस्सन्तर (जातक), ३५६
व्यक्तिविवेक, २
व्हाइट पैरिस लाफ्ड, ३७६
व्हाट इज व्हाट, ३८२
व्हैन द स्लीपर वेक्स, ३७५

शतरञ्ज के खिलाडी, १५६
शर्मिष्ठा ययोति, ६४
शव की छाती, १५४, १८५
शान्ति, १२६, १६१
शीरी फरहाद, ३८५
शुक सप्तति, १०, ३६३–५
शुक सप्तति कथलु, ३६०
शूद्रक, २५, २६, ३०, ३६३
शखर : एक जीवनी, २२१
शौर्ट एण्ड स्वीट, ३७८
६१
..मता गजानन्द शास्त्रिणी, ३००
श्रीमद्भागवत्, ३५३
शृङ्गार तिलक, २
शृङ्गार प्रकाश, ४

सदाबहार फूल, ३६२
सदियों की राख, १८४
सन्धिभेद जातक, ३५६
सन्ध्यानृत्यम्, ३६०
सन्यासी और अन्य कहानियाँ, ३६१
सन्स एण्ड लवर्स, ३७७

सम्सुमार जातक, ३५८–६
सच की देवी, ३९२
समझौता, २९८, ३२०, ३२४
समरादित्य, २५, २६
सरस्वती (पत्रिका), ३८६–७
सहस्त्ररजनीचरित ३६०
सही चग्पय जातक, ३५६
सचिवन, ३६८
साइक्लि की सवारी, १८६
[illegible], १५६, १६५
सागर सरिता और अकाल, २१५
साहित्य-दर्पण, २, २६, ३०
साहित्य मीमासा, २, २७, २६
साहित्य सन्देश (पत्रिका), ३३६
साहित्यकी, ३३७
सिन्दबाद जहाजी ३६०
सिलास मार्नर, ३७२
सिलैक्टेड टेल्स, ३७६
सिहासन द्वात्रिशतिका, ३६४, ३६६
सिंहासन बत्तीसी ३६६
सीन्स ऑव क्लैरिकल लाइफ ३७१
सुइयाँ गलत चलती हैं, १५६
सुखदा, १६५, १८६
सुत्तपिटक ३५६
सुवर्ण गर्दभ, ३६६
सूखी लकडी ३००
सेण्ट्स, सिनर्स एण्ड द यूजुअल पीपुल,
३७६
सैंचुरी मैगजीन (पत्रिका), ३८३
सोलह सिगार, ३९२
सयुत्त निकाय, ३५६
स्कैच बुक, ३६०
स्वर्ग के खण्डहर, १६५

हमारी आदिम जातियाँ, ३४१
हाथी के दाँत,
हास्य चूडामणि, ६४
हितोपदेश,५, १०, ३५५, ३६४-५
हिन्दी शब्द सागर, २६
हेमकूट के आश्रम से आने पर, ३६१
हेमलेट, १३७

क्षुद्रनिकाय, ३५६
क्षुधित पाषाण, १६६

त्रिपिटक, ३५६

———